

प्रकाशक—

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ

उदयपुर

प्रथम संस्करण, संवत् २०१२

मूल्य १०)

मुद्रक—

व्यवस्थापक

विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

प्रकाशकीय

राजस्थान मे प्राचीन-साहित्य, लोक साहित्य, इतिहास, पुरातत्व एवम् कला-विषयक प्रचुर सामग्री यत्र तत्र बिखरी हुई है। आवश्यकता है उसे खोज कर संग्रह और संपादित करने की। राजस्थान विश्व विद्यापीठ (तत्कालीन हिन्दी विद्यापीठ) उदयपुर ने इस आवश्यकता को अनिवार्य समझकर वि० सं० १९६८ मे "साहित्य संस्थान" (उस समय प्राचीन साहित्य शोध-संस्थान) की ओर से एक योजना बना कर राजस्थान की साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक निधि को एकत्रित करने का काम हाथ में लिया। योजना के अनुसार "साहित्य-संस्थान" के अन्तर्गत विभिन्न प्रवृत्तियाँ निम्न छ विभागों में विकसित हो रही हैं (१) प्राचीन साहित्य विभाग, (२) लोक साहित्य विभाग, (३) पुरातत्व एवं इतिहास विभाग, (४) नव साहित्य-सृजन विभाग, (५) अध्ययन गृह एवं सामान्य-विभाग।

१. साहित्य-संस्थान द्वारा सर्व प्रथम राजस्थान मे यत्र तत्र बिखरे हुए हिन्दी और संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज और संग्रह का काम प्रारम्भ किया गया। राजकीय पुस्तकालय, जागीरदारों के ऐसे संग्रहलाय एव जहाँ भी ऐसी पुस्तकें थीं और देखने नहीं दी जाती थीं, धीरे-धीरे इसके लिए वातावरण बनाकर काम कराया जाने लगा। सब से पहले साहित्य-संस्थान द्वारा 'राजस्थान में हिन्दी के हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' (विबंलियोग्राफी) का काम हाथ में लिया, जिसे अब तक चार भाग 'राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज' नाम से प्रकाशित किये जा चुके हैं और पाँचवाँ भाग शीघ्र ही प्रेस में दिया जाने वाला है।

प्राचीन साहित्य विभाग मे 'हस्त लिखित ग्रन्थों की खोज' के अतिरिक्त १६००० चारण गीत विभिन्न विषयों के एकत्रित किये जा चुके हैं।

२. लोक साहित्य-विभाग द्वारा हजारों कहावतें, लोक-गीत, मुहावरें, लोक कहानियाँ, वात-व्यात ख्याल, पहेलियाँ, वैठकों के गीत आदि संग्रह किये जा चुके हैं। लोक साहित्य मे कहावतों के तीन भाग (१) मेवाड़ की कहावतें, (२) मालवी कहावतें तथा (३) राजस्थानी भीलों की कहावतें नाम से छप चुके हैं। लोक गीतों में

“राजस्थानी-भिलों के लोकगीत भाग १” प्रकाशित हो चुकी है तथा ‘ओम्ना-सन्ध-सग्रह’ ‘आदि-निबन्धी-भिल’ नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है। लोक-साहित्य की तीन चार और भी महत्व-पूर्ण पुस्तकें प्रकाशनार्थ तैयार हैं। ‘सांस्कृतिक-सुविधा’ के पाठ लेने ही पुस्तकें प्रेस में दे दी जायेंगी।

३ पुरातत्व और इतिहास-विभाग के अन्तर्गत पत्रे, परचाने, तापपत्र, पा ऐतिहासिक महत्व के अन्य कागज-पत्रों का समग्र क्रिया जाता है। पा तीन मूर्तियाँ, सिक्के, शिलालेख, चित्र तथा अन्य कला-कृतियाँ एकत्रित की जाती हैं। उगम-पत्रों की सामग्री एकत्रित करली गई है।

साहित्य-संस्थान के काम और उमकी उपयोगिता के लिये प्रथम परचाने-वेत्ता स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओम्ना ने अपने समस्त प्रकाशित और अप्रकाशित ऐतिहासिक एवं पुरातत्व-संबन्धी निबन्ध-संस्थान को प्रदान कर दिये थे। उन सब का प्रकाशन चार भागों में ‘ओम्ना-निबन्ध-सग्रह’ के नाम से किया जा चुका है। पुरातत्वज्ञों और ऐतिहासिकों के लिए ये निबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण और उपयोगी हैं।

इसी विभाग के अन्तर्गत स्व० डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द्र ओम्ना की स्मृति में राजस्थान के इतिहास कार्य के लिए “ओम्ना-आसन” स्थापित है जिसमें प्रतिवर्ष राजस्थान के इतिहास से सम्बन्धित तीन भाषण लिखित रूप से अधिकारी विद्वान् द्वारा कराये जाते हैं इस आसन से “पूर्व-आधुनिक-राजस्थान” नामक पुस्तक का प्रकाशन हो चुका है, जिसके लिए यू० पी० सरकार ने पुस्तक के लेखक को ७५० रु० का पुरस्कार भी प्रदान किया है।

४ प्राचीन साहित्य की शोध-खोज के अलावा नवीन प्रगतिशील साहित्य की ओर भी विद्यापीठ का ध्यान गया और इसके अन्तर्गत साहित्य-सृजन का कार्य प्रारम्भ किया गया। अब तक इस प्रवृत्ति के अन्तर्गत एक “आचार्य-चारणक्य” नाटक दूमरी बृज भापा का खड काव्य “तुलसीदास” एवं तीसरी “नयाचीन” नामकी पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं।

पुस्तकों के सृजन के साथ-साथ नवीन प्रगतिशील लेखकों को प्रोत्साहित करने और साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिये “राजस्थान-साहित्य” नामक मासिक पत्र का प्रकाशन किया जाता है।

५. अध्ययन गृह और संग्रहालय में अब तक १००० महत्व पूर्ण हस्त लिखित ग्रन्थ एवं २५०० मुद्रित ग्रन्थ एकत्रित किये जा चुके हैं। इसके अन्तर्गत प्राचीन चित्र, शिल्प कला के नमूने तथा ऐसी ही कलात्मक सामग्री इकट्ठी की जा रही है।

६. सामान्य विभाग में राजस्थानी के प्रसिद्ध महाकवि सूर्यमल की स्मृति में "सूर्यमल आसन" स्थापित है। इस आसन से प्रतिवर्ष "राजस्थानी भाषा और साहित्य" विषय पर किसी अधिकारी विद्वान् के तीन मौलिक भाषण आयोजित किये जाते हैं और उन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जाता है। इस आसन से "राजस्थानी भाषा" नामक पुस्तक प्रसिद्ध भाषा तत्वज्ञ डॉ० सुनीति कुमार चाटुर्ज्या की प्रकाशित हो चुकी है।

इसी के अन्तर्गत शोध-खोज सम्बन्धी साहित्य को प्रकाश में लाने के लिए "शोध-पत्रिका" नामक त्रैमासिक का प्रकाशन किया जाता है। इसके सम्पादक मडल में साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। देश के सभी विद्वानों का सहयोग इस पत्रिका को प्राप्त है।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान अपनी बहुमुखी कार्य-योजना द्वारा राजस्थान के विखरे हुए साहित्य को एकत्रित कर प्रकाश में लाने का नम्र किन्तु अपनी दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। हमारे देश की प्राचीन साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परम्पराओं तथा चिंतन-स्रोतों को सदैव गतिशील एवं अमर बनाये रखना है तो इस काम को और अधिक व्यापक बनाना होगा। राजस्थान और भारत के विद्वानों, विचारकों और साहित्यकारों का इस प्रकार के शोध-पूर्ण कार्यों की और अधिकाधिक प्रवृत्त होना आवश्यक है।

साहित्य-संस्थान राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर पिछले दस वर्ष से हिन्दी के आदि महाकाव्य "पृथ्वीराज रासो" का प्रामाणिक संस्करण हिन्दी अनुवाद सहित करवा रहा था, अब वह सम्पूर्ण रूप से तैयार हो चुका है और 'प्रथम खण्ड' का प्रकाशन गत वर्ष किया जा चुका है। प्रथम खण्ड के प्रकाशन के लिये राजस्थान सरकार को अपनी ओर से कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

इस वर्ष साहित्य-संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ की ओर से राजस्थान सरकार के द्वारा भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय से महायता के लिये निवेदन

किया गया था। राजस्थान सरकार के शिक्षा-सचिवालय द्वारा भेजे गये साहित्य संस्थान के प्रार्थना-पत्र पर भारत सरकार के शिक्षा-सचिवालय ने ४८५००) अड़तालीस हजार पाँच सौ रुपये की सहायता निम्न कार्यों के लिये स्वीकार की—

“पृथ्वीराज रासो” के तीन खण्डों के प्रकाशन के लिये, पुस्तकालय के विकास के लिये एवं ध्वनि सुरक्षा यंत्र (साउण्ड रेकॉर्डिंग मशीन) खरीदने के लिये।

उक्त चारों मदों के लिए भारत सरकार के शिक्षा विकास-सचिवालय की ओर से उपयुक्त सहायता स्वीकार की गई। इस स्वीकृत सहायता की रकम में सस्था की अपनी ओर से ३ एक तिहाई रकम मिलाकर मार्च १९५६ के पूर्व उक्त कार्यों को समाप्त करने की शर्त रखी गई थी। उसके अनुकूल ही हमने प्रस्तुत ‘ रासो ’ के प्रकाशन का कार्य किया है। भारत सरकार के शिक्षा-विकास-सचिवालय की ओर से प्रदान की गई इस अनिवार्य सहायता के लिये साहित्य-संस्थान की ओर से उक्त सचिवालय के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ ही राजस्थान सरकार के शिक्षा सचिवालय और शिक्षा विभाग का अत्यन्त आभारी हूँ कि जिन्होंने सस्थान के कार्य को ध्यान में रखकर उक्त सहायता प्रदान करवाने में पूरा २ योग दिया। विशेष कर राजस्थान के मुख्य मंत्री (जो शिक्षा मंत्री भी हैं) माननीय श्री मोहन-लालजी सुखाड़िया का अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ जिन्होंने साहित्य-संस्थान के काम को और उसके द्वारा किये जाने वाले परिश्रम को महत्वपूर्ण और अनिवार्य उपयोगी मानकर सहायता प्रदान करने के लिये भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय को सिफारिश की। सच तो यह है कि उक्त सहायता श्री सुखाड़िया, भारत सरकार के डिप्टी शिक्षा सलाहकार डॉ० पी० डी० शुक्ला, डॉ० भान तथा असिस्टेंट शिक्षा सलाहकार श्री मोहनसिंह ००० ०० (लदन) और उपशिक्षा मंत्री डॉ० श्रीमाली की प्रेरणा से ही मिल सकी है। इसलिए इन सब का मैं अत्यन्त आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि आगे भी सस्थान के कार्य-विकास में आप सबका सक्रिय योग मिलता रहेगा।

राजस्थान विश्व विद्यापीठ के पीठमन्त्री और मेरे सहयोगी भाई भगवती लाल भट्ट ने इस सहायता को प्राप्त करने में काफी कष्ट उठाया, उसके लिए मैं इनका कृतज्ञ हूँ।

उन सब महानुभावों का भी मैं आभारी हूँ, जिन्होंने रामो के सम्पादन में धानक और प्राचीन प्रतियों द्वारा संस्थान और सपादक को सहायता दी है। आशा है भविष्य में भी संस्थान को उन सब की सहायता मिलती रहेगी, क्योंकि संस्था उन्हीं की है।

गिरिधारीलाल शर्मा

अध्यक्ष

साहित्य-संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

वसन्त पंचमी {
वि० सं० २०१२ }

* महा पंडित राहुल सांकृत्यायनजी ने सम्पादन की प्रणाली के बारे में सुझाव दिये और श्री लक्ष्मीलालजी जोशी (प्रचेता, राजस्थान विश्व विद्यापीठ) से हमें इस कार्य में समय २ पर उत्साह एवं प्रेरणा मिलती रही है, अतः मैं उक्त दोनों महानुभावों का आभार प्रदर्शित करता हूँ।

संस्था की ओर से

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर के अन्तर्गत आज से एक युग पूर्व प्राचीन साहित्य की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन कार्य के लिये "प्राचीन साहित्य खोज विभाग" की स्थापना की गई थी। तब से आज तक इसके नाम मे कार्य और प्रवृत्तियों के विकास एवं विस्तार के साथ अनेक परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे हैं। इस समय यह 'साहित्य-संस्थान' के नाम से प्रख्यात है। प्राचीन-साहित्य की शोध-खोज, संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन के अतिरिक्त आज इसमें लोक-साहित्य, इतिहास, पुरातत्व और कला-विषयक सामग्री की शोध-खोज कर, उसका सम्पादन एवं प्रकाशन का काम होता है। साथ ही नवीन-साहित्य के सृजन और विकास के लिये भी क्षेत्र तथा वातावरण तय्यार किया जाता है। नवीन उदीयमान प्रतिभाशाली लेखकों की रचनाओं के प्रकाशन की समुचित-व्यवस्था करने के लिये साधन-सुविधाएँ एकत्रित की जाती हैं और उनके लिये अवसर उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जाता है। साहित्य-संस्थान विगत एक युग से भारतीय साहित्य, उसकी सस्कृति और विविध कलात्मक सामग्री के पुनर्शोधन के लिये निरन्तर प्रयत्नशील है। संस्थान की ओर से अब तक कई महत्वपूर्ण प्रकाशन किये जा चुके हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ भी उसी का परिणाम है।

दस वर्षों के अथक परिश्रम और अव्यवसाय के कारण ही आज यह हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य हिन्दी अनुवाद सहित हिन्दी जगत के सामने प्रस्तुत किया जा सका है। इसके सम्पादन का आधार विभिन्न काल की विभिन्न हस्तलिखित 'पृथ्वोगज-रासो' की प्रतियाँ ही रही हैं। इसके सम्पादन और प्रकाशन मे विपुलश्रम, शक्ति और धन का व्यय साहित्य-संस्थान की ओर से किया गया है।

सम्पादकीय

कविवर केशव ने ठीक ही कहा है—

राजत रञ्च न दोष युत, कविता वनिता मित्र ।

बुन्दक हाला परत ही, गंगा—घट अपवित्र ॥

जिस प्रकार अल्प मात्र भी दूषण आजाने से स्त्री और मित्र अच्छे नहीं लगते, उसी प्रकार कविता में भी रञ्च मात्र दोष आजाने पर वह अशोभनीय हो जाती है। ठीक यही स्थिति महाकवि चन्द वरदाई की गंगा-प्रवाह तुल्य काव्य-धारा में बूंद रूप ही नहीं अपितु महान् अपवित्र वारुणी-धारा के रूप में मूल रासो से भी दुगुनी संख्या से ऊपर (मूल रचना ५००० चन्द पुत्रों की रचना २००० के अतिरिक्त ११०००) क्षेपक छन्दों के मिल जाने से हुई है, फिर भी सहृदय विद्वानों के हृदय में उसका महत्त्व बना हुआ है। विरोधी पक्ष वाले विद्वानों में से एक-दो ने तो यहाँ तक कह दिया कि 'चन्द को अनुस्वार तक का ज्ञान नहीं था।' किन्तु उन्हीं का अनुसरण करने वाले विद्वान् अत्र रासो के काव्य-सौष्ठव का लोहा मानने लगे हैं। उनके विचार में रासो एक अद्वितीय काव्य-सिन्धु है, और यह ठीक भी है क्योंकि रासो से स्पष्ट है कि महाकवि चन्द वरदाई का पूरा नाम "पृथ्वीचन्द" या "पृथ्वीभट्ट" था, जिसके लिए उसीका समकालीन पंडित जयानक अपने 'पृथ्वी-राज विजय' नामक महाकाव्य (अपूर्ण) में लिखता है कि पृथ्वीराज का वंदीराज पृथ्वीभट्ट अनेकों इतिहासों का ज्ञाता होने से व्यास बन गया है।^१ यह कथन रासो की पुराण शैली का सुदृढ़ प्रमाण है, एव इससे रासो के ऐतिहासिक तथ्य पर भी पूर्णतः प्रकाश पड़ता है। महात्मा मूर ने भी अपने को चन्द-वशज लिख कर गौरव का अनुभव किया—“भये चन्द चारु नयीन।” आज से तीन सौ वर्ष पूर्व कविवर दयालदास राव^२ अपने “राणा रासो” ग्रन्थ के अंत में चन्द की धारा-प्रवाह रचना के विषय में लिखते हैं—

(१) “इतिहास शताभ्याम व्यास. द्वावास (सन्निधौ)।”

इतिहास शुचि बन्दी भूयो-बुदहरद् गिरम् ।” (पृ० वि० सर्ग ११, श्लोक १७)

(२) यद्यपि दयालदास ने अपने ‘राणा रासो’ में अपनी जाति का कहीं उल्लेख नहीं किया है, फिर भी ग्रन्थान्त में हमें निम्न संकेत मिलता है—‘त्रिदाइ त्रिष्टि वदी वदे’।

चन्द छन्द चहुआन के, बोली उमा विशाल ।
राण रास इतिहास को, दोरे न पलत दयाल ॥

इसके कुछ बाद (वि० स० १७२० से कुछ पूर्व) राजस्थानी भाषा के प्रमुख चारण कवि जोगीदास ने अपने “हरि पिंगल प्रबन्ध” के मगला चरण में संस्कृत के महान् कवियों की वन्दना के साथ २ महाकवि चन्द को कालिदास की सम कृता में स्थापित किया है—‘चन्दह कालिदास’ ।

इस प्रकार वर्तमान समय के साहित्य-प्रेमी ही नहीं, अपितु चन्द के समकालीन और उसके परवर्ती कवियों ने भी रासो और रासोकार के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित की है । इसका कारण यह है कि साहित्य-सृष्टि में सर्वत्र सरसता का साम्राज्य और नीरसता का अभाव रहता है । यहाँ तक कि इतिहास में भी केवल मात्र इतिवृत्त ही नहीं रह कर कल्पना विलास की प्रधानता हो जाती है जिसके कारण प्रत्येक स्थल विविध काव्य-कुसुमों से परिपूर्ण होकर सारे जगत् को सौरभ और मधुर पराग प्रदान करता रहता है । कल्पना और अतिशयोक्ति पूर्ण होते हुए भी वह वास्तविक इतिहास की क्षतिपूर्ति करने में समर्थ होता है । शुष्क हृदय प्राणी वहाँ प्रथम तो पहुँच ही नहीं सकते और यदि पहुँच भी जाते हैं तो सुरम्य वाटिका में निवास करने वाले कौशिक, काग और चिमगादड़ों के समान विविध पुष्पो-फलों का उपयोग नहीं कर सकते । ऐसे स्थलों (काव्य-कुञ्जों) की रचना तो भगवती वीणा पाणि ने रस-मुग्ध भ्रमरों, कोकिलाओं और चातकों के लिए ही की है । रासो भी काव्यात्मक इतिहास है जिसको समझने के लिए कवि-हृदय की आवश्यकता होती है । इसके गूढ तत्व की प्राप्ति के लिए केवल वाच्यार्थ से ही काम नहीं चलता, इससे तो उलटे उसकी गहनता में उलझना ही संभव हो जाता है । साहित्यकारों की धारणा सर्वदा उसके गहनतल में प्रवेश करके वास्तविक तथ्य को खोज कर जन समुदाय के समन्त रखने की होती है अतः अब तक रासो के अन्त साक्ष्य और बहिर्साक्ष्य विवेचन से उस पर जो कुछ भी प्रकाश पडा है उससे हमने लाभ उठाया है । बाह्य पक्ष के आधार पर लेखनी उठाने वालों की भ्रमात्मकता का केवल मात्र कारण रासो के क्षेपक अश ही हैं जो स्वाभाविक भी था । हमने दोनों पक्षों को अपने समन्त रखते हुए इसका अनुवाद किया है जिसके फलस्वरूप यह तृतीय भाग विद्वानों के समन्त प्रस्तुत है । इसमें ऐतिहासिक प्रटनाओं क्रमशः इस प्रकार वर्णित हैं -

‘वरुण-कथा’ में पृथ्वीराज के विरक्त पिता सोमेश्वर^१ ने मथुरा तीर्थ की यात्रा करके चन्द्रग्रहण के अयसर पर यमुना स्नान के पश्चात् शोडप प्रकार का दान किया ।

‘सोमवध’ में भीम ने अपने सामंतों को सोमेश्वर पर चढ़ाई करने के लिए बुलाया, उनमें रानिङ्ग मकवाना और वीर धवल भी^२ था । इसी स्थल पर एक अन्य (भोलाराय समय में शहाबुद्दीन द्वारा मारे गये सारंगदेव मकवाना के अतिरिक्त) राजपद धारी सारंग मकवाने के सम्मिलित होने का भी उल्लेख है^३ । युद्ध में सोमेश्वर के मारे जाने पर पृथ्वीराज ने चालुक्यकी वीरों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करके^४ पाटोत्सव मनाया जिसमें जनता भी सम्मिलित थी ।

‘पञ्जून छोंगा’ में बालुक भीम ने रानिङ्ग भाला के महाबली विरुद्धारी पुत्र के सिर पर छोंगा (किलंगी) बँधाकर सेनापति बनाया ” । उसने जालोर पर चढ़ाई की तब पृथ्वीराज के सामन्त कछवाहे पञ्जून और उसके पुत्र मलयसिंह ने महाबली का छोंगा (किलंगी) छीन लिया और पृथ्वीराज को जाकर उसे समर्पित किया । पृथ्वीराज ने उस छोंगा को मलयसिंह को ही दे दिया ।

‘पञ्जून चालुक्य’ में बालुक भीम ने^५ जयचन्द और यवन सेना के बल पर पृथ्वीराज पर चढ़ाई की । पृथ्वीराज की ओर से कछवाहे पञ्जून ने अपने भाइयों और पुत्रों सहित सामना किया । पृथ्वीराज के अन्य सामन्त भी इस युद्ध में सम्मिलित हुए । यह युद्ध खोखन्द नामक स्थान पर हुआ था जिसमें पञ्जून की विजय हुई ।

(१) “सा दिख्य वृपराज तात जलय विमच्छ यद्ध्या क्रुध” वरुण कथा के ६१, ६२, ६३ पद्य में भी सोमेश्वर के ज्ञान वाक्य से उसकी ससार में विरक्ति (वानप्रस्थ्य अवस्था) स्पष्ट है ।

(२) “वीर धौलंगी देवधर”

(३) “धौल हरै सुलितान, वीर सारंग मकवान”

(४) बालुक भीम मर मजिकै, कटौ तात उदरह सुखम”

(५) “विरद बुलावे महबली, छोंगा सच्यौ स धूय”

(६) “बालुकका हिंदू कमध, और सु गौरि साहि”, “आई खबरि चहुयान, सुदल बालुककराइ मजि ।”

‘चन्द्र द्वारिका गमन’ में पृथ्वीराज ने पापा लोहर चन्द्र विमान (विमान) में हाथी जोते जाते थे उसे इन्द्र विमान कहते हैं) पर पापा लोहर पृथ्वीराज (चन्द्र वरदाई) ने द्वारिका के लिए प्रस्थान किया और चित्तौड़ होना : पापा लोहर पहुँचा । पुन लौटते हुए कुन्डनपुर में भोला भीम, कविचन्द्र से पाकर मिला और उसे सम्मानित किया । तब कविचन्द्र दिल्ली लौट आया ।

‘भीम बंध’ में पृथ्वीराज ने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए भीम को बन्धन में ले लेने की प्रतिज्ञा की^२ । ज्योतिषी द्वारा मुहूर्त देखकर भी इस बात की पुष्टि की गई^३ । कविचन्द्र ने कहा कि इस समय पृथ्वीराज और चित्तौड़ेश्वर रावल समर-विक्रम दोनों ही शक्तिशाली हैं और भारत की डाँडाडोल अवस्था के समय भारत का भार इन्हीं कंधों पर है^४ । तनपश्चात् पृथ्वीराज ने गुर्जर प्रदेश पर चढ़ाई की । दोनों सेनाओं में साबरमती के तट पर भयानक युद्ध हुआ । युद्ध के अंत में भोला भीम पृथ्वीराज की दया का पात्र बना (बन्धन में लेकर छोड़ दिया गया)^५ ।

‘कैमास युद्ध’ में पृथ्वीराज शिकार खेलने के लिए खट्टू वन में गया । इसकी सूचना धर्मायन ने शाह को दी । शाह रवाना होकर पारसपुर में ठहरा और सिन्ध नदी को पार कर अ० स० ११४७ (वि० स० १२३८) में पजाव की ओर चला । रास्ते में सारुण्डे होता हुआ लाडन् पहुँचा । पृथ्वीराज को इसकी सूचना मिलने पर कैमास ने कहा कि यह शाह बार-बार चढ़ आता है और सधि भंग करता है । अतः मैं इसे पकड़ कर बन्दी बनाऊँगा^६ । पृथ्वीराज सेना सहित रवाना होकर गोविन्दपुर और पाँचोसर नामक स्थान पर ठहरा । युद्ध करते हुए कैमास ने शाह को बन्धन में ले लिया ।

(१) सत गयद रथरूढ, साज आसन “प्रथि” रज्जह ।

(२) “जदिन भीम मग्रहौ, सोम उग्रहो तदिण रिण”

(३) ‘व्याम आनि दख्खी लगन, घरी अस पल जोह ।
इहि समअैं जौ सच्चिये, सही जित्ति तौ होह ॥”

(४) “विक्रम अरु चहुआन नृप, पर धरती सक बध ।
अमम समे साहम करन, हिन्दु राज दुअ कध ॥

(५) “दया देह उद्धरै” ।

(६) “वेर-पेर आवत इह, मानै मेख न मधि ।
उह लौन पृथिवीराज रो, आनो माहि सु अधि ॥”

“हंसावती समय” में हंसावती के पिता भानुराय देवास से (शरण रूप में) रणथंभौर आकर रहने लगे । इसका कारण यह था कि कन्नौजेश्वर शशिवृता वाली घटना के कारण रुष्ट था ही, शहाबुद्दीन भी उसके संकेत से देवास पर अपनी क्रूर दृष्टि लगाये था । इधर राजकुमारी हंसावती के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर शिशुपाल वंशी पंचायन भी उससे विवाह करने को उत्सुक था । भानुराय यादव के रणथंभौर पर सकुटुम्ब रहने पर पंचायन ने रणथंभौर पर चढ़ाई की । यह देख कर भानुराय की बसही (देवास से साथ में आये हुए आश्रितों की टोली) युद्धार्थ रणथंभौर से उतर पड़ी^१ । उस समय रणथंभौर का वास्तविक राजा पृथ्वीराज यश-लता तुल्य और शरण में आया हुआ राजा भानु फल-स्वरूप दिखाई दिया^२ । एक ओर यादव राजा भानु युद्धार्थ उतर पड़ा, दूसरी ओर पृथ्वीराज द्वारा भेजे गये कन्हू ने रावल समर से निवेदन किया कि बलवान होते हुए भी यादव राजा भानु की पृथ्वी छूट गई है^३ । तब वीर एव शरणागत-रक्षक रावलजी और पृथ्वीराज ने मिल कर पंचायन को परास्त किया । फिर उस मध्यदेशीय मालव राजा भानु की सुन्दरी राजकुमारी हंसावती का प्रेम पृथ्वीराज की ओर उमड़ पड़ा^४ । पृथ्वीराज ने उस राजकुमारी से विवाह किया और एक मास तक राजा भानु को रणथंभौर पर रखा^५ । युद्ध के बाद चित्तौड़ेश्वर चित्तौड़ को और पृथ्वीराज हंसावती सहित दिल्ली आगये, तब राजा भानु भी देवास लौट गया ।^६ हंसावती-विवाह के समय पृथ्वीराज की आयु २२ वर्ष और चित्तौड़ेश्वर रावल समर-विक्रम की ५७ वर्ष की थी ।^७

(१) “रनथम मंडि छडी सरन”, “सरन रक्खि कडुइ न”, “मालव दुग देवाम ।”

(२) “वर रन थम उत्तरी, वीर बस्ती आहुटी”^१।

(३) “जस बेली रनथम नृप, फल पच्छे नृप आइ”

(४) “धरति धवर नह तांम”

(५) “मध्यदेश मालव नरिंद, हंस हसध्वज मीनी”

(६) “मास वीथ विस्ते नृपति”

(७) “देव-राज जदम बहिय”

(८) “वित्त कवित्त उगाह करि, चद छंद कवि चद ।

समर अठारह बरष दस, दिवस त्रिपच रविंद ॥”

“पहाडराय” समय की युद्ध घटना पृ० सं० ११५५ (ई० सं० १०३६) की है। इसमें पृथ्वीराज और शाह की सेना में युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज की शक्ति के बल पर पहाडराय तैवर ने कन्दहार (पेशावर, गजनी प्रादि) के वास्त्याह को बन्धन में ले लिया। (ज्ञात रहे इस ‘समय’ का क्रम भी विचारणीय है। शीघ्रता में ठीक नहीं कर सके अतः पाठक पढ़ते समय क्रम का ध्यान करें)।

“विनय मगल” में मदन ब्राह्मणी और उसके पति को पुराण शैली पर गंधर्व दुम्पति (यक्ष-यक्षिणी) का रूप दिया गया है। जिस समय मदन ब्राह्मणी से सयोगिता ने विनय (स्त्रियोचित ज्ञान) का पाठ पढ़ा, उस समय उसकी आयु पूर्ण आयु से आधी (१४ वर्ष) की हो चुकी थी। कवि ने स्पष्ट भी कर दिया है कि वह उस समय १२ वर्ष ६ माह और ५ दिन की हुई थी (१४ वा लगने आया था)^१। सर्व प्रथम सयोगिता ने मदन ब्राह्मणी से ही पृथ्वीराज का परिचय पाया। संयोगिता की माता जुन्हाई थी, जो विशेष मानवती थी^२।

“संयोगिता नैमाचरण” में जब सयोगिता ने पृथ्वीराज को ही वरण करने की दृढ प्रतिज्ञा की तो जयचन्द ने क्रुद्ध होकर उसे गगातट के महलों में रख दिया।

“शुक वर्णन” में मदन ब्राह्मणी और उसके पति को पुराण शैली के आधार पर ‘शुक-शुकी’ एवं ‘दुज-दुजी’ (ब्राह्मण-ब्राह्मणी) कहा गया है। उन दोनों ने दिल्ली जाकर सयोगिता के प्रेम को पृथ्वीराज पर प्रकट किया।

“वालुकाराय” में जयचन्द ने यज्ञ और सयोगिता का स्वयंवर करने का विचार किया और पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा द्वार पर (द्वारपाल के स्थान पर) स्थापित कर दी। तब पृथ्वीराज ने चढाई करके जयचन्द के भाइयों में से मकेसराय के पुत्र वालुकाराय को युद्ध में मार डाला और इस प्रकार जयचन्द के यज्ञ और कुमारी के स्वयंवर में बाधा डाली।

‘पग यज्ञ विध्वंस’ में जयचन्द ने पृथ्वीराज को बन्धन में लेकर ही यज्ञ करने की प्रतिज्ञा की, किन्तु उसकी रानी ने अपने मधुर उपदेश से समझाया कि

(१) ‘जनम सजोग विखटि’, ‘पूजन बाल खट विय बरख, नव मासह दिन पंच वर’।

(२) “मह जजार स जान, सुन्हाई नेय जानय तत्त”

पृथ्वीराज भी सामान्य वीर नहीं हैं। भविष्य में न जाने क्या हो, 'अत' उसने कुमांगी का स्वयंवर करके ही बाद में यज्ञ करने की सलाह दी, जिसे जयचन्द्र ने भी मान लिया। तब जयचन्द्र ने पृथ्वीराज के भूभाग पर-यत्र तत्र अपने सामंतों को आक्रमण करने के लिए नियुक्त कर दिये। पृथ्वीराज अपनी जनता को सुरक्षित स्थान में पहुँचा कर राजौरवन में आकर ठहरा। उसके भूभाग की रक्षा के लिए उसके साथी और सम्बन्धी रावलजी भी सहायक हुए। यह देखकर जयचन्द्र के नियुक्त किये हुए सामंत पृथ्वीराज के भूभाग से हट गये।

“संयोगिता पूर्व जन्म” की कथा पुराण शैली के आधार पर गंधर्व दम्पति रूपी मंदना ब्राह्मणी और उसके पति में परस्पर प्रश्नोत्तर के रूप में प्रारम्भ हुई है। इन्द्र ने रंभा आसरा द्वारा सुमंत ऋषि की तपस्या को नष्ट कराया, तब सुमंत के पिता (या गुरु) जरज ने रंभा को श्राप दिया कि वह अपने पिता और पति के कुल का नाश कराने वाली होगी। रंभा ने उनसे दया की भिक्षा माँगी तो उन्होंने कहा कि यह पृथ्वीराज को प्राप्त करेगी और गगा-मनान से श्राप का प्रभाव छूट जावेगा।

“हाँसी प्रथम युद्ध” समय से ज्ञात होता है कि इधर तो पृथ्वीराज ने शिकार के वहाने कन्नौज, गुर्जर और दक्षिण प्रदेश तक अपना आतंक फैला दिया, उधर दिल्ली स्थित चासुण्डराय और भोज कुमार (संभव है यह कोई सामंतकुमार हो) ने दिल्ली और नागौर को सुरक्षित रखा। यह व्यवस्था एक वर्ष तक रही। पृथ्वीराज हाँसी के भूभाग को सुरक्षित रखने के लिए कछवाहे पञ्जून के नैवल में कुछ सामंतों को वहाँ पर नियुक्त कर दिया। इसकी सूचना पाकर वल्लोची पहाड़ी ने बादशाह को सूचना दी और कहला भेजा—‘यदि आप हमारी सहायता करें तो मैं अपनी वेगमों के वहाने से हाँसी स्थित पृथ्वीराज के सामंतों से रास्ता माँगकर छेड़-झाड़ करूँ, क्योंकि हम कधारी और वल्लोची आपकी सीसा पर रहने वाले भूमिया (भूस्वामी) हैं। हमारी यह रीति है कि हम अपने अधिकृत भूभाग को समान रूप से बाँट लेते हैं।’ शाह को यह सूचना देकर वल्लोची हिंसार की ओर बढ़ा। पृथ्वीराज के सामंतों ने रात्रि में व्यापार कर वल्लोची और उसकी सहायक सेना को तितर-वितर कर दिया और वल्लोची की बेमोह को लुटकर छोड़ दिया। तब शाह स्वयं वल्लोची के पक्ष में चढ आया और हाँसी से दस कोस की दूरी पर रह कर अपने प्रमुख यवन योद्धाओं द्वारा हाँसीपुर को घेर लिया। दिल्ली और नागौर की

रत्ना-व्यवस्था के बाद चामुण्डराय भी हॉमी आ पहुँचा और उसने सामंतों महित शाही सेना के व्यूह को तोड़ कर प्रमुख यवन यौद्धाओं को वहाँ से भगा दिया ।

“हॉसी द्वितीय युद्ध” की घटनाएँ इस प्रकार हैं—हॉसी से भाग कर आई हुई सेना को एकत्रित कर शाह ने हॉसी दुर्ग को घेर लिया और दुर्ग स्थित सामंतों को कहलाया—‘या तो शस्त्र प्रहण करो या धर्मद्वार (दुर्ग में एक ऐसा द्वार होता है जिससे पराजित यौद्धा निकल भागते हैं और उन्हें विपत्ती भी अभयदान दे देता है । इसे ‘भागन सेरी’ भी कहते हैं) से निकल जाओ ।’ यह सुन कर अनेक यौद्धा उस धर्म द्वार से निकल भागे किन्तु सहस्र मल्ल और देवकर्ण आदि वीर यौद्धा वहीं टिके रहे, जो आगे चलकर युद्ध करते हुए मारे गये । उधर बंदीराज पृथ्वी-भट्ट (कविचन्द)^१ ने स्वप्न में हॉसी दुर्ग की रक्षा की पुकार सुनकर पृथ्वीराज को सचेत किया । पृथ्वीराज ने महामंत्री कैमास की सम्मति से रावल समर-विक्रम को हॉसी पहुँचने का सदेश दिया । इधर रावल समर द्रुत गति से हॉसी पहुँचे, उधर पृथ्वीराज ने हॉसी से भागे हुए हरिसिंह (पृथ्वीराज का भाई हरिराय)^२ और अन्य सामंतों को उत्साहित किया एवं सेना सजा कर प्रस्थान किया । रावल-समर के पहले पहुँच जाने पर भयभीत सामंतों में उत्साह और प्रसन्न यवनों में भय छागया । रावल समर-विक्रम ने यवनों से युद्ध करके अपने ‘विक्रम’ नाम को सार्थक कर दिया^३ । युद्ध के समाप्त होते होते पृथ्वीराज भी हॉसी पहुँचा और दोनों की सेना ने मिलकर शाह और उसकी सेना को हॉसी से भगा दिया । शाह भी हॉसी को छोड़कर दिल्ली पर आक्रमण करने को चल पडा, किन्तु रावल समर और पृथ्वीराज ने उसका रास्ता रोककर उसे फिर परास्त कर भगा दिया । इस युद्ध का श्रेय नृप-केशरी (पृथ्वीराज) और बल-केशरी (विक्रम-केशरी) को समान रूप से ही प्राप्त हुआ^४ ।

“पञ्जून महोवा” में पहले की पराजय की जलन और पञ्जून द्वारा महोवे के भूभाग को दबा लेने पर शाह ने तत्तार की मलाह से महोवे पर चढाई की । पञ्जून ने शाह से लोहा लिया और उसे परास्त कर दिया ।

(१) “पुक्करिवि नृप “राह”, “ हॉमी पुच्छे ‘पुहुमिगय’ ”

(२) “निट्टर वर हरिसिंह”, “अचल अटल हरिसिंह”

(३) “सवर” सत्त जपन सु ।”

(४) “केमर नरिंद” “केमर बलह”, नेग त्रिचि त्रिचि लहरि,”

“पञ्जून पातशाह युद्ध” मे पृथ्वीराज ने नागोर की रक्षा के लिए पञ्जून को कई सामंतों सहित नियुक्त किया। जब वादशाह ने उस पर चढ़ाई की और युद्ध हुआ तो पञ्जून के पुत्र मलयसिंह ने उसे बन्धन में ले लिया।

“सामत पग” समय मे पृथ्वीराज के भूभाग पर आक्रमण करने से पूर्व जयचन्द्र ने चित्तौड़ेश्वर रावल समर को अपनी ओर मिलाने हेतु मंत्री सुमत को चित्तौड़ भेजा, किन्तु रावल समर ने उसके इस आग्रह को नहीं माना और उसे यज्ञ नहीं करने के लिए समझाया। इस पर जयचन्द्र ने पृथ्वीराज के भूभाग पर चढ़ाई कर दी। पृथ्वीराज ने सामंतों के बल की परीक्षा लेने के लिए कैमास महित ग्यारह सामंतों को कन्नौजेश्वर से भिड़ने की आज्ञा दी और स्वयं आखेट मे रत हो गया। सामंतों ने पंगुराज को रात्रि मे छपा मारकर भगा दिया। जिस रात्रि में सामंतों ने जयचन्द्र पर छपा मारा, उस रात्रि को पृथ्वीराज भी शिकार छोड़कर दिल्ली आगया और रानी पुंड़ीरनी से पेम-विनोद में लीन होगया। युद्ध से लौटता हुआ पंगुराज प्रतना के स्थानों को जलाता हुआ मेवाड़ प्रदेश की ओर रावल समर विक्रम पर आक्रमण करने के लिए समैन्य चल पड़ा।

“समर पग” समय में पंगुराज मेवाड़ पर चढ़ आया। रावल समर विक्रम भी युद्धार्थ तत्पर हुआ और युद्ध मंत्रणा की। इस मंत्रणा मे पृथ्वीराज का भाई हरिसिंह भी सम्मिलित था^१। पंगुराज और समर विक्रम में दुर्गापुर (वर्तमान शाहपुरा राज्य मे धनोप या धनोक) के पास खारी नदी के तट पर युद्ध हुआ। जब रावलजी शत्रुओं द्वारा घिर गये तब अन्य योद्धाओं के साथ २ चारह रावल (राज घराने के योद्धा) युद्ध करते हुए घायल होगये और मारे गये। घायल होने वाले योद्धाओं में रणसिंह (युवराज) और मारे जाने वालों में महनसी भी था^२। इस युद्ध में रावल पराक्रम राज (विक्रम केशरी, समर)^३ की विजय हुई।

“कैमास वध” का कथानक इस प्रकार है—राजा शिकाराथे गया हुआ था। लौटने पर उसने दिल्ली के निकट ही वाटिका के महलों में विश्राम किया।

(१) “चव डू दा-हरगढ़”

(२) “रूपगम रणसिंह”, “माहेस महनमी महनवः”

(३) “..... सिद्धि”

हुए वीरों में उल्लिखित है।' मारे गये वीरों में 'महनसिंह' का उल्लेख है। वह आहड़ नागदा की रावल शाखा वाले "महणसिंह कनिष्ठ भ्राता, क्षेमसिंह तत सुनू। सामत सिंह नाम्ना, भूपति भूतले जात" के अनुसार रावल समरसिंह के पिता क्षेमसिंह के बड़े भाई महणसिंह (मथनसिंह) ही थे। कैमास युद्ध में शाह के वार २ चढ़ आने और मधि भग करने के कथन की पुष्टि 'हम्मीर महाकाव्य' के लेख से भी होती है जिसमें लिखा है कि गौरीशाह उस हठी बच्चे की तरह है जो ताड़ना देने पर भी अपनी आदत नहीं छोड़ता और वार वार चढ़ आता है। हसावती के पिता वास्तव में मालव प्रान्तीय देवास के ही थे, किन्तु जब उनका भूभाग उनसे छूट गया तो वे रणथम्भौर में आकर रहने लगे। रणथम्भौर को घेरने पर सर्व प्रथम हंसावती के पिता (भानुराय यादव) की अडाकू बसही (देवास से साथ आने वाली जनता) युद्ध करने के लिए आगे बढ़ी। इससे स्पष्ट होता है कि सामतगण ही नहीं अपितु जनता भी युद्धों में साथ देती थी। चित्तौड़ेश्वर रावल समर विक्रम पृथ्वीराज से आयु में बड़े थे (पृथाकुमारी रावलजी की पॉचवी रानी थी) जब हसावती का व्याह पृथ्वीराज से हुआ उस समय पृथ्वीराज की आयु २२ वर्ष की और रावलजी की ५७ वर्ष की थी। महोबे पर पृथ्वीराज का अधिकार होने की पुष्टि मदनपुर के देवालय के स्तम्भ पर लिखे लेख से हो जाती है। मदन ब्राह्मणी और उनके पति को शुरु-शुकी, गर्वर् दम्बति और सयोगिता का असरा का रूप देना कवि कथित पुराण गौरी के ही रूप हैं। जयानक ने भा इसी शैली को ग्रहण करके पृथ्वीराज को राम और उसकी प्रेमिका को तिलोत्तमा का रूप दिया है। वियथ पाठ पढ़ने के समय सयोगिता की पूर्ण आयु में से आधी आयु हो चुकी थी। उस समय वह १४ वर्ष के लगभग थी अतः उसकी पूरी आयु २८ वर्ष की थी। वह वि० स० १२४६ में पृथ्वीराज के साथ सती हुई। इसका तात्पर्य यह है कि उसका जन्म वि० स० १२२१ में हुआ था। सयोगिता की माता जुन्हाई को विशेष मानवती कहा गया है, यह भी ऐतिहासिक तथ्य है। उसने अपने पति जयचन्द की उप-पत्नी से द्वेष के कारण गौरी को बुला कर कन्नौज का सर्वनाश करा दिया। जयचन्द के यज्ञ विषयक

(१) स्वर्गीय प० रामनारायणजी दुग्गड़ 'चित्र राम स्तम्भ' पृ० में स्पष्ट है कि एक प्राचीन न्यायि में उन्हात होगया था कि युवराज गणसिंह रावल विक्रम और पृथाकुमारी का पुत्र था।

विचार में बाधा देने को जिस बालुकाराय को मार दिया उसका बालुकाराय नाम हो या राष्ट्रवर क्षत्रियों का पहले गुर्जर भूमि पर शासन रहने से उसे उपाधि रूप में बालुकाराय (वल्लभेश्वर) लिखा गया हो। पृथ्वीराज के सामंतों में हरिसिंह का उल्लेख है। वह वीर पृथ्वीराज का छोटा भाई (हरिराय या हरिराज) ही था, जो 'हॉसी युद्ध' और 'सभरपग युद्ध' में सम्मिलित था। कैमास की अन्तिम घटना (पृथ्वीराज द्वारा मारे जाने) वाले पद्य मुनि जिन विजयजी के प्रयास से 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' (जो १५०० के आसपास का लिखा हुआ है) में प्राप्त हुए हैं; अतः स्वयं सिद्ध है। बंदीजन दुर्गाभट्ट का उल्लेख प्राचीन तवारीखों में भी मिलता है। जयचन्द का यज्ञ विषयक विचार और पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा द्वारपाल के स्थान पर स्थापित करना लोक प्रसिद्ध है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रासो में वर्णित घटनाएँ और स्थान काल्पनिक नहीं हैं। साहित्य की पृष्ठ भूमि में ऐतिहासिक तथ्य भी छिपे हुए हैं। रासो में युद्ध-बाहुल्य का प्रमाण प्रबन्ध चिंतामणि (जो १३०० के आसपास लिखी गई थी) में शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के बीच २१ वार युद्ध होना लिखने से मिलता है। हम्मीर महाकाव्य^१ और प्रबन्ध संग्रह में सात वार युद्ध होना भी उसकी पुष्टि करता है। शाह को अनेकों वार बन्धन में लेने की पुष्टि भी हम्मीर महाकाव्य से हो जाती है, जिसमें लिखा है कि अन्तिम युद्ध में जब पृथ्वीराज पर घेरा डाला जा रहा था तब एक यवन सैनिक ने शहाबुद्दीन से कहा कि पृथ्वीराज ने आपको कितनी ही वार बन्धन में लेकर छोड़ दिया है, अतः आप भी उसे एक वार छोड़ दें।^२

इस प्रकार रासो साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं अपितु ऐतिहासिक रूप में भी अपनी विशेषता रखता है। अतः इसका अध्ययन एवं मनन करने वालों को उसके दोनों रूपों को सामने रखना चाहिए।

मेरा विद्वानों से एक और आग्रह है—रासो (प्रथम भाग) गत वर्ष राजस्थान सरकार और स्वर्गीय महाराणा की सहायता से एक मास में ही छपा था, और इस वर्ष भी रासो के शेष तीन भाग भारत सरकार की सहायता से दो मास म

(१) "पृथ्वीराज चरित्र" रामनारायण दुग्गड़ (भूमिका पृ० ६६-७०)

(२) "पृथ्वीराज चरित्र" रामनारायण दुग्गड़ (भूमिका पृ० ७१-७२)

ही छपे हैं। इस अल्पकालीन अवधि में ही मूल प्रतियों को देखना, शुद्ध करना, प्रेस में पचासों की सख्या में प्रूफ देखना, चौथे भाग की प्रेस-कापी तैयार करना, शब्दार्थ और पाठादि लिखवाना, सम्पादकीय लेख लिखना, विषय सूची देना इत्यादि, अनेकों कार्यों से भूल होजाना सम्भव है। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था की अस्वस्थता और असामयिक रोग-ग्रस्तता के कारण भी समय क्रम, अर्थ और पाठों में कहीं २ अशुद्धियाँ रह गई हैं। अतः इनका विवरण शुद्धि-पत्र में दिया जायगा। पाठकगण कृपया उसे सुधार कर पढ़ें।

हमारे इस आपत्तिकाल में प्रूफ देखने के कार्य में प्रेस-व्यवस्थापक श्री मदनलालजी लाहोटी और प्रकाशन में स्मृति लाने में फोरमेन श्री मुरलीधर वर्मा ने जो श्रम किया है, उसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं। विद्यापीठ में रासो के कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व हमारे भवन पर ही रासो के अध्ययन करते हुए साहित्य-प्रेमी मित्र श्री नन्दकिशोरजी पालीवाल ने भी हमारे उत्साह में समय २ प० जो वृद्धि की, उसके लिए उनका साहित्य-प्रेम भी नहीं मुलाया जा सकता।

रासो का प्रस्तुत भाग पाठकों के सम्मुख है। इसमें दी गई ऐतिहासिक घटनाएँ विद्वत् समुदाय में रासो के बारे में उठी हुई भ्रान्तियों का निराकरण करने में थोड़ी भी सफल हुई, तो सम्पादक अपने श्रम को-सार्थक मानेगा।

सम्पादक -

पृथ्वीराज रासो

साहित्य संस्थान

राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर

काव्य-सौष्ठव

कितना अपूर्व, दिव्य और पृथ्वी की शोभा-स्वरूप था वह ज्योत्स्ना-स्नात शरद्राका का रास, जो भगवान वेदव्यास की अमर देव वाणी से प्रकट हुआ। कालान्तर में यही अपूर्वता और दिव्यता हिन्दी साहित्याकाश के आदि महाकवि चन्द की साहित्य-प्रभा से मंडित 'पृथ्वीराजरासो' ('पृथ्वी-राज-रास' — पृथ्वी का शोभा स्वरूपी रास) में अवतरित हुई। एक में मन-मोहक नृत्य विलास है तो दूसरे में आश्चर्यान्वित कर देने वाला विकट युद्ध-तांडव। एक में कंकणों और नूपुरों का क्वणन, त्वरित चरण संचार, वंशीवादन और दिव्य संगीत का स्वर है तो दूसरे में खड्ग मंकार, युद्ध वाद्यों की प्रबल टंकार, वीरों की हुंकार और सिन्धुराग। वहां पवित्र शृंगार की मादक सुरा का सागर लहरा रहा है तो यहां हृदय में उत्साह और उल्लास का संचार कर देने वाली वीर रस की रज्जुतस्विनी प्रवाहित है। वहां अपने प्रिय में लीन हो जाने की उत्कट तन्मयता है तो यहां अपना सर्वस्व समर्पण कराने वाली स्थायी स्वामि-भक्ति। एक शृंगार और भक्ति का सुमेरु है तो द्वितीय वीर और रौद्र की चरम सीमा। दोनों ही अपने क्षेत्र के निराले हैं। एक कवि ने व्यास होकर पुराण-साहित्य का प्रणयन किया तो दूसरा कवि भी अपनी अपूर्व प्रतिभा के बल पर व्यास होगया।

रासो इतिहास की पृष्ठभूमि पर निर्मित वीर रस का विशालकाय प्रबन्ध-काव्य है। चन्द के आश्रय दाता दिल्ली पति पृथ्वीराज इस काव्य के नायक हैं। ऐतिहासिक आधार होते हुए भी उसमें काव्यत्व की ही प्रधानता है। इतिहास तो केवल मात्र किसी समय विशेष की विघटित घटनावली का अस्थि-मंकलन मात्र ही होता है, उसमें वह प्राण तत्व कहां- जो काव्य-पुरुष को सजीव बनाये रखता है? अतीत जीवन के अनुभूत तथ्यों का तदारुण वर्णन होने से इतिहास में नीरसता और शुष्कता का साम्राज्य स्थापित रहता है, किन्तु काव्य में उर्वर कल्पना-विलास की प्रचुरता होने के कारण उसकी कलात्मकता में अनुपम निहार आ जाता है। अतः प्रत्येक ऐतिहासिक काव्य में तथ्य और कल्पना का आशातीत सम्मिश्रण अवश्य रहता है। "सभी ऐतिहासिक काव्यों के समान इसमें (पृथ्वीराज रामो में) भी इतिहास और

कल्पना का - फेक्ट और फिक्शन का - मिश्रण है। सभी ऐतिहासिक मानी जाने वाली रचनाओं के समान इसमें भी काव्यगत और कथानक-प्रथित रूढ़ियों का सहारा लिया गया है। इसमें भी रस सृष्टि की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, संभावनाओं पर अधिक जोर दिया गया है और कल्पना को महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है।^१ इस तथ्य से अनभिन्न इतिहास-जीवी विद्वानों ने रामो से काव्यत्व-मंडित इतिहास-रत्न को पारखी आंखों से नहीं देखने के कारण उस पर विविध प्रकार की सभ्य-असंभव शंकाएँ की हैं। काव्य-कला-कौशल की चकाचौध में उन्हें वह इतिहास-रत्न दृष्टिगोचर नहीं हुआ— इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसमें इतिहास-रत्न है ही नहीं। यद्यपि इसमें कहीं भी इतिहास का उल्लघन नहीं मिलता है,^२ फिर भी 'ऐसे काव्य में यदि यदा-कदा ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लघन होगया हो तो उससे कुछ नहीं बिगडना, क्योंकि इसमें तथ्यों से भी बड़े मानवीय सत्यों की अवहेलना नहीं की गई है, बल्कि सच तो यह है कि कवि ने मानवीय सत्य की रक्षा के लिये ही सुविधानुसार ऐतिहासिक तथ्यों से इधर - उधर हटकर अपनी कल्पना-शक्ति का जौहर दिखाया है।'^३ अतः रासो में हमें जहाँ अपूर्व काव्य-कला के दर्शन होते हैं, वहाँ तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

प्रस्तुत समीक्षा में हमारा लक्ष्य रासो की ऐतिहासिक सामग्री न होकर उसके काव्य-सौष्ठव का प्रदर्शन ही है।

कथा-प्रवाह:—

महाकाव्य की कथा वस्तु में एक गति होती है, प्रवाह होता है। इसी कथा-वस्तु के सहारे महाकवि अपने निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। यद्यपि वह अनेकों स्थानों पर प्रस्तुत विषय का जम कर वर्णन करता है, फिर भी उससे कथानक की गति में उसी प्रकार बाधा उपस्थित नहीं होती, जिस प्रकार पहाड़ी

(१) हिन्दी-साहित्य का आदिकाल — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृ० ८६)

(२) देखिये पृथ्वीराज रासो— (भाग १, २, ३ और ४ के सम्पादकीय)—सम्पादक कविराव मोहनमिह और शोध पात्रिका—रजस्थान विश्व विद्यापीठ (भाग २ अंक ३, ४ और भाग ३ अंक १)

(३) सक्षिप्त पृथ्वीराज रासो— डा० हजारीप्रसाद नामवरमिह

धरातल से उतर कर आने वाली वेगवती स्रोतस्विनी विस्तीर्ण प्रांगण में वेगहीन दिखाई देने पर भी प्रवाहित होती रहती है। तृतीय भाग का कथानक 'वरुण कथा' से प्रारम्भ होता है। सर्व प्रथम राजा सोमेश्वर के अपार ऐश्वर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सुख लुहहि लुहहि मयन, अरिधर लुहहि धाहि ।
अंग अन्तर्मि न उवरै, हय खुर खगहि गाहि ॥

'राजा सोमेश्वर सुख का उपभोग करता और कामदेव पर विजय पाता हुआ शत्रुओं में आतंक फैलाकर उनके भू-भाग को लूटता रहता था। उसके सामने कभी नहीं झुकने वाले शत्रु की काया भी नहीं बच पाती थी, क्योंकि वह घोड़े के खुर और तलवार द्वारा उसे कुचल देता था।' इसके पश्चात् कवि ने सोमेश्वर की दिन चर्चा से समस्त राजाओं की दिन चर्चा का दिग्दर्शन करा दिया है। राजाओं के लिए 'उत्तम समय ते प्रहर लों, सतजुग', 'दुतिय प्रहर त्रेता', 'द्वापर मध्याह्न ते, त्रितिय पहर लों' और 'चतुर पहर कलि कहत सब' कह कर कवि ने एक ही दिन में चारों युगों के कर्मों का पर्यवसान कर दिया है। आगे चलकर विप्रों द्वारा चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर षोडश प्रकार के दान की महत्ता सुनकर जब सोमेश्वर मथुरा में यमुना के किनारे मुक्त हस्त होकर धर्म कार्य करते हुए दान देने लगा तो कवि दान देने वाले राजाओं की महत्ता बताता हुआ कहता है—

अमय नहीं कलि कोइ, इक्क करु रहै उंच किय
संसार सार गल्हा रहै, पिखवत हू नृप नहिं रसत ।
भुवलोक पाप घट भरि गलत, जिमि अकाश तारा खसत ॥

यहाँ पापी राजाओं के नष्ट होजाने की तुलना आकाश मण्डल में (प्रातः काल होने पर) छिप जाने वाले नक्षत्र समूह से सुन्दर बन पड़ी है।

इसी अवसर पर कवि को चन्द्रोदय की प्रथम किरण के साथ ही प्रकृति वर्णन का अवसर मिल गया और वह कह उठा —

मुंदिं मुख कमोद हंसति कला, चक्कीय चक्कं चितं ।
चदं कुंति कदन्ति षोडन्ति पियं, भान कला छीनं ॥

कल्पना का - फेक्ट और फिक्शन का - मिश्रण है। सभी ऐतिहासिक मानी जाने वाली रचनाओं के समान इसमें भी काव्यगत और कथानक-प्रथित रूढ़ियों का सहारा लिया गया है। इसमें भी रस सृष्टि की ओर अधिक ध्यान दिया गया है, सभावनाओं पर अधिक जोर दिया गया है और कल्पना को महत्वपूर्ण रूप से स्वीकार किया गया है।^१ इस तथ्य से अनभिज्ञ इतिहास-जीवी विद्वानों ने रामो में काव्यत्व-मंडित इतिहास-रत्न को पारखी आँखों से नहीं देखने के कारण उस पर विविध प्रकार की सभ्य-असंभव शंकाएँ की हैं। काव्य-कला-कौशल की चकाचौंध में उन्हें वह इतिहास-रत्न दृष्टिगोचर नहीं हुआ— इसका यह तात्पर्य नहीं कि उसमें इतिहास-रत्न है ही नहीं। यद्यपि इसमें कहीं भी इतिहास का उल्लघन नहीं मिलता है,^२ फिर भी 'ऐसे काव्य में यदि यदा-कदा ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लघन होगा तो उससे कुछ नहीं बिगडना, क्योंकि इसमें तथ्यों से भी बड़े मानवीय सत्यों की अवहेलना नहीं की गई है, बल्कि सच तो यह है कि कवि ने मानवीय सत्य की रक्षा के लिये ही सुविधानुसार ऐतिहासिक तथ्यों से उधर - उधर हटकर अपनी कल्पना-शक्ति का जौहर दिखाया है।'^३ अतः रासो में हमें जहाँ अपूर्व काव्य-कला के दर्शन होते हैं, वहाँ तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री भी पर्याप्त मात्रा में मिलती है।

प्रस्तुत समीक्षा में हमारा लक्ष्य रासो की ऐतिहासिक सामग्री न होकर उसके काव्य-सौष्ठव का प्रदर्शन ही है।

कथा-प्रवाह:—

महाकाव्य की कथा वस्तु में एक गति होती है, प्रवाह होता है। इसी कथा-वस्तु के सहारे महाकवि अपने निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है। यद्यपि वह अनेकों स्थानों पर प्रस्तुत विषय का जम कर वर्णन करता है, फिर भी उससे कथानक की गति में उसी प्रकार बाधा उपस्थित नहीं होती, जिस प्रकार पहाड़ी

(१) हिन्दी-साहित्य का आदिकाल — डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी (पृ० ८६)

(२) देखिये पृथ्वीराज रासो— (भाग १, २, ३ और ४ के सम्पादकीय)—सम्पादक कविराव मोहनमिह और शोध पात्रिका—रजस्थान विश्व विद्यापीठ (भाग २ अंक ३, ४ और भाग ३ अंक १)

(३) सत्सिद्ध पृथ्वीराज रासो— डा० हजारीप्रसाद नामवरमिश्र

धरातल से उतर कर आने वाली वेगवती स्रोतस्विनी विस्तीर्ण प्रांगण में वेगहीन दिखाई देने पर भी प्रवाहित होती रहती है। तृतीय भाग का कथानक 'वरुण कथा' से प्रारम्भ होता है। सर्व प्रथम राजा सोमेश्वर के अपार ऐश्वर्य का वर्णन इस प्रकार किया गया है—

सुख लुहहि लुहहि मयन, अरिघर लुहहि धाहि ।
अंग अनन्मि न उव्वरै, हय खुर खग्गहि गाहि ॥

‘राजा सोमेश्वर सुख का उपभोग करता और कामदेव पर विजय पाता हुआ शत्रुओं में आतंक फैलाकर उनके भू-भाग को लूटता रहता था। उसके सामने कभी नहीं झुकने वाले शत्रु की काया भी नहीं बच पाती थी, क्योंकि वह घोड़े के खुर और तलवार द्वारा उसे कुचल देता था।’ इसके पश्चात् कवि ने सोमेश्वर की दिन चर्चा से समस्त राजाओं की दिन चर्चा का दिग्दर्शन करा दिया है। राजाओं के लिए ‘उख समय ते प्रहर लों, सतजुग’, ‘दुतिय प्रहर त्रेता’, ‘द्वापर मध्याह्न ते, त्रितिय पहर लों’ और ‘चतुर पहर कलि कहत सब’ कह कर कवि ने एक ही दिन में चारों युगों के कर्मों का पर्यवसान कर दिया है। आगे चलकर विप्रों द्वारा चन्द्र-ग्रहण के अवसर पर षोडश प्रकार के दान की महत्ता सुनकर जब सोमेश्वर मथुरा में शमुना के किनारे मुक्त हस्त होकर धर्म कार्य करते हुए दान देने लगा तो कवि दान देने वाले राजाओं की महत्ता बताता हुआ कहता है—

अमव नहीं कलि कोइ, इक्क करु रहै उंच किय
संसार सार गल्हां रहै, पिख्वत हू नृप नहि रसत ।
भुवलोक पाप घट भरि गलत, जिमि अकाश तारा खसत ॥

यहाँ पापी राजाओं के नष्ट होजाने की तुलना आकाश मण्डल में (प्रातः काल होने पर) छिप जाने वाले नक्षत्र समूह से सुन्दर बन पड़ी है।

इसी अवसर पर कवि को चन्द्रोदय की प्रथम किरण के साथ ही प्रकृति वर्णन का अवसर मिल गया और वह कह उठा —

मुंदित मुख क मोद हंसति कला, चक्कीय चक्कं चितं ।
चद् कुंनि कदन्ति पोडन्ति पिय, भानं कला छीन ॥

वानं मन्मथ मत्त रत्त जुगय, भोग्य च भोगं भवं ।

निन्द्रावस्थ जग तत्त भक्त जनयं, वा जग्य कामी नर ॥

अंतिम पंक्ति से ज्ञात होता है कि चन्द्रोदय एक ओर भक्त जनों के हृदय में ज्ञान और भक्ति को दृढ करता है तो दूसरी ओर वह कामोदीपक भी होता है ।

इसी पृष्ठ भूमि पर कवि ने सोमेश्वर, उसके सामन्तो और वरुण दूतो के बीच युद्ध की अवतारणा की है । बात यह हुई कि सोमेश्वर रात्रि में वरुण का स्मरण किये बिना ही यमुना के जल में उतर कर एक गुप्त-मंत्र का साधन करने लगा । इस पर वरुण-दूत क्रोधित हो गये और दोनों दलों में द्वन्द्व-युद्ध प्रारम्भ होगया । कवि ने इस युद्ध में युद्ध करते हुए सामन्तों की त्वरा का एक शब्द-चित्र सा खींच दिया है —

‘सामंत भूमि भंजहि भिरहि, गिरहि परहि उट्टहि तरहि’

युद्ध करते हुए सामन्तों द्वारा यह कहना कि —

“हम समन कोई समार महँ, मरण जियन चित्तह डरण ।

जीयहिं जुद्ध भुव भुगवहि, मरहित सुर पुर हिरि सरण ॥”

हमें गीता की निम्न पंक्ति का स्मरण करा देता है —

“हतो वा प्राप्समी स्वर्गं, जीत्वा वा भोक्तसे महीम”

प्रातः काल होने पर पृथ्वीराज उस युद्ध भूमि में उपस्थित हुआ और अपने सामन्तों को अचेत अवस्था में देख कर यमुना की स्तुति करके उन्हें सचेत किया । तब —

क्यन कृत नृप सोम, पोडश दान विप्रय न्न ।

जुध जीते दिव दूत, अभुत वत्त प्रगटि छिति छाई ॥

‘सोमवध’ समय में सोजत्री युद्ध में हार जाने से द्वेष के कारण पृथ्वीराज के उत्तर दिशा में चले जाने पर चालुक्येश्वर भीम ने दिल्ली पर चढ़ाई की । तब चालुक्यों के आने की खबर सुनते ही सोमेश्वर में इस प्रकार उत्साह छलकने लगा, जैसे सतियों में मतीत्व भलकता हो —

‘मुनत पुकारत छोह छकि, मत्तिय मत्त समान’

इस पर सोमेश्वर भी अपनी सेना सजाकर चला । उस समय उसकी सेना ने वसन्त का रूप धारण किया । उसका चलना त्रिविध पवन के समान हो गया । उसने शीतल रूप में जाकर शत्रुओं के हृदय को प्रकम्पित कर दिया और मंद-मंद भूमनी हुई चलते हुए सुगन्धित रूप में यश-सौरभ फैला दिया । युद्ध-भेरी के स्वर ने कोकिला का काम किया । हिलते हुए चँवरों की ध्वनि इस प्रकार होने लगी, जैसे भँवर गुंजार करते हों । वहादुरों के मिर पर ँधे हुए मोड़ों ने नवीन मजरियों की शोभा पाई—

त्रिविध साज वडिह्य अवाज, वज्जि भेरिय कोकिल सुर ।
 भँवर रुज्ज भंकार, चौर मोरह सु नुतवर ॥
 वन वसंत सम फौज

यहाँ कवि ने सोमेश्वर की सेना से वसंत का सांग-रूपक बँधा है, जो उत्तम वन पड़ा है । इसके पश्चान् युद्ध की विभीषिका प्रारम्भ होती है जो कवि का प्रिय विषय है । वह लिखता है—

कहर भगर सम खेल, ठेल सेलणि ठेलिज्जहि ।
 इक्क धुक्त धर दुट्टि, इक्क वत्थनि मेलिज्जहि ॥
 इक्क कमध उठन्त, इक्क अंतन आलुज्जहि ।
 इक्क हत्थ पग खिरहि, टिक्कि खग-पग विनु मुज्जहि ॥
 ❀ ❀ ❀

रिद्धि सिद्धि वित्थुरिय, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय ।
 श्रोनि सलिल वटि चलिग, मरण मन किंकरन जुट्टिय ॥
 कमल सीस वहि चलिय, नयन अलि वास सुवासिय ।
 जघ मकर कर मीन. कच्छ खुप्परि खग त्रामिय ॥

पोयंनि अंत सेवाल कच, अंगुलि-कर-पग भूयग भरि ।

इन युद्ध-वर्णनों में अनुप्रास, टवर्ग बहुलता और द्वित्त वर्णों की प्रधानता हुई है, जिससे भाषा में श्रोज गुण की वृद्धि होने के कारण वर्णन में सजीवता आगई है । साथ ही श्रोणित-सरोवर का सांग-रूपक बँधने से युद्ध भूमि का दृश्य नैत्रों के मन्मुख उपस्थित हो जाता है ।

यह छन्द जहाँ नरनाह कन्ह के अपार भुजवल का सूचक है, वहाँ आगे बलकर पृथ्वीराज की विजय के लिए शुभ शकुन का भी काम करता है। कवि ने इस छन्द में अपनी चित्रोपम-शक्ति का जौहर दिखाया है। ऐसा प्रतीत होता है मानों यह युद्ध हमारे नैत्रों के सम्मुख ही हो रहा हो। दृश्य को सजीव कर देने की क्षमता कवि को ऐसे वर्णनों में ही मिलती है।

युद्ध करने के लिए आगे बढ़ते हुए सामन्तों के सांसारिक मोह में कमी होने की तुलना ज्योतिषी द्वारा ब्रीते हुए वर्ष का पन्चाग छोड़ते जाने से की गई है, जो बहुत सुन्दर वन पड़ी है—

कृच कृच जिम जिम चलिय तिम तिम छडिय मोह ।

जिम वन्यौ दुजराज नै, तिथि पत्रा नहिं सोह ॥

यहीं क्षत्रिय-धर्म की भी व्याख्या करदी है। सच्चा क्षत्रिय वही है जो युद्ध के समय स्वामि-धर्म में रत होकर शरीर को तिनके के समान खण्ड र करदे—

समर समय रत स्वामि, तनहि तिनुका जिमि खडन ।

मेमा करते समय उनको इस वान का गर्व रहता है कि उनके शरीर में स्वामी के अन्न कांही बल होता है—

उदर लवन तुम हमहि बल ।

इसके बाद कवि ने चौहान और चालुक्यों की सेना के बीच युद्ध का जम कर वर्णन किया है। इसमें कवि ने वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स की सगम-स्थली उपस्थित करदी है। युद्ध-स्थल का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

कर पत्र मत्र जुगिगणि जपहि, रजि पलहारी रक्त चर ।

चमरैत चैत जनु क्यमु वनु, इम रण रजिय सोम भर ॥

भयानक रस का स्वाभाविक वर्णन भी इस प्रकार किया गया है—

खिमि नर्यद्र हय नवि, वज्जि खुरतार कपि भुव ।

अष्ट मु चलि दह विचलि, कपि सपात पात हुव ॥

उट्टि मुखव मुद्ध वफि, सीस लग्गौ असमान ।

पवि जान पायै न, करहि कुण्डलि क्रमान ॥

धरि डक्क घाड विभ्रम भयौ हाड हाड मन्थौ हलक ।

तिहि सह स्यंभ स्यभासनह, उघरि अप्पु दिक्खिय पलक ॥

अंत में 'दया देह उदरै, बंध बंधी यह देही' कह कर कवि ने भोरा भीम की ओर व्यंग किया है । पृथ्वीराज ने भोरा भीम को बंधन में लेकर उसको दया वश छोड़ दिया; यह उसकी दया वीरता का उज्ज्वलतम रूप है ।

पृथ्वीराज की दया वीरता का उदाहरण 'कैमास युद्ध' में भी मिलता है । पृथ्वीराज ने शाह को बन्धन में लेकर उसे दंडित करके छोड़ दिया । दंड में प्राप्त धन से श्राधा कैमास और चामुण्डराय को एवं जेप उन सामंतों में बाँट दिया, जो युद्ध-स्थल से घायल उँठाये गये थे ।

अरध दंड पृथीराज, दियौ कैमास चौड तिन ।

दड अरध दिय राज, सुभर उपरि मंभरिन ॥

संगम पार सागर के नील जल में जिस प्रकार गंगा जल की एक धारा दूर तक प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है, ठीक उसी प्रकार 'हसावती विवाह' समय में युद्ध घटनाओं के वीर-विभत्सादि रसों के बीच शृंगार की पवित्र धारा भी बह रही है । प्रारम्भ में यादव राजा भान पर शिशुपाल वंशी वीर पंचायन ने आक्रमण किया । उस चढ़ाई की कारण थी—हसावती, जो—

हँसावति तिन नाम, हसवती गति मारी ॥

अवनि रूप सुन्दरी, काम करतार सु कीनी ।

मन मन्वें विचार, रूप सिंगारस लीनी ॥

लकखन वत्तीस लच्छी सहज, अति सुन्दरि सो भासु—कवि ।

अस्तम्भ उदें वर चक्र विच, दिक्खिन कहु चक्रंत रवि ॥

कवि ने उसका नख-शिव-वर्णन इस प्रकार किया है—

नाग वेनि सुह पीन, कंति दम्नह सोभत सम ।

अखि पदम पत मानु, भाल अप्टम रति पति क्रम ॥

सिखा-नामि गज गत्ति, नाभि दृङ्गनावृत सोभै ।

सिंघ सार कटि चारु, जघ रंभा जुखि लौभे ॥

सुन्दरी सीत सम वरि चरित, चतुर चित्त हरनी विदुख ।

सतपत्र गंध मुख ससिय सम, नैन रभ आरंभ रुख ॥

रमावती का यह नव-विद्य प्रगल परम्परा प्राप्त काव्य रचनाओं के साधारण पर किया गया है। काव्य में सौन्दर्य के उपमान रूढ हुआ करते हैं जिनका प्रायः सभी कवि एक समान ही उपयोग करते दिखाई देते हैं। चन्द्र ने भी प्रायः अपनी समस्त नायिका-उपनायिकाओं की सृष्टि उसी सौन्दर्य-द्राक्षा को निचोड़ करके की है। रमावती के इसी रूप विलास की मादक मुरा से पंचायन पागल होगया और रणथमौर से अपने सदेश का विपरीत उत्तर प्राप्त करने पर वह क्रोधित होगया—

सुनी वसी मसिपाल, वीर पंचायन कोयौ ।

सह सह गज जेमि, तमसि धीरज सम लोयौ ॥

इस छन्द में पंचायन के जोश में धैर्य भूल जाने से रौद्र रस की अच्छी व्यंजना हुई है।

पंचायन ने रणथमौर पर चढाई की। पृथ्वीराज ने पंचायन से घिरे हुए नगर के बाईं ओर से और चित्तौड़ेश्वर ने दाहिनी ओर से इस प्रकार घेर लिया, कवि इसकी उत्प्रेक्षा करता हुआ कहता है, मानों शत्रु रूपी जल में चक्कर खाते हुए कुम्भ रूपी नगर को हाथों के बल पर उन्होंने पकड़ लियाहो—

कुम्भ अम्ब डोलत, हथ वर नैर समाई ।

इन नवीन उपमानों को देखने से स्पष्ट है कि कवि ने केवल रूढ उपमानों का ही प्रयोग नहीं किया है, अपितु अपनी नव-नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा के कारण नवीन उपमानों की सृष्टि की है। इनकी विशेषता यही है कि ये नये उपमान रस के सामजस्य को नष्ट करने वाले नहीं हुए हैं।

पृथ्वीराज, रावल समर विक्रम और पंचायन क्रमशः सूर्य, चन्द्र और सुमेरु के तुल्य थे। चन्द्र और सूर्य के बीच उज्ज्वल सुमेरु होने के कारण दोनों के रथ-भाग अस्त होगये। किन्तु कवि कहता है कि उस नभ चुम्बित सुमेरु (पंचायन) को लड्डू द्वारा बलि में भिलाते हुए शशि सूर्य तुल्य दोनों राजा (पृथ्वीराज और रावल समर) युद्ध में एक दूसरे को दिखाई देने लगे (चढेल को कुचल कर वे एक दूसरे से आकर मिल गये)।

मनु राका रवि उदै, अस्त होने रथ भग्गी ।

मसिपाल वीर वसी विमल, दुहुन बीच मन मेर हुआ ।

खट मिलै खेह खग्गड हर्यौ, चवै चन्द्र रवि दद हुआ ॥

इसी युद्ध-प्रसंग में कवि ने अद्भुत रस का एक हलका छीटा भी डाल दिया है ।

वर वंमी समिपाल, समर रावर रत जुद्धे ।
 अमर वय चित्रांग, वीर पंचाइन वद्धे ॥
 सवै सत्य सामन्त, खेत ढोह्यो विरुम्हाइय ।
 गुरिन गयौ अरि प्रह न, लद्ध नन लुध्थि न पाइय ॥
 प्रथिराज वीर जोगिन्द ब्रप, दिष्ट देव अकुरि रहिय ।
 वधनह वत्त वद्धन दिवन, दिष्ट कृद हसि-हसि कहिय ॥

युद्ध विजय के पश्चात् रात्रि में पृथ्वीराज को स्वप्न में एक बाला दिखाई दी ।

हम सुगति माननी, चढ जामिनि प्रति घट्टी ।
 डक तरग सुन्दरि सुचग, सुमति हँस नयन प्रगट्टी ॥
 हस कला अवतरी, कुमुद वर फुल्लि समथ्यै ।
 एक चित मोड बाल, भीत संकर अस रथ्यै ॥
 तेहि बाल संग मे पुहुप लिय, वरन वीर मगति जु वह ।
 जाप्रत्त देवि बोली न कछु नवह देव नन मानवह ॥

चन्द्र ने यहाँ उसी स्वप्न दर्शन की कथानक हूडी का प्रयोग किया है, जिसका संस्कृत वाङ्मय में प्रचुर प्रयोग हुआ है । इस स्वप्न-दर्शन से पृथ्वीराज को उस बालिका में अनुराग उत्पन्न होगया । उस अनुराग को उद्दीप्त करने का प्रयास किया—यादव राजा भानु द्वारा लगन भेजने ने । पृथ्वीराज की वीरता की ख्याति हंसावती के पास पहुँची और उसे भी श्रोतानुराग हो गया ।

अवन रवन अरु मिला भवन, पवन त्रिविध तन लग्ग ।

वापी कृप तडाग वृष, धिधि ब्रन्नन कवि लग्ग ॥

हमावती के शिनागुड तुल्य कानो द्वारा पृथ्वीराज की प्रशंसा (श्रोतानुराग) के त्रिविध पवन (शीतल, मंद और सुगन्धित) ने उसके शरीर को स्पर्श किया । उम श्रोतानुराग हूयी पवन की शीतलता वापी-कृप के जल के समान, मदता तालाव की मद्-र चलने वाली वीचिमाला की तरह और सुगन्धित वृषों की सुरभि के समान

थी।' इस प्रकार कवि ने द्विपक्षीय अनुराग दिग्वाकर पवित्र शृंगार-रस की पुष्टि की है। हसावती के अनुराग में वृद्धि होती है और उसे श्रोतानुराग के पश्चात् अपने प्रियतम के प्रत्यक्ष दर्शन भी हो जाते हैं—

सा सुन्दरि हसावती, सुनि श्रोतान सुरुक्ख ।

वर दिष्टानन मानियै, वेला लग्गि गधक्ख ॥

यहाँ कवि ने हसावती का झरोखे के पास आकर खड़े होने की स्वर्णिम लतिका से जो उपमा दी है, वह अपूर्व बन पड़ी है। लतिका गवाक्ष के एक किनारे पर चढ़ती है, हसावती भी खिडकी के ठीक बीच में आकर अपने प्रिय के दर्शन नहीं करती, किन्तु दीवार की ओट में से खिडकी में थोड़ी सी झुक कर ही करती है। इससे हसावती में नारी सुलभ लज्जा की व्यञ्जना होती है। किन्तु हसावती का इस प्रकार अपनी सखियों के बीच से उठकर अपने वर को देखना उसकी लज्जा हीनता और धृष्टता का भी द्योतक हो सकता है, अतः कवि ने इसका भी निराकरण इस प्रकार कर दिया है—

सुनि आयो चहुआन अप, गुरुजन वध्यौ जानि ।

तव मति सुन्दरि चितवै, भेदक गोख वग्वानि ॥

हसावती के इस अपूर्व दृश्य को देख कर कवि को कल्पना शक्ति जागृत हो जाती है और वह उस स्वर्गीय दृश्य को अपने शब्दों में इस प्रकार अंकित कर देता है—

पथ वाल पिय भग्नि, सुभ्रित विटिय सु राजै ।

मनौ चद उडगन विचाल, चद मेरह चढि भाजै ॥

वह हसावती आसरा तुल्य थी, फिर उसका प्रियतम केवल साधारण मानव कैसे हो सकता है? यद्यपि उसकी सखियों ने अपने साकेतिक वचनों से उसे बतला दिया था कि पृथ्वीराज भ्रमर, कामदेव और कमल के समान है तथा प्रेम की मस्ती और काम कला से भरा हुआ है, किन्तु उमने तो उसे देवकर देवतुल्य ही माना—

सुनिय श्रवन दै सैन, अलिन अलि मैनस राज ।

रति मन्द्धर मति काम, जानि अच्छिरि सुर साज ॥

यहाँ 'सैन' शब्द का प्रयोग भी अपनी महत्ता रखता है। राजकुमारी और उसकी सखियाँ सभी समवयस्क थीं, अतः उनमें परस्पर एक दूसरे से हँसी-मजाक

करते हुए भी शिष्ट-लज्जा रखना स्वाभाविक है। इसीलिए वे राजकुमारी के सम्मुख मुग्ध नहीं होकर सांकेतिक भाषा में ही अपने भावों को व्यक्त कर देती हैं।

श्रोतानुराग और फिर प्रत्यक्ष-दर्शन कर वह वाला यौवन के द्वार में प्रवेश कर गई। उन समय वह इतनी प्रफुल्ल एवं विकसित हो गई, जितना कि बीज का चन्द्रमा पूर्ण होकर होता है—

बीज चन्द्र प्रन्न जिम, वधै कला मनि जीय ।

भूषणों को उतार कर स्नान करते समय तो हंसावती विहारी की उस नायिका के समान हो गई, जिसका चित्र उतारने में चतुर चितेरे भी समर्थ नहीं हो सके। यौवन के भार से झुक कर दबे हुए उसके शिशुत्व को देख कर कवि चंद्र जैसा समर्थ कवि भी विचार-सागर में गहरे गोते लगा कर भी उसके लिए उपयुक्त उपमा नहीं ढूँढ सका, फिर साधारण कवियों की क्या बात—

वर सैसंव वर चंपि, कंपि चिहु कोद भपायौ ।

सो ओपम कवि चन्द्र, जौन्ह बूडत न लधायौ ॥

इन पंक्तियों से हंसावती के अपूर्व मौन्दर्य की ही व्यञ्जना होती है। उस समय वह वाला अपनी वय-सधि पर थी। वय-सन्धि के कारण उसके नैत्र उम जल-घटिका तुल्य थे जो स्नेह रूपी जल में डूबा हुआ हो—

वर सैसव अन्दर नहीं, जोघन जल वरसै न ।

बाल घरी घरियार ज्यौ, नेह नीर बुडि नैन ॥

मंडप-गृह में वर-वधू का साक्षात्कार होते ही दोनों के नैत्र परस्पर रस-पान करने के लिए अत्यधिक आतुर हो गये। नैत्रों का परस्पर समागम ऐसा प्रतीत हुआ, मानों पृथ्वीराज के नैत्र-भ्रमर कुमारी के नैत्र-कमल में प्रवेश कर एकाकार हो गये हों या उन एकाकार भ्रमर और कमलवत नैत्रों को मधु रस भुक्ता रहा हो—

द्रिग मूँ द्रिग सम्मुहे, पीय उमगे द्रिग ओरन ।

सो ओपम प्रथिराज, चन्द्र ज्यौँ चन्द्र चकोरन ॥

नव भर्वर पिट्ट वर कमल मे, कै मकरन्द भुलावहीं ।

इधर दोनों के अचल का गठ-बन्धन हुआ और उधर तत्क्षण उनके चित्त का भी गठ-बन्धन होगया —

हंसावती मुग्धावस्था में शंक्रित रही, मध्यावस्था में लज्जा युक्त नैत्रों से निःप-
छिप कर अपने प्रियतम को देखने लगी, किन्तु प्रौढावस्था में तो दोनों के नैत्र रक्त
होकर प्रेम मार्ग पर तलवार सहश टकराने लगे ।

इस प्रकार उम रानी के प्रात काल स्वरूपी पातिव्रत ने राजा को प्रारम्भ में ही
भुक्का दिया—

इय प्रात-पतिवृत प्रथम पद्, नवति चित्ता आचंभ लहि ।

प्रात काल के समय ही वन्दना की जाती है, अत यहाँ हंसावती के पातिव्रत
को प्रात काल का रूप देना अत्यन्त सार्थक सिद्ध हुआ है ।

सम्पूर्ण हंसावती समय में कवि ने वीर और शृङ्गार रस की मगम-स्थली
उपस्थित कर दी है और जिस प्रसंग को उठाया है उसका जमकर वर्णन किया है ।
कथा प्रवाह के लिए इस प्रकार के प्रसंग अत्यन्त सार्थक होते हैं । प्रबन्धकार कवि
की भावुकता का पता भी ऐसे ही चित्रणों को देखने से मिलता है ।

‘पहाडराय’ समय का प्रारम्भ पौराणिक शैली के आधार पर हुआ है,
जिसमें किसी नवीन कथा को प्रारम्भ करने के पूर्व दो पात्रों में परस्पर वार्तालाप
हुआ करता है । महाकवि चन्द्र ने पुराणों का अध्ययन किया था और इसीलिए इस
शैली का अपने ‘रासो’ में भी प्रयोग किया है । यहाँ सर्व प्रथम चन्द्रमुखी (कविचन्द्र
की स्त्री) चन्द्र (कविचन्द्र) से प्रश्न करती है—

टुज समु टुजी सु उच्चरिय, ससि निसि उज्जल देस ।

किम तौवर पाहार पद्, गहिय सु असुर नरेस ॥

इस प्रश्न के उत्तर में कवि सारी कथा का वर्णन करता है । यहाँ ध्यान देने
की बात यह है कि कविचन्द्र और उसकी स्त्री के प्रश्नोत्तर के रूप में जिन-जिन
समयों का प्रारम्भ हुआ है, उसमें कवि अपने को कहीं शुक, कहीं द्विज और अपनी
स्त्री को कहीं शुक और कहीं द्विजी लिखता है । शुरु-शुकी से स्वकीय और स्वकीया
पद द्विज-द्विजी से चन्द्र और चन्द्रमुखी अर्थ हो जाता है, क्योंकि चन्द्र और उसकी
पत्नी को भी ब्राह्मण-ब्राह्मणी माना गया है । डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने तो शुक-शुकी-
सवाद से प्रारम्भ होने वाले समयों के कथानकों को ही प्रधानता देकर रामो के
अभेद्य चोपकों के प्रचुर भागर से मूल रासों के मुक्ताकण ढूँढने का प्रयास किया

है। वे लिखते हैं—“यह शुक्र-शुकी वाला संवाद काफी महत्व पूर्ण है और इसके द्वारा हम कथा-मूर्तों की योजना करके रासो के मूल रूप को पहचान सकते हैं।”^१ इस प्रकार की पौराणिक शैली प्रायः मुख्य २ सभी काव्यों में प्रयोजित हुई है।

इस समय में पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने को जाते हुए शहाबुद्दीन की सेना के आतक से भयानक रस का वातावरण उपस्थित कर दिया गया है—

अरून कोर वर अरून, वदि साहाव साहि चदि ।
 विसि प्राची दिक्खन विपथ्य, पच्छिम उत्तर वदि ॥
 सैस भाग भै भाग, भौमि संकुचि कुकंपि निल ।
 गमन सेन उड़ि रेन. गॅन रवि पत्त धुंध इल ॥

उस समय उसकी सेना की अरुण पताकाएँ सूर्य का स्पर्श करती हुई इस प्रकार हिलने लगीं, जैसे दीपशिखा हिलती हो या पृथ्वीराज द्वारा विशेष रूप से दबाये जाने पर शाह का तन मन व्यथित और प्रकंपित होता हो —

रति निसान डग मंग अरून, जिम दीपक वसि वात ।
 सुनिव चंप अति साह मन, तन विकंप अकुलात ॥

यहाँ हिलती हुई पताकाओं की शाह के कम्पित हृदय से तुलना करके भविष्य की ओर इङ्गित कर दिया गया है।

युद्ध में म्यान से तलवारें निकाल कर अश्वारोही आगे बढ़ते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों कोई नृत्य कारिणी रगभूमि में नृत्य करती हुई आगे बढ़ती हो—

नव वद्धिय नाटिका, खग कट्टी असु हक्किय

इस युद्ध में पहाडराय ने शाह को इस प्रकार पकड़ लिया, मानों वक्र चन्द्रमा को राहु लग गया हो।

गहयो साहि तोंवर पुरिस, जानि राह समि वक्रक ।

वक्र चन्द्रमा को राहु नहीं ग्रस सकता, किन्तु राहुतुल्य वरें वीर ने वक्र चन्द्र-शाह को ग्रस लिया। यहा उपमान से उपमेय में विशेषता बता कर व्यतिरेक अलंकार सिद्ध किया गया है।

'विनय मगल' समय जयचन्द्र की पुत्री सयोगिता को मदन ब्राह्मणी द्वारा बधु-धर्म (विनय) की शिक्षा देने की कथा से सम्बन्धित है। चन्द्र के पूर्व भी विवाह से सम्बन्धित ऐसे मगल काव्यों की रचना मिली है। उनके परवर्ती महाकवि तुलसी ने भी 'जानकी-मगल' और 'पार्वती मगल' नामक विवाह काव्यों की रचना की है। इससे ज्ञात होता है कि इन मगल काव्यों की एक दीर्घ परम्परा बन गई थी। संभवत इसी परम्परा से प्रेरणा प्राप्त कर चन्द्र ने भी सयोगिता के विवाह के सम्बन्धित 'विनय-मगल' नामक समय की अवतारणा की हो।

सयोगिता अपने समय की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। बाल्यावस्था के वीत जाने पर उसमें काम (यौवन) की वृद्धि होने से नित्य नवीन सरसता का संचार होने लगा। ऐसी अवस्था में मदन ब्राह्मणी सयोगिता के हृदय में सुघडता और पदुता की शिक्षा उतारने लगी।

ता दिनह बाल सजोग उर, मदन वृद्ध मडिय सुघर ।

उसने कामदेवरूपी पृथ्वीराज के गुणों का वर्णन कर सयोगिता के हृदय में श्रोतानुराग उत्पन्न कर दिया, इसमें सयोगिता की दशा जहाज का सहारा छूट जाने वाले व्यक्ति के समान होगई। उसके महल में अश्रु प्रवाह रूपी जल प्रवाह होने लग गया और उसकी आंतरिक सतप्रता ही तपस्या के समान होने से वह चलते फिरते जोगी के समान दिवाई देने लगी।

अति कोविद गुन कथ्य, मदन कीनी अति वृद्धह ।

जोग जिहाजन जाड, ताहि जल मद्धित सद्धह ॥

❀

❀

❀

❀

आरभ अत्र ता वाम मवि ।

सजीव जोग जगम वसे, तपसु तप मध्या सुलिवि ॥

सयोगिता की यह दशा प्रानुराग में प्रिय के नहीं मिलने की आकुलता से सम्बन्धित है, जिसे साहित्य शास्त्रियों ने नृ गार के वियोग पक्ष में स्थान दिया है। उनके अनुसार श्रोतानुराग भी प्रानुराग का ही एक रूप है। काव्य-क्षेत्र में इस प्रकार का प्रेम-वर्णन भी एक कथानक-रन्धी के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है।

जब संयोगिता झूला झूलती थी, उस समय वह ऐसी दिखाई देती थी, मानों ऊँची स्वर्ण की छड़ी हो। उसे इस अवस्था में देखकर इन्द्र को इन्द्राणी की भी शका हो सकती थी जब वह झूला चढाती तब ऐसा प्रतीत होता था मानों कामदेव ने स्वर्ण स्तम्भ स्थित चन्द्रमा को झूले पर रख दिया हो। उस समय उसकी बेणी उसके नितवों पर बार बार लगती हुई ऐसी सुशोभित होती थी मानों चंचल तुरंत रूपीसंयोगिता के शरीर से शिशुत्व के प्रयाण करते हो उसे शिञ्चित बनाने के लिए उस पर कामदेव रूपी अश्व-शिञ्जक ने चाबुक उठाया हो।

मदन वृद्ध व्रभनिय, ग्रोह हिंडोल सजोइय ।
कनक डड पर चंड, इन्द्र इन्द्रिय वरजोइय ॥
परहि लत्त हिंडोल, दुजनि उप्पम तिन पाइय ।
कनक खभ पर काम, चन्द चकडोल फिराइय ॥

लग्गे नितव विन्नी उवटि, मो कवि इह उप्पम कही ।
मैसव पयान के करत ही, काम अवग्गी कर गही ॥

इस छन्द की अन्तिम उत्प्रेक्षा कवि की मौलिक सूक्त-ब्रूक्त की चोतक है।

इसी अवस्था से चतुर मदना ब्राह्मणी संयोगिता को विनय का पाठ पढाती है। 'संसार सार विनयौ बडौ' कह कर वह पृथ्वी का मवसे बडा तत्व 'विनय' ही बताती है। 'मान' जो कि विनय का विरोधी होता है, वह शीतल होने पर भी तुपार रूप होता है, क्योंकि वह प्रेम रूपी वन को दग्ध कर देता है—

सीतल मान सु जपियै, तौ वन दमै तुंग्वार ।

अत स्त्री ज्यों-ज्यों विनय का अभ्यास करती जाती है त्यों-त्यों वह प्रियतम के मन में स्थान पाती जाती है—

जिस जिम विनय अभ्यासी है, तिम तिम पिय मन पग ।

ऐसी अवस्था में विनय से अलकृत सुन्दरी को अन्य शृङ्गार प्रसाधनों की भी आवश्यकता नहीं रहती। विनय-रहित सुन्दरी उमी प्रकार दिखाई देती है जिस प्रकार संध्या होने पर दीपक रहित घर असुन्दर दीख पडता है, या उद्यान में खिला हुआ क्षणिक पुष्प, जो माली द्वारा तोड़ लिया जाता है—

विनय विना सुन्दरि इमी, विलु दीपक ग्रह मभक्त ।

ॐ

५

४

विनय विना सुन्दरि इमी, पसुन होट उगान प्रम ॥

इस प्रकार विनय का पाठ पढ़ कर मदनना ब्राह्मणी सयोगिता से कहती है कि वह इस विनय के द्वारा ही बलशाली वीरों को वश में करने वाले अपने प्रियतम पृथ्वीराज को वश में कर सकेगी ।

मदनना ब्राह्मणी से विनय का पाठ पढ़ कर और पृथ्वीराज के गुणों को श्रवण कर उसक हृदय में श्रोतानुराग जागृत हो जाता है और वह 'सयोगिता नेमा चरण' समय में प्रतिज्ञा करती है कि या तो वह पृथ्वीराज से ही वरण करेगी, अन्यथा गंगा में डूब मरेगी—

कैं वहि गगहि सचरौ, (कैं) पानि ग्रहण पृथिराज ।

वह परिचारिका के सम्मुख तर्क उपस्थित करती है कि जिन व्यक्तियों को मेरे पिता ने बधन में लेलिया है, या जिन्होंने मेरे पिता का नमक खाया है, वे तो मेरे पिता के क्रमशः क्रेदी और स्तुति पाठक हैं । फिर उनमें से मुझे कौन वरण कर सकता है ? अर्थात् पृथ्वीराज ही ऐसा व्यक्ति है जिसे न तो मेरे पिता ने बधन में लिया है और न उसने उनका नमक ही खाया है ।

जो बधे पित सकरह, जे खद्दे पित लोन ।

ते बदीजन बापुरे, वरै संजोगी कौन ॥

सयोगिता की धाय पृथ्वीराज के लिए 'लहुआ लुहान पुत्त' कहकर श्लेष में उसे खनी और लुहार की सजा देती है, तब वह उमी शब्द को लेकर पृथ्वीराज (लुहार) के श्रातक का तर्क देती हुई कहती है ।

जिहि लुहार सुनि दुत्त, साहि सकर गदि बध्यौ ।

जिहि लुहार गदि खग्ग, पग जग्गह घर रूध्यौ ॥

जिहि लुहार साडसो, भीम बालुक अहि साहिय ।

जिहि लुहार आरन्न, वरे वर मानस गाहिय ॥

इस प्रकार वह यह व्रत स्थापित कर लेती है कि पृथ्वीराज मेरा प्राणेश्वर होकर ही रहेगा—'प्राणेश दिल्लीश्वरम्' ।

उधर संयोगिता यह व्रत ग्रहण कर लेती है, उधर द्विज-दम्पति दिल्ली पहुँच कर पृथ्वीराज के सम्मुख संयोगिता की विरह वेदना और सौन्दर्य वर्णन करके उसके हृदय में भी श्रोतानुराग उत्पन्न करती है—

ज हम दिखल्य डक्क तेज घन तड़ित अकारिं ।
कनवज्जह जैचंद्र, प्रेह संजोगि कुमारिं ॥

❀ ❀ ❀

आपन तन छवि दिखलं, सिखलं भेदाइ दुखलनो जीवी ।
दुखलं सभरिराइं, कहियं राज आतमं नीरं ॥

इस प्रकार संयोगिता की विरह कातर दशा का वर्णन करके वह रसका नख-शिख वर्णन करती है—

चंद्र वदनि म्रग नयनि, काम कौवंड भोह वनि ।
गग मग तरयल तरंग व्रैनी, अंग वनि ॥
कीर नास भ्रगु दिपति, दसन दामिनि दारिम कन ।
छीन लंक श्रीफलउ पीन, चम्पक वरनं तन ॥
इच्छति भ्रतारु प्रथिराज तहि, अहनिमि पूजति मिव मकति ।
अध-तेरह वरख पंद्रमिनि, हस गमनि पिक्विचय नृपति ॥

इस नख-शिख वर्णन में भी, जैसा कि कहा जा चुका है कवि ने सौन्दर्य के रूढ उपमानों का ही प्रयोग किया है। संयोगिता की विरह दशा और सौन्दर्य वर्णन सुनकर पृथ्वीराज को भी श्रोतानुराग उत्पन्न होगया—

इह सुनि नृपति नरिंद चित, भय श्रोतान सुराग ।

उस द्विज दम्पति के दिल्ली लौट कर पृथ्वीराज के श्रोतानुराग की सूचना देने पर संयोगिता के हृदय में पृथ्वीराज को वर रूप में प्राप्त करने की अभिलाषा अधिक उद्दीप्त हो गई।

इस समय का नामकरण 'शुक वर्णन' किया गया है। इस नामकरण में भी कवि ने प्रचलित कथानक-रूढ़ी का ही प्रयोग किया है। सस्कृत-वाङ्मय के अध्ययन से ज्ञात होता है कि काव्य में सरसता का मंचार करने के लिए अनेकों

कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग मिलता है। इन कथानक-रूढ़ियों में 'शुक' को विशेष महत्व दिया गया है। शुक के अनेक कार्यों में नायक और नायिका के बीच प्रेम-सदेश भेजना भी एक कार्य-कलाप है। वह नायक-नायिका में परस्पर श्रोतानुराग उत्पन्न कराने वाला भी बनता है। यहाँ उसी कथानक-रूढ़ी का प्रयोग मिलता है।

'बालुकाराय' समय के प्रारम्भ में सयोगिता के पूर्वानुराग से उत्पन्न वियोग का दिग्दर्शन किया गया है। संयोग काल की सुखद स्मृतियाँ और प्राकृतिक वस्तुएँ विरही के लिए दुःख-वर्धक हो जाती हैं, किन्तु यहाँ प्रत्यक्ष संयोग नहीं होने पर भी पूर्वानुराग में प्रिय के नहीं मिलने की विकलता से सुखद पदार्थदुःख-वर्धन में सहायक हो रहे हैं—

वञ्चूरे मलय मरुतं, जगुरेव पिक पराग परपच ।

उत्कठं भार तरला, मम मानस किम्भ खमती ॥

यहाँ सयोगिता को मलय-मारुत ववूल के काँटों के समान तीक्ष्ण, पिक स्वर और पुष्प रज त्रिश्व-प्रपच के समान एवं अभिजाषा भार स्वरूपी लग रही है। उसका मन बार बार विजली के समान कौध जाता है (उसमें कभी हर्ष और कभी विपाद भर जाता है)।

प्रिय-मिलन में अनेक बाधाएँ देख कर उसके हृदय में अन्य वालाओं के प्रति ही नहीं अपितु गुडियों का पाणिग्रहण कराते समय भी ईर्ष्या की स्वाभाविक प्रवृत्ति जागृत होती है, साथ ही उन्हें एकान्त सहवास की शैया पर देख कर निराशा के साथ ही साथ लज्जा भी आती है—

मानीय दाह वाले, पुत्तलिका पानि ग्रहनाय ।

एकत मैज महवं, लज्जावीय न आसाई ॥

इन गायत्रियों में कवि को विरहिणी सयोगिता के मानसिक उदापोह द्वारा मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने में सफलता प्राप्त हुई है।

अब तब तो यह अनुगम की सरिता सयोगिता के हृदय में ही प्रवाहित होरही थी, किन्तु 'पग जग्य विन्त्रम' में तो उसने उन्माद और प्रलाप की अवस्था में अपने

प्रियतम के नाम को सद्य पर प्रकट कर दिया और निरन्तर 'राजा-२' (पृथ्वीराज का नाम) जपने लगी ।

प्रगट नवल वल्लह करी ।

राज राज उच्चित फिरी ॥

'सयोगिता पूर्व जन्म' समय मे कवि ने कथानक-रूढियों और काव्य-रूढियों का खुलकर प्रयोग किया है । प्रारम्भ मे चडिका और इन्द्र का वार्तालाप होता है, जिसमे चडिका शोणित से अपनी तृपा बुझाने की मांग करती है । इन्द्र इसकी पूर्ति हेतु एक गन्धर्व को तोते के रूप में कन्नौज और दिल्ली के बीच वैमनस्य बढाकर महाभारत के समान युद्ध करवाने को भेजता है । इसी प्रकार का प्रसंग राम-कथा मे भी मिलता है, जहा देवतागण अपनी स्वार्थ-पूर्ति हेतु सरस्वती को मथरा की बुद्धि भ्रष्ट करने को भेजते हैं । इसके पश्चात् गंधर्व की स्त्री के पूछने पर गंधर्व द्वारा संयोगिता के जन्म की कथा भी इन्हीं कथानक-रूढियों पर आधारित है—ध्यान रत तपस्वी सुमन्त की तपस्या से सुरलोक काप गया, इन्द्र के नैत्र शिथिल होगये और कांति मलिन होगई—'तप वल कपित सुर भवन', 'सुस्त तेज दिग सिथिल हुआ ।' तब इन्द्र ने सुमन्त का तप-भ्रष्ट करने के लिए रंभा नामक आसरा को ऋषि के पास भेजा । आसरा ने पहले तो अपने वशीवादन, सौन्दर्य और अ. चित्ताम से मोहित करना चाहा, किन्तु अपने प्रयास मे सफलता नहीं मिलने पर उसने योगिनी का रूप धारण किया और ऋषि के पास पहुँची । ऋषि ने प्रसंगवश दशावतार का वर्णन करते हुए नृसिंह के रौद्र और भयानक रूप का वर्णन किया तब भयातुर और कॉपती हुई उस आसरा ने दौड़कर ऋषि को अपने बाहुपाश मे बाँध लिया—

भय भीति कामिनि कुटिल, धाय विप्र अंकह भर्यौ ।

उस भयातुर वाला के उरोजों का मुनि के हृदय मे स्पर्श होते ही उसमे काम जागृत होगया, रोमांच हो आया और अग शिथिल पड़ गये—

उर उरोज लगत सु मुनि, मर सरोज हति काम ।

रोमाचित अग-अग शिथिल, मन मोहो सुर वाम ॥

तब उसका चित्त चंचल होगया, मन डगमगाने लगा और अत मे वह उसके रूप के रस-रग मे लीन होगया—

चिन्त चल्थौ मन टगसग्यौ, रन्गौ रूप रस रग ॥

यहां कवि ने कथानक रूढियों की परम्परा से थोड़ा हट कर अपनी मौलिकता भी प्रदर्शित की है। सुमन्त द्वारा दशावतार प्रसंग में नृसिंह के भयानक रूप का वर्णन करना और उसके फल स्वरूप रभा का ऋषि से चिपट जाना और इस प्रकार सुमन्त का तप भ्रष्ट हो जाना एक अत्यन्त मरस और नाटकीय वातावरण की सृष्टि करने वाला वन पड़ा है। महा कवियों की मौलिकता एवं प्रसंगोद्भावक-फलपत्ता ऐसे ही स्थलों में देखी जाती है। रभा और सुमन्त के काम-रस में लीन हो जाने पर सुमन्त के पिता जरज वहा आये और उन्होंने यह दृश्य देखकर रभा को श्राप दिया—

कलह करन ही डहि कुबुवि, कलहतर कहि प्ह ।

पुहुमी भर उतारनह, जनभि पग के गेह ॥

किन्तु रभा के प्रार्थना करने पर दयार्द्र ऋषि ने उस श्राप के शमन की विधि और श्रवधि भी बता दी।

इन सभी वर्णनों को पढ़ कर कहा जा सकता है कि कवि ने जहाँ परम्परा से प्राप्त प्रचलित कथानक रूढियों का आशातीत प्रयोग किया है, वहाँ उसमें अपनी मौलिक उदभावना शक्ति का भी मणि-काचन संयोग अवश्य रखा है। रूढियों के प्रयोग से जहाँ काव्य में मरसता का संचार हुआ है वहाँ कथा-प्रवाह में भी गति आगई है।

कथानक-रूढियों के अनुसार ही कवि ने अशराओं के नव-शिव वर्णन में भी काव्य-रूढियों का प्रचुर प्रयोग किया है। वे ही परम्परा प्राप्त उपमाएँ, उपेक्षाएँ और रूपक देवने को मिलते हैं जो स्त्री-सौन्दर्य के लिये काव्य में रूढ होगये हैं।

‘हाँसी प्रथम युद्ध’ से लेकर ‘सम रपग’ युद्ध तक के समय वीर रस से श्रोतप्रोत है। उनमें वीर रस का एकछत्र साम्राज्य दिग्घाट देता है। युद्ध की तैया-रियों, सैन्यसंचालन, सेना का युद्धार्थ गमन करते हुए आठवर पूर्ण दृश्य, वीरों का उरसाह, व्यूह-रचना, कवचों का युद्ध, शोणित और माम-मज्जा से प्लावित युद्ध-भूमि, अशराओं, गिद्धों और गिद्धनियों के आनन्दातिरक्त का सजीव चित्रण दिग्घाट देता है।

वीर नृत्राणियों की गौरव-गाथाएँ अनेक सुनी हैं, जिनमें वे पत्नी के रूप में अपने कायर पतियों और माता के रूप में कायर पुत्रों के हृदय में उत्साह का संचार करती हुई प्रदर्शित की गई हैं। महाकवि चन्द ने अपने रासो में यवन-नारियों के उसी वीरता पूर्ण रूप को भी दिखाया है। युद्ध से भागे हुए यवन सैनिकों की पत्नियों शहाबुद्दीन के पास जाकर इसी प्रकार के वाक्य कहती हैं—

ॐ गोरी सुरतान साहिव वर, साहाव साहावनं ।
जैनं जीवत तस्य सेवक वृत, मानस्य मर्दं जगं ॥
वीर्य जाचत अर्थवीर्य धनयो, धनयोपि जीवोधिग ।
धिगता तस्यय सेवकाय वरय, ना दीन सा मानय ॥

इसी प्रकार शहाबुद्दीन की कायरता देखकर उसकी माता शोक प्रकट करती हुई अपने गर्भ धारण करने को धिक्कारने लगी—

मैं प्रभ्रमह भुक्त्यो धर्यौ, सु ठि न खद्धी खान ।

इस एक ही वाक्य में माता के हृदय की समस्त करुणा और समस्त क्षोभ उमडता दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों अपने स्तन्य की लज्जा नहीं रखने वाले कायर पुत्र को देख कर माता का हृदय फट पड़ा हो और वह अपने जीवन को ही धिक्कार ममम्हने लग गयी हो। ऐसे ही सूक्ष्म वाक्य हृदय-स्पर्शी होते हैं। उक्त मवाद हमें महाभारत-वर्णित 'विदुला-तनुपुत्र-स्मवाद' की याद दिला देता है। माता का उपर्युक्त कथन विदुला के इस कथन से कितनी साम्यता रखना है—

अनन्दन । मयाजात । द्विपता हर्ष वर्धन ।
न मया त्व न पित्रा च जात क्वाभ्यागतोऽसि ॥

यह बात शाह के हृदय में जिस तीव्रता से चुभी गेमी चुभन तीक्ष्ण तीर में भी नहीं देखी गयी—

जितौ कस्म सुरतान कौ, तितौ न दिक्वू तीर ।

हॉसी दुर्ग में अपने सामतों की कायरता पर आश्चर्य प्रकट करते हुए पृथ्वी-गज में एक से अधिक रसों का सामजस्य किया गया है—

इह भविक्व चित्तै नृपति, भयो करुन रम चित्त ।
रुद्र वीर अरु हाम रस ॐ अपुव्व कथ वित्त ॥

यहो हासीपुर की जनता की दुःखद घटना से करुण, शत्रुओं पर क्रोध करने से रौद्र और वीर एवं ब्रह्मादुरों का धर्मद्वार से बाहर निकल जाना ही हास्य का कारण हुआ है ।

इसी प्रकार रावल समर के युद्ध करने पर भी एक ही छन्द में नवों रसों का पर्यवसान किया गया है—

सगन सग आवयन नाग भिजे नागिन रुधि ।
 परै नाग हलहलिय, नाग भागै कमट्ट सुधि ॥
 मननि सीस मुक्ययौ, इहे दम्पत्ति विन्चारै ।
 तिहिन सग आवै न, सग नागिन हक्कारै ॥
 घरि एक भयौ विभ्रमत मन, बहुरिस हार सिगार किय ।
 नव रस विलास नव रस सु कथ, राज उट्टि सग्राम लिय ॥

यहाँ नाग और नागिन का पृथ्वी के नीचे दब कर रक्त-रजित होने में 'वीभत्स', शेषनाग का भयातुर होकर शरीर को हिलाने से 'भयानक', कच्छप सहित नाग के शरीर दब जाने में 'अद्भुत', सिर से मणियाँ छूट जाने में 'करुण', नागिन के ललकारने में 'रौद्र', उसके ललकारने पर भी नहीं उठने में 'हास्य', 'हे प्रभु ! यह कैसा उत्पात होगया' इस प्रकार की विभ्रमता में प्रभु स्मरण करने में 'शान्त', उत्साह पूर्वक पृथ्वी को सँभालने में 'वीर' और नागिन के शृङ्गार करने में 'शृङ्गार' रस भागित होता है ।

इसी प्रसंग में युद्ध करते हुए पृथ्वीराज की जो उत्प्रेक्षा की गयी है, वह बहुत अपूर्व बन पडी है—

पृथीराज गज सहित तेग बकी कर वारिय ।
 घन हत्तोर त्रिय चद, बीज उजली सु वारिय ॥
 सेत चमर सम भिजि रही लट एक समविजग ।
 स्याम सेत अरु पीत, अग अगत कृत रज्जिग ॥
 अजलन कट ते उत्तरहि, घन नन्दी समग्र तिय ।
 चित्रङ्ग राम रावर चवै, सुवर वीर भारत्य कथ ॥

पृथीराज तलवार हाथ में धारण किये हुए हाथी पर सवार ऐसा दिखाई पड

रहा था, मानों दूसरा ही चन्द्रमा उज्ज्वल विजली लेकर वादल को वहन कर रहा हो। राजा पर दो चँवर चल रहे थे। महावत द्वारा चलाया जाने वाला चँवर हाथी के मूठ से भींग कर श्याम हो गया था। पीछे से चलाया जाने वाला सफेद ही था। इस प्रकार श्याम-श्वेत-पीत वर्ण (कवच की चमचमाहट) प्रभा हाथी से छूटती हुई ऐसी दिखाई पड़ी, मानों कज्जल गिरि से तीन सरिताएँ रण-तीर्थ में प्रवाहित हो गई हों। इस प्रकार की उत्प्रेक्षाएँ कवि की मौलिक और नवन्वोन्मेष शालिनी प्रतिभा की द्योतक हैं।

“कैमास वध” में कवि ने अपने नाटकीय कौशल को प्रदर्शित करने में अभूत पूर्व सफलता प्राप्त की है। समस्त समय घटनाओं के आरोह-श्वरोह, पात्रों की क्रिया-शीलता और अभिनय कला की पूर्णता से सजीव बन गया है।

कैमास की गुण-स्तुति से कथा का प्रारम्भ करके अन्त में यह बतलाया गया है कि जो मन्त्रो ऐसा विबुध था वह दासी के प्रेम में फँस गया—‘स विवधा-कैमास दासी रता’—और इसीलिए विषय वासना के कारण उसका विनाश हुआ, यह दैविक गति सीमा से परे है—

सा मन्त्री कयमास नास विपथा, दैवी विहदा गती ।

कैमास की कामवासना को जागृत करने के लिए कवि ने जिस प्राकृतिक पृष्ठ-भूमि की नियोजना की है, वह बहुत उपयुक्त बन पड़ी है। उस समय संध्या होने को थी, पूर्वाषाढा नक्षत्र तथा भाद्रपद मास था, आकाश मडल में गहरे वादल छाये हुए थे, मयूर बोल रहे थे, दादुरों का शोरगुल होरहा था, आकाश में वक्र-पक्ति उड़ रही थी, समस्त दिग्मडल श्याम वर्ण होरहा था और इन्द्र धनुष शोभा देरहा था—

पुव्वपाढ भहौ मुगाढ, घन वाढ व्योम किन ॥

दहकि मोर ददुुरनि रोर, वहल वग पतिय ।

वनि त्रिसान मसिवान, चाप वामव चित मंडिय ॥

ऐसे वातावरण में कैमास ने जब अतरंग सखियों से आवृत कर्नाटी और आकाश मडल के मेघाडंबर को एक साथ देखा, तब कामदेव ने उसके चित्त में मस्ती भरदी और दोनों की दृष्टि मिलते ही हृदय में काम जागृत होगया—

ऊँच महल करनाटि, दिखिख डम्बर घन पम्पर ।

विट्टि गवम्बल स-सक्वि, सुमन मती अरि सभर ॥

सम दिट्टि उट्टि दाहिम्भ दुअ, जगिग मार उम्भार चित ।

टधर कर्नाटी वैश्या की भी यही दशा थी—

कन्नाटी कयमास, दिट्टि दिक्खत मनु लग्यो ।

कलमलि चित्त सु हित्त, मयन पूरन जुरि जग्यो ॥

कैमास के कर्नाटी वैश्या के महल में प्रवेश करने पर पास के महला से रानी प्रमारिनी ने उसे देखा और उसने एक दासी भेजकर आखेट रत पृथ्वीराज को बुलाया । पृथ्वीराज ने आकर एक बाण चलाया, किन्तु क्रोधावेश में उसके चूक जाने पर दूसरे बाण से उसने कैमास का वध कर दिया । बाण लगने से कैमास का धड़ जमीन पर इस प्रकार गिर पड़ा, मानों राज-पताका गिर गई हो या उल्कापात हुआ हो—

भरिग वान चहुआन, जानु दनु देव नाग नर ।

दिट्टि मुट्टि रिस डुलिग, चुक्कि निक्करिय इक्क सर ॥

दुतिय आनि दिय हत्थ, पुट्टि पम्मारि पचार्यो ।

वान वृत्ति छटिकत, सुनत सुर धरनि अखारयो ॥

यह कच्च सच्च सरसै गुनित, पुनित कव्यौ कवि चन्द तति ।

यो पर्यो केवास अवास तें, जानि निसान नछित्र पति ॥

राजपताका का गिरना और उल्कापात होना भावी अनिष्ट के सूचक होते हैं । अतः यहाँ कैमास के गिर पड़ने से राजपताका के गिरने और उल्कापात होने की उत्प्रेक्षा करके पृथ्वीराज के राज्य के भावी अनिष्ट की सूचना दे दी गई है ।

तब पृथ्वीराज ने उसके शव को पृथ्वी में छिपा दिया । डम्बर दासी कर्नाटी भागकर सकुशल कन्नौज पहुँची और उसने जयचन्द को सारा वृत्तान्त कह दिया—

खनि गड्यो नृप सम धनह, सो दासी सुर-पात ।

दिव्व धार ने जलधि ते, लीला कहिग सु प्रात ॥

यहाँ 'सुर-पात' का अर्थ 'पतित देव' अर्थात् 'जयन्त' का 'जय' शब्द और 'दिव्य धारने जलधि' (जलधि द्वारा धारण किया हुआ दिव्य पदार्थ) अर्थात् 'चन्द' मिलाकर कवि ने कृष्ट शैली के आधार पर 'जयचन्द' का प्रयोग किया है । आगे चल कर मर में भी इस प्रकार की शैली का प्रयोग मिलता है ।

देवी ने कवि चन्द्र को स्वप्न में कैमास-व्रध की सूचना देदी। प्रातःकाल पृथ्वीराज के हठपूर्वक पूछने और वर्जित करने पर भी नहीं मानने पर कवि चन्द्र ने आद्यान्त वृत्तान्त सभा में बतला दिया। जिस प्रकार प्रबल हवा के साथ प्रकट होकर ज्वाला कटे हुए धान के ढेर में फैल जाती है, उसी प्रकार कैमास सी मृत्यु का यह वृत्तान्त कहने पर सब सामंतों के हृदय में ज्वाला प्रकट होगई—

भूमामि भार लगी, समया वदामि भट्ट वचनानी।

किन्तु कवि चन्द्र ने सब को शान्त ही नहीं किया अपितु कैमास का शव भी उसकी पत्नी को दिला दिया। जब कैमास का अग्नि-सस्कार किया गया, उस समय पृथ्वीराज के ज्वालामय नैत्र भी अश्रु जल से स्नान करने लग गये और वह कवि से कहने लगा कि हे कवि ! तुम्हारा यह राजा अब भी जीवित रहना चाहता है, अतः इसमें कौनमा सयानापन है—

दोउ कंठ लगिय अग्नि, नयन ज्वाल जल न्हान।

अब जीवतु बछहि नृपति, कहि कवि कौन सयान।।

यहाँ कैमास की मृत्यु आलम्बन विभाव, चिता का जलना आदि उद्दीपन विभाव, रोषपूर्ण आँखों का जल पूर्ण हो जाने और अपने जीवन को धिक्कारने से अरुभाव एवं ग्लानि, विषाद आदि संचारी होने से करुण रस की अवतारणा हुई है।

‘दुर्गा केदार’ के प्रारम्भ में पृथ्वीराज की शोकपूर्ण स्थिति बतला कर करुण रस का ही वातावरण उपस्थित किया गया है। इसके बाद दुर्गा केदार का प्रसंग उठाया गया है। गौरीशाह का बंदीराज केदार भट्ट देवी के निषेध करने पर भी शाह से आज्ञा लेकर पृथ्वीराज के पास पानीपत आया और कवि चन्द्र से शास्त्रार्थ करने को उत्सुक हुआ। पृथ्वीराज ने एक कवि को बाल-शशि और पूर्ण-शशि का एवं दूसरे को ऋतुराज वसन्त का प्रबन्ध-काव्य के लक्षणों से युक्त वर्णन करने का आदेश दिया। यहीं से दोनों कवियों का साहित्यिक-शास्त्रार्थ प्रारम्भ होता है। कवि चन्द्र ने एक ही छन्द में बालचन्द्र और चन्द्रमुखी बाला का श्लेष युक्त वर्णन किया, तब केदार भट्ट ने भी एक ही छन्द में बाला की वयसधि और वसन्त का श्लेष युक्त वर्णन कर दिया। यह देखकर कवि चन्द्र ने पुनः एक ही छन्द में बाला की वयसन्धि, पूर्ण शशि, बालचन्द्र और वसन्त विषयक श्लेष पूर्ण वर्णन किया।

इन वर्णनों में कवि ने काव्य-सुदृष्टियों का तो प्रयोग किया ही है, किन्तु प्रनेक नये उपमानों का कथन करके अपनी मौलिकता भी प्रदर्शित की है। बाल चन्द्रमा को काम स्वरूपी बाज पक्षी का नख, धनुषधारी मदन का वक्रशर और तलवार, दिशा सुन्दरी का अर्ध अधर, सुरति-रत बाला का कटाक्ष और कामदेव का दीपक रुहना और इसी तरह वय संधि की उपमा कुकवि के छन्दों की गति और टूटे हुए मुक्ता-हार से देना नवीन प्रयोग है। इन वर्णनों में हमें कवि की काव्य-प्रतिभा और चमत्कार-कौशल के दर्शन होते हैं।

कवि चन्द्र से शास्त्रार्थ करने पर केदार के मनोरथ उसी तरह मन में रह गये, जिस तरह कृष्ण की छाया कृष्ण में और समुद्र की तरंगे समुद्र में ही विलीन हो जाती हैं—

वाद वीर सवाद, रहे मन मभक्त मनोरथ ।

कृष्ण छाह सिधू तरंग, मूर लग्यौ कि वान पथ ॥

शास्त्रार्थ में पराजित हो जाने पर भी दयालु राजा पृथ्वीराज ने उसको योग्यता से भी विशेष दान दिया और चन्द्र ने भी उसे अपना जाति बन्धु समझ कर उसके गुणों पर प्रकाश डाला।

‘जगम कथा’ में फिर से सयोगिता का प्रसंग आता है। एक जगम ने आकर पृथ्वीराज को सयोगिता-स्वयंवर और उसके द्वारा तीन बार पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा को वर माला पहनाने की सृचना दी। यह सुनकर पृथ्वीराज ने खाना-पीना, सोना बैठना, आगम और सुख से रहना छोड़ दिया। उसको तो प्रत्येक समय सयोगिता के व्रत को पूर्ण करने का ही ध्यान रहने लगा—

असन मार आराध सुख, सुख सयन्न कत राज ।

उर मल्लै मजोग वृत, सभरि नाथ समाज ॥

तब उसने कविचन्द्र से मिलकर कन्नौज जाने की मन्त्रणा की। इसके पश्चात् शिकार में लौट कर उसने शिव से इस प्रार्थना बन्दना की—

राज दरमि हर मरम तर, उर उहित आनद ।

रुल रुलन निरगल कर, जै जै मरम निकद ॥

यहाँ शिव को 'समर निकन्द' कहना परिस्थिति के बहुत अनुकूल बन पड़ा है। जेमेन्द्र के अनुसार ऐसे ही प्रसंगों को पदौचित्य के अंतर्गत लिया जा सकता है।

इस कथा प्रवाह को देख कर कहा जा सकता है कि 'चन्द की प्रतिभा का प्रस्फुटन, कला की छाप तथा चरित्रों का खासा चित्रण रासो में दिखाई देता है। कथा का तारतम्य निमाने तथा पात्रों का चरित्रांकन करने में तो चन्द सिद्ध-हस्त थे ही, वार्थ-विषय को साकार रूप देने की अद्भुत शक्ति भी उनमें विद्यमान थी। अतः जिस विषय को उन्होंने पकड़ा, उसका ऐसा सांगोपांग, सजीव और विशद वर्णन किया है कि वह मूर्तिमान होकर हमारी आँखों के सामने घूमने लगता है। वस्तुतः रासो में महाकाव्य की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता है। इसकी कथा के वर्णन में बड़ा वेग, बड़ी गति है। बड़ी गति के साथ कथा-प्रवाह आगे बढ़ता है और पाठकों को भी अपने साथ लेता चलता है ।'

चरित्राङ्कन कौशलः—

रासो घटना-प्रधान महा काव्य होते हुए भी चरित काव्य है। इसमें काव्य-नायक के रूप में पृथ्वीराज का जीवन-चरित्र अंकित किया गया है। पृथ्वीराज दिल्ली का पराक्रमी नरेश था। उसके विरोधियों में कमधञ्ज जयचन्द, चालुक्य भोरा भीम और गौरी शहाबुद्दीन प्रमुख थे। उसने अनेक विवाह किये थे। अतः पृथ्वीराज, उसके सामन्तों, रानियों और सम्बन्धियों से लेकर जयचन्द, भीमदेव और शहाबुद्दीन एवं उनके अनेकों प्रमुख सामन्तों तक का इसमें चरित्र-चित्रण मिलता है। इन सभी पात्रों में जो विशेषता मिलती है, वह है "कर्म-समारोह की व्यस्तता, पात्रों की क्रियाशीलता। इसमें एक भी पात्र ऐसा नहीं है जो निश्चेष्ट एवं अकर्मण्य हो। सभी को कुछ न कुछ करना है। अपनी २ धुन में मस्त सभी चले जा रहे हैं। कोई शैल्य-शिविर में, कोई रणायण में और कोई राज दरवार में।" प्रमुख पात्रों को छोड़कर शेष सामन्तों की मामान्य विशेषताएँ—उनका युद्धोत्साह, स्वामी के लिए मर मिटने की उत्कट भावि-भक्ति-युक्त तन्मयता और अपार शत्रु-संहारक शक्ति।

सुख लुहहि लुट्टहि मयन, अरिधर लुट्टहि धाहि ।

अंग अनम्मि न उवरै, हय खुर खगहि गाहि ॥

वह वेदोक्त नियमों का पालन करने वाला, चारों वर्णों का प्रतिपालक सरूचा ईश्वरानुरागी, महान् दानी, न्याय परायण, विशिष्ट युद्धकर्त्ता और गुप्तमंत्रों का ज्ञाता था । उसकी दिनचर्या, चन्द्रग्रहण के अवसर पर यमुना किनारे किया गया षोडश प्रकार का दान और वरुणदूतों एवं चालुक्यों से युद्ध करना इस कथन की पुष्टि करते हैं । कवि ने सोमेश्वर के हृदय में युद्धार्थ उत्साह के छलकने की तुलना सतियों में सतीत्व झलकने से की है—

सुनत पुकारत छोह छकि, सत्तिय सत्त ममान ।

रावल समरः—

रावलजी का चरित्र तो कवि की उभ उक्ति से ही चरितार्थ हो जाता है, जब वह कहता है कि विक्रम केशरी और पृथ्वीराज दोनों पराई भूमि को अधिकृत करने में समर्थ हैं और आपत्ति के समय (यवनों के पराक्रम के समय) भारत भूमि का शासन भाग इन्हीं दोनों के कंधों पर है—

विक्रम अरु चहुआन नृप, पर धरती सक वध ।

अगम समै साहस करन, हिन्दु राज दुअ कथ ॥

पृथ्वीराज को रावलजी की वीरता पर अगाध विश्वास था और इसीलिए वह सकट कालीन स्थिति में सर्वदा उनकी सहायता लिखा करता था । 'हसावती विवाह' में पचायन से युद्ध करने और हॉमी युद्ध में विजय प्राप्त करने का श्रेय भी रावलजी को ही दिया जा सकता है । रावलजी को कवि ने (सामंतों के शब्दों में) योगीन्द्र उपाधिधारी और उनके यश को कलक-नाशक कहा है जिसकी पुष्टि सर्वत्र की गई है । कन्ह के युद्धार्थ निमन्त्रण देने पर रावलजी का कहना कि "तुम अगो हम आई है" उनके सच्चे क्षत्रियत्व और शरणागत-सहायक रूप का प्रदर्शक है । रावलजी की निलिप्तता और सच्चे जनक-रूप का दर्शन तो हमें उस समय होता है जब पृथ्वीराज चित्तौड़ेश्वर को साबर का सकल्प करना चाहते हैं तो वे सनद को फंक देते हैं और बोधित होकर कहते हैं—

हय नीच करतार हय उपर जगत्तु गुर ।

हम आरुट्ट मभ नामि, स्वामि कहिलै सु उच वर ॥

कालंक राइ कापन विरुद्ध, कुलह कलंक न लग्यौ ।

दग्यौ न हाथ चिचौर पति, हम जगत्त सब दग्यौ ॥

रावलजी का आध्यात्मिक ज्ञान भी बहुत ऊँचा था और वे 'हरि विचारि लग्यौ चरण' में विश्वास रखते थे । वे कलियुग में यज्ञ से अधिक शोडप प्रकार के दान को महत्व देते थे । कवि ने यदा कदा उनके राजर्षि, त्रिकालदर्शी, मोह और ममत्व से हीन रूप को भी प्रदर्शित किया है । 'ममर पग युद्ध' में उनके द्वारा दिया गया उपदेश उनके सच्चे दार्शनिक रूप का सूचक है । अतः कहा जा सकता है कि कवि ने रावलजी के उज्ज्वल चरित्र का निरूपण करने में सफलता प्राप्त की है ।

कवि ने उपर्युक्त पात्रों के अतिरिक्त पृथ्वीराज के प्रतिपक्षी भीमदेव चालुक्य, जयचन्द और शहाबुद्दीन के चरित्रों को भी स्पष्ट किया है । भीमदेव महावली भीम के समान था, उसकी सीमा कोई नहीं दवा सकता था । उसके हृदय में पृथ्वीराज का दिल्ली-पति हो जाना खटकता था और इसीलिए वह पृथ्वीराज पर बराबर आक्रमण करता था । जैन धर्मावलम्बी होने के कारण उसकी हिन्दू नरेश पृथ्वीराज से बराबर टक्कर होती रहती थी । वह सर्वथा अपने सामंतों की मंत्रणा के अनुसार ही कार्य करने वाला था—

जं तुम जपौ त करउ, तुम छत मो सुख न्यद ।

इतना होते हुए भी वह कवियों का आदर करने वाला था । द्वारिका से आते हुए चन्द से उसका भेंट करना और उसे दान मान से सत्कृत करना इसी बात का सूचक है ।

जयचन्द भी पृथ्वीराज का विरोधी था । उसके चरित्र को कवि ने इस प्रकार अंकित किया है— वह अधिक पृथ्वी और द्रव्य को अपने यहाँ भचित करने की इच्छा वाला था, वह इन्द्र के समान सुख भोगता था और उसके द्वार पर क्षत्रियों की भीड़ लगी रहती थी । वह अनेकों राजाओं को अपने अधिकार में करने योग्य था—

बहु भुम्भि द्रव्य ग्रह उग्रहै, इम अन्धै रडौर पहु ।

सुख इन्द्र व्यद्र छत्री दरह, मुकट बंध बधमान बहु ॥

वह रावण के समान कलह प्रिय और काल के समान क्राधी भी था, इसलिए उसने पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिए यज्ञ का आरम्भ किया, पृथ्वीराज ने अनु-राग युक्त मयोगिता को गगातट पर बन्दी बना लिया एवं पृथ्वीराज की स्पर्श प्रतिमा

को द्वार पर स्थित की। शहाबुद्दीन तो पृथ्वीराज का प्रबल शत्रु था ही। वह वीर था, उसके पास प्रबल सेना थी, फिर भी उसकी धृष्टता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि पृथ्वीराज से अनेकों बार हार जाने और छोड़ दिये जाने पर भी वह बार बार चढ़ आता था। पृथ्वीराज को सबसे अधिक शहाबुद्दीन से ही युद्ध करना पड़ता था। कवि ने शहाबुद्दीन के परिस्थिति-अनुरूप वीर-कायर आदि रूपों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है।

इनके अतिरिक्त नरनाह कन्ह, कैमास, पञ्जून और पञ्जून पुत्र मलयर्मिह, पहाडराय, तत्तारखॉ आदि २ वीरों के अपूर्व युद्ध-कौशल का भी यत्र-तत्र प्रसंगानुकूल प्रदर्शन किया गया है।

स्त्री पात्रों में (इम भाग) में मुख्य रूप से हसावती, मद्रना ब्राह्मणी, सयोगिता और उसकी माता जुन्हाई का चरित्र चित्रण हुआ है। हसावती और सयोगिता दोनों ही पृथ्वीराज में अनुरक्ता-राजकुमारियाँ हैं और उनके इसी रूप का चित्रण मिलता है। हसावती जहाँ पूर्णरूपेण अनुराग मयी रानी के रूप में वर्णित है, वहाँ सयोगिता को उसकी माता के ही समान मानवती और कलह कारिणी बताया गया है। मद्रना ब्राह्मणी सयोगिता के हृदय में श्रोतानुराग उत्पन्न करके पृथ्वीराज के हृदय में भी उसके प्रति प्रेम उत्पन्न करती है। उसका यह रूप कव्य की व्यापक कथानकरूटियों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।

कविचन्द्र स्वयं भी एक पात्र के रूप में उपस्थित होता है। 'चन्द्र द्वारिका गमन' से ज्ञात होता है कि वह कट्टर हिन्दू भक्त था। उसके प्रस्थान करते समय राजा और सामन्तों से उसे दान दिये जाने से ज्ञात होता है कि वह पृथ्वीराज और सामन्तों-सर्भी से अपनी व्यवहार कुशलता के कारण स्नेह भाजन बना हुआ था। वह जितना दान लेता था उतना देता भी था। द्वारिका में मुक्त हस्त होकर दान करना इस कथन की पुष्टि करता है। भरे दरवार में कैमास वच की बटना का मडाफोड कर देने में कवि की स्पष्ट वादिता झलकती है। यही नहीं, ऐसे अवसर पर वह पृथ्वीराज को कुछ सटु वाक्य भी कहता है। चन्द्र के ही माहस से कैमान की स्त्री को उसके पति का शत्रु और उसके पुत्र को पिता की जागीर मिल सकी। चन्द्र बरदाई काव्य-गात्र में भी विशिष्ट ज्ञाता था, उसका यह यश दूर-दूर तक

कैला हुआ था। शहाबुद्दीन का वंदीजन भट्ट कौदार चन्द से शास्त्रार्थ करने पानीपत आया और वहाँ राजा ने एक को बालचन्द्र और वयः सन्धि एवं दूसरे को वसन्त वर्णन का विषय दिया। दोनों कवियों ने श्लेष पूर्ण वर्णन किये, किन्तु चन्द ने एक ही छन्द में वसन्त, बालचन्द्र, पूर्णचन्द्र और चन्द्रमुखी बाला का श्लेष पूर्ण वर्णन करके उसे परास्त कर दिया। यही नहीं, पराजित होने पर भी उसका विशेष सम्मान किया। चन्द साहित्य का ही विद्वान् नहीं था, वह अत्यन्त नीति निपुण और ज्योतिष-शास्त्र का भी ज्ञाता था। इनके उदाहरण प्रायः सर्वत्र देखे जा सकते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कवि ने पृथ्वीराज के चरित्र की विविध सर-णियों के अतिरिक्त अन्य पात्रों के केवल वीर रूप का ही चित्रण किया है जो रासो के कथानक को देखने पर उपयुक्त ही जान पड़ता है। बात यह है कि रासो वीर रस पूर्ण काव्य है और इसीलिए इसमें पात्रों की उन चारित्रिक विशेषताओं को ही स्थान मिला है जो युद्ध की घटनाओं से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त इसका कारण यह है कि कवि को उनके सम्पूर्ण चरित्र का उद्घाटन करना अभीष्ट भी नहीं था। वस्तुतः रासो चरित्र-प्रधान काव्य न होकर घटना-प्रधान चरित काव्य ही है।

व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण के अतिरिक्त ममष्टि रूप में हिन्दू-मुसलमान दो जातियों का चरित्रोद्घाटन भी रासो में खूब हुआ है। मुसलमानों की वर्चरता एवं राजपूतों के शौर्य, उनकी डाँवाडोल स्थिति और पतनादि का जैसा मार्मिक, प्रकृत और क्षोभपूर्ण वर्णन रासो में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। कहने को तो रामो पृथ्वीराज का जीवन चरित्र है परन्तु असल में वह हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष की अमर कहानी है। ११

शिल्प सौंदर्यः—

मानव के मन-मानस में उठने वाली भावों और विचारों की तरंगें शब्द और अर्थ द्वारा अभिव्यक्त होने पर ही सद्दृश्यों के हृदय में रमन्तरंगिणी बहाने में समर्थ होती हैं। यद्यपि शब्द और अर्थ पर सभी का अधिकार होता है, किन्तु कवि उनका प्रयोग अभिव्यक्ति की प्रणाली को रमणीय और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए करना

घन घाड अघाड सुघाड घट तेक तानि नचिय करस'-पहाड़. ३८

× × ×

२ यमक- सुकल पच्छ वभनि सुकल, सुकल सु जुवति चरित्त -- विनय. ८

× × ×

अति आदर आ-दर कियौ, कह्यौ आप इह वैन—संयो. पूर्व. १६

× × ×

धवल दिव्य सुनि कन्न, धवल कढढै धवली असि ।

धवल वृषभ चढ़ि धवल, धल वंधै सुब्रह्म वसि ॥—समर पग २०

× × ×

३ श्लेष- मुगधे मुगधा रसया, उवर जे भयन रस एवी ।

लहुआ लुहान पुत्त, तूं पुत्ती राज प्रोहाय ॥—सयों. नेमा १५

× × ×

४ उपमा- सुनत पुकारति छोह छकि, सत्तिय सत्त समान — सोम १६

× × ×

अकवर कुकवि कवित्त ज्यों, गति गुन तुट्टा द्वार — दुर्गा. ५७

× × ×

यह उत्तम दह त्रिमल, पुलिन वर पसु भीन सम — दुर्गा. ८०

× × ×

५ रूपक- कड्डै सु रत्न किन्तिय मयि सुकवि चद किन्तौ कहन — सोम २६

(पर० रूपक)

× × ×

श्रानि मलिल वढ़ि चलिग,

कमल सीस वढ़ि चलिय, नयन अलि वास सुवासिय ।

जघ मकर कर मीन कच्छ खुपरि त्वग त्रासिय ॥

पोयनि अत सेवाल कच, अगुलि-कर-पग-भयग भरि ।

चहुवान सूर सोमेस रण, भीम भयानक जुद्ध करि ॥ —सोम २४

(साग रूपक)

^ × ^

बाल मान सरिता उतंग, तोड़ आनंग अंग सुज ।
 रूप सु तट मोहन तड़ाग, भाइ भ्रम भए कटाच्छ दुज ।
 प्रेम पूर विस्तार, जोग मनसा विध्वंसनि ।
 दुति ग्रह नेह अथाह, चित्त करखन पिय तूसनि ॥
 मनसा विसुद्ध बोहिध्य वर, नहि थिर चित जुगिगद तिहि ।
 उत्तरन पार पावै नहीं, मीन तलाफि लागि मत्त विहि ॥ - संयो. पूर्व. १२
 (सांग-रूपक)

× × ×

दनु देवं सम जुद्धं, सुनियं सत्य त्रितिय दुति आई । — षरुण. ६६
 (तद्रूप रूपक)

६ उत्प्रेक्षा- परहि भाव जल पूर, मरहि फल मनहु सघन वन — षरुण. ४५

× × ×

हालाहल डर माल, माल मुप्ती दुति राजै ।
 रवि कंठह जनु गंग ईस जनु सीस धिराजै ॥ — भीम. ४६

× × ×

७ संदेह- यौं रति रहि रवि उदिकर, ज्यो ससि कोरह राह ।
 हरि डह्दां धर रब्जई, कै हरि चंपत राह ॥ — षरुण. ५४

× × ×

८ व्यतिरेक- वैनि नाग लुट्यौ, वदन ससि राका लुट्यौ ।
 नैन पदम पंखुरिय, कुंभ कुच नारिग छुट्यौ ॥ — हंसा. ६५

× × ×

वावन लिद्ध जु पायं, इंस चक्खि मुर्विय सहयं ।
 इक्कं पाड म सूरं, सा जित्तेव त्यंनयं लोकं ॥ — भीम. ६८

× × ×

९ असंगति- गाहा नक्किय तत्ती, सदान नूपुर उरवा ।
 जिह अंकुर पन्वितं, भूत जुध्याइ मग भंगुरया ॥ — हंसा० ८८

× × ×

१० व्याज निन्दा-विकट भूमि वकट सुभट, अंगड पग नर्यद ।

सो पृथिराज सु अंगवै, धरि जयचंद नर्यद ॥—सामत पंग ३५

×

×

×

११ आवृति दीपक-जुगति न मगल विना, भुगति विन शकर धारी ।

मुगति न हरि विनु लहिय, नेह विनु बाल वृथारी ॥ —विनय ३०

अलकारों के इन कतिपय प्रयोगों को देखने से ज्ञात होता है कि कवि ने इन अलकारों का प्रयोग करते समय भावों को रमणीय बनाने और अर्थ-गौरव में वृद्धि करने का पूर्ण ध्यान रखा है ।

छन्दः—

कवि ने जिन छन्दों के प्रयोग किये हैं उनमें छप्पय (कवित्त) प्रमुख है । शिवसिंह सरोज ने तो चन्द को 'छप्पयों का राजा' कहा है । कविराजा श्यामलदास भी रासो में छप्पय और दोहे का ही अस्तित्व स्वीकार करते थे । मुनि जिन विजय ने भी 'पुरातन प्रबन्ध संग्रह' में चन्द के जिन छन्दों का उल्लेख किया है, वे छप्पय ही हैं । कवि ने कवित्त और दोहों में सभी भाषाओं का प्रयोग किया है, किन्तु साटक और श्लोकों में संस्कृत पदावली और गाथा में प्राकृत-अपभ्रंश के प्रयोग मिलते हैं ।

कवि की बहुज्ञता—

महा कविचन्द उच्चकोटि के कवि ही नहीं, बहुश्रुत और बहुज्ञाता भी थे । उनका ज्योतिष शास्त्र, नीति और दर्शन का अध्ययन भी अत्यन्त विशद था, जिसका सफल प्रयोग उन्होंने रासो में किया है ।

दार्शनिक विचारः—

दर्शन और काव्य का घनिष्ठ सम्बन्ध होने से कवि अपनी दार्शनिक विचार-धारा का प्रयोग अपने काव्य में करता है । महाकवि चन्द ने भी रासो में यत्र तत्र अपने आध्यात्मिक ज्ञान को प्रकट किया है ।

कवि कहता है कि जीवन जल-तरंग के तुल्य क्षण-भंगुर है, फिर भी मनुष्य अपनी काया के लिए कठिन कर्म और चाटुकारिता करता रहता है, किन्तु यम के द्वारा वह अकस्मात् ही पकड़ लिया जाता है—

जीवीं धारि तरंग चचल धिय

× × ×

दीहं अगि सु कर्म दारुण धरे आवस्य चट्टू करं ।

अतएव यह संसार निस्सार है—‘संसार निस्सारयम्’—मनुष्य दिन रात किसी वस्तु की आशा में बैठा रहता है, किन्तु आशा सजल सरोवर के समान है। इसमें दुविधा रूपी पक्षी, सुख-दुःख रूपी वृक्ष, त्रिगुण रूपी शाखाएँ और मोह रूपी पत्ते होते हैं—

आसा अस्य सरोवरीय सलिल, पंखी वर दुन्धय ।

सुखं दुःखस्य मध्य व्रच्छति तिय, सावस्य त्रिगुण वर ॥

संसार में देखा गया है कि सब वस्तुएँ स्वान तुल्य होती हैं और जो कुछ आँखों से दिखाई देता है, वह नाशवान है—

यह संसार प्रमान, सुपन सोहे सु वस्त सह ।

दिस्टि मान विनसि है. मोह वंध्यौ सुकाल ग्रह ॥

कर्म और काल कसाई तुल्य हैं, जिसके द्वार पर मानव शरीर बकरे के समान बँधा रहता है—

कर्म काल खट्टीक, अजा धध्यौ नरु प्रेही ।

प्राणी जिस दिन से जन्म लेता है, उसी दिन से उसके पीछे कर्म, सुख-दुःख जय-पराजय, लोभ और माया आदि लग जाते हैं और उसे छेदते रहते हैं। काल के कलह में पड़कर उसका तन मोह में उलभ जाता है, इसी से उसे मुक्ति-मार्ग नहीं दिखाई देता—

जदिन जीव य जम, क्रम्म तदिन जम पच्छे ।

सुख दुःख जय अजय, लोभ माया तन अच्छे ॥

काल कलह सग्रहो, मोह पजर आलुद्धौ ।

मुक्ति मग्गु सुम्यो न. ग्यान अतह क्यं सुद्धौ ॥

मुक्ति मार्ग को प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि यह पंचतत्व मय शरीर कर्मों से छुटकारा नहीं पाता। मन उसमें लिप्त होकर छिप जाता है। अतः मुक्ति-मार्ग को प्राप्त करने के लिए पहले मन को वश में करना आवश्यक हो जाता है—

मुकति कठिन मारग ।

मनु प्रथम आपु बस किजिए, समर राउ इम उच्चरे ॥

मन को वश में करके उसे ईश्वर-भक्ति की ओर केन्द्रित करना चाहिए, क्योंकि भक्ति से ही कर्मों का उद्धार होता है—

भुगति क्रम सह उद्वरे ।

जहाँ कवि भक्ति को प्रधानता देता है, वहाँ वह प्रतिबिम्बवाद को भी मानता है। उसकी दृष्टि में भी आत्मा परमात्मा का ही प्रतिबिम्ब है—

प्रतिव्यं व अं व जमह जुगति ।

मंचेप में यही कवि की दार्शनिक विचार धारा है ।

नीति कथन—

कवि ने प्रस्तुत भाग में अनेक नीति वाक्य भी कहे हैं। ये नीति वाक्य केवल मात्र वाक्य-ज्ञान ही नहीं हैं, अपितु कवि ने परिस्थिति के अनुकूल सरस योजना करके इन्हें 'कान्ता सम्मित उपदेश' के रूप में प्रस्तुत किये हैं। इन नीति कथनों को निम्नलिखित रूप में बताया जा सकता है—

१ दान— अमर नहीं कलि कोइ, इक्क कर रहै उ च किय — वरुण. २६

× × ×

२ याचक— तिन तें तुस तें तूल तें, फेंन फूल तें जान ।
हँसि जम्पै गौरी गरुअ, भगन है हरु आन ॥ — दुर्गा २४

× × ×

३ कीर्ति— घरियार रूप कुठार घट, तत मुक्कि लग्गी नदिय ।
सिंचिय किन्ती तर अमिय में, धूँअ बाव नन लगन दिय ॥ —हसा ३८

× × ×

मरदा खेती खग मरन, अग्थि समप्पन हथ्य ।
सो सच्चा कच्चा अवर कौड दिन रहै सुकथ्य ॥ — पहाड़ १८

× × ^

अपकित्ति कित्ति जैहैं न जग, रहै मग्ग खित्री सुवर ।—पजून. पात. १५

× × ×

जम्म लभ्भ सोइ कित्ति, कित्ति भंजियै तनह पुनि — समर पंग २१

× × ×

४ दाम्पत्य जीवन-पिय आरंभन त्रिययं, त्रिय आरम्भ कंत वित्ताय ।

सो तिय पिय पिय, पतौ मा पिमं विदुदमं धामं ॥ — हंसा० ६०

× × ×

अब्जासन जो होब्जा, कंठायं पयोहर फल्यं ।

दीहं ते सय लख्खं, हसनं रसनाय स बकियं होई ॥ — हंसा० ६१

× × ×

जो ती अह रस हाअौ, उच्चसि या कील कंताई ।

सो तिय अग्ग सुहाई, दिस असि नीरसं नायं ॥ — हंसा० ६२

× × ×

५ मन की चपलता-घरी इक्क घट सुख भैं, घटी इक्क दुख थान ।

घरी इक्क जोगहि भई, घरीक मोह समान ॥ — समर पंग ७

× × ×

६ विनय- इक्के विनय सुभग्ग गुन, तजियन विनय अरिष्ट ।

जाने भर सूना सुआ, भोइन ता करि मिष्ट ॥ — विनय० ४५

× × ×

विनय सार संसार, विनय बंध्यौ जु जगत बस ।

विनय फाल निष्काल, विनय संसार सूर रस ॥ — विनय० ६५

× × ×

७ कान्य -- विधि विधि वरन सु अर्थ लिय,अति द क्यो न उधार ।

अकबर सुकवि कवित्त यों, ज्यों सु चतुर स्त्री हार ॥ -- दुर्गा० ४५

अंत में कहा जा सकता है कि "रासो मानव जीवन की विविध परिस्थितियों और भाव दशाओं का महा सागर है । यही वह विशेषता है जिसने हास युग के सभी काव्यों में रासो को सर्वोपरि स्थान दिया है । निश्चय ही यह उस युग की सांस्कृतिक परिस्थितियों तथा पूर्व-परम्पराओं का वृहद् कोष है और है मध्य युगीन भारतीय समाज का एक काव्यात्मक इतिहास ।"^१

—नरेन्द्र व्यास, एम०ए०

विषय-सूची

विषय

पृष्ठ

वरुण कथा—

वाराहराय (कौला पिथोरा “पृथ्वीराज”) के प्रताप से सोमेश्वर का सानन्द शासन करना और उसकी दिनचर्या का वर्णन, एक दिन मतवाले हाथी का बदलना और उसे काबू में लाना ।

१ से ६

चन्द्र-पर्व पर सोमेश्वर का सकुटुम्ब मथुरा जाना और वहाँ से यमुना तट पर स्वर्ण-तुला एवं शोड़ष प्रकार का दान करना । ग्रहण समय एक मंत्र का साधन करना, वरुण देव के कोप से राजा एवं उसके सामंतों का अस्वस्थ होना (पुराण शैली के रूप में) वरुण दूतों से युद्ध होना, ससार से विरक्त सोमेश्वर को क्रोध युक्त देखकर पृथ्वीराज का चकित होना, यमुना की स्तुति से सबका स्वस्थ होना ।

१० से ३२

मसार-विरक्त राजा सोमेश्वर के ज्ञान-वाक्य-कथन, सोमेश्वर द्वारा शोड़ष दान करने की सुन कर कन्तौजेश्वर जयचन्द का ईर्ष्या वश यज्ञ करने का विचार करना ।

३३ से ३७

सोम-वध—

पृथ्वीराज का उत्तर दिशा के राजाओं पर विजय करने को प्रस्थान करना, पीछे से सोमेश्वर और भीम में युद्ध होना और सोमेश्वर का चालुक्यों द्वारा मारा जाना ।

३८ से ५८

पृथ्वीराज का सोमेश्वर की अंतिम क्रिया करना और विविध प्रकार का दान देना एवं चालुक्यों को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करना, पृथ्वीराज का पाटोत्मव वर्णन ।

५६ से ६४

पञ्जून छोंगा—

भोला भीम का रानिंग पुत्र महाबली मरुवाना के सिर पर छोंगा (तुरा) बँधवा कर उसे सेनापति बनाकर सोनिगरो के स्थान (सभव है जालोर) पर आक्रमण कराना, उधर से पृथ्वीराज का अपने सामन्त कछवाहा पञ्जून को सेनापति बनाना। दोनों सेनाओं में युद्ध होना, पञ्जून-पुत्र मलयसिंह का महाबली मरुवाने के सिर से छोंगा (तुरा) छीन लेना।

६५ से ६६

पञ्जून चालुक्य—

कन्नोजेश्वर जयचंद और गौरी शाह के बल पर चालुक्यों का चढ़ाई करना, इधर पृथ्वीराज की ओर से अपने भ्राता और पुत्रों सहित कछवाहा पञ्जून का युद्धार्थ सजना, दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ना, पञ्जून की विजय।

७० से ७६

चन्द द्वारिका—

“पृथ्वी कवि (कविचंद)” का पृथ्वीराज से आज्ञा लेकर द्वारिका के दर्शनार्थ रथारूढ होना, चित्तौड़ होते हुए द्वारिका जाना, लौटते समय कुन्दनपुर में भोला-भीम का कविचंद से मिल कर उसका सम्मान करना, कविचंद का दिल्ली लौट आना।

८० से ८७

भीम वंध—

पृथ्वीराज का भोला भीम को बन्धन में लेने की प्रतिज्ञा करना, ज्योतिपी द्वारा विजय का मुहूर्त निरुलवाना, कविचंद का चित्तौड़ेश्वर रावल विक्रम और पृथ्वीराज के विषय में प्रशंसा करना, पृथ्वीराज का भोला भीम पर चढ़ाई करना, गुर्जर प्रदेश स्थित सावरमती नदी पर चालुक्यों के साथ पृथ्वीराज की लड़ाई होना, युद्ध के अन्त में पृथ्वीराज द्वारा भोला-भीम को प्राणदान देना।

८८ से १२०

कैमास युद्ध—

शाह का पृथ्वीराज पर चढ़ाई करने का विचार करके नदी के तट पर पारस पुर में आकर डेरा डालना, पृथ्वीराज का खट्टू वन में शिकारार्थ जाने का विचार करना, जिसकी सूचना धर्मायन कायस्थ द्वारा बादशाह को मिलना, बादशाह का सिन्ध नदी को पार करना, पृथ्वीराज को भी शाह के चढ़ आने की सूचना मिलना, तब उसका भी गोविन्दपुर होते हुए पांचोसर पहुँचना। शाह का सारुंडे होते हुए लाडनू पहुँचना, दोनों सेनाओं में सामना होना। इस युद्ध में कैमास का शाह को पकड़ लेना।

१२१ से १४६

हंसावती विवाह—

हंसावती के सौन्दर्य की चर्चा सुन कर शिशुपाल वंशी पचायन का शहाचुहीन के बल पर रणथभोर (जहाँ पर हंसावती के पिता ने देवास से आकर शरण ग्रहण की थी) पर चढ़ाई करना, रणथभोर से यादव राजा की वीर बसही (देवास से साथ आई हुई जनता) का दुर्ग त्याग कर उससे लोहा लेना, शरणार्थी रूप में आये हुए राजा (यादव) का शस्त्र ग्रहण करना और इस युद्ध की सूचना पृथ्वीराज को देना।

१४७ से १५४

पृथ्वीराज का चित्तौड़ेश्वर को सूचना देना, चित्तौड़ेश्वर का (शरण आये हुए की रक्षा करना अपना धर्म है, यह कह कर) सहायतार्थ चढ़ाई करना, पृथ्वीराज का भी सहायतार्थ चढ़ आना, चित्तौड़ेश्वर रावल समर-केशरी और पृथ्वीराज दोनों का मिल कर चदेली सेना और शाही सेना को परास्त करना, पचायन का मारा जाना।

१५५ से १६५

युद्ध के बाद यादव राजा द्वारा उसकी पुत्री हंसावती को वरण करने के लिए पृथ्वीराज को श्रीफल भेजना, विजयी

पृथ्वीराज पर मध्यदेशीय यादव राजा की पुत्री हसावती का मुग्ध हो जाना, पृथ्वीराज का उसे वरण करना ।

१६६ से १७७

पराजित शाही सेना का पुनः हमला करना, किन्तु चित्तौड़ेश्वर का उसे मार भगाना, पश्चात् चित्तौड़ेश्वर का अपने स्थान को लौटना, हंसावती सहित पृथ्वीराज का भी यादव राजा को एक माह पर्यन्त रणथंभोर पर ही रहने की सम्मति देकर दिल्ली लौट आना, देवास की राजकुमारी हसावती के साथ राजा का विनोद-रत होना, यादव राजा का भी अपने स्थान को लौट जाना, इस युद्ध समय पृथ्वीराज और चित्तौड़ेश्वर की आयु का कवि द्वारा संकेत करना ।

१७६ से १६३

पहाडराय—

पृथ्वीराज पर चढ़ईकरा ने के विषय में शहाबुद्दीन का मन्त्रणा कर दूतों द्वारा पृथ्वीराज को सूचना देकर चढ़ाई करना, सूचना पाकर पृथ्वीराज का भी सामने चढ़ आना, दोनों सेनाओं में युद्ध छिड़ना और अंत में पहाडराय तोमर द्वारा शाह का पकड़ा जाकर दंडित किया जाना ।

१६४ से २१४

विनय मंगल—

यज्ञ स्वरूपी मदना के पति द्वारा सयोगिता को रभा स्वरूपी और कलह-प्रिया कहा जाना, पश्चात् मदना ब्राह्मणी द्वारा सयोगिता को स्त्रियोचित पाठ पढ़ाया जाना और उम्मी मदना द्वारा सयोगिता में पृथ्वीराज के प्रति श्रोतानुदाग उत्पन्न होता, फिर मदना और उसके पति का दिल्ली को प्रस्थान करना ।

२१५ से २३४

सयोगिता नेमाचरण—

पृथ्वीराज और उसके सामंतों के विषय में दूतों द्वारा भेद प्राप्त करके जयचन्द्र का अपने मंत्री को बुलाकर उन्हें नष्ट करने का विचार करना । मंत्री का पहले सयोगिता का

स्वयंवर कर देने के लिए कहना, रानी जुन्हाई का भी राजा को यही सलाह देना, जयचंद का एक प्रचारिका को भेजकर संयोगिता को पृथ्वीराज से जो प्रेम होगया था, उसे छोड़ने को कहलाना । किन्तु संयोगिता का इस घात को स्वीकार न करके पृथ्वीराज को ही वरण करने की दृढ़ प्रतिज्ञा करना । धाय (धात्री) के कहने पर भी कुमारी का हट नहीं छोड़ना, तब राजा जयचंद का उसे गंगा तट स्थित महलों में रखना ।

२३५ से २४३

शुक वर्णन—

मदना ब्राह्मणी और उसके पति का दिल्ली पहुँच कर मयोगिता के रूप-गुणादि को पृथ्वीराज के समक्ष प्रकट करना, जिससे पृथ्वीराज को श्रोतानुराग होना, लौटते समय द्विज-दम्पति का पृथ्वीराज को संयोगिता की स्मृति रखने को आप्रह्न करना, द्विज दम्पति के कनवज्ज लौट आने पर संयोगिता की पृथ्वीराज के प्रति और भी अधिक उत्कंठा बढ़ना ।

२४४ से २५१

वालुकाराय—

जयचंद का यज्ञारभ की तैयारी करना मयोगिता की अज्ञात विरह वेदना का वर्णन, जयचंद द्वारा पृथ्वीराज की स्वर्ण प्रतिमा को द्वार पर स्थापित करने की सूचना पाकर पृथ्वीराज का जयचंद के साथी वालुकाराय के खोवंद-नगर पर आक्रमण करना, वालुकाराय का मारा जाना ।

२५२ से २६१

पंग जय विध्वंस—

वालुकाराय की मृत्यु से यज्ञ में बाधा पड़ना जानकर जयचंद का पृथ्वीराज को पकड़ने की प्रतिज्ञा करना, रानी जुन्हाई का समझाना कि पहले संयोगिता का व्याह कर दिया जाय, तत्पश्चान् पृथ्वीराज को बांधने का

विचार किया जाय । इस बात पर स्वयं जयचंद का रुक जाना, संयोगिता को ज्ञात होना कि पृथ्वीराज ने भी उसको वरण करने की प्रतिज्ञा की है, जिससे उसके विचार और भी हृद हो जाना । जयचंद का स्वयं चढ़ाई न करके अपने सैनिकों द्वारा पृथ्वीराज के भू-भाग पर हमला कराना, पृथ्वीराज का राजौर वन में ठहरना, पृथ्वीराज की जनता को रावल समर-विक्रम द्वारा सुरक्षित रखना, सामन्तों और पृथ्वीराज द्वारा आक्रमण होने पर जयचंद के सैनिकों का पृथ्वीराज के भू-भाग से हट जाना ।

२६२ से २६६

संयोगिता पूर्व जन्म—

(पुराण शैली के आधार पर)— देवी का इन्द्र से कहना कि मुझे रक्त से तृप्त कीजिये । इन्द्र का कहना कि कन्नौज और दिल्ली की शत्रुता होने वाली है, जिसमें तू तृप्त हो जावेगी । इन्द्राज्ञा से गन्धर्व का शुक रूप में मदना ब्राह्मणी के घर आना । सुमन्त ऋषि की तपस्या से इन्द्र का चिन्तित होना, आसराओं को ऋषि के तप को भंग करने के लिए बुलाया जाना, उनमें से रभा का इस कार्य के लिए अप्रसर होना, उसके स्पर्श से सुमन्त का तप भंग होना, इतने में उसके पिता जरज ऋषि का आना और रभा को श्राप देना (कि तू कन्नौज में जयचंद के यहां जन्म लेकर पिता और पति दोनों कुलों का नाश करावेगी, फिर तेरा उद्धार होगा)।

२७० से २६८

हॉसी प्रथम युद्ध—

हॉसी की रक्षा का भार देकर पृथ्वीराज का कुछ सामन्तों को नियुक्त करना, स्वयं पृथ्वीराज का मेवास, गुर्जर, दक्षिण आदि देशों पर चढ़ना, वलोंची पहाड़ी का शहाबुद्दीन से सहायता प्राप्त कर अपनी वेगमों सहित हॉसी की ओर चल कर रास्ता देने को कहना, सामन्तों का उसे और शाही दल

को मार भगाना और बेगमों को लूटना, बेगमों और शाहाबुद्दीन की माता का मुस्लिम यौद्धाओं को ताना मारना, शाह का हॉसी दुर्ग पर चढ़ाई करना और हॉसी दुर्ग से स्वयं दस कोस दूर रह कर अपने यौद्धाओं को हॉसी दुर्ग को घेरने की आज्ञा देना, उधर से सामन्तों का आक्रमण कर शाही दल को तितर-वितर कर देना ।

२६६ से ३२२

हॉसी द्वितीय युद्ध—

बिखरी हुई सेना को एकत्रित कर स्वयं शाह का हॉसी दुर्ग को घेरना, सामन्तों को कहलाना कि या तो शस्त्र ग्रहण करो, नहीं तो धर्म-द्वार (पराजय स्वीकार कर भगने के द्वार) से निकल जाओ । कुछ सामन्तों का विचलित होकर दुर्ग छोड़ना, सहस्र मल्ल और देवकर्ण का दुर्ग के लिए डटकर युद्ध करना, हॉसी दुर्ग का पट्टमिराय (राव कवि पृथ्वी भट्ट, कवि चन्द) को स्वप्न देना, कवि चन्द का राजा को हॉसी-रक्षा के लिए सूचित करना चित्तौड़ेश्वर को हॉसी युद्ध में सम्मिलित होने को निमंत्रित करना, हॉसी दुर्ग से भागकर पृथ्वीराज के भाई हरिसिंह (हरिराज) आदि सामन्तों का दिल्ली आना, निमन्त्रण पाकर चित्तौड़ेश्वर का हॉसी पहुँचना, दुर्ग स्थित सामन्तों का रावल समर विक्रम के आने पर बल बढ़ाना, पृथ्वीराज के आने के पूर्व ही चित्तौड़ेश्वर का शाही दल में खलबली मचा देना, युद्ध में चित्तौड़ेश्वर के भाइयों में से अमर का मारा जाना, पृथ्वीराज का भी सामन्तों को उत्साहित कर हॉसी दुर्ग पर पहुँचना चित्तौड़ेश्वर और पृथ्वीराज का मिलकर शाही सेना को हॉसी से मार भगाना, शाह का हॉसी को छोड़कर दिल्ली की ओर बढ़ना. पृथ्वीराज और रावल-समर-विक्रम का रास्ते में उसे रोककर लोहा लेना, शाह का लौट जाना, रावल-समर-विक्रम का चित्तौड़ विज्ञा होना, पृथ्वीराज का रावलजी के भाई अमर

रानी इच्छनी के महलों में चुपके से आना, विजली के प्रकाश में कर्नाटी के महल की ओर बाण चलाना, किन्तु चूक जाना, तब दूसरे बाण द्वारा कैमास को मार गिराना, कर्नाटी का निकल भागना और जयचन्द के पास कन्नौज पहुँचना, कैमास के मृत शव को जमीन में गाड़ देना, उमी रात्रि को स्वप्न में कवि चन्द का कैमास की मृत्यु के हाल से परिचित होना, सुबह होने पर पृथ्वीराज के पूछने पर सारा हाल कह सुनाना जिससे सामंतों में भय छा जाना, कैमास का शव कविचंद द्वारा कैमास की स्त्री को प्राप्त होने पर उसका मती होना कैमास की मृत्यु पर राजा का दुःखी होना, कन्नौज जाने का विचार करना, कैमास के पुत्र को उसके पिता के सिंहासन पर बिठाना ।

४६० से ४६०

दुर्गा केदार—

कैमास की मृत्यु के कारण पृथ्वीराज का चिंतित होना, यह देख कर सामन्तों का उसे शिकार करने के लिए चलने को कहना, शिकार करते हुए राजा का पानीपत पर पहुँचना, धर्मायन का दूतों द्वारा शाह को पत्र देना, केदार भट्ट (बंदीजन) का शाह से विदा ले कविचन्द से विवाद करने को पानीपत पहुँचना, साहित्य-विषयक-विवाद में कविचन्द का जीतना, पृथ्वीराज का केदार को बहुत सा द्रव्य देकर समान पूर्वक विदा करना, पृथ्वीराज का शिकार में होने की सूचना पाकर शाह का चढ़ाई करना, दुर्गा केदार का उससे रास्ते में मिलना, शाह की चढ़ाई की बात ज्ञात होने पर इसकी सूचना देने को दुर्गा केदार का अपने भाई को पृथ्वीराज के पास पानीपत भेजना, शाह के चढ़ आने की सूचना पाकर पृथ्वीराज का भी युद्धार्थ तत्पर होना, शाह का भी पृथ्वीराज की ओर आतुरता से बढ़ना, दोनों

सेनाओं में मुठभेड़ और पहाड़राय तोमर द्वारा शहाबुद्दीन का पकड़ा जाना, पृथ्वीराज का शाह को दंडित कर छोड़ना ।

४६३ से ५४५

जंगम कथा—

एक जंगम का पृथ्वीराज के पास आना, जंगम का संयोगिता के स्वयंवर के विषय में कहना कि सभा मंडप में अनेकों राजा बैठे हुए थे, सभा के द्वार पर द्वारपाल के स्थान पर आपकी स्वर्णिम-प्रतिमा थी जयचंद के वदीराज “देव” ने कुमारी को सव का परिचय दिया, इस प्रकार तीन बार संयोगिता को सभा में घुमाया गया, किन्तु उसने आपकी स्वर्णिम-प्रतिमा के गले में ही माला पहनाई । यह सुनकर पृथ्वीराज का संयोगिता के प्रति प्रेम बढ़ना, इस समय वसन्त ऋतु का प्रारम्भ होना, पृथ्वीराज का कवि चन्द को बुला कर कहना—हे कवि ! द्वारपाल के स्थान पर जयचंद ने मेरी स्वर्णिम प्रतिमा स्थापित कर मेरा अपमान किया है, क्या अब भी हमको जीवित रहना चाहिये ? कवि चंद का कहना कि जयचंद से भिड़ना काल को निर्मांत्रित करना है, पश्चात् राजा का शिकार के लिए जाना, लौटते समय शिव की पूजा करना ।

५४६ से ५६४



पृथ्वीराज रासो

तृतीय भाग

वरुण कथा

दोहा

रुक्म लुहहि लुट्टहि मयन, अरिधर लुट्टहि धाहि ।

अंग अनम्मि न उव्वरै, हय खुर खग्गाहि गाहि ॥ १ ॥

शब्दार्थः—लुहहि=लूटना, उपभोग करना । लुट्टहि=विजय किया । मयन=काम देव । धाहि=धाह दे, आतंक फैलाकर । अंग=काया । अनम्मि=नहीं नमने वाले । उव्वरै=वच पात्रे, घोड़े के सुम । खग्गाहि=तलवार से । गाहि=कुचल देते ।

अर्थः—राजा सोमेश्वर सुख का उपभोग करता हुआ और कामदेव पर विजय पाता हुआ शत्रुओं पर आतंक फैलाकर उनके भू-भाग को लूटता था । नहीं मुकने वाले शत्रु की काया उसके सामने वच नहीं पाती थी । वह घोड़े के खुर और तलवार द्वारा उसे कुचल देता था ।

श्लोक

सोमेश्वर महावीरं, त्रिगुणं तत्र व्यापकं ।

आनन्दमेव कृतं उत्तं, वाराहं च प्रसादयं ॥ २ ॥

शब्दार्थः—महावीरं=महान् वीर । त्रिगुणं=सत्त्व, रज, तम । तत्र=वहाँ । व्यापकं=व्याप्त था । आनन्दमेव=(आनन्दराम) चहुआनों के मूल पुरुष अनलया सोमेश्वर के पिता अरणोदराज । कृतं=कर्म किया । उत्तं=उत्तम । वाराहं=वाराह राय कौलाराय (कौला पिथोरा) । प्रसादयं=कृपा से ।

अर्थः—महान् वीर सोमेश्वर त्रिगुण (सत्त्व, रज, तम) युक्त, प्रसिद्ध था, आनन्द-राज (मूल पुरुष अनल या अरणोदराज) के समान ही उसके कर्म उत्तम थे, उसके शौर्य का कारण वाराहराय (कौला पिथोरा, पृथ्वीराज के शुभ जन्म) का प्रताप था ।

चारि जाम दिनं नित्तं, चौ जुगं व्यवहारयं ।

चतुर्वेदं कृतं धीनं, चौवृत्तं प्रति पालयं ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—चारि=चारों । जाम=याम, पहर । दिन=दिन के । नित्त=नित्य, हमेशा । चौजुग=चारों युग (सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग) । व्यवहारय=व्यवहार मे । चतुर्वेद=चारों वेद । म्न्=मार्ग किये । धीनं=बुद्धि से । चौब्रनं=चारों वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) । प्रतिपालय=प्रतिपालन करता था ।

अर्थः—दिन के चार प्रहर होते हैं उन्हें चारों युग (सत, त्रेता, द्वापर, कलि) की भांति वह व्यवहार मे लाता था, उसकी बुद्धि चारों वेदोक्त नियमों का पालन करती थी और वह चारों वर्णों का प्रतिपालन करता था ।

कवित्त

प्रथम प्रहर असनान, दरसि अरकान अर्घकरि ।

तर्पन अर्पन पित्र, देव दुज सेव चित्त धरि ॥

गुरु मत्रहि आराधि, प्रणित पौराण कथ सुनि ।

पादोदक रस सचि, रचिय लिल्लाट तिलक पुणि ॥

दैन दान विप्र विधि वेद मत, नित्य नेम सम प्रेम करि ।

इय क्रम सौम प्रथमह प्रहर, पाप सत्र सव जात जरि ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—असनान=स्नान । दरसि=दर्शन । अरकानि=सूर्य के । अर्घ करि=अर्घ देकर । पित्र=पित्तों को । दुज=द्विज । ब्राह्मण । सेव=सेवता, सेवा करना । चित्त धरि=मन लगाकर । गुरु मत्रहि=गुरु द्वारा दिया हुआ मंत्र । आराधि=आराधना, भक्ति । प्रणित=पुनित, पवित्र । पौराण=पुराण । कथ=कथा । पादोदक=चरणोदक, चरणामृत । रद=हृदय को । सचि=प्रक्षालन कर । रचिय=लगाया । लिल्लाट=ललाट, माल । पुणि=पुन । दै=देता । विधि=तरीका । मत=सम्प्रति । नित्य नेम=नित्य कर्म । सम=मे । इय=ऐमे । क्रम=गति । सौम=सोमेश्वर । मत्र=मन्त्र । सत्र=सव । जात जरि=जल जाता ।

अर्थः—दिवस के प्रथम प्रहर मे वह स्नान करता और सूर्य का दर्शन कर उसे अर्घ देता था । पित्तों का तर्पण कर देवता और ब्रह्माणों की चित्त लगाकर सेवा करता था और गुरु मंत्र की उपासना कर पवित्र पौराणिक कथा का श्रवण करता था और ईश्वर के पादोदक-चरणामृत से हृदय को सींच कर (शुद्ध करता, प्रक्षालन करता) वह अपने भाल पर तिलक करता था । ब्रह्मा रचित वेद के विधान-अनुसार वह ब्राह्मणों को दान देता था । इस प्रकार वह सप्रेम नित्य कृत्य कर इन कर्मों द्वारा राजा सोमेश्वर अपने पाप रूपी शत्रुओं को जलाता था ।

दोहा

ऊख समय तें प्रहर लों, सतजुग विबुध कहंत ।

दुतिय प्रहर त्रेता तहाँ, राजन रीति रहंत ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—ऊख समय=उपा । तें=से । लों=तक । सतजुग=सत्ययुग । विबुध=पंडित । दुतिय=दूसरी । तहाँ=वहाँ । रहंत=रहती है, निवास करती है ।

अर्थः— राजाओं की दिन चर्या के विषय में पंडित जन कहते हैं कि उपाकाल से एक प्रहर तक सत्ययुग, उसके पश्चात् एक प्रहर तक उनके यहाँ पर त्रेता बसता है ।

कवित्त

दुतिय प्रहर देवान, भान सम आनि दरसु दिय ।

महावीर सामंत, नवनि लघु दिघ सवनि किय ॥

नंत मजनि हय चपल, आई सव न्यौध नजरि सव ।

इकनि थपि इक उथपि, आनि दासि पहुँचि जव ॥

राग रंग भापा कवित्त, अति अभूत नाटक ठिन्यऊ ।

जर कस जराय सूरंत दुति, सता इन्द्र देवनि वन्यउ ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—देवान=दीवान खाना, समा स्थल । मान=भाव सूर्य । आनि=आकर । दरसु =दर्शन नवनि=नमस्कार । लघु दिघ=छोटे बड़े । सवनि=सबों ने । मत=मत वाले । गजनि=हाथी । हय=घोड़े । चपल=चंचल । आई=आये, लाये गये । न्यौध=निरीक्षणार्थ । इक=एक । थपि=स्थापित किया, सच्चा माना । उथपि=उखाड़ दिया, मूठा माना । अरदासि=अर्जियाँ, प्रार्थना पत्र । जव=जब । अभूत=अदभूत । ठिन्यउ=फिया गया । जरकत=जरीन । जराय=जड़े हुए । सूरंत=सूर्य की । दुति=कति । देवनि=देवों सहित । वन्यउ=की हो ।

अर्थः—दिवस के दूसरे प्रहर मे राजा सोमेश्वर सभा मे सूर्य तुल्य आकर दर्शन देता था । उस समय बड़े बड़े वीर योद्धा और छोटी वड़ी श्रेणी के सब उसके सामने आकर स्त्रि नवाते थे, इसके पश्चात् समस्त मतवाले हाथी और चंचल घोड़े निरीक्षणार्थ सामने लाये जाते थे । उसके बाद प्रार्थना पत्र (अर्जियाँ) पेश होते थे । और उन पर किसी का उत्थापन होता था (न्याय मिलता) और किसी की स्थापन

इसी समय पर संगीत, कविता और नाट्यकारों की कला का अद्भुत प्रदर्शन भी होता था। सोमेश्वर जड़ाऊ भूपणों और जरीन पोशाक में सूर्य-प्रभा को प्राप्त कर सामन्तों में इन्द्र के समान देवता मालूम होता था।

दोहा

द्वापर मध्यान्ह ते, त्रितिय प्रहर लौ होइ ।
पिक्खि रीति सोमेस दर, किति करे सहलोइ ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—छग=युग । पिक्खि=पेख, देखकर । दर=दरवाजा । किति=कीर्ति । लोइ=लोग ।

अर्थः—दिवस के द्वितीय प्रहर से तृतीय प्रहर तक सोमेश्वर के द्वार पर द्वापर रहता था । उस रस्म को देखकर सब उसका कीर्तिगान करते थे ।

कवित्त

भोजन साल पधारि, संग प्रथिराज सुभट सब ।
घृत पक्व जल पक्व, पक्व पावक्क परुसि^१ तव ॥
दूध पक्व पक्कवान, मस रस भति अमेय ।
साक फलणि संधान, छ रस व्यञ्जन^२ वनेय ॥
तिन पच्छ पछावरि, स्वाद सुचि, अन्न जात पवि पियतही ।
अचमन्न अचइकर विटिय मुख कपुर^३ पूर चदह कही ॥ ८ ॥
प्रा०पा०संशोधित १, २, ३ ।

शब्दार्थः—भोजन साल=भोजन शाला । पधारि=आवर । घृतपक्व=घी द्वारा पकाई हुई । पावक्क=अग्नि । परस=परोसना । मंस=मांस । भति=भाति । अनेय=अनेक, विविध । साक=शाक । फलणि=फल । संधान=बधी हुई (मिठाई) लड्डू आदि । मौसमी सौंठ, अजवान आदि के साथे हुए भीठे पक्कवान को सघीणा करते हैं जो दवा के रूप में काम में ली जाती है । छ रस=बटरस । व्यञ्जन=रने हुए । तिन=उनके । पच्छ=पश्चात । पछावरि=छाद्य, गट्टा (घृत निकालने के बाद छाद्य रहती है उसे पछावरि कहा गया है) राजस्थान में आज भी इस शब्द का रूप हटके शगत्र के लिए “पछाड़ा” नाम काम में लिया जाता है । सचि=पवित्र । जात=जाता । पवि=इजम । अचमन्न=आचमन । अचइ=करके । विरिये=वीर्य (ताम्रन), कूर । पूर=मिलान । ऋहि=कहा ।

अर्थः—कवि कृता है दोपहर के पश्चात राजा सोमेश्वर युवराज पृथ्वीराज और सामन्त सहित भोजनशाला पधारने में । तर्त घृत पक्व, जल पक्व, अग्नि पक्व,

दूध पक्व, पक्वान्न मांस तथा विविध रस युक्त भोजन करते थे। शाक, फल, वंघे हुए लड्डू आदि षट रस व्यजन काम में लिये जाते थे। उसके बाद भोजन को पचा जाने वाली पवित्र सुंस्वाद छाछ (मट्टा) को पान करते थे और आचमन कर कपूर मिलाया हुआ ताम्बूल (पान) काम में लेते थे।

दोहा

चतुर पहर कलि कहत सव, विलसत संभरिवार ।

महामत सामंत सव, जित तित भूयनि भार ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—चतुर पहर=चतुर्थ पहर। कलि=कलिपुग। विलसत=विनोद करना। समरिवार=संभरि नरेश्वर। महामत=महान मतवाले। जित तित=यत्र तत्र (यहाँ, वहाँ) भूयनि=राजाओं के लिए। मार=मार स्वरूप, दुख प्रद या देखना।

अर्थः—दिवस का चतुर्थ प्रहर सभरेश्वर का विविध विलास युक्त देखकर सव केलि का अनुमान लगाते थे। उसके महान मतवाले समस्त सामंत यत्र-तत्र राजाओं को भार स्वरूपी (दुख प्रद) दीख पड़ते थे। या यत्र-तत्र के राजा लोग उनके चरित्र को देखते ही रह जाते थे।

कवित्त

भइय वंघ चहुवान, चंपि चवगान चढन कंई ।

हय पक्खरि पग पौन, तेज विफरिण लगत रह ॥

गर्जत गज मद गलित, कलित अटुव पग छुट्टिय ।

सजि आये सहसेन, जानु जल निधि जल फुट्टिय ॥

धज नेज चौर बोने विरद, गलित गंध मादक मननि ।

हंकारि हंकि न्हंकत खुरिय, जनुकि विज्ज भपटति घननि ॥ १० ॥

शब्दार्थः—मइय=हुई। वंघ=वाजे। चंपि चवगान=चौगान को दवाया, चौगान एकत्रित हुए। चढन कह=चढ़ाई करने को। हय पक्खरि=घोड़ों को पाखरों से सजाया। पग-पौन=ऋदम (गति) पवन के तुल्य, जिसकी गति चाल पवन के समान। तेज=तेजी के साथ। विफरिण=विफरना, उधल कूद करते हुए। लगत रह=रास्ते पर चलने लगे। मदगलित=मदाकुल, मद में चूर। कलित=सुन्दर। अटुव=जंजीर (शृंखला)। छुट्टिय=छूट गई। जानु=मानों। जलनिधि=पमुद्र।

फुट्टिय=कार रोक दी । धज=ध्वजा । धेज=नेजे । चौर=चावर । वाने-विरद=सुशोभित । गलित-गध=सुगंध वगैरा से युक्त । मादक मननि=मस्त मन वाले । हुकार=हुकार करते हुए । हंकि=बढाये । हक्त खुरिय=घोड़ों को दौड़ाते हुए । जनुकि=मानों कि । विञ्ज=विजली । भपटति=तरेरा दिया है । घनानि=बादलों में ।

अर्थः—एक दिवस दिनके चतुर्थ पहर में संभरि नरेश्वर के चौगान मे सवको एक-त्रित होने के लिए वाद्य बजने लगे । पवन गति घोड़ों पर पाखरे सजाई गई । घोड़े उछल-कूद करते हुए तेजी के साथ रास्ते पर चलने लगे । जिनके पैरों मे शृङ्खला पडी हुई है ऐसे मदाकुल हाथी गर्जते हुए सुन्दर दीख पडे समुद्र-जल ने सीमा छोड़ दी हो ।

इस प्रकार सारी सेना सजकर वहाँ आ उपस्थित हुई । ध्वज और नेजे फहराने लगे विरुदों से सुशोभित वीरों पर चमर होने लगे । मतवाले मनवाले वीर सुगंधित पदार्थों से तर थे । हुँकार करते हुए वीरों ने घोड़ों को तीव्र गति से इस प्रकार बढाया मानों बादलों मे विजली दमक पडी हो ।

लग्नि मुसालनि दिक्खि, करि गज सुमान गज नाम ।

तोरि जंजीर गि उम्मढ्यौ, चरखिदार धपि ताम ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—लग्नि=जलती हुई । मुसालनि=मशालें । दिक्खि करि=देखकर । तोरि=तोड़कर । जजीरणि=जजीरों, शृ खला । उम्मढ्यौ=उमड़ पड़ा । चरखिदार=साट मार हाथी को मारू में करने वाले । धपि ताम=प्रयत्न कर उस समय एक गये ।

अर्थः—साम्भ समय मशाले जोई गई । उन्हें देखकर गजगुमान नामक हाथी शृ खला तोड़कर निकल पड़ा । उस समय मस्त हाथियों के पैरों मे वेडी डालने वाले (कावू मे करने वाले) चरखिदार भी सब प्रयत्न कर हताश हो गये ।

रहे घेरि गडदार तिहिं, चरखीदार सँकाइ ।

गर्ज करै ठट्टौ करी, टक विप्रीत वलाइ ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—घेरि=घेरा । गडदार=मारमार, ताड़ना करके मारू में करने वाले । तिहिं=उमे । चरखीदार=मार द्वारा हाथी को मारू में करने वाले । सफाद=मशकित । गर्ज करै=गर्जना करता हुआ । टाँसरी=हाथी सखा । विप्रीत=ये मारू खिलाए । वलाइ=भय सूचक शब्द ।

अर्थः—उस हाथी से चरखीदार (कावू करने वाले) सशंकित हो गये लेकिन साटमार उसे घेरे रहे । साट मारों के कावू में भी वह नहीं हो सका और वह मद मत्त हाथी गर्जता रहा ।

कवित्त

करिय हुकम राज्यद्र, मंगि स्यंगार हार गज ।

महामंत वर जोर, अपु सनमान रखै रज ॥

निमकु उघारैन आंखि, पखि सम उडतु तेज पग ।

अग्निणि मिडि करे छार, तीर त्रिन मात्र संगि खग ॥

आवत मद्धि चौगान तिहि, भरणि भीर जिरा तित पुलिय ।

जंजीर खोलि लगर ब्रजिय, अंधारी सिर पर खुलिय ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—करिय=किया । राज्यद्र=राजाने । मंगि=मंगवाया । स्यंगारहार=हार सिंगार, हाथी का नाम । महामत=महामस्त । वरजोर=जवरदस्त, सरजोर । अपु=करके । सनमान=सम्मान । रज=राजा । निमकु=निमेष मात्र । उघारैन=उघाड़ता खोलता । आंखि=आंखें । पंखि=पक्षी । सम=बराबर । उडतु=भ्रमपटता था । तेज पद=तीव्रगति । अग्निणि=अग्नि को । मिडि=मीढ़ना, मीढ़ कर, मसलकर, कुचल कर । छार=राख । संगी=सांग, बध्नी । खग=तलवार । आवत=आने पर । मद्धि=बीच । चौगान=मैदान । तिहि=उसको । भरणि भीर=मामतो का समूह, टोली । पुलिय=चलते बने । पलायन हो गया । अंधारी सिरी=मस्त हाथी की आंखों पर जो नकाब डाली जाती है उसे सिरी कहते हैं । खुलिय = खुला ।

अर्थः—तब राजाने आज्ञा देकर (उसे दवाने को, कावू में लाने को) शृङ्गारहार नामक हाथी मंगवाया । वह हाथी बड़ा मतवाला और पुरजोर था, राजा उसे बड़े सम्मान से रखता था । उसकी आंखें मस्ती से नहीं खुलती थी । वह पक्षी के समान तेजगति से भ्रमपटने वाला था और पैरों से कुचल कर अग्नि को छार कर देता था । तीर भाले और खड्ग को वह दृष्ट तुल्य समझता था । ऐसे मतवाले हाथी के चौगान में आते ही सामत-समूह यत्र-तत्र हो गया, उस हाथी के पैर से शृंखला और लगर दूर किये गये और मस्तक से सिरी हटा दी गई ।

दोकि कध माहात, पिट्टि भोड्य पच्चारिय ।

गज गुमान उत उमडि, वज वज्जे जनु तारिय ॥

अर्थः—दोनों पीलवानों को श्रेष्ठ पोशाके मंगना कर पहनाई गई और उन्हें एक एक बढिया माला भी दी गई जो ऐसे अवसर पर दी जाती थी ।

अरध निरता जग्गत गई, जाम इक्क निरिा सोड ।

ऊख समय जग्गो वली, करि पवित्र तन तोड ॥ २० ॥

शब्दार्थः—अरध=आधी । जग्गत=जागने हुए । जाम=पहर । सोड=मोये । ऊख=उषा । जग्गो=जगा । वलि=बलवान । करि=करके । तोर=तोय, पानी ।

अर्थः—उस उत्सव के कारण अर्धरात्रि जागते हुए वीर और चाड म केवल एक प्रहर तक शयन किया । उषाकाल होने पर वीर राजा ने जाग कर स्नान किया तथा शरीर शुद्धि की ।

आलस लोचन मुख कमल, हसन भरोखा आइ ।

नजरि मडि चौकि ववुरि, पत्रा विप्र सुनाइ ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—आलस लोचन=अलमित नयन । आइ=आकर । नजरि मडि=देखा, दृष्टि की । चौकी=प्रहरी । ववुरि=फिर । सुनाई=सुनाने लगा ।

अर्थः—कमल के समान मुख और अलसित नेत्र वाला राजा मुस्कराता हुआ भरोखे में आया । प्रहरी वीरों ने वदना की । उसने कृपा दृष्टि से उनकी ओर देखा । फिर विप्र पत्रा सुनाने लगा ।

पत्रा प्रात पवित्र दुज, तियि जोग कहि कर्न ।

नव ऊग्रह फल सुनअसुभ, कहै राचा दुख हर्न ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—दुज=द्विज, ब्राह्मण । जोग=योग । कहि कर्न=माने पर । नाऊ=नौद्री । हर्न=नाशक ।

अर्थः—पवित्र द्विज प्रात काल पत्रा सुनाता हुआ उन तियि का योगादि राजा को बताने लगा और राचा के दुःख नाशक नवो घटा के शुभ प्रशुभ फलों का उल्लेख किया ।

पुनि पुच्छी नृप विभ्रति, ग्रहनु कहौ कव होइ ।

मास तिथीजिहि वार ग्रह, वर्नि सुत्तावौ सोइ ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—पुच्छी=पूछा । प्रति=मे । ग्रहनु=ग्रहण (चन्द्र ग्रहण) । कव=कव ।

अर्थ — राजा ने ब्राह्मण से पूछा .- चन्द्र ग्रहण कब होने को है ? उस ग्रहण की तिथि, वार, और महीना हमें बताओ ।

माह मास पून्यौ स तिथि, राका निसि ससि पर्व ।

इक्क गुनो जो खरचिये, सहस गुनों फल ढर्व ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—पून्यौ स=पुण्य की । राका=पूर्णिमा । पर्व=पुण्य समय, विशेषता लिये हुए समय । ढर्व = द्रव्य ।

अर्थ — माघ मास की पुण्य तिथियों में से पूर्णिमा सर्व श्रेष्ठ है, उस रात्रि को यदि चन्द्र ग्रहण हो और दान दिया जाय तो उससे सहस्र गुने द्रव्य की प्राप्ति होती है ।

तव च्यत्यौ चहुवान चित, पोडस दान विचार ।

सत त्रेता द्वापर नृपनि, जग्य जुगति आचार ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—तव=तव । च्यत्यौ=चिंतन किया । पोडस दान=बौलह प्रकार के दान । सत=सत्ययुग । जग्य=यज्ञ । जुगति=युक्ति । आचार=व्यवहार ।

अर्थः— चहुआन नरेश ने पोडस प्रकार के दान देने का निश्चय किया क्यों कि सत्य, त्रेता और द्वापर युग के राजा यज्ञ-फल प्राप्त करते थे । वही फल इस पोडस प्रकार के दान की युक्ति से प्राप्त हो सकता है ।

कठिन काल कलि काल चह, जग्य मनुष्य न होइ ।

पोडस दान विचारनौ, जग्यह सेवहु लोइ ॥ २६ ॥

शब्दार्थ —सेवहु=करता । लोइ=लोग ।

अर्थः—यह कलियुग का समय कठिन है, इसमें मनुष्य यज्ञ नहीं कर पाता । राजा ने कहा— मेरे विचार से षोडश प्रकार का दान कर यज्ञ-फल की प्राप्ति करनी चाहिए ।

कवित्त

कहैं विप्र सुनि राज, दान षोडश परि मानिय ।
 उत्तिम, मद्धिम, अधम, जुगि वैदनि महि गनिय ॥
 जथा सक्ति मन होइ, सोइ किज्जै इय धम्मह ।
 यै देवनि विवहार, क्रम्म सद्ध कटि क्रम्मह ॥
 सोमेसराइ इम उच्चरै, कनिठ धर्म षोडश करौ ।
 ग्रहन समय मथुरा णगर, इमि आतम इय उद्धरौ ॥ २७ ॥

शब्दार्थ —परिमानिय=मान्य है, निश्चित है । उत्तिम=उत्तम । मद्धिम=मध्यम । वैदनि=वेदों । महि=में । गानिय=गाई गई, वर्णन थी । जथा=यथा । सक्ति=शक्ति । सोइ=वही । किज्जै=करीये । इय=यही । धम्मह=धर्म है । यै=यही । देवनि=देवताओं की । विवहार=व्यवहार, प्रचार । क्रम्म सद्ध=कर्मों का साधन करे । कटि=क्रमह=कर्म नाश के लिये । सोमेसराइ=राजा सोमेश्वर । इम=इस तरह । उच्चरै=कहै । कनिठ=कनिष्ठ, निम्न श्रेणी । ग्रहण समय=ग्रहण (चंद्र ग्रहण) समय । णगर=नगर । इमि=इस प्रकार । आतम=आत्मा । इय=इस । उद्धरौ=उद्धार करो ।

अर्थः—तब विप्र राजा से निवेदन करने लगे सुनो— षोडश प्रकार का दान ही इस समय मान्य है । दान देने का उत्तम, मध्यम, अधम तरीका वेदों में कहा है । धर्म वही है जो यथा शक्ति मन से किया जाता है । देवताओं में भी ऐसा ही होता है । कर्मों को नष्ट करने के लिए कर्म साधना करते हैं । तब राजा सोमेश्वर कहने लगे— यज्ञ से यद्यपि षोडश प्रकार का दान करना निम्न श्रेणी है फिर भी किया जाय । इस चंद्र ग्रहण के समय मथुरा नगर चलकर इसी तरह आत्मा का उद्धार करना चाहिए ।

पडित वोलि प्रवान, सचि सामग्री मव्वह ।
 सज्जि सयन सामत, चलिय राजन चडि तव्वह ॥
 मथुरा पहुँचे आइ, नगर बाहिर रचि वानक ।
 पट मडप तहँ उठिय, वरुण वदल रँग वानक ॥

धंभादि राउ सुत धम्म सम, जुगित समसु लग्गौ करण ।

वेदो उक्त दक्खिणि चिदित, संकल्य सुहित असरण सरण ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—बोली=बोलकर । सचि=सचय की । सव्वह=सब प्रकार की । सयन=सेना। तव्वह=तब । वाहि=बाहर । थानक्=ठेरे । पट मडप=पठालय, वितान । तहँ=वहाँ । उठिय=खड़े किये गये । वानक्=तरह । धम्मादि राउ=धर्माधिराज । लग्गौ करण=करने लगे । वेदो उक्त=वेदेक्त दक्खिणि=दक्ष पुरुष । संकल्य=संपूर्ण रूप से संग्रह किया । हित=लिप्त । अशरण-शरण=निराधार को आधार देने वाले ।

अर्थः—प्रधान और पंडितों को बुलाकर सब सामग्री तयार की गई । सेना और सामंतों को सुसज्जित कर राजा घोड़े पर चढ़ कर रवाना हुआ और मथुरा पहुँच कर नगर के बाहिर डेरा डाला । वहाँ रंग-विरंगे वितान ताने गये जिनसे वादलों की भांति आभास होने लगा । राजा सोमेश्वर जो युधिष्ठिर के समान धर्माधिराज था, वह उसके समान युक्ति पूर्वक पुण्य कार्य करने लगा । जो वेदोक्त हैं और दक्ष पुरुषों को विदित हैं । वैसा ही हित-कार्य अशरणों को शरण देने (ईश्वर) के निमित्त किया ।

तौवरि अंचल गंठि, संठि सामग्री सुद्ध मन ।

महा दान करि कनक, वंठि धनिय विप्र निगन ॥

कंचन वर्षिय सोम हर्स, हुलसिय वंभन हिय ।

अमर नहीं कलि कोइ, इक्क करु रहै उंच किय ॥

संसार सार गल्हां रहै, पिखलत हू नृप नहिं रसत ।

भुवलोक पाप घट भरि गलत, जिमि अकास तारा खसत ॥२९ ॥

शब्दार्थः—तौवरि=रानी तैवरानी (पृथ्वीराज की माता) अंचल गंठि=आंचल का बंधन । संठि=संग्रहित । कनक=सोना । वंठि धनइ=वांट दिया, विभाजित कर दिया । विप्रनिगन=ब्राह्मण सपुदाय । कंचन=मोना । वर्षिय=वर्षीया । सोम=सोमेश्वर । हुलसिय=प्रसन्न हुये । वंभन=ब्राह्मण । हिय=हृदय । कोइ=कोई भी । इक्क=एक वही । करु=हाथ । उंच=ऊँचा । सार=तत्त्व युक्त, शुद्ध । गल्हां=ख्याति । पिखलत हु=देखने हुए । रसत=प्रेम करना । भुवलोक=पृथ्वी मंडल । छट=छड़ा । गलत=नष्ट होने लगते हैं । जिमि=जैसे । अकास=आकास । खिसत=गिरते हैं ।

गोपिकाए । क्रीला=क्रीडा, खेल । मडिय=रत्ना । वरुन-नंदह=वरुण पुत्र । गहि=प रुड़ना । अंडिय=छोड़ा । सोह=वह । गंगाहि=गंगा के । सम=समान । सोमह=सोमेश्वर । सह=सव ।

अर्थः—जिस जमुना के तट पर कृष्ण ने गोपों सहित गौएँ चराई थी, महाविप-धारी सर्प को नाथा था, गोपिकाओं के साथ जल विहार किया था, वरुण पुत्र को पकड़ कर छोड़ा था, ऐसी जो जमुना, गंगा के तुल्य ही महत्व रखती है, वहाँ सोमेश्वर ने भक्ति भाव सहित पृथ्वीराज और सामंतों के साथ रह कर सोलह प्रकार का दान किया ।

जिहिं जमुना तट कन्ह, नगिन पग धेनु चराइय ।

जिहिं जमुना तट कन्ह, दुनुज दलि कंसु डराइय ॥

जिहिं जमुना तट कन्ह, धाक ग्वालनि भोजन किय ।

जिहिं जमुना तट कन्ह, अघासुर प्रसित वाल जिय ॥

जिहँ जमुन तट सूर तन याहि तट, देव नाग गधर्व तकहि ।

तिहि जमुन सोम महादान दिखि, सिद्ध साध मुनिवर जकहि ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—नगिन=नग्न । धेनु=गायें । दनुज=राक्षस । दलि=नाश कर । कसु=कस डराइय=मय-भीत किया । धाक=छींका । अघासुर=एक दैत्य विशेष । प्रसित=निगलें हुए । वाल=वालकों । जिय=जिलाए । सूर तन याहि=सूर्य पुत्री । गधर्व=गधर्व । तकहि=ताकता, भाकना । साध=साधक । जकहि=विश्राम ।

अर्थ — जिस यमुना के तट पर कृष्ण ने नगे पैर चलकर गौएँ चराई थी, राक्षसों को मारकर कस को भयभीत किया था, छींके पर ग्वालिनियों द्वारा रक्खे हुए भोजन का आहार किया था, अघासुर प्रसित ग्वाल वालों को जिलाया था, ऐसी उस सूर्य पुत्री यमुना तट की और देवता, नाग और गधर्व देखते ही रह जाते हैं । उसी यमुना तट पर सोमेश्वर ने महान् दान किया जिसे देख कर सिद्ध-साधक और मुनियो ने टकठटी लगादी ।

मुनिय कह वनि सोम, देप वनि कहहि सभरिय ।

दिखि ब्रह्मादिक सकल, दान त्रेता कलि काल भभरिय ॥

सतजुग सम महा दान, दान त्रेता कृत व्यनिय ।

द्वापर देव समान, किंकराजन जम ल्यनिय ॥

आनन्द मेव सुव सोम धनि, षोडश ध्रम धर उद्धरियं ।
प्रथिराज पुत्र तिहि ध्रम्मकरि,जित्ति जगत जिहि जू धरिय ॥३४॥

शब्दार्थः—मुनिय=मुनिवर । कहहि=कहा । धनि=धन्य । सोम=सोमेश्वर । संमरिय=संमरेश्वर । दिखि=देखकर । सकल=सब । संमरिय=चौकन्ना । कृत=कर्म । क्यंनिय=किया । किक्क=कई एक । जम=यश । ल्यंनिय=लिया । आनन्द मेव=चहुआन अनल या अरणोदराज । सुव=पुत्र । ध्रमधर=धर्म धारण । जित्ति=जीत । जिहि जू=जिम्ने ।

अर्थः—उस समय मुनि और देवतागण संमरि नरेश सोमेश्वर को धन्य २ कहने लगे । ब्रह्मा आदि सभी इस कलिकाल में इस प्रकार दान होता देखकर चौंक पड़े । कवि कहता है जिस प्रकार सत, त्रेता और द्वापर युग मे देवताओं के तुल्य महादान कर कितने ही राजाओं ने यश प्राप्त किया । उसी प्रकार अरणोद राज के पुत्र या (अनल चहुआन के वंशज) सोमेश्वर के पुत्र को धन्य है जिसने षोडश प्रकार का दान कर इस पुण्य कार्य द्वारा पृथ्वी पर उद्धार किया और उसके पुत्र पृथ्वीराज ने भी ऐसे धर्म-कार्य को कर संसार को जीत लिया ।

दोहा

प्रहन समय नृप सोम सुनि, कालिन्दी मन आनि ।

होम जुगति सब संग लै, तहँ वेद दुज ठानि ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—कालिन्दी=यमुना । मन आनि=इरादा कर । होम जुगति=होम की सामग्री । तहँ=वहाँ । दुज=द्विज, ब्राह्मण । दानि=रचना की ।

अर्थः—चंद्र ग्रहण के समय राजा सोमेश्वर कालिन्दी तट पर पहुँचा, उसी समय होम की सामग्री लेकर ब्राह्मणों ने वेदी की रचना की ।

साटक

मु दित मुक्ख कमोद हंसति कला, चक्कीय चक्क चितं ।

चंद कृन्ति कढति पोइनि पियं, भानं कला छीनं ॥

वानं मन्मथ मत्त रत्त जुगयं, भोग्य च भोग भवं ।

निद्रावस्य जग त्त भक्त जनयं, वा जग्य कामी नरं ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—मुदित=मुँदे हुवे । कमोद=कमोदनी के । हंसति कला=कला युक्त, हँसते हुए । चक्कीय=चक्रवाट दपति । चक्क=चकित । चित=मन । चंद=चन्द्रमा । कृनि=किरणें । कढति=निकलती ।

पोहनि पियं=पद्मिनी का 'यारा । मान कला=सूर्य कला । श्रीन=श्रीण । वान=वाण । मम्मथ=मन्मथ, काम देव । मत्त रत्त=मस्ती में लीन । लुगंय=युगल दपत्ति । भोग्य च=मोऽता है । भोगं मं=सांसारिक विलास । जगत्त=ससार । वा=अथवा । जग्य=जगत । कामी=विलासी । नर=पुरुष ।

अर्थ — चन्द्र-किरण के निकलने पर कुमुदनी के चन्द मुख प्रसन्न कला के समान दीख पड़े । चक्रवाक दपत्ति के चित्त चकित हो गये । कमलिनी के प्रेमी सूर्य की प्रभा शीण दीख पड़ी । काम देव के वाणों से मतवाले विलासी दपत्ति सांसारिक सुख का उपभोग करने लगे । उस समय ससार निद्रा ग्रस्त था, केवल भक्त जन या कामी पुरुष ही जाग रहे थे ।

दोहा

सम्भ समय ससि उगि नभ, गइ जामिनि जुग जम्म ।

ग्रहन समय जान्यो जवहि, जमुन पधारे ताम ॥ ३७ ॥

सँभ=संभ । उगि=उदय । नभ=आकाश । जामिनि=रात्रि । जुग=दो । जाम=याम, प्रहर । जवहि=जव ही । ताम=तव ।

अर्थ:—सांभ होने पर आकाश मडल में जव चन्द्रमा उदित हुआ और दो प्रहर रात्रि व्यतीत हो गई तब चंद्र ग्रहण का समय आया देखकर राजा सोमेश्वर यमुना तट पर आया ।

कवित्त

मंत्र इक्क उर राज, ताहि सद्धन एकतह ।

जहँ न जीव नर कोइ, अपु त्रिभय मेकंतह ॥

घोर भयानक सुदह, मद्धि आराधन क्यनौ ।

नाभि सम सुजल मद्धि, जाप जप्पिय वारह नौ ॥

ससि कोर राह छाया भई, खलक स्नान लगिय करण ।

विनु वरुण सोम सुमिरण विना, वरुन दूत उट्टिय लरण ॥ ३८ ॥

इक्क=एक । उर राज=राजा के हृदय में, गुप्त । ताहि=उमें । सद्धन=साधन । एकतह=एकांत में । जहँ=जहाँ । अपु=आप । त्रिभय=निर्मय । मेकंतह=एकांत । मद्धि=वीच । आराध=आराधना । क्यनौ=करते हुए । सम=वगवत् । जप्पिय=जप । वारह नौ=नौ वार । कोर=कोना, थलगत । खलक=सब लोग । लगिय=लगे करण=करने । विनु=विना । सोम=सोमेश्वर । उट्टिय=उठे । लरण=लड़ने ।

अर्थः—राजा सोमेश्वर ने एक गुप्त मंत्र का एकान्त में साधन करना चाहा । इसलिए जहाँ कोई मानव प्राणी नहीं था उस स्थान पर निर्भयता पूर्वक चला और वहाँ पर जल में एक भयानक दह (जलाशय) में नाभि तक खड़े होकर आराधना की और नौ बार उस मंत्र का जप किया । उस समय राहु ग्रसित चंद्रमा मोक्ष को प्राप्त कर चुका था । यह देखकर सभी स्नान करने लगे । उस समय वरुण का स्मरण किये बिना ही सोमेश्वर को मंत्र साधन करता हुआ देखकर वरुण-दूत-क्रोध में आकर लड़ने को उद्यत हुआ ।

दोहा

अस्नानं ज्यं क्यंनं नृप, जल रक्ष्या जगि वीर ।

हहंकार सम्मुह भये, मंगन जुद्ध शरीर ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—अस्नानं=स्नान । ज्यं=जैसे । क्यंनं=किया । जल रक्ष्या=जल रक्षक । जगि=जागकर । हहंकार=हुक्कार करते हुए । सम्मुह=सामने । भये=हुए । मंगन=जुद्ध=युद्ध की इच्छा प्रकट करते हुए ।

अर्थः—ज्यों ही राजा ने स्नान किया, त्यों ही उत्पात करते हुए जल-रक्षक वीर जाग उठे और हुक्कार कर शारीरिक युद्ध की इच्छा प्रकट कर सामने आ गए ।

नृप विनु वस्त्र सस्त्र विनु, हस्त दरभ कुस कोस ।

तिल तदुल जव पुहुप कर, वरुण दूत उठि रोस ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—नृप=राजा । विनु=विना । वस्त्र=वस्त्र । हस्त=हाथ । दरभ=दर्भ । कुस=कुश । कोष=खजाना (दान देने के लिये वित्त राशि । पुहुप=पुष्प । उठि=उठे । रोस=क्रोध ।

अर्थः—उस समय राजा वस्त्र पहना हुआ नहीं था और न शस्त्र ही उसके पास था । केवल हाथ में दर्भ, कुश, तिल, तंदुल, जौ और लुटाने के लिए खजाना था । ऐसे समय वरुण का दूत क्रोध हो उठा ।

अति प्रचड गहराई गल, गहकि गज्जि वर वीर ।

कज्जल तन कुंकू नयन, धीरनी छुट्टे धीर ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—प्रचड=दीर्घ काय । गहराई गल=गहरे गले से । गहकि गज्जि=गड़गड़ाहट रते हुए गर्जना करने लगे । कज्जल तन=श्याम वर्ण या कज्जल गिरि से शरीर वाले । कुंकू नयन=वृकूम लाल । नयन=नेत्र । धीरनि=धैर्य । छुट्टे=छुटी । धीर=धैर्य वानों की ।

वे श्यामवर्ण दीर्घकाय वीर जिनके नेत्र कुम्कुंम वर्ण के थे उन्होंने गहरे गले से गड गडाहट के साथ गर्जना की। जिससे धैर्यवान पुरुषों का धैर्य बूट गया।

तन उतंग कर वज्र, जोर जम अंग भीम दृग ।

अरुन अधर नख रत्त, अस्त्र न नसस्त्र कधुव दिग ॥

हसन उंच सिर केस, भेस भय भगिय पास ।

अति उनाह जम दाह, कवनु मंडै जुध तासं ॥

कल कलह वचन किल कंत सुर, सुर वज्जत जनु धुनि धवनि ।

हम करहि केलि जल संचरहि, तुम सुसुद्ध कोइ अति अवनि ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—उतंग=ऊँचे अंग, उन्नत । करवज्र=कराघात, वज्र तुल्य । जोर=शक्ति । जम=यमराज । रत्त=लाल वर्ण । नन=नहीं । कधुव=कुछ भी । दिग=पास । दसन=दात । भेस=भेस । भय=डर । भगिय=भगगया । पास=नजदीक से । अनाह=उमड़ना । जम-जिम=जैसे । दाह=दावाग्नि । कवनु=कौन । मंडै=करै । जुध=युद्ध । तास=उनमे । कलह=क्लेश । किल कत=किलकाते हुए । सुर=श्रावाज सुर वज्जत=नासारध वजते हुए । जनु=जाना । धुनि=ध्वनि । धवनि=धौकनी । संचरहि=प्रवेश करते । विहार करने मुद्ध=मूढ, मूर्ख । कोइ=दूसरा । अवनि=ससार ।

अर्थः—जिनका शरीर ऊँचा कराघात तुल्य, अगशक्ति यमराज तुल्य, देखने में भीम के समान और अधर तथा नख जिनके अरुण वर्ण के थे, जिनके पास न अस्त्र थे न शस्त्र । जिनके दांत ऊँचे और केश उठे थे, जिनके रूप को देखकर स्वयं भय भी भयभीत होकर भाग जाता था, वह दावाग्नि के समान भपटने वाला था उससे कौन युद्ध कर सकता है ? वह शोर गुल करता हुआ किलकारी करता था । उनकी नासारन्धी धौकनी के तुल्य थी, वे सोमेश्वर और उसके साथी सामंतों से कहने लगे— तुम पृथ्वी के कोई मूर्ख हो । तुम्हें ज्ञात नहीं कि इस समय हम जल में विहार कर रहे हैं ।

सुभट दिक्खि किय क्रोव उर, भये भयानक सूर ।

सस्त्र हत्य दिग्गखे नहीं, प्राव गहे जल पर ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः— सुभट=योद्धा । दिक्खि=दिखाई दिये । भये=हृष्ट । भयानक=डरावना । प्राव=पत्थर ।

प्रावे=पत्थर ।

अर्थ:—सामंतों ने भी उन्हें देखा और उनका क्रोध भयानक हो उठा, शस्त्र हाथों में नहीं होने के कारण जल में प्रवेश कर पत्थरों से युद्ध करने लगे ।

परहि ग्राव जल पूर, भरहि फल मनहु सघन वन ।
 वजहि घात आघात, फुरहि अवसान वीर तन ॥
 रावत्तनि अवसान, देव दुंढभि अधिकारी ।
 जोग ज्ञान त्रिय मान, वनिक बुधि मोह सुनारी ॥
 राज्यद दान सिद्धह तपह, भक्त भक्ति बुधि कोविदह ।
 इत्तनी वात अवसान मिलि, मनहु मत्र जनु गुन विदह ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ:—परहि=पड़ते । भरहि=गिरना । मनहु=मानों । सघन वन=घना वन । फुरहि=चक्कर । अवसान=मृत्यु । वीर तन=वीरों के शरीर । त्रिय=तीन । मान=योग्य । वनिक=वनिया । बुधि=बुद्धि । सुनारी=लक्ष्मी । राज्यद=राजा । सिद्धह=योगी, तपस्वी । कोविदह=चतुर । इत्तनी=इतनी । वात=वात । अवसान=श्रीसान, विवेक । मिलि=मिल कर । जनु=जैसे । गुन=भेद । विदह=परिणाम ।

अर्थ:—जल में पत्थर इस प्रकार पड़ रहे थे, मानों सघन वन में फल ऋड़ रहे हों, उन वीरों के घात प्रत्याघात हो रहे थे और वहादुरों के पास मृत्यु चक्कर लगा रही थी । कवि कहत है— वीर राजपूत मृत्यु के, देवता दुंढुभि के, योगी ज्ञान और वेदों के, वैश्य लक्ष्मी के, राजा दान देने के, सिद्ध तपस्या के, भक्त भक्ति के और पंडित बुद्धि के अधिकारी होते हैं । किन्तु उसकी पूर्ति में सावधानी से लगना चाहिये । सावधानी से लगने पर उनको इस प्रकार सफलता प्राप्त हो जाती है जिस प्रकार सुमंत्रणा से अंतिम परिणाम निकल जाता है ।

आवरि करवर करहि, भिरहि भारत्य प्रचारहि ।
 अग २ संग्रहहि, इक्क इक्कह ठिलि डारहि ॥
 अघम जुद्ध जुरि करहि, करहि वल कपट अगन्निय ।
 कवहुँ धुंमधर करहि, करहि कव भार भरनिय ॥
 कवहुँ मेघ बुद्धेँ सुजल, कवहुँ करह ग्रावनि वरख ।
 उच्चरहि वैन वहु वीरवर, विरचि कवहुँ वुल्लै हरख ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ:—आवरि=आहुट्टना, अड़ना । करवर=हाथों के वल । भिरहि=मिड़ना मिड़ने । प्रचारहि=प्रचारना । संग्रहहि=पकड़ लेना । इक्क इक्कह=एक दूसरे को । ठिलि=धकेल कर । अघम जुद्ध=धर्म से

विरुद्ध युद्ध । क्षुरि=शुद्धकर । बल=बल । अग्निय=अग्नि । कवहु=कभी । धुम=धू धल, धूम ।
भार=ज्वाला । भ्रान्निय=भड़ती हुई । कवहुँ=कभी । वुट्टै=वरसना । ऋह=रते थे । प्रावनि=
पत्थरों । वरख=वर्षा । उच्चरहि=कहे । वहु=बहुत । विरचि=प्रचारते हुए । वुल्लै=बोलते, गरजते ।
हरख = हर्ष से ।

अर्थ.—हाथों के बल से लड़ते भिड़ते हुए एक दूसरे को युद्ध में पछाड़ने लगे ।
एक दूसरे को पकड़ता और धकेल कर गिरा देता था । उस समय वरुण दूतों ने
जमकर अधम युद्ध करना शुरू किया । वे बल करने के साथ वनावटी आग, धुआ,
मूडनी हुई ज्वाला, जल वर्षा करते हुए, मेघ और पत्थरों की वर्षा करते थे, तरह २
की आवाज गले से निकालने लगे । कभी पछाड़ने और कभी अट्टहास करने लगे ।

कवहुँ सस्त्र सर परहि, कवहुँ डक्कहि डक्कारहि ।
तीनि लोक तन हकहि, कवहुँ वक्कहि वक्कारहि ॥
अकल कलह बल करहि, समहि सग्राम सुधारहि ।
अजुत जग उद्धरहि, कलह बल धार उधारहि ॥
सामत भूमि भजहि भिरहि, गिरहि परहि उट्टहि लरहि ।
सोमेस सूर सकन गनहि, धिरचि गलह गन्वार करहि ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ:—सर परहि=बाण पड़ते । उक्कहि=कूदना । डक्कारहि=टुकारना । तीनि लोक=त्रिलोक ।
तन=शरीर धारी । हकहि=हकालते, चला देना । वक्कहि=बक्कना । वक्कारहि=ललकारना ।
अकल=अज्ञान । बल=बल । ममहि=पामना करते हुए । सग्राम=युद्ध । धारहि=ग्रहण करते ।
अजुत=अयुक्त असगत । उद्धरहि=रुते हैं, पूगकर बताते हैं । मन्नि=खडित । भिरहि=भिड़ते ।
लरहि=चड़ते हैं । सोमेश सूर=सोमेश्वर के सामत । गल्ल=ख्याति । गन्वार=गहरी ।

अर्थ:—कभी वे शस्त्र और बाण वर्षा करते, कभी उछल कूद कर टुकार करते,
उनके इस प्रकार के उत्पात से तीनों लोक के प्राणी विचलित होने लगे । कभी २
शोर गुल के साथ वे ललकारते थे । इस प्रकार छल युद्ध के बल पर रणस्थल
को काबू कर मामना करने लगे । असगत युद्ध पूरा कर वे वताने लगे । विद्वन
की शक्ति के द्वारा वे मरुत होना चाहते थे किन्तु सोमेश्वर के बहादुर योद्धा भी
उनमें लड़कर उनको नष्ट करने में प्रयत्न थे । वे स्वयं कभी गिरते, पड़ते, उठते और

लडते थे इस प्रकार क्षत्रिय निशंक होकर उन्हें पछाड़ते हुए अनुपम ख्याति प्राप्त करने लगे ।

दोहा

इकु सामंतनि इस्ट चल, दुतिय धरम नृप सोम ।

तिहि सहाय सामंत तन, देव दुन्दभो भोम ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—इकु=एकतो, इक । दुतिय=दूसरा । सोम=सोमेश्वर (का पुन्य) । तिहि सहाय=उस सहायता से । सामंत तन=सामंतों के शरीर (सुरक्षित) रह पायें देव=देवताओं से, (वरुण के दूतों से) दुन्द=युद्ध । मो=हुआ । मोम=भूमि, पृथ्वी पर ।

अर्थः—सामंतों के शरीर उन वरुण दूतों से इसलिये सुरक्षित रहे कि एक तो उनका इष्ट बल, दूसरा राजा सोमेश्वर का पुन्य कार्य था । इसी से उन्होंने देवताओं (वरुण दूतों) से पृथ्वी पर द्वन्द युद्ध किया, या देव तुल्य युद्ध कर सके ।

कवित्त

हम जु भयकर बल अभूत, भट सुभट हक्कारहि ।

हम प्रचड पर्वत प्रमान, कनिठ अंगुलि उपारहि ॥

हम समुद्र सत्तौ प्रमान, दोहि जल बहुनि प्रवाहहि ।

सुनी न दिक्खी होइ, सोइ ब्रह्म मंडल प्रगावहि ॥

किहि काम धाम तजि काम सुख, आइ सपत्तौ जमुन नसि ।

चर वेर निसाचर हम फिरहि, जल पिट्ठय निसि लेहि धसि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—बल=बल । अभूत=अद्भुत । हकारहि=विचलित कर देते हैं, दकालते हैं । कनिठ=कनिष्ठा । समुद्र=समुद्र । सत्तौ=सातों । प्रमान=प्रमान । दोहि=उलीच कर । प्रवाहहि=प्रवाहित कर देते हैं । दिक्खी=देखी । सोइ=वही । ब्रह्ममंडल=ब्रह्मांड । किहि=किस । धाम=घर । वाम=स्त्री । सपत्तौ=पहुंचे । जमुन=जमुना । निसि=रात्रि । चर=वरुण दूत दूत । वेर=शत्रुता । पिट्ठय=प्रवेश करते हैं । लेहि=पकड़ेंगे । धसि=प्रवेश कर ।

अर्थः—वरुण दूत कहने लगे—हम अद्भुत शक्तिशाली और भयंकर हैं वडे वडे योद्धाओं को विचलित कर देने वाले हैं, हम दीर्घकाय वीर पर्वतों को कनिष्ठ ऊँगली पर उठा लेते हैं और सातों समुद्रों के पानी को हाथों से निकाल कर पृथ्वी पर प्रवाहित कर सकते हैं । जो वान न सुनी और देखी गई उसे करने में हम समर्थ हैं । हमारी प्रशंसा ब्रह्माण्ड करता है । हे सामन्तों ! तुम किस लिए गृह और गृहणी के सुख को छोड़ कर यहाँ जमुना किनारे रात्रि में

आये हो । हम वरुण दूत हैं और शत्रुता मे राक्षसों के समान हैं । हम यहाँ फिरते रहते हैं और रात्रि मे कोई यमुना मे प्रवेश करता है तो हम उसे पकड लेते है ।

सुनत सह सामंत, सह वहे दूतनि प्रति ।
 तुमत कोड वल प्रवल, युद्ध जुद्धत परखे मति ॥
 हमहुँ सोम नृप सेव, हमहुँ देवनि आराधन ।
 हम छत्री छिति धरनी, हम्मु विद्या धारा धन ॥
 हम समन कोइ ससार महँ, मरण जियन चित्तह डरण ।
 जीयहिं जुद्ध भुव भुगवहि, मरहित सुर पुर हिरि सरण ॥ ५० ॥

शब्दार्थ—सह=थावाज । वहे=उत्तर दिया । तुमत=तुम तो । प्रवल=प्रवल । जुद्धत=जुड़ने । परखे=परीक्षा करली । मत=शुद्धि से । सेव=सेवा करने वाले । देवि=देवताओं की । आराधन=आराधना करने वाले । छत्री=क्षत्री । छिति धरनि=पृथ्वी को धारण करने वाले, भूस्वामी । हम्मु=हमारी । धारा=खड्ग धारा । धन=संपत्ति । चित्तह=चित्त में । डरण=डर नहीं । जीयहिं=जियेंगे तो । जुद्ध=युद्धमें । भुव=पृथ्वी । भुगवहि=उपभोग करेंगे । मरहित=मरेंगे तो । हिरि=हरि । सरण=शरण ।

अर्थ—दूतों के वचन सुनकर सामंत कहने लगे—हे वरुण दूतो ! तुम कोई प्रचंड बलवान दीखते हो । अपनी बुद्धि से हमने युद्ध मे तुम्हारी परीक्षा करली है, किंतु हम भी सोमेश्वर के सामंत और देवताओं के आराधक हैं । हम पृथ्वी पर आधिपत्य रखने वाले क्षत्रिय हैं । हमारी विद्या और सपत्ति केवल खड्ग की धार है । हमारे समान कोई वीर ससार मे नहीं है । हमारा मन जीने मरने से नहीं डरता । यदि हम जियेंगे तो पृथ्वी का उपभोग करेंगे और मर गये तो स्वर्ग मे हरि की शरण पावेंगे ।

दोहा

यह ऋहि रहि लग्गे लरण, गयन गुज उच्छार ।
 मानहु भारत अत कौ, भार उतारण हार ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—ऋहि=ऋह । रहि=वह । गयन=हाथी । गुज=गुजार । उच्छार=उच्चारिते हुए । मानहु=मानो । भारत अत=महाभारत के अतः । उतारण=उतारने वाला ।

अर्थः—यह कह कर सामंत हाथियों के समान गर्जने वाले वरुण दूतों से भिड़ गये और उन्हें उठा २ कर फेंकने लगे। उस समय वे ऐसे दिखने लगे मानों महा-भारत के अंत में दुर्योधन रह गया, उसे मारने का संकल्प करने वाला भीम अनेक रूप धरकर उपस्थित हुआ हो।

काल संक आहुरहि, तार वज्रहि प्रहार सुर।
जमुना सजल अंदोलि, वीर बुल्लंत गल्लह गुर ॥
कलह केलि सम भेलि, ठेलि कड्डें चावहिसि।
एक भाव वरखत, एक फारत नखनि कसि ॥

परि धाम मुच्छि विक्रम वलिय, जुद्ध निसाचर विषम अखि।
वर वीर धीर धपे लरन, पोंहुं फट्ट नृप सोम लखि ॥५२॥

शब्दार्थः—काल=यमराज। संक=पशकित होता था। आहुरहि=अदते हुए देखकर। तार वज्रहि=ताल वजाते हुए। सुर=स्वर। जमुना सजल=यमुना जल। अंदोलि=आन्दोलित। बुल्लत=बोलते हुए। गल्लह गुर=मारी आघात से। सम=समान रूप से। भेलि=भेलते थे। ठेलि=धकेल कर। कड्डे=निकालते। चावहिसि=चौतरफ। फारत=वीरते। नखनि कसि=नाखून मार कर। परिधाम=जगह पर पड़ गये। मुच्छि=मूर्च्छित होकर। विक्रम=परक्रम। वलिय=बली। निसाचर=रात्रि में फिरने वाले। विषम=असमान। अखि=कहकर, कहते हुए धपे=तृप्त होगये। लरन=लडने से। पोंहुं=प्रमात होते २। लखि=देखा।

अर्थ—वरुण दूतों से भिड़ते हुए सामंतों ने यमराज तक को शकित कर दिया। उस समय ताल के साथ शस्त्राघात की ध्वनि होने लगी। जमुना का जल आन्दोलित होगया। गभीर ध्वनि करते हुए वे वीर समान रूप से युद्ध क्रीड़ा करने लगे और वरुण दूतों को धकेल कर दूर करने लगे, उस समय कोई पत्थर वरसा रहा था तो कोई नाखून से शरीर को चत विलत कर रहा था। अन्त में पराकृमी और धीर वीर योद्धा थककर यह कहते हुए मूर्च्छित होगये कि रात्रि में फिरने वाले इन वरुण दूतों का युद्ध विषम है, प्रात काल के समय यह दृश्य राजा सोमेश्वर ने देखा।

दोहा

ज्यौं सैसव महँ जुव्वनह, तुच्छ २ सरसाहि।

इमि निसि गत नभ रवि किरणि, उदित दिसाणि लसाहि ॥ ५३ ॥

शब्दार्थः—ज्यों=जैसे । सैसव=शैशव, शिशुकाल । जुचनह=यौवन । सरसाहि=शोभित होता है । इमि=इसी प्रकार । निसिगत=रात्रि वीतने पर । नम=आकाश । उदित दिसाणि=पूर्व दिशा । लसाहि=शोभा पाता है ।

अर्थः— जैसे बाल्यावस्था और युवा वस्था के संधिकाल के समय युवति के सौंदर्य में यौवन का उभार शोभा पाता है, उसी प्रकार रात्रि व्यतीत होने के बाद पूर्व दिशा में रवि-रश्मि (सूर्य-किरण) शोभा पाने लगीं । बाला का शिशुत्व अज्ञात अवस्था में होने से रात्रि की ओर यौवन में ज्ञानावस्था होने से सूर्य की उपमा दी गई है ।

यौं रति रहि रवि उदिकर, ज्यों ससि कोरह राह ।

हरि डड्ढां धर रज्जई, कै हरि चंपत राह ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—यौं=ऐसे । रति=रात्रि । उदिकर=उदय होने पर । कोरह=किनारे । राह=राह । हरि=ईश्वर (विराट-स्वरूप) । डड्ढां=दाढ़ों में । धर=पृथ्वी । रज्जई=शोभा पाती । कै=अथवा । हरि=सूर्य । चंपत=दगाता हो ।

अर्थः—सूर्योदय होने पर रात्रि इस तरह की रह गई जैसे ग्रहण (पर्व) समाप्त होने पर चंद्रमा की किनार पर राहु की श्याम रेखा मात्र रह गई हो अथवा जाज्वल्यमान विराट रूप की दाढ़ों में पृथ्वी दिखाई देती हो या सूर्य राहु को दबा रहा हो ।

परिय पच भर मुच्छि धर, रहि गज्जिव छिपि छान ।

तव लगि तहँ प्रथिराज रण, पत्तौ छत्रिनि भान ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः—परिय=पड़ गये । पचधर=पाच योद्धा । मुच्छि=मूर्च्छित । गज्जिव=गर्जना करने वाले । छिपि=छिपकर । छान=गुप्त । तवलगि=तव तक । तहँ=वहा । रण=युद्ध स्थल । पत्तौ=पहुंच गया । छत्रिनि भान=क्षत्रियसूर्य ।

अर्थः— सामंतों में से ५ (पाच) योद्धा मूर्च्छित हो जमीन पर पड़ गये और गर्जना करने वाले वरुण-इत छिपकर चुप हो गये । इतने में वहा क्षत्रियों का सूर्य राजा पृथ्वीराज आ पहुँचा ।

मुनत युद्ध तन विपकरिय, करिय र जनु गाज ।

कै केहरि केहरि हक्यौ, वीर डक मुनि वाज ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—विष्करिय=कावू के बाहर । करिय=को । करिय=हाथी । गाज=गर्जना । कै=या । हक्यौ=बडा, हकाला । डंक=डंका । वाज=वजने लगे ।

अर्थः—युद्ध की वान सुनने से वह वेकावू (तन फूल उठा) होगया और हाथी के समान गर्जने लगा । वह ऐसा दीख पड़ा मानों एक सिंह दूसरे सिंह पर आक्रमण करने के लिए उद्यत हुआहो । उस समय रण वाद्य भी वजने लगे ।

तहँन सत्र दिक्खे नयन, धर दिक्खे सामंत ।

तव्व विचारिय मध्य हिय, अत्र कह किज्जे मंत ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—तहँ=वहाँ । सत्र=रात्रु । धर=पृथ्वी पर पड़े हुए । तव्व=तव । मध्यहिय=हृदय में । अत्र=अत्र । कह=कहा । किज्जे=करिये । मंत=मन्त्रण,सलाह ।

अर्थः—वहाँ उसे साकार रूप में शत्रु नहीं दिखाई दिये, केवल पृथ्वी पर पड़े हुए सामंत गण ही नजर आए । तव पृथ्वीराज ने मन में विचार किया कि अत्र क्या किया जाय ?

साटक —

सादिख्यं नृपराज तात जलयं विमच्छ यंछया क्रधं ।

कालं केलिं य छंछि रुद्धित नई, रुद्रं रसं रत्तयं ॥

मत्तं तामस रस्स कस्सश्च सुरं, हालाहलं नैनयं ।

राजंजा प्रथिराज च्यतित मनै, पुच्छे गुरंसद गुरं ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—सादिख्य=उमे देखा । नृप राजा=राश्रों के राजा ने । तात=पिता । जलय=जल में । विमच्छ यच्छया=इच्छाओं से गृणा करने वाला । क्रुध=क्रोध युक्त । कालकेलि=कालक्रीड़ा, युद्ध । यच्छछि=इच्छा । रुद्धित=रुकी हुई, वधी हुई । नई=नयसिरे से । स्तय=लीन । मत्त=मतवाला । तामसरस्स=तमोगुण के रस में । कस्सश्च=कैसे । सुर=देवता तुल्य । हालाहल=जहर । नैनय=नेत्रों में । राजजा=उस राजा का । च्यतित=चिंता युक्त । मनै=मनमें । पुच्छे=पूछा । गुरंसदगुरं=गुरुओं में श्रेष्ठ गुरु ।

अर्थः—जिसने इच्छाओं से घृणा करली है ऐसे अपने पिता सोमेश्वर को राजाओं के राजा प्रथीराज ने क्रुद्ध देखा । काला क्रीड़ा (युद्ध) की इच्छा जिसकी समाप्त हो गई थी वह पुन उसमें नये सिरे से दीख पड़ी और वह रौद्र रस में लीन

दिखाई दिया। उस राजा के लिए चिंतित होकर पृथ्वीराज अपने गुरु से प्रछने लगा—अहो यह देव तुल्य नरेश आज तमोगुण युक्त कैसे हैं और इनके नेत्रों में हलाहल क्यों छाया हुआ है।

दोहा

रवि तनया कर जोर करि, अस्तुति मंडी मुख्व ।
तू माता दुख भजनी, रंजनि सेवक सुक्ख ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—रवि तनया=यमुना । अस्तुति=स्तुति । मंडी=झी । रंजनि=खुश करने वाली ।

अर्थः—इसके बाद यमुना से हाथ जोड़कर स्तुति की और कहा हे माता । तू दुख दूर करने वाली और सेवकों को सुख देने वाली है ।

कवित्त

गगा मूरति विश्न, ब्रम्म मूरति सरसुत्तिय ।
जमुना मूरति ईस, दिव्य देवनि मुनि थुप्पिय ॥
मिली जाय जल गग, गग सागर अधिकारिय ।
तू सोमेसुर सूर, रोग दोपह तन टारिय ॥
अव सुभट सहित देवी सवनि, करि त्रिम्मल तन मोह मय ।
यह कहत जग्गि नृप मूरछा, प्रति वुल्ल्यौ प्रथिराज तय ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—विश्व=विष्णु । ब्रह्म=ब्रह्मा । सरसुत्तिय=सरस्वती । ईस=महादेव । थुप्पिय=स्थापित की । सागर अधिकारी=ममूद्र में प्रवेश करने की अधिनायिणी अय=अय । सवनि=सवको । त्रिम्मल=निर्मल । जग्गि=दूरहुई । प्रति=मे । तेय=वह ।

अर्थः—गगा विष्णु की, सरस्वती ब्रह्मा की और हे यमुना तू शक्र का रूप मानी जाती है। इस दिव्य रूप की स्थापना देवताओं और मुनियों ने स्थिर की है। अतः मे सव गगा में मिल गई है और फिर गगा सागर में मिलने की अधिकारिणी हो गई है। ऐसी तुम्हारी महिमा है। अतः हे यमुना । वीर राजा सोमेश्वर के सव रोग दोष नृ ही टालने वाली है। अव सामने अहित सवके शरीरों को इस मोह मायासे शुद्ध करदे। पृथ्वीराज के ऐसा कहने पर राजा सोमेश्वर सचेत हो गया और वह पृथ्वीराज से कहने लगा ।

साटक

त्वमे देह सु भाजनेव सरसा, जीव वन धानयं ।
दीहं अग्नि सु कर्म दारुण धरे, आवस्य चट्टूकरं ॥
सा रुद्धं जमं जोग द्विष्टित तने, अद्ध पल मध्ययं ।
जीवी वारि तरग चचल धिय, विरमित्त अस्या नरं ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—त्व=तुम्हारी । में=प्रभुमें । भाजन=पात्र स्वरूप । सरसा=सरस । जाध=जीव । धन=धन । धानय=धान्य । अग्नि=आगे के । दाह=दिनों में । सु=वह कर्ष=नाम । दारुण=कठिन । आवस्य=अवश्य । चट्टूकर=चाटकार खुशामद खोरी । सा=वह, आत्मा रुद्ध=रुंधी जाती । जम=यमराज । जोग=योग, समय । द्विष्टि=देखा जाने पर । तने=शार । अद्ध=आधा । पल=वण । मध्यय=में । जावी=जीवन । वारि=जल । तरग=लहरें । धिय=बुद्ध । विरमित्त=वक्ति होना । अस्या=ऐसे ।

अर्थ—तुम्हारी हमारी यह पात्र तुल्य सरस काया है । जिसमे जीव स्थित है जो अवश्य ही आगे जाकर धन धान्य के लिये कठिन कर्म और खुशामद खोरी करता है, किन्तु उस यम द्रष्टि का योग होते ही पल मात्र मे उसके द्वारा रुंध (पकड़) लिया जाता है, यह जीवन जलतरग के तुल्य अजुगुण है, किन्तु जिनकी चचल-बुद्धि है ऐसे मनुष्यों पर आश्चर्य होता है ।

मा भूत आभूत वर्ष सु सत, आव ऋ अद्भूत ।
तेम अद्धय दीह रैणि त अधं, खटवीय वृष वालय ॥
पुण जौवन मधुमत रत्तय रग्, व्यात्रा वृत्र पि-नयी ।
कयं भूतं संसार तारण गुणै, ससार निस्वारयम् ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—साभूत=वहीं ही पाता । आभूत=यह प्राणी । वर्ष स=वर्षों में । मत=मैं वर्ष । आ=आयु । वर=श्रेष्ठ । अद्भूत-अद्भूत है, आश्चर्यदायक है । तेम उममें से । अद्धय=अध आधा दीह=दिन । रैणि=रात्रि । त=वह । अध=आधी । खटवीय=प्राण । वृष=वर्ष । चान्य=आयवान् । पुणि=फिर । जौवन=यौवन । मदमत्त=मत्तवाना । रत्तय=लौन । रग्=मे में । व्यात्रि=वीमार्ग । वृष=वृद्धावस्था । विद्या=विद्वन्कारी । कय=कैसे, क्या, कौनसे मत=मैं कना है । मय र तारण=ससार मे तरना । गुणै=परिणाम । मवार निस्वारयम=ससार मे कोई मर नहीं दे ।

अर्थः—इस प्राणी का शतायु (सौ वर्ष) का होना प्राय असंभव है । यह श्रेष्ठ आयु आश्चर्य दायक है । उस आयु में से आधे दिन और आधी रात्रिया गुजरती है । उनमें से बारह वर्ष बाल्य काल के हैं उसके बाद प्राणी यौवन में मतवाला होकर प्रेम में लीन हो जाता है फिर वृद्धावस्था व्याधि के कारण विघ्नदायी होती है । अस्तु, कैसे ससार को पार किया जाय ? परिणाम स्वरूप ससार नि सार है ।

आशा अस्य सरोवरीय सलिल. पक्षी वर दुब्धय ।

सुख दक्खय मध्य व्रच्छति तिय, साखस्य त्रिगुन वरम ॥

मोह पत्तय रत्त वर्ण च क्रमे, फूल फल धारण ।

एकस्सय सतोष दोपति गुना, अस्याय वा निग्गुनम् ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—आम=आशा । अस्य=यह । सरोवरीय सलिल=मजल सरोवर पक्षी=पक्षी । दुब्धय = दुविधा । व्रच्छति=वृत्त । तिय=वे । साखस्य=शाखा । त्रिगुन=त्रिगुण (सख रज तम) । मोहपत्तय=ममत्वस्पी पत्ते । रत्त=रक्त । च=के । क्रमे=कर्म । धारण=धारणा । एकस्सय=एक ही से । दोपतियुना=दोष (रात्रि) के गुण युक्त (क्षिपाजेना) । अस्याय=इस आयु में । वा=गधवा । निग्गुनम=निर्गुणमें, निर्युष्टोपासना ।

अर्थः—यह आशा सजल सरोवर रूपी है । जिसमें दुविधा, पक्षी, सुख दुख वृत्त, त्रिगुण शाखा, मोह पत्ते, रक्त वर्ण कर्म, धारणा फल फूल हैं । उनकी तरफ से अज्ञात रखने को रात्रि के गुण तुल्य इस आयु में केवल सतोष या निर्गुण उपासना ही श्रेष्ठ है ।

ज्ञान ध्यान अस्तुति करी, भय सु प्रसन्नय देव ।

राज सहित सामत सब, जग्गि मूरछा एव ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—भय=हुण । प्रसन्नय=खुश । राज=राजा । सब=सब । जग्गि मूरछा=मूर्च्छा हुई । एव=वह ।

अर्थः—इस प्रकार ज्ञान और ध्यान युक्त स्तुति करने पर देवता प्रसन्न हुए और सामतों सहित राजा सोमेश्वर सचेत हुए ।

गधव मन्न सुतिष्ठि हिय. आराध्यौ प्रधिराज ।

अरण दोष तन ताप गय, उठि निद्रा जनु भाज ॥ ६५ ॥

धर्व । तिष्ठिहिय=हृदय में स्थान देकर । तन ताप=शारीरिक कष्ट । गय=गया, दे हो । माज=दूर होने पर ।

कर राजा पृथ्वीराज ने गंधर्व मंत्र का जप किया, जिससे राजा और जो वरुण दोष का कष्ट था वह दूर हो गया और सब इस प्रकार नों निद्रा दूर हो गई हो ।

कवित्त

निसान दरवार, वज्जि भैरिय मुंकारणि ।
सहनाई सुर सग, वज्जि मंभिय मंकारणि ॥
नफनीरी नवरग, पंछ वज्जे दर वज्जिय ।
इला सैल नभ पूरि, वरिख वदल जनु गज्जिय ॥
गायति गान तरुणी तरुण, नृत्त होत नाटक अनत ।
वद्धाइ भई रणिवास महँ, कविन बुद्धि पसरे गनत ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—दरवार=मभा । मु कारणि=मुनकार करती, आवाज करती, मनकती हुई । भभिय=भाभ । मकारणि=भनकार करती हुई । नफनीरी=नफेरी । नवरग=नये तर्ज से । पछ=पाच । दर=दरवाजा । इला=पृथ्वी । सैल=पहाड़ । नभ=आकाश । पूरि=पूर, भर । वरिख=वर्षा । वदल=वादल । गायति=गाये जाने लगे । अनत=अनत । वद्धाइमई=वघाई वाटी जाने लगी, पारितोषिक दिया जाने लगा । रणिवास महँ=अनत पुरमें । पमरे=प्रमरित हुई । गनत=गुनते हुए, वर्णन करते हुए ।

अर्थः—सभा भवन में नक्कारे, भैरी, शहनाई, मांभ, नफेरी आदि पांच प्रकार के वाद्यों के बजने से पृथ्वी-पहाड़ और आकाश मंडल में उनकी आवाज इस प्रकार भर गई मानों वर्षा ऋतु के वादल गर्जते हों, युवक और युवतियाँ गाने लगे, अनेक प्रकार के नृत्य और नाटक होने लगे । अंतः पुर में वघाई वांटी जाने लगी । कवियों की बुद्धि उसका वर्णन करने को प्रेरित हो उठी ।

गाथा

कथनं कृत नृप सोमं, पोडश दान विप्रयं चनं ।
जुध जीते दिव दूतं, अभुत वत्त प्रगटि छिति छई ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—क्यन=क्रिया । कून=कर्म । विप्रय=विप्रों को । घन=दिया । दिवदूत=देवदूत, वरुण दूत । अद्भुत=अद्भुत । वत्त=वात । प्रगटि=प्रसीद्ध होकर । छिति आइ=पृथ्वी पर फैल गई ।

अर्थः—राजा सोमेश्वर ने शुभ कर्म कर पोडश दान ब्राह्मणों को दिया और वरुण-दूतों पर विजय पाई । यह अद्भुत बात प्रसिद्धि प्राप्त कर पृथ्वी पर फैल गई ।

दनु देव सम जुद्धं, सुनिय सत्य त्रितिय दुतिआई ।

नर जुद्ध सम देवं, प्रगटी वत्त देस देसाई ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—दनु देव=देवदानव । सुनिय=सुना गया । सत्य=सतयुग । त्रितिय=त्रेतायुग । दुतिआई=द्वितीय, द्वापर । देस देसाई=देश देशों में ।

अर्थः—सामंतों और वरुण-दूतों में देव-दानव युद्ध हुआ, जिससे दूसरा ही सत युग त्रेता द्वापरादि युग दिखाई पड़े । यह वात देश देशान्तरों में फैल गई ।

मत्रिनि सरिस महीन्द्र, कमधज इन्द्र कुपियं काल ।

जम्बूदीप महीप, को मो सरिस मंडन सारह ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—मत्रिनि सरिस=मंत्रियों पर । महीन्द्र=राजा । कमधजइन्द्र=कमधजों का स्वामी (जय चंद) । कुपियं=क्रोध किया । काल=काल के समान । जम्बूदीप=जम्बूद्वीप, भारत । महीप=राजाओं में । मंडन मारह=लोहा लेने वाला ।

अर्थः—इस प्रसिद्धि को सुनकर कमधजों का स्वामी जयचंद अपने मंत्रियों के समस्त काल के समान क्रुद्ध होकर कहने लगा, जम्बूद्वीप के राजाओं में ऐसा कौन है जो मुझसे लोहा ले सके ?

दोहा

छिति छत्री जे छत्रपति, ते मो हुकम हजूर ।

मिट्टि सकै फुरमान को, मारि मिलाऊं धूर ॥ ७० ॥

शब्दार्थः—छिति=पृथ्वी । छत्री=क्षत्री । जे=जो ते=वे । हजूर=मेवामें । मिट्टि सकै=भेट मक्ता, लोप सकता । मारि=मार कर ।

अर्थः—पृथ्वी पर जितने छत्रधारी क्षत्रिय हैं वे सब मेरी सेवा में रह कर मेरी आज्ञा पालन करते हैं । मेरी आज्ञा का कौन उलघन कर सकता है ? ऐसा करने वाले को मैं ध्वंस कर भूल में मिलाने की शक्ति रखता हूँ ।

जगम्य वत्त चित्तह धरी, उट्टि महल पहु पंग ।

ग्रह पत्ते संभरि भनी, करन खलनि घटभंग ॥ ७१ ॥

शब्दार्थः—जग्य=यज्ञ । वत्त=वात-विचार । चित्तह=चित्तमें । धारी=किया । उट्टिमहल=समा से उठ बैठा । पहु पंग=पशुराज, जयचंद ग्रहपत्ते=घर को । समरी धनी=संभरेश्वर । करन=वरने । खलनि=दुष्टों को । घट-भंग=नाश करना ।

अर्थः—ऐसा कहता हुआ सोमेश्वर के षोडश दान की ईर्ष्या से जलकर स्वयं ने यज्ञ करने का विचार चित्त में किया और सभा मंडप से उठ खड़ा हुआ । इधर दुष्टों को नाश करने वाले संभरेश्वर अपने घर की ओर रवाना हुए ।

वरुन दोष प्रथिराज मिटि, ग्रहे सपत्ते जाइ ।

देखि पराक्रमु पित्थ को, फुल्यौ अंग न माइ ॥ ७२ ॥

शब्दार्थः—ग्रहे=घर । सपत्ते=पहुँचे । जाइ=जाकर । पराक्रमु=पराक्रम । पित्थ=पृथ्वीराज । माइ=समाता ।

अर्थः—इस प्रकार वरुण दोष का निवारण कर राजा पृथ्वीराज घर पहुँचा । पृथ्वीराज के ऐसे पराक्रम को देखकर राजा सोमेश्वर अंग में फूला न समाया ।

सोम वध

(समय ३५)

कवित्त

गुज्जरधर चालुकक, भीम जिम भीम महाबल ।
कोइ न चंपै सीम, कित्ति वर रीति अचगल ॥
सोमेशर संभरिय, तास मन अंतर सल्लै ।
प्रथीराज दिल्लीस, रीस तस अतर वल्लै ॥
मिलि मत तत्त वुमभवि मरम, करिय सेन चतुरग सज ।
धर लेउ आज दुज्जन दवटि, एकछत्र मडोति रज ॥ १ ॥

शब्दार्थः—गुज्जरधर=गुजरातभूमि । चालुकक=क्षत्रियों की एक शाखा । चंपै=दवावे । सीम=सीमा । कित्ति=कीर्ति । वर=श्रेष्ठ । अचगल=अचल । तास=उसके । सल्लै=सालना, चुमना । दिल्लीस=दिल्लीश्वर । रीस=क्रोध । तस=उसके । वल्लै=जलना, धड़कना । मिलि=मिलकर । मत=मंत्रणा । तत्त=तत्त्वयुक्त, मार युक्त । वुमभवि=प्रभा, पूछा । मरम=गहरी, हृदय स्पर्शा । दुज्जन=दुर्जन । दवटि=दवाकर । मडो=मडन करो । ति=तुम । रज=राज्य ।

अर्थ—गुर्जरधरा का स्वामी चालुक्य भीम महाबली भीम के समान था । उसकी सीमा कोई दवा नहीं मकता था । उसकी कीर्ति श्रेष्ठ और रीति अचल थी । उसके मनमें सभरी नरेश सोमेश्वर चुभता था । उसके हृदय में क्रोध का कारण पृथ्वीराज का (सोमेश्वर के पुत्र का) दिल्लीपति हो जाना था । यही एकमात्र कारण था और इसीलिये उसने अपने सब साथियों के साथ मिलकर गभीरता से मंत्रणा की । चतुरगिनी सेना सजा कर अपने सामने से उसने कहा कि दुश्मनों को दवा कर उनकी पृथ्वी तीन लो और तुम एक छत्र राज्य की स्थापना करो ।

बोलि कह कटी नर्यद, बोलि रान्यग राजवग ।
चडासम जेस्यग, वीरबौलगि देववर ॥

धौल हरै सुलितान, वीर सारंग मकवानं ।
 जूनागढ़ तत्तार, सार लग्गौ परिमानं ॥
 मत मंडि सज्जि चालुक्क भर, पुव्व वैरु साल्यौ हियै ।
 किक्कीक वात संभरि धरा, रहै रंगु चच्चरि कियै ॥ २ ॥

शब्दार्थः—कट्ठी=काठी जाति का क्षत्री । नर्यंद=राजा । चूडासम=चूडासमा जाति का क्षत्रीय ।
 जेस्यघ=जयसिंह । वीर धोलगि=वीर धवल (नाम विशेष) । धर=पृथ्वी । धोल हरे=धोलधरा (समभव है ; धागधड़ा जो आज कल है) । सुलतान=शाह, राजा । मकवान=मकवाना क्षत्रीय (जो आज कल भाला क्षत्रीय कहलाते हैं) । तत्तार सार=तेज शस्त्र, तेज तलवार, तेज लोहा । लग्गो=चलाने वाले । परिमान=प्रामाणिक । मतमडि=मद्रथा करके । चालुक्क=चालुक्य क्षत्रीय, (आजकल सोलकी कहलाते हैं और रीवां आदि के वधेले क्षत्रीय मी इसी शाखा के हैं) । मट=मट्ट, योद्धा । पुव्व=पूर्व । वैरु=वैर, बदला । साल्यो=सुमा । हियै=हिय; हृदय । किक्कीक=कितनीसी । समरि धरा=समरी की धरा । रहै=रहेंगे । रग चच्चरि=रगचर्चित, रक्त रजित । कियै=करके ।

अर्थः— साथ ही काठीराज कन्ह, श्रेष्ठ वीर रानिंग राज, चूडासमा जयसिंह, पृथ्वी पर देवतुल्य वीर वीरधवल, धौलधरा (संभव है धांगधड़ा रहा हो) का शाह, मकवाना वीर सारंग देव और जूनागढ़ के उन वीरों को जो तेज शस्त्र चलाने वाले थे, बुलाकर चालुक्य योद्धाओं ने मंत्रणा की और व्यूह की सजावट की । उनके हृदय में पहले का द्वेष भरा था । वे कहने लगे संभरी की धरा को जीतने की वात कितनी सी है, उसे तो हम रक्तरजित करके ही रहेंगे ।

गाथा

सोमक्ती रण जिक्ता, केवा क्यन संभरी राजं ।
 ते केली कलहंतं, सालै मूल खग्ग मग्गाई ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—सोजत्ती=सोभत्री (गुर्जदेशान्तर्गत) । जिक्ता=विजय की । केवा=कहावत । ख्यात=कहानी । क्यन=की । समरीराज=पृथ्वीराज । ते=उस । केलो=क्रीडा । कलहत=अंतर में कलह । सालै=सुमे । मूल=मूल । खग्ग मग्गाई=खड्ग मार्ग ।

अर्थः—सोजत्री (गुर्जर देशान्तर्गत) के युद्ध में विजय कर संभरी नरेश (पृथ्वी-

राज) ने ख्याति प्राप्त करली थी और वह खड्ग-क्रीडा, शूल के समान चालुक्यों के दिल में चुभती रहती थी।

फट्टै पहु फरमानं, धाए धरा जित्त तित्ताई ।

यं वड्डै सह सैन, ज्यौं भूमी नीर वड्डि सलित्ताई ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—फट्टै=फाड़े गये लिखे गये। पहु फरमान=राजा के आज्ञा पत्र। धाए=पहुँचाये। जित्त तित्ताई=यत्रतत्र। य=इस प्रकार। वड्डै=बड़े। वड्डि=बाढ पर आ गया हो। सलित्ताई=सरिता का।

अर्थः—राजाज्ञा का पत्र लिखकर यत्र-तत्र भू-भाग में भेजा गया। फिर समस्त सेना इस प्रकार बढ़ी, मानों पृथ्वी पर सरिता का जल बाढ पर आगया हो।

दोहा

साम दाम गुन भेद करि, निरनै दंडति सार ।

चारि रूप चतुरंग मन, वर सिंघनि आकार ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—निरनै=निरणय। दंडति=दंड ही। सार=तत्व युक्त। चारि=चार, श्रेष्ठ। चतुरंग=चतुर, पट्ट। सिंघनी=सिंहों के।

अर्थः—साम, दाम, भेद, नीति की गिणना कर जिनका श्रेष्ठ निर्णय दंड देना ही था और जिनका रूप श्रेष्ठ, मन पट्ट और आकार उत्तम सिंहों के समान था।

इनहि समीप बुलाइ करि, बुल्लिय भीम नर्यद ।

ज तुम जपौ त करउ, तुम छत मो सुख न्यद ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—इनहि=ऐसा को ही। बुल्लिय=रुहा। ज=जैसा। जपौ=कहौ। त=तैसा। करउ=करी। छत=घरान, रहते हुए। मो=मैं। न्यद=निद्रा।

अर्थः—ऐसे सामंतों को (वीरों को) ही पास बुला कर गुर्जरेश्वर भीम कहने लगा—जैसा तुम कहो, वैसा मैं करने को तय्यार हूँ, क्योंकि तुम्हारे कारण ही मैं सुख की नींद सोता हूँ।

जपिय मत्रिनि मंत्र तव, मुनि भीमग सुदेव ।

धरती वर पर आपनी, ले तन किञ्जै छेव ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—तव=तव । वर=वल । पर=पर ही । ले=लेकर, प्राप्त कर के । किञ्जै=करना चाहिये ।
देव=देह । खेह=नाश ।

अर्थः—तव मंत्रियों ने सलाह दी कि हे भीम देव । यह पृथ्वी शक्ति के कारण ही अपनी कहलाती है । इसलिये इसे प्राप्त करने के लिए शरीर का नाश कर देना चाहिये ।

साटक

भूमीनं धर धम्म क्रम्म निरतं, वंधो वधे पांडवं ।
भूमी काज दधीच अस्ति^१ मंगियं, वज्र करं कारणं ॥
केकइयं भूकाज रामय वनं, दसरथ्य मंगेवरं ।
सामभूमी कित कारनेव सरसा; स्नेहानयं भू भयं ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ सशोधित ।

शब्दार्थः—भूमीनं=भूमिको । धम्म=धर्म । क्रम्म=कर्म । धरम=धारण करना निरतं=लीन । वंधो=माइयों को । वधे=भारे । पांडवं=पांडवों को । काज=कारण । दधीच=दधीचि ऋषि । 'अस्ति=अस्थि । मगियं=मागा । वज्र वाणी, इन्द्र । कित कारनेव=किया है कावी । सरसा=श्रेष्ठ । स्नेहानयं=प्रेम पूर्वक लाना चाहिये ।

अर्थः—पृथ्वी प्राप्त करने के लिये धर्म-कर्म में निरत रहने वाले पांडवों ने भाइयों का वध किया था । पृथ्वी के लिये ही इन्द्र ने दधीचि ऋषि से (वज्र के लिये) अस्थियों मांगी और उसकी मृत्यु का कारण बना था एवं रानी केकई ने राजा दशरथ से राम को वनवास दिलाने का वर मांगा था, ऐसी भूमि के लिये जो पुरुष साधना करते हैं वे ही पुरुष अच्छे हैं । अतः प्रेम पूर्वक ऐसी पृथ्वी लानी चाहिये ।

कवित्त

जा जीवन जग पाइ, आइ ख नी रस रंगहि ।
जीवन बलह विनोद, करिस रक्खहि मन प गहि ॥
जा जीवन कज्जै कपूर, पूरण प्रभू कोपहि^१ ।
जा जीवन कारणह, कित्ति सा धर्म सु रोपहि ॥

जिहि जीवन काज जप-तप करहि, भवर गुफा साधहि अवस ।
तिहि जीवन त्यागि मडहि कलह, तौ लम्भहि भुम्मी सरस ॥ ६ ॥

त्रा पा १ सशोधित ।

शब्दार्थः—खनी=रमणी । बलह=शक्ति । प=पन, प्रतिज्ञा । गहि=ग्रहण की । कजे=फर्ग । कपूर=कपूर । कोपहि=कोध करता है । किति=कीर्ति । साधर्म=अपने धर्म । रोपहि=रोपना, स्थान देना, स्थापित करना । अवस=अवश्य । मडहि कलह=कलह का मडन करता है, युद्ध करता है । लम्भहि=प्राप्त करता है । सरस=श्रेष्ठ रस, प्रेम ।

अर्थः—जिस जीवन को प्राप्त कर पृथ्वी पर आकर प्राणी रमणी के रस रग में रम जाता है और जिस शक्ति का खेल प्रदर्शित करने को मन से प्रतिज्ञा करता है किन्तु उसी जीवन का, ईश्वर के क्रोध करने पर कपूर तुल्य नाश हो जाता है (अर्थात् कपूर के समान उड़ जाता है) । ऐसे जीवन का मुख्य ध्येय एक मात्र कीर्ति और धर्म को स्थान देना ही है । जिस जीवन की रक्षा के लिये मनुष्य जप-तप करता है और आत्मा रूपी भौरे को ब्रम्हाण्ड में चढ़ाने की माधना करता है ऐसे जीवन का मोह छोड़ कर जो युद्ध करता है वही पुरुष पृथ्वी का श्रेष्ठ प्रेम प्राप्त कर सकता है ।

दोहा —

सो जीवन इम पहुनि कर, अचिछत सती समान ।
चावदिसि डारै निडर, तो लम्भै पिम पान ॥ १० ॥

शब्दार्थः—पहुनि=पाहुना, मेहमान । अचिछत=अक्षत । चावदिसि=चारों ओर । लम्भै=प्राप्त करता है । पिम=प्रेम ।

अर्थः—जीवन को अतिथि समझकर सती के हाथ के अक्षत के समान चारों ओर (प्रज्वलित चिता के) निर्भयता युक्त विखेर देता है वही पृथ्वी का प्रेम प्राप्त कर सकता है ।

सुनत मन चल्लिय नृपति, सज्जि सैन चतुरग ।
जनु बहल खह उन्नण, दिष्टिन परै नभग ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—मन=नयना । बहल=बादल । खह=आकाश । उन्नण=उमड़े । दिष्टि=दृष्टि । नभग=आकाश ।

अर्थः—इस प्रकार मंत्रणा कर भीम चला और उसकी चतुरंगिनी सेना सज कर इस प्रकार चली, मानो आकाश मंडल में वादल उमड़ कर चले हों। उसके चलने से उड़ती हुई धूलि के कारण आकाश दिखाई नहीं पड़ता था।

छत्र दडि सिर मंडिनृप, त्रखित वीर रसपान ।
यों सहसेन विराजई, ज्यों ज्योग्यंद्र जुवान ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—त्रखित=तृषित । जोग्यद्र=योगेन्द्र । जुवान=युवक ।

अर्थः—वीर रस के प्यासे उस राजा ने स्वर्ण दंड युक्त छत्र को सिर पर धारण किया, वह सेना के मध्य में इस प्रकार सुशोभित था मानो युवक योगींद्र हो। (जवानी और तप का तेज धारण किया हो)।

सिली मिली कज्जल वरण, पिक्खि भयानक भंति ।
तिन अग्गे धनुधर मँडे, तिन पच्छै गज दंति ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—सिली=अग्नि,सेना । पिक्खि=दीखपड़ी । मति=भँति । मँडे=सुशोभित हुए । पच्छै=पीछे ।

अर्थ—एकत्रित सेना कज्जल वर्ण सी भयानक दिखाई पड़ती थी, उसके अग्र-भाग में धनुषधारी और उनके पीछे हाथियों की पंक्ति थी।

कवित्त

उत्तर वै कलहंत, रोह रत्तौ प्रथिराजं ।
सोमेसुर दिल्ली सु, रक्खि, सामत समाजं ॥
खीची राउप्रसंग, जाम जहौं अधिकारी ।
देवराज वगरिय, भान भट्टी खल हारी ॥
उद्दिग वाह पग्गार भर, वली राउ वलि भद्रसम ।

इत्तने रक्खि कथमास सँग, कलह कुंवर क्यंन्त्रो सुकम ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—उत्तर वै=उत्तर दिशा के । कलहत=कलहकारी । रोह=रास, क्रोध । रत्तौ=लीन, वश ।

दिल्ली=दिल्ली । खलहारी=दुष्टों का नाश कर्ता । कलह=युद्ध के लिए । क्रम=चला । --

अर्थः—इधर कलह करने वाले उत्तर दिशा के राजाओं पर चढाई करने के लिये कुमार पृथ्वीराज क्रोधित होकर चला और अपने पिता सोमेश्वर को दिल्ली की रक्षा

के लिये श्रेष्ठ सामंतों के साथ रक्खा। जिनमे प्रमुख प्रसंगरावखींची, मंत्री जामराय यादव, देवराज वगरी, दुष्टों का नाशकर्ता भानराय भट्टी, वीर उद्दिगवाह पगार, बलवान बलिभद्र राव और कयमास आदि थे।

दोहा —

जिन कठनि दिल्ली नगर, ते रक्खे पृथ्वीराज ।

रसित स्वामि अभिअन्तरह, कलहनि यछत काज ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—कठनि=गले से। दिल्ली=दिल्ली। रसित=रसिक। अम्यतर=हृदय के अंदर। कलहनि=कलह के। यछत=इच्छा करता है।

अर्थः—जिनके कठों से दिल्ली नगर लगा हुआ था (दिल्ली रक्षा का भार जिन पर निर्भर था) ऐसे सामंतों को पृथ्वीराज ने वहीं रक्खा और उस सामंतों के कलह प्रिय स्वामी ने अपने मन को युद्ध में लगाया।

सुनत पुकारति छोह छकि, सत्तिय सत्त समान ।

चढत सोम चट्टे ह्यनि, (ज्यौं) व्यटि नछित्रनि भान ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—ति=वह। छोह=उत्साह। छकि=छलकना। व्यटि=बौटना, घेरना, आस पास होना। नछित्रनि=नक्षत्र। मान=मानु, सूर्य।

अर्थः—डंढर चालुक्यों के आने की खबर सुनते ही सोमेश्वर में इस प्रकार उत्साह छलकने लगा जैसे सतियों में सतिव्य भलकता हो। उसके घोड़े पर चढ़ते ही अन्य अश्वारोही भी अपने २ घोड़ों पर चढ़कर उसके आस पास इस प्रकार हो गये, मानो सूर्य, नक्षत्रों से घिरा हुआ हो।

घनवन मम सोमेस सजि, गज्जि सेन चतुरग ।

कोविद गुनमन ज रमत, त्यौं भर च्यतत जग ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—घनवन=बनलों। कोविद=पंडित। ज=जैमे। रमत=रमण करता है, चितन करता है। भट्ट=योद्धा। च्यतत=चितन करने।

अर्थः—सोमेश्वर की सेना की सजावट, यादलों के समान हुई और वह चतुरगिनी सेना गर्जने लगी। पंडितों का मन जिस प्रकार गुण का चितन करता है उसी तरह योद्धारण युद्ध का चितन करने लगे।

कवित

नाग कलंमलि भार, सैन सज्जन रण रज्जन ।
 दे दुवाह चालुकक, भीम भारत सलगन ॥
 सोभक्ती वर वैर, वहुरि हाला हलु मच्यौ ।
 ण रणि निघट्टी आउ, लेखु लंघै को रच्यौ ॥
 करि न्हान दान इष्टान जय, भर अभंग सज्जे समुद ।
 विगसंत नयन दिक्खिय वयन, मनहु प्रात फुल्ले कमुद ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—नाग=शेषनाग । कलमलि=तिल मिलाना । सेन=सेना । सज्जन=सर्जनी । रज्जन=सुरोभित हुए । दे दुवाह=हाथ प्रसार कर मिड़ना । सलगन=लगन सहित । सोभक्ती=सोजत्री । वहुरि=पुन । हालाहलु=हलाहल, जहर । मच्यौ=कैला । खण्णि=नरनि, नरोंकी । निघट्टी=खतम-हुई । आउ=आयु । लेखु=लेख, ब्रह्मा के लिखे हुए । लंघै=लोपै । को=कौन । रच्यौ=लिखे हुए । न्हान=स्तान । इस्टान=इस्ट को । समुद=मोद सहित, प्रसन्नता युक्त । विगसत=लिखे हुए । दिक्खिय=देखा, देखे । वयन=दूसरोंने । कमुद=कमुद अरुण कमल ।

अर्थः—सोमेश्वर की चढ़ाई के भार से नाग (शेष नाग) तिलमिलाने लगा और सेना सजकर युद्ध के लिये सुरोभित हुई । हाथ बढ़ाकर चालुक्य वीरों से मिड़ने के लिये वे वीर इस प्रकार तय्यार हो गये, मानो महाभारत युद्ध के समान भीम युद्धार्थ उद्यत हुआ हो, सोजत्री में होने वाले उस वैर ने पुन हलाहल विष का रूप धारण कर लिया । उस युद्ध में मनुष्यों की आयु समाप्त होने लगी, सत्य है, विधि अक्रिकत लेख को कौन बदल सकता है ।

शक्ति सपन्न वीरों ने स्नान दान कर इष्ट का जाप किया और वे प्रसन्नता पूर्वक युद्धार्थ तत्पर हो गये । उस समय उनके खुले हुए नेत्र शत्रुओं को ऐसे दिखाई पड़े, मानो प्रात होने पर अरुण कमल खिले हों ।

त्रिविधि साज वदिड्य अवाज, वज्जि भेरिय कोकिल मुर । -
 भँवर रुज्ज मुंकार, चोर मोरह सु नुतवर ॥
 वन वसंत सम फौज, नच्चि तुक्खार त्रिभंगिय ।
 रण रत्तौ मोमेन, भीम भारतथ अभंगिय ॥

दल भरकि कंक काइर सरकि, हरखि सूर वडिदय करसि ।

कन्हा नरचद पृथिराज विनु, सुभर समर मडिय सरसि ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—त्रिविध=तीन प्रकार के, शीतल मद सुरभित । साज=मजकर । वडिदय=बढी । श्रवाज= श्रवाज । वज्जि=बजी । भेरि=वाद्यविशेष । सुर=स्वर । रुज्ज=रुँधी हुई । कुँकार=भकार, गुनगुनाहट । पौर=चँवर । मोरह=मोह, सेहरा, मजरी । तुतवर=नवीन । वन= नी । तुक्खार=घोडे । त्रिमगीय= तीन बलखाते हुए । रत्तो=लीन । भगकि=भङ्का, मडकना । कक=युद्ध । काइर=कायर । सरकि= सरकना, खिसकना । वडिदय=बढ गया । करमि=कर्षण, खींचातान, स घर्ष ।

अर्थ:—सोमेश्वर की सेना ने वसन्त का रूप धारण किया । उसका चलना त्रिविध पवन के समान हुआ । शीत रूप में जाकर शत्रुओं के हृदय को प्रकपित किया और मंद-मद भूमती हुई वह चलने लगी एव सुगन्धित रूप में यश सौरभ फैलाया । उसके प्रयाण से चारों ओर नाद फैल गया और भैरी के स्वर ने कोकिल के स्वर का काम किया । हिलते हुए चँवरो की ध्वनि ऐसी लगी जैसे रूँधे हुए भँवर के गुंजार-ध्वनि हो । बहादुरों के सिर पर वँधे हुए मौडों (सेहरा) ने नवीन मजरियों की शोभा पाई, उस समय त्रिभगी रूप में घोडे नाचने लगे । वीर सोमेश्वर रण में इस प्रकार लगा था, जैसे अमर वीर भीम महा-भारत युद्ध के समय देखा गया था । उसके आतक से शत्रु-सेना भयभीत हो गई । कायर युद्ध से भागने लगे । बहादुरों में हर्ष और सघर्ष बढ़ा । पृथ्वीराज के न होते हुए भी नर-नाहर पीर कन्ह ने उस समय आगे बढ़ कर श्रेष्ठ युद्ध की रचना की ।

जडिन जीव य जम, कम्म तडिन जम पन्ड्यै ।

सुकव दुक्व जय अजय, लोभ माया तन तन्ड्यै ॥

काल कलह सप्रह्यो, मोह पजर आलुद्वौ ।

मुकति मग्गु सुभयोत, ग्यान अतह वय सुद्वौ ॥

प्रतिदयव अय जमह जुगति, मुगति कम्म सह उद्वरे ।

केवल मुंधर्म छत्रिय तनह, कन्ह कक जौ सुद्वरे ॥ २० ॥

शब्दार्थ:—जडिन=निम दिन । जीव=प्राणी । य=इम तद । जम=जम पाता है । कम्म=कर्म ।

तव ।=उभा दिन । तम=यमगत । पन्डे=पीडे । तन्डे=तरामना, टेना । आतुदौ=उलझा । मग्गु=

मार्ग । सुम्भयौन=नहीं सूझा, नहीं देख सका । अतह=अत में । वय=कैसे । सुद्धौ=शोध सकता है ।
 श्रव=जल । जंमह=जन्म । जगति=रचना । भुगति=भक्ति । क्रम्म=कर्म । सह उद्धरै=सब उद्धार पाते
 हैं । तनह=का । कक=युद्ध । सुद्धरै=सफल हों ।

अर्थ:—युद्ध रत कन्ह कहने लगा— प्राणी जिस दिन से जन्म लेता है, उसी दिन से उसके पीछे कर्म, यम, सुख-दुःख, जय-पराजय, लोभ, माया आदि लग जाते हैं और उसे छेदते हैं । काल के कलह में पड़कर उसका तन मोह में उलझ जाता है । इसी से उसे मुक्ति मार्ग नहीं सूझता और अंत में भी वह किसी प्रकार ज्ञान की खोज नहीं कर पाता । इस जन्म की रचना जल में पड़े हुए प्रतिविंब के तुल्य है (अर्थात् आत्मा परमात्मा का प्रतिविंब है, परमात्मा वास्तविक और आत्मा छाया रूप में है) । भक्ति ही सब कार्यों का उद्धार कर पाती है, किन्तु कृत्रियों का एक मात्र धर्म युद्ध में सफलता प्राप्त करना ही है ।

सज्जि सकल सन्नाह, दाह जनु दंग लपट्टिय ।
 छुट्टिय पट्टि नयनं, द्रुवन दल दिक्खि दपट्टिय ॥
 सुमरि सहाइक देवि, थडय दंढुभी गयनं ।
 तेगवेग भूमभमी, मच्चि आरिद्ध भयनं ॥

फुलधार थार धर कन्ह पर, करवर छुट्टिय छह घरिय ।
 पग सट्टि नट्टि भीमग दल, वल अभूत कन्हह करिय ॥ २१ ॥

शब्दार्थ:—मनाह=कवच । दाह=दावारि । दंग=दगे में, युद्ध में । लपट्टिय=लिपटी पट्टिनयनं=
 आँखों की पट्टी । द्रुवन=शत्रु । सुमरि=स्मरण किया । दंढुमी=दु दूमी, नगाड़ा । गगन=आकाश
 में । तेग=तलवार । वेग=वेग के साथ । भूमभमी=भनभनाई । आरिद्ध=भड़, वार । मयनं=
 मयानक । फुलधार=पैनीधार । धर=घड़, काया । करवर=वलवान हाथों से । घरिय=घड़ी तक ।
 पग=कदम । सट्टि=साठ । नट्टि=मगा । भीमग=भीम का । अभूत=अदभुत ।

अर्थ — कवच धारण किये हुए सब ऐसे दीख पड़ते थे, मानो युद्ध स्थल में दावा-
 ग्नि की लपटे धधक पड़ी हों उसी समय कन्ह के आँखों की पट्टी जोली गई और
 वह शत्रुदल को देखते ही झपट पड़ा । उसने अपनी साथ देने वाली देवी का
 स्मरण किया । जिससे आकाश मण्डल मंडुन्डुभी वजने लगी और भयानक युद्ध

मच गया। वीर कन्ह की काया पर शुत्रुओं के चलवान हाथों से तलवार की तीखी धार पड़ती रही। किन्तु वीर कन्ह के अद्भुत बल प्रदर्शित करने से चालुक्य भीम की सेना साठ कदम भाग कर पीछे हट गई।

कहर भगर सम खेल, ठेल सेलणि ठेलिज्जहि ।
 इक्क धुक्त धर दुट्टि, इक्क वत्थनि मेलिज्जहि ॥
 इक्क कमंध उठन्त, इक्क अंतन आलुज्जहि ।
 इक्क हत्थ पग खिरहि टिक्कि खग-पग विनु भुज्जहि ॥
 तरफरहि इक्क धर सीन जुनु, रनु रवन्न छत्रिनि कर्यउ ।
 घन घाइ घुंमि घट धुक्कि धर, इमि सु जुद्ध कन्हह मिर्यउ ॥२२॥

शब्दार्थः—कहर=विघ्न । भगर=एक प्रकार का खेल, जिसमें नाट्यकार प्रत्येक प्रग को कटा हुआ अलग अलग गतलाता है । ठेल=ठिलकर । सेलणि=बछों को । ठेलिज्जहि=ढकेलता, चलाता । धुक्त=लुडकता । दुट्टि=टूट फूट कर, फट कर । वत्थनि=बाहुपाश । मेलिज्जहि=डालता, गुथता । कमंध=रुण्ड । अतन=अतद्वियों में । आलुज्जहि=उलभता । ठिक्कि=टेक कर । खग=खड़ । भुज्जहि=जूभता, सिद्धता । रनु=रण । रवन्न=रण, खेल । घन=निशेप । घाई=घात । घु मि=भूमने लगा । घट=शरीर । धुकि=लुडना । मिर्यउ=मिडा ।

अर्थः—उस समय विघ्न स्वरुपी भगर के समान खेल कन्ह द्वारा ठन गया, वीर उठा र कर बर्छा चलाने लगे । कोई वीर कटकर पृथ्वी पर लुडक जाता था और कोई बाहुपाश में गुथ जाता था, कोई बिना सिर के उठता था, कोई अतद्वियों में उलभ जाता था, किसी का एक हाथ और एक पैर फट जाता था, कोई बिना पैर ही तलवार टेक कर भिड जाता था और कोई मन्ड्यी की तरह तडफडाता था, ऐसी क्षत्रियों में उसने खेल रचा, अत में विशेष घावों के कारण घायल होकर उमका शरीर भूमता हुआ पृथ्वी पर लुडकता मिडाई दिया । इस प्रकार वह वीर कन्ह युद्ध-स्थल में मिडा ।

किंवा दनि विनु दत, मुज्ज गीमनि विनु दयनि ।
 ह्य भयनीय विनु नरणि, येनभ्यमह किंभू यनिय ॥
 सुया विनु शीयनाल बाल वर विनु नदिं टिकिवय ।
 पल्लारी पत परि, पर कन्हहभय भिन्निवय ॥

क्यंती सु किति भुम्मी अचल, सचल सस्त्र सह भ्रुगुरिय ।

मय मंतमंत महि यों डुरिय, मनहु वाइ ब्रच्छह गुरिय ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—क्रियव=र दिया । दति=हाथी । दत्त=दात । क्यनिय=किये । हय=बोझे । नरथि=नर, सवार । म्यमह=भीम की । भ्रुगुरिय=भीमी, कम । खुग्घा=नुधा । वाल=वालाएँ, अत्सराएँ । वर=पति । पलहारी=पलचारी । पलपूरि=पल की पूर्ति कर । मय=मयानक । मिक्खिय=मेष । क्यंती=की । किति=कीर्ति । सचल=चचल । भ्रुगुरिय=भाड़ दिये । मयमत=मतवाला । मत्त=हाथी । डुरिय=लुडक गये । मनहु=मानो । वाइ=वायु । ब्रच्छह=वृक्ष । गुरिय=लुडक गये ।

अर्थः—वीर कन्ह ने हाथियों को दंत, योद्धाओं को शीश, और घोड़ों को सवार विहीन कर भीम की सेना को कम कर दिया, काल को लुधा विहीन कर दिया । उस समय अप्सराएँ वर विहीन नहीं दिखाई पड़ी । पलचारियों के पल की पूर्ति करता हुआ वह बहादुर कन्ह भयानक आकृति का बन गया । चंचल शस्त्रों से शत्रुओं को मार कर पृथ्वी पर अपनी कीर्ति को अमर कर दिया । उस मतवाले के द्वारा हाथी इस-प्रकार पृथ्वी पर लुडक पड़े, जिस प्रकार हवा के कारण वृक्ष गिर पड़ते हैं ।

रिद्धि सिद्धि वित्थुरिय, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय ।

श्रोनि सलिल वडि चलिय, मरण मन किंक्कन जुट्टिय ॥

कमल सीस वहि चलिय, नयंन अलि वास सुवासिय ।

जंघ मकर कर मीन, कच्छ खुपरि खग त्रासिय ॥

पोयंनि अंत सेवाल कच, अंगुलि-कर-पग मूरंग भरि ।

चहुवान सूर सोमेस रण, भीम भयानक जुद्ध करि ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—वित्थुरिय=विस्तृत । लुत्थि=शत्रु । अहुट्टिय=अहगई, लग गई । श्रोनि=श्रोणित ।

सलिल=जल । वडि चलिय=वाढ पर आगया, वढ चला । किंक्कन=ककाल, शरीर । जुट्टिय=जुट पडे ।

अलि=मवरो । वास=सौम, सुगध । सुवासिय=वासना, यश सौम । कच्छ=कच्छप । खुपरि=खोपड़ी ।

वासिय=तरासी हुई, कटी हुई । पोगनि=पद्मलता, या कुमोदिनी, अत=अतई । सेवाल=काई ।

कच=केश, भ्रुग=भ्रु गरी (छोटी मच्छिया) । भरि=कटी हुई । रण=रणस्थल । जुद्ध=युद्ध ।

अर्थः—कन्ह के पश्चात स्वयं चाहुआन नरेश सोमेश्वर ने रणस्थल में भीम क साथ भयानक युद्ध किया । उस समय रणस्थल में मृतकों के ढेर इस प्रकार लग गये

मानो ऋद्धि सिद्धि का विस्तार हुआ हो । मरने का संकल्प कर कंकाल युद्ध में जुट पड़े । जिससे शोणित की सरिता वाढ की भँति वह चली । उरा समय वहते हुए शीश कमल की, नेत्र भ्रमरों की, यश-सौरभ सौरभ की, जघा मकर की, हाथ मीन की खड्ग से काटी हुई खोपड़ी कच्छप की, आंतड़ियाँ पद्मलता की, केश-काई की और कटी हुई हाथ पैर की अंगुलियाँ भंगुरी (छोटी मच्छिये) के समान शोभित होने लगी ।

दोहा

हय गय जुद्ध अनुद्ध परि, वहिग सार असरार ।

मानो जालुग अत को, आनि सपत्तौ पार ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—अनुद्ध=यनउर्ध्व, नीचे, जमीन पर । वहिग=वह गया, चल पडा । सार=लोहा । असरार=बुरी तरह । जालुग=जाल, पाश । अत को=यमराज का । सपत्तौ=आ पईचा, । पार=सीमा, छोर ।

अर्थः—लोहे से लोहा बुरी तरह टकराया जिससे हाथी घोड़े धराशाई हो गये । ऐसा घात होने लगा मानो यमराज की जाल-पाश का छोर समाप्त होने आगया हो ।

कवित्त

सोमेसुर अरि रूर, ढाहि दथ नै वर वानै ।

(ज्यौ) नल कृवर मनि प्रीव, जमल भज्या तर कान्हें ॥

वे सराप नारद प्रमान, दरसन हरि लद्विय ।

उत्तमग उत्तरै, सार कट्टहैं वर वड्डिहय ॥

त्रिघघात घात मत्तौ कलह, असुर स-सुर मत्तौ महन ।

कट्टहैं सु रत्न किन्तीय मयि, सु कवि चद किर्त्तौ कहन ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—अरि=बदर । रूर=शूर, शूर वीर । राहि द्यनै=रहा दिये । वानै=मात्र । वर=साज-धारी । जमल=यमल, युगल, दो । भज्या=मान दिये तोड़ दिये । तर=तरफ, उत । कान्हें=कण ने । वे=वे । सराप=बाप । लद्विय=पात किया । उत्तमग=भिय । उत्तरै=उत्तम पर, उगने पर । कट्टहैं=निहाला । रर=येष्ट । वड्डिहय=वृद्धि की । त्रिघघात घात=उग तरफ का घात । मत्तौ=मनग्या । ग=मदित । सर=देवता । महन=मयन । कट्टहैं=निहात दिये । किर्त्तौ=कर्त्त । किन्तौ=कहा ता ।

अर्थः—सोमेश्वर डट कर श्रेष्ठ साजधारी बहादुरों को इस प्रकार गिरा दिया, जिस प्रकार कृष्ण ने नल कूबर और मनीषीव नामक दो वृद्धों को तोड़ दिया था (उखेड़ दिया था) । उन वृद्धों ने नारद का श्राप मान कर हरि के दर्शन प्राप्त किये, किंतु इन वीरों के सिर कट जाने पर भी लोहा चलाने में वृद्धि की । बुरी तरह के आघात से उनकी कलह-मंत्रणा, देव-दानवों के समुद्र-मंथन की भांति बुरी तरह के आघात की मंत्रणा थी, उन्होंने रण सिंधु का मंथन कर कीर्ति रूपी रत्न को निकाल लिया । कवि (चंद्र) उसका कहीं तक वर्णन कर सकता है ?

समर समद भीमंग, मद्धि वड़वानल राज ।
 चाहुवान चालुक्क, रोस जुट्टे वल साज ॥
 दल दच्छिन जदु जाम, कलप अतीकर कुप्यौ ।
 ता मुखे खंगार, सार अग्गी धर रुप्यौ ॥
 विरचे कि महिस वलिवंड वल, दल समूह चौदंत हुव ।
 त्रिप काम जाम डक जहर भर, वहर रूप पिवखे ति दुव ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—समद=समुद्र । भीमंग=भीम और उसके साथी । मद्धि=वीच में । राज=राजा सोमेश्वर । रोस=क्रोध करके । जुट्टे=जुटपड़े । वल माज=वल को सजाते हुए, वलकी वृद्धि करते हुए । दल दच्छिन=सेना के दक्षिण पार्श्व से । जदुजाम=जामराज यादव । कलप=कल्प । अतीकर=ग्रामराज । कुप्यां=क्रोध किया । तामु-वखै=उसका सामना करने को । खंगार=नाम विशेष । सार अग्गी=लोहाग्नी । धार=धारण करके । रुप्यौ=रुप गया, डट गया । विरचे=विरचना, जोश दिलाना, प्रचारना । महिख=महिष । वलिवंड=वलिवड, वलवान । दल समूह=मेन्य समूह । चौदंत=मस्त हाथी (दात से दात मिलाते हैं उसे चौदंत कहते हैं) । हुव=हुए । जाम=जामराय । इक्क=अकेला । भर=भंडी । वहर=एक प्रकार का खेल (जिममें मारकाट का दृश्य बतलाते हैं) । पिवखैति=देखा गया । दुव=दूसरा, विपत्ती ।

अर्थः—युध्द-सिंधुरूपी भीम और उसके साथी थे । उनके मध्य वाइवाग्नि रूपी राजा सोमेश्वर था । उस समय चाहुआन और चालुक्यवीर शक्ति की वृद्धि करते हुए क्रुद्ध हो भूम पड़े । यह देख कर जामराय यादव ने मृत्यु समय को सिध्द करने के लिये चाहुआनी सेना के दक्षिण पार्श्व पर जा कर क्रोध किया । उसका सामना करने के लिये लोहाग्नि वरसाने वाला चालुक्यकी सेना का वीर खंगार डट गया । उस समय वे दोनों वीर मेसे दिख पड़े मानो दो वरिवड महिष एक दूसरे पर शक्ति आजमाने के

लिये जोश दिला रहे हों। था उस दल समूह में वे (मतवाले हाथी) चौन्त हो गये हों। अपने स्वामी के काम के लिए अकेला जामराय शत्रुओं को जहर के समान दिखाई देता था। उसका सामना करने वाला विपत्ती भी वहर खैल करने वाले (एक प्रकार का खैल जिसमें मारकट का दृश्य दिखाया जाता है) की भांति साक्षात् रूप में दिखाई दिया।

गाथा

य लगगै रण सूरं, मत्ते त्रिखभ रोस रंगाई ।

गज्जै धर खुर खुदै, तक्कै घाइ अप्प अग्गाई ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—य=ऐसे, इस प्रकार। लगै रण=युद्ध में लीन हो गये। सूर=बहादुर। मत्ते=मतवाले। त्रिखभ=वृषभ। रोस=सक्रोध। रंगाई=रगे हुए, सने हुए। गज्जै=गर्जना करते हुए। खुर=पैर की पुतली। खुदै=खनता। तक्कै=देखते हैं। घाइ=वार। अप्प=अपने। अग्गाई=मामने वाले पर।

अर्थः—वे बहादुर इस प्रकार युद्ध में लग गये, जिस प्रकार क्रोध में सना हुआ मतवाला वृषभ (हुँकारता) टांडता हुआ पैर से पृथ्वी को खनता है और वार करने के लिये अपने सामने डटे हुए विपत्ती की तरफ देखता है।

दोहा

अमर वर पनग असुर, पिक्खि सहर्षित नैन ।

सु मन ससंभ्रम पिक्खि क्रम, सुमन स त्रष्टिय गैन ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—अमर=अमर, देवता। पनग=मर्ष। असुर=राक्षस। पिक्खि=देख। सहर्षित=प्रफुल्लित। सु=अपने। क्रम=क्रम। त्रष्टिय=वरमाये। गैन=अगन में, आकाश में।

अर्थः—देवता, पृथ्वी के निवासी नर, नाग और दानवों के नैत्र उन वीरों को देखकर प्रफुल्लित हो गये और उनके शुभ कर्मों को देखकर सब मन से भ्रम में पड गये तथा आकाश-मंडल से पुष्प वृष्टि होने लगी।

सघन घाइ घु मत विघट, खिलेकि पणग मत्र ।

विम भोग डम विम सवल, सक्ति नटी जुग जत्र ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—सघन=गहरे। घाइ=घाव, चोट। घु मत=झमने लगे। विघट=दोनो के शरीर। खिलेकि=खींचे हुए। पणग=पनग, मर्ष। विम भोग=विष में भंग हुए, विष पूर्ण। डम=डम। सक्ति=शक्ति। जुग=युद्ध। दोना के लिये। जत्र=जत्र।

अर्थः—उन दोनों वीरों के शरीर गहरे घावों से लथ-पथ हो इस तरह भूमने लगे मानो मंत्रों द्वारा कीलित (कावू में किये हुए) सर्प हों। वे दोनों विप पूर्ण थे। सबल शत्रुओं को उस विप से डस लेते थे। उन दोनों के विपोपचार के लिये यंत्र-शक्ति काम नहीं कर पाती थी।

कवित

वाम अंग सजि जग, वलिय वलिभद्र विरचि रण ।
 सेत समर गज सेत, सेत गज मंप करिणि गन ॥
 सेत ह्यनि गजगाह, घट घुंघर घनघोर ।
 वक्खर-पक्खर जीन, सार दद्धुर दल रोरं ॥
 गज गाज वाज नीसान धुनि, अति उम्भर दल जोरवर ।
 वजि-लाग राग स्यंधू सुधुनि, करण स उत्थल पथल धर ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—वामअंग=वाम पार्श्व । वलिय=वलवान । विरचि=प्रचारे । सेत=श्वेत । गजभूप=हाथी को ढक्ने की भृज । करिणि=एक प्रकार का राज चिन्ह । ह्यनि=घोड़े । गजगाह=घोड़ों के जीनपर वनघेनु के केशों के बने हुए हते हैं । घट=गजघटा । घुंघर=घुंघरु । वक्खर=नक्तर । पक्खर=पाखर । सार=लोहा, गस्त्र । दद्धुर=दादुर । दल=सेना । रोर=शोरगुल, चहल-पहल । नीसान=नक्कारे । उम्भर=उमड़ना । वजि-लाग=वजने लगे । स्यंधू=सिंधु । करण=करने के लिये । उत्थल पथल=उथल पुथल ।

अर्थः—वाम पार्श्व में युद्धार्थ सज्जित वीर वलिभद्र कळ्याहा रण में शत्रुओं को ललकारने लगा। उसके चँवर, हाथी, भूल, किरणियों, (एक प्रकार का राज चिन्ह) घोड़े और गजगाह श्वेत वर्ण के थे। उसके गजघट और घुंघरु, वक्खर, पाखर, जीन और शस्त्रों आदि की विविध ध्वनि ने सेना में दादुर-स्वर की और हाथियों की गर्जना तथा नक्कारों के नाद ने गर्जना का एव सबल सेना ने उमड़े हुए मेघ का आभास कराया। पृथ्वी को उथल पुथल करने के लिये ही उस समय सिंधु-राग में वाद्य-ध्वनि होने लगी।

दोहा

पावस मावस निसि अनी, सजि सारंगी आड ।
 खिभिरि-खेत घन घाड मिलि, जानिकु लग्गी लाड ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—मावस=अमावस्या । अनी=येना । आइ=आया । विभिरि=सदेइते हुए । सेत=रणक्षेत्र । घनघाट=विशेष आघात करते हुए । मिलि=मिल गये, भिड़ गये । जानिकु=मानो । लम्गीलाइ=आग प्रज्वलित हो गई हो ।

अर्थः— उधर से वर्षा के बादल या अमावस्या की रात्रि के सामान सेना सजाये हुए चालुक्यकी वीर सारंगी उसके (वलिभद्र के) सामने आ उपस्थित हुआ । भयकर अघात कर वे दोनों वीर एक दूसरे को रण-क्षेत्र में खदेड़ते हुए इस प्रकार भिड़ने लगे मानों अग्नि प्रज्वलित हो गई हो ।

- दोहा -

दन्दिन्न पन्दिन्न वाम दल, वृत्ति अनुद्विय सार ।

गोल गहर गञ्जी अनी, सोमेश्वर अरिभार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—वृत्ति=वृत्त पालन करने वाले, प्रतिज्ञा करने वाले । अनुद्विय=उलभ पड़े । सार=लोहा, शस्त्र । गोल=ग्रग रत्नक सेना । गञ्जी=गर्जना की । मार=दबाव ।

अर्थ— इतने में दक्षिण पश्चिम और वाम पार्श्व से प्रतिज्ञा बद्ध विपक्षियों के शस्त्रों से उलभ पड़ने के कारण गोल सेना (सोमेश्वर की अ गरत्नक सेना) पर चालुक्यकी सेना गर्जना करने लगी और सोमेश्वर पर विपक्षियों (चालुक्यों) का दबाव पडा ।

गाथा —

वञ्जै रण रण तूर, गञ्जै गहर मूर खल चूर ।

मडै नजरि करूर, छडै मोह मरण सा मूर ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—वञ्ज=वज्रवाये । रण=रणस्था मे । रणतूर=रणतूही, रणवाय । खलचूर=टुटों का चूर्ण करल जाने, टुटों को पीलने जाने । मडै=की, डागी । नजरि=नजर, नगि । करूर=मूर । मोह=मग्न । मरण=मग्न के लिये । मा=न । मूर=माराद ।

अर्थ— यह देवदर सोमेश्वर ने युद्ध स्थल में रण तुरही (रणवाय) वज्रवादी और टुटों का चूर्ण करने वाले उनके पशुदुर नाभत भी गभीर गर्जना करने लगे और विपक्षियों पर नजर नगि कर उन वीरों ने मृत्यु के लिये ममत्व छोड दिया ।

साटक

पिक्खेयं सोमेस गुज्जर धनी, मुचकुंद निद्रा तयं ।
जलधेयं गजाल कोपित वलं, हालाहलं नैनयं ॥
कोवंडं करवान कर्णित दलं, अज्जैन आयातयं ।
श्री वीर चहुआन वानति वलं, चालुकक संघातयं ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः— पिक्खेय=देखता । गुज्जर(वरी)=गुर्जरेश्वर को श्रोत । मुचकुंद, एक राक्षस । निद्रातय=निद्रा तज कर । जलधेय=समुद्र को । गजाल=गजने वाला, गर्व खर्व करने वाला (राम) । हालाहल=हलाहल । कोवड=कोटड, धनुष । कर्णित दल=कर्ण की सेना । अज्जैन=अर्जुन । आयातय=आतताई, शत्रु । वानति=वान के । वल=वल पर । चालुकक=चालुक्यों । संघातय=सघर्ष किया, वार किया, युद्ध छेड़ा ।

अर्थः— उस समय सोमेश्वर ने गुर्जरेश्वर की श्रोत इस प्रकार देखा, जैसे निद्रा तजने पर मुचकन्द ने काल यवन को देखा था, या क्रोध करके वल पूर्वक समुद्र का गर्व खर्व करने वाले राम ने समुद्र की ढीठता पर हलाहल दृष्टिपात किया था । अथवा धनुष वाण धारण करने वाले अर्जुन ने आततायी कर्ण के दल पर दृष्टि डाली थी । उस वीर चाहुआन नरेश ने अपने वाण के वल पर चालुक्यों का सामना किया ।

कवित्त

हालाहल वित्तयौ, सार मत्तौ भोलाहल ।
जुग्गिनि जय जय जपहि, पस्सु पंखिनि कोलाहल ॥
धर परंत दुरि धरणि, उत्तमगति हक्कारहि ।
भरभरति खग्गाह, वीर डक्कनि डक्कारहि ॥
महि मचि महूरत मरण रन, सह जयज्जय सुर करिय ।
चहुआन सूर भोमेस रण, खड खड तनु भरि परिय ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः— हालाहल=हलाहल, जहर । वित्तयौ=नीता, छाया, कैला । सार=लोहा । मत्तौ=मतवाले का । भोलाहल=ज्वाञ्जल्य मान । जुग्गिनि=योगिनियें । धर=घड़, मण्ड । दुरि=दलकर, नमकर उत्तमगति=उत्तमंग, सिर । हक्कारहि=चल पड़े, उड़पड़े । भरभरति=वगसने लगा । खग्गाह=खडग । वीर=

बावन ही वीर । डक्कनि=डाइनी । डक्कारहि=वृत्त होगई । महि=पृथ्वी । मचि=मचगई, छागई ।
महूरत=मुहूर्त । मरण=मृत्यु । रन=रणमें । सह=शब्द, आवाज । तनु=शरीर । भरि परिय=भर पड़ा ।

अर्थः—मतवाले सोमेश्वर के ज्वाज्वल्यमान लोहे का जो जहर था, वह विप-
क्षियों में पूर्ण रूप से फैल गया । योगिनियों जय २ कार करने लगी । पशुपक्षियों
का कोलाहल होने लगा । वीरों के शव झुक २ कर पृथ्वी पर गिरने लगे और
उनके सिर कट २ कर उड़ने लगे । तलवार रक्त-वर्षा करने लगी । उस शोणित को
पीकर बावन ही वीर और डाकिनियों वृत्त होने लगी । इस युद्ध में एक मुहूर्त तक
मृत्यु की विभीषिका छा गई, देवतागण जय २ कार करने लगे, ऐसा युद्ध करता हुआ
वीर चाहुआन नरेश (सोमेश्वर) रणस्थल में खंड २ होकर गिर पड़ा ।

हय गय नर भर परिय, भिरिय भारत्य समानं ।

सोमेस्वर चितयौ, मरण, निश्चै रण धानं ॥

रत्त रग सह अंग, जग सारह उममारै ।

हक्कि मार धकि सार, भु मि भुकि भुंड सु भारै ॥

कलहत कक अनभूत हुव, उडहि हस हंसहि मिलहि ।

तन तुट्टि रुधिर पल हड्ड मनि, किक्क कर्मव उठि रण खिलहि ॥३७॥

शब्दार्थः—हयगय=हाथी घोड़े । रत्त रग=रक्त रजित । जग=युद्ध में । साह=लोहा, शस्त्र ।
उममारै=भाटा । हक्कि मार=हु कार करता हुआ । धक्कि=बढाया । सार=लोहा, शस्त्र । भु मि=
भूमता हुआ । भुकि=भूमता हुआ, टेढा होता हुआ । भु ड=समूह । भारै=भाड़ दिये । कलहत=
कलह की अंतिम सीमा तक । रुक=युद्ध । अनभूत=अदभुत । हुव=हुआ । हस=प्राण पखेरु । हसहि=
सूर्य मण्डल में । तुट्टि=टूट कर, टूट ग । हड्ड=अस्थियाँ । किक्क=कितने ही । कर्मव=क ड । उठि=
खड़े हो गये । मिलहि=मिलन दीख पड़े ।

अर्थः—अन्तिम समय में सोमेश्वर ने युद्ध-स्थल में मरना निश्चय कर महाभारत
युद्ध के वीरों की तरह भिड पड़ा । जिमसे हाथी घोड़े और कितने ही सैनिक
धराशायी हुए । वरु रक्त रजित होकर भी युद्ध में शस्त्र चलाने लगा । उसने हु कार
करते हुए, भूमते हुए और झुकते हुए लोहे को चला कर शत्रु-समूह को गिरा (काट)
दिया । उस समय मघर्ष ही अन्तिम सीमा तक युद्ध टिंडा । जिमसे वीरों के प्राण

पखेरू उड़ उड़ कर सूर्य मंडल में मिल गये । वीर-काय खण्ड खण्ड हो रूधिर पल
और अस्थियों में सन गये । कितने ही रूण्ड युद्धस्थल में खड़े प्रसन्न दिखाई पड़े ।

वाज नखिल सोमेश, सहस्र वर इक्क प्रमान ।
तिन मञ्जह पचास, वीर भारथ भर जान ॥
तीनि तीस खट्ट परै, परथौ सोमेशुर खेतं ।
गिद्ध सिद्ध वयताल, इनहि पुजयो मन हेतं ॥
सद्धीस मुक्ति अद्भुत जुगति, हंसु हकि हंसहि मिल्यउ ।
सोमेश करी सोमेश गति, पचतत्त पंचह मिल्यउ ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ—वाज=वाजि, घोड़ा । नखिल=बढ़ाया । सहस्र=सहस्र । इक्क=एक ही । प्रमान=समान ।
तिन=उन । मञ्जह=में । पचास=पचास । भर=भर, योद्धा । तीनि^३ तीस^{३०} खट्ट^६=गुन्वालि^{३९} ।
परै=पड़ गये । खेत=गणक्षेत्र में । इनहि=इनको । पूजयो=पूजा की । हेत=प्रेम से । सद्धीस=साधना
की । जुगति=युक्ति से । हसु=प्राण पखेरू । हकि=उड़ कर । हसहि=सूर्य में । मिल्यउ=मिल गया ।
सोमेश गति=गति को प्राप्त हुआ, सोमेश्वर ने चन्द्र मण्डल में गति प्राप्त की । पचतत्त=पचतत्व ।
पचह=पाचों में । मिल्यउ=मिल गया ।

अर्थ:—सोमेश्वर ने अपने समान ही एक सहस्र घुड़ सवार साथियों को इस युद्ध
में बढ़ाया था, उनमें से पच्चास वीर महाभारत के योद्धाओं के समान थे ।
उनमें से ३६ योद्धा धारशायी हो गये और राजा सोमेश्वर युद्ध क्षेत्र में पड़ गये ।
गिद्ध-सिद्ध वैतालादिने उसकी प्रेम पूर्वक मन से पूजा की । उसने अद्भुत युक्ति से
मुक्ति का साधन किया । उसका प्राण पखेरू सूर्य में जा मिला । सोमेश्वर ने चन्द्र-
मंडल में जाकर गति प्राप्त की । उसका पंच भौतिक शरीर पचतत्व में मिल गया ।

- दोहा -

जुभिन्न परथौ सोमेशुरण, डोला चालुक राइ ।
दुबनि सेन मारि धर परे, वज्जिवत्त खग चाड ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ:—जुभिन्न=युद्ध करता हुआ । डोला=डोली में ढाला गया । दुबनि सेन=दीनों मेना के ।
मारि=भड़ कर कर । वज्जिवत्त=वज्रतुल्य । खग=खड्ग । चाड=चादर, बाहना करने वाले ।

अर्थः—उस प्रकार युद्ध करना हुआ सोमेश्वर युद्ध स्थान में पाया गया। चालुप्त्य नरेश घायल होकर डोली में उठाया गया। तबतब तक ही चला गले दोनों सेनाओं के कितने ही वीर निर कर लड़ लड़ हो गये।

नये भ्रम्य नृप रक्षिते, तव किरि किरि ते जुम्भ ।

चतुरानन च्यता भई, नर भारता ष्वनुम्भ ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—भ्रम्य=गामत, गेतर । जुम्भ=यद । ।।गान । ।।, गजना । च्यता=गिता । भई=हुई । नर=मनुष्य, वीर । भारता=यद । ष्वनुम्भ=अमान, अमान, अ न ।

अर्थ—कवि कहता है — युद्ध में मारे गये दोनों वीरों के वीर, रण दक्ष थे। यदि राजाओं को ऐसा युद्ध फिर करना होगा तो बहुत खोज कर ऐसे नये वीर रखने होंगे। स्वयं विधाता के मन में भी चिन्ता उत्पन्न हो गई कि अब जो वीर रहे हों वे उनके समान युद्ध-दक्ष नहीं (अर्थात् ऐसे युद्ध के लिये वीरों की रचना करने का पुनः श्रम करना होगा)।

गाथा

जा मुक्ती जोग्यद, कालकाल भ्रम भ्रमाई ।

सा मुक्ती सोमेस, इक्क छिन लम्भिय राज ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ—जा मुक्ति=जिम मुक्ति के लिये। जोग्यद=योगी पुरुष। कालकाल=कितने ही काल तक। भ्रम=भ्रमण करते हैं। भ्रमाई=भ्रमित होकर। सा=उम। इक्क=एक ही। छिन=क्षण में। लम्भिय=प्राप्त की। राज=राजा ने।

अर्थः—जिस मुक्ति के लिये कितने ही काल तक योगी पुरुष दुविधा में पडकर भ्रमण करते रहते हैं। उस मुक्ति को राजा सोमेश्वर ने युद्ध में एक क्षण में ही प्राप्त कर ली।

भु मी भरणि भिरण, कलय कर कत्यि ककेव ।

जै जै जपि जगत्त, है है नभ सदि सुरयाई ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—भु मी भरणि=भूमि भर्ता, पृथ्वी का पोषण कर्ता। भिरण=भिड़कर। कलय=सुदर। कर=झी। कत्यि=रयाति। ककेव=युद्ध की। है है=ग्रहा २ (वाह २) या हर्ष नाद। नभ=आकाश। सदि=रहा। सुरयाई=देवताओं ने।

अर्थः—उस भूमि-भर्ता (राजा सोमेश्वर) ने लड़ कर युद्ध की प्रसिद्धि को सुन्दर कर दिया । उसकी जय जय कार संसार में होगई और आकश मंडल से देवताओं ने भी वाह वाह स्वर किया ।

दोहा

पवन गवन वती उड़ी, सुनि पृथीराज नर्युंद ।

रोस ज्वाल अंतर ज्वलिय, जनु मदमंत कर््युंद ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—पवन=स्वामा । गवन=गमन । वती=वात । उड़ी=फैली । मदमत=मदमस्त । कर््युद=हाथी ।

अर्थः—सोमेश्वर के श्वासागमन की (मृत्यु की) सूचना मिलते ही राजा पृथ्वीराज के हृदय में क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो गई और वह मतवाले हाथी के समान दिखाई पड़ा ।

समिटि सकल सामंत-त्रिप, राजगुरु ढिग आइ ।

जुद्ध वत्त सह भ्यन करि, वर्नी पित्य सुनाइ ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—समिटि= एकत्रित होकर । सामत । त्रिप=राजा के सामत । राजगुरु=पुरोहित । ढिग=समीप । आइ=आकर । जुद्ध वत्त=युद्ध के समाचार । भ्यन करि=अलग २ करके, व्यौरे वार । वर्नी=वर्णन किये । पित्य=पृथ्वीराज । सुनाइ=सुनाये ।

अर्थः—राजा के सब सामंत और राजगुरु (पुरोहित) एकत्रित होकर राजा के पास आये और व्यौरेवार युद्ध के हालात वर्णन कर पृथ्वीराज को सुनाया ।

कवित्त

सुनी वत्त प्रथीराज, भुम्मि सेना अधिकारी ।

तात काज तिन प्यड, दान खोडस विन्चारी ॥

भद भद सद्धयौ, राज गति स्रव्व प्रकारं ।

द्वादस दिन प्रथीराज, भुंमि सज्य संधारं ॥

विनु भोग भोज इक्क टक करि, सु हथ दान दिय देववर ।

दुंयन्नौन कौइ देहै न को, इतौ दान जनमंत नर ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—अर=पर, वि=। भ=भार, म=माता। अर्या=यात्रा। राज-
गति=राजापों के नियमाचार। ता=ता। तय=तय। म=माता। यथा=यथा, वृण-
पत्नी। विमोग=विना विचार। नोत्र=नहीं। अर=पर, अर=पर, एकगमय। अर=पर।
साथ से। अयन्नोत्र=नहीं। अर=पर, अर=पर। तो=तो। जो=जो। जनमत=
सारे जन्म में।

अर्थः—सौमेश्वर की मनुष्य की सन्तान पृथ्वी और सेना के अतिहारी राजा पृथ्वी-
राज ने पाकर अपने पिता के पिन्ट के लिये गोउप दान देने का निश्चय किया।
उस मतवाले राजा ने राजाओं के नियम के अनुगार ही कन्याएँ जारी कार्य का
साधन कर डाला। वह वारह दिन तक भूमि पर और वृण पट्टी पर ही
सोये। भोग विलास छोड़ कर एक गमय ही भोजन करते रहे, अपने ही हाथों से
उस श्रेष्ठ देव तुल्य वीर ने दान किया। दान इतनी मख्या में दिया कि कोई भी
मनुष्य सारे जन्म में नहीं देखकता और न देखकगा।

इक्क सहस्र दिय धेन, तव्य पृथ्वी विधि धारी।

हेम स्यग खुर हेम, तोल द्वादस हिम सारी ॥

जुगति जुगति विधि न्हान, दान खोडस विस्तार।

तात वैर च्यतयो, लेन पृथ्वीराज विचार ॥

धृत मुक्कि पाग वधनु तज्यौ, सुव्रत वीर ल्यनौ विपम।

चालुक्क भीम भर भजिकै, कडौ तात उदरह सुखम ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—धेन=धेनु, गायें। तव्य=तय। विधि=विविध। धारी=धारण किया। हेम=स्वर्ण।
स्यग=सींग। हिम=स्वर्ण। न्हान=स्नान। खोडस=खोडस। तात=पिता। वैर=वदला। च्यतयो=
चिन्ता की। लेन=लेने का। मुक्कि=शोडा। पाग=पगड़ी। वधनु=गाधना। ल्यनौ=लिया। भर=
भर, योद्धा। भजिकै=नाश करके। कडौ=निमाल तूंगा। उदरह=उदर से। सुखम=सुख।

अर्थः—एक सहस्र गायें जिनके वारह २ तौले स्वर्ण से सींग और खुर बनवाकर दान
में दी। तब राजा पृथ्वीराज ने विधि पूर्वक पृथ्वी को धारण किया (सिंहासन
पर बैठा) विविध प्रकार से स्नान कर (विनिध स्थलों के जल से अभिषेक कर)

शोडष दान देकर यश का विस्तार किया। फिर पिता की मृत्यु का बदला शत्रुओं से लेने का विचार कर पृथ्वीराज ने घृतखाना तथा पगड़ी बांधना छोड़ दिया और उस वीर श्रेष्ठ ने विषम वृत्त को ग्रहण किया कि मैं चालुक्यक भीम के योद्धाओं को नष्ट करके उनके सूक्ष्म उदर से मेरे पिता को वापस निकाल कर ही रहूँगा।

दोहा

विधि विनान परिमान करि, निगम बोध सुभथान ।

तिय दक्ष्या जह धर्म सुत, कै अभिपेक नृपान ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—विधि=ब्रह्मा । विनान=विज्ञान । परिमान=प्रमाण । थान=स्थान । दक्ष्या=दीक्षा । धर्म सुत=युधिष्ठिर या चाहुत्रान वंशज धर्माधिराज । क=किया । अभिपेक=राज्याभिपेक । नृपान=राजा का ।

अर्थः—ब्रह्म विज्ञान को प्रमाण युक्त मानकर जिस निगम बोध नामक शुभ स्थान पर धर्म सुत (युधिष्ठिर या चाहुत्रान वंशज धर्माधिराज) ने दीक्षा ली थी। वहीं पर उस राजा (पृथ्वीराज) का पट्टाभिपेक हुआ ।

कवित्त

प्रकटि राज दर जोति, रंग रवनी रस गावहि ।

पाट विट्टि प्रथिराज, सव्व सामंत सुभावहि ॥

दधि तंदुल अरु दूध, सुभभ रोचन कसमीरं ।

मनौ भानं मे भानं, प्रगटि कल किरणि सरिरं ॥

दिक्खियै वाल गावहि सुरस, सप्त स्वरणि छह ग्राम गति ।

संसार भेद आभेद रति, पति प्रकति साथै सुरति ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—राजदर=राजद्वार । रंग=रंगीली । रवनि=रमणियें । रस=रसीले । पाट=सिंहासन । विट्टि=चैठकर । सव्व=सब । सुभावहि=अच्छा लगता है, शोभा पाता । दुव=दुर्वा । रोचन=गौरीचन । कसमीरं=कस्तुरी । भानं=मानू । मे=अतर । किरणि=किरण, राज चिन्ह । दिक्खियें=देखी गई । वाल=वालाएँ । स्वरनि=स्वर । छह=छः ६ । प्रकति=प्राकृत पुण्य । साथै=साधन करती है ।

अर्थ:—राजा के तारतार रंगीली रंगिणों के कारण जानि फैंस गई। वे रंगीले गीत गाने लगी। सर्व सामंतों ने सुशोभित पृथ्वीराज, भिकागनाम्बर हुआ। कभि, तन्दुल, दुर्वा, गौरोचन, कस्तुरी आदि मांगलिक वस्तुओं ने भगला तार किया गया। उस राजा के फिर पर राज बिन्दु दिग्गिणी सुन्दर सुशोभित हुई मानों एक सूर्य में दूसरे सूर्य का प्रतिबिम्ब हो। माता स्वर और बहो नामों युक्त मरम गीत गाती हुई वे बालाएँ सामारिक भेद अभेद को जानने में आ। रात और प्रकृति पुरुष (पृथ्वीराज) से सुरति साधती हुई द्विवाट पत्नी।

दोहा

लोड सपत्ते तिहि महल, जह सामत नर्यद ।

इच्छनि अचल गठि जुरि, जनु उन्द्रानी डड ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ:—लोड=लोग, जनता। सपत्ते=पहुंचे। जह=जहां। सामत नर्यद=सामत राज (पृथ्वीराज)।

इच्छनि=पृथ्वीराज की रानी इच्छनी। गठि=गाठ। जुरि=जोड़ी, दी।

अर्थ—जनता उस महल में पहुँची जहां सामत राज (पृथ्वीराज) रानी इच्छनी के अचल से गठबन्धन किये हुए इस प्रकार सुशोभित था। मानों इन्द्र और इन्द्राणी सिंहासनारूढ हों।

प्रथम तिलक सिर कन्ह करि, पुनि निड्डर रट्ठौग ।

इन अग्गह सुभ सति करि, पच्छै सव भर और ॥ ५० ॥

शब्दार्थ:—सुभसतिकरि=स्वस्तिवाचन कर। पच्छै=पीछे, पश्चात्। सव=सब। भर=यौद्धा, सामत।

अर्थ—राजा को सर्व प्रथम नरनाह कन्ह ने उसके पश्चात् राष्ट्रवर निड्डुराय ने तिलक किया। उस समय विप्र स्वस्तिवाचन करते रहे। तत्पश्चात् सब सामंतों ने भी राजा को तिलक किया।

कवित्त —

कीयो तिलकु सिर कह, पाट प्रथिराज विराजहि ।

मनहु इद अर्धग, हत्य इन्दीवर राजहि ॥

चमर सेत सोभंत, दुरहि चावदिसि सीसं ।
 मनहु भांन पर धरिय,किरणि ससि की प्रति दीसं ॥
 अवनिय बंदु लग्गौ तपन, धुवह तेज धर उद्धरण ।
 सुरतान गहन मोखन करण, बहुवीरा रस संचि धन ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—तिलकु=तिलक । पाट=सिंहासन । हत्य=हाथ । इन्दोवर=कमल । राजहि=शोभा पाता हुआ । सेत=श्वेत । दुरहि=चलना । चावदिसि=चारों ओर । प्रतिदीस=प्रत्येक दिशा से । अवनिय यदु=अवनेन्दु, अवनिपति । धुवह=शुभ, घटल । उद्धरण=उद्धार करने के लिये । सुरतान=सुलतान, चाद-शाह । गहन=ग्रहण करने को । मोखन=मोच करने को, छोड़ने को । बहु=बहुत । वीररस=वीररस । सचि=सचय किया । धन=वित्त ।

अर्थः—जिस समय पृथ्वीराज सिंहासनारूठ हुआ और कंह ने अपने हाथों से तिलक किया । उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानां पृथ्वीराज के चन्द्रमा स्वरूपी भाल के अर्द्धांग में कंह का कमल रूपी कर सुशोभित हुआ हो । श्वेत चँवर चलता हुआ राजा के सिर पर ऐसी शोभा पाने लगा मानों सूर्य पर चारों दिशाओं से शशि की किरणें फैल रही हों । वह अवननेन्दु (पृथ्वीराज) प्रखर तेज से पृथ्वी के उद्धार के लिये तपने लगा, सुलतान को पकड़ने और छोड़ने के लिये उस वीर ने बहुत सा वीररस रूपी धन का संचय किया । इसमें एक दूसरे से विरोध रखने वालों का पृथ्वीराज के प्रताप से अविरोध वर्णन किया गया है ।

कनक दंड छवि छत्र, सुम्भि चहुआन सीस पर ।
 केत रत्त ससिभान, तेज मंगल मंगल गुर ॥
 गृहसु सर्व संग्रहिग, पंच पंचौ अधिकारी ।
 चावदिसि चहुआन, दुष्ट नवग्रह वलटारी ।
 प्रज मिली आइ वड्ढ्यौ अनेंद, चंद्र छन्द चातिग रटहि ।
 पृथिमीसु सुवर दुज्जन गहन, काल व्याल कारण ठटहि ॥ ५२ ॥

पञ्जून छोंगा

(समय ३६)

दोहा

कित्ति कला कूरंभ वल, कहत चंद वरदाय ।

ज्यों पट्टन संग्राम किय, जाइ सु भोराराय ॥ १ ॥

शब्दार्थः—कित्ति=कीर्ति । पट्टन=चालुक्यों ने । जाइसु=लौटाया ।

अर्थः—चालुक्यों से युद्ध कर भोलाराय को लौटाया । चंद वरदाई उसका और कूरंभ राज की कीर्ति कला तथा उसकी शक्ति का वर्णन करता है ।

सुनी राज प्रथिराज ने, भाला रानिंग सूय ।

विरद बुलावै महवली, छोंगा सज्यौ स धूय ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सूय=सुअ, पुत्र । बुलावै=कहे जाते । छोंगा=तुरा, किलगी । धूय=शुव, अटल ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने सुना कि वीर रानिंगराय भाला के पुत्र जिसका “महावलि” विरुद था उसने सिर पर अटल “छोंगा” (तुरा) धारण किया है ।

कवित्त

छोंगाला सिर छत्र, सीस वंध्यौ पञ्जून ।

जस जय पत्त जु आनि, करै परसन सह ऊनं ॥

अपाने^१ घर वैठि^२, रीस कीनी चालुक्का ।

हीय खटक्के साल, घात संभरि वालुक्का ॥

पुच्छैव पल्ह कूरंभ को, अप्पानौ दल टारियो ।

पञ्जूनु मलयसी वीर वर, करन कूच उच्चारियो ॥ ३ ॥

प्रा. पा. १ भी का । २ भी. पा ।

शब्दार्थः—छोंगाला=छोंगा धारी । सिर=ऊपर । बंध्यौ=धारण किया । जय पत्त=त्रिजय-पत्र । पसन=प्रसन्न । ऊन=उन्होंने । अप्पाने=अपने । समरि=सुनकर । वालुक्का=वालक (काठियावाड़ की भूमि के बाल भूमि करते हैं । उसमें यह शब्द मवधित हो तो वालुकाराय वल्लमेश्वर उपाधि का

पर्याय रूप मानना चाहिए) । पुत्र-पुत्रा । पत्र-पत्र (ताम्र पत्र) । गरियो यथा क्रिया ।

अर्थ:—छोगाधारी भाला के ऊपर चढ़ाई करने का भार पञ्चीराज ही और से पञ्जूनराय को देकर उसे छत्र धारण कराया गया (सेनापति बनाया) । उसने कीर्ति और जय-पत्र प्राप्त कर सबको प्रसन्न कर दिया । अपने घर पर बैठे रहकर बालुक चालुक्य ने क्रोध (त्रैर) किया । अतः बात राजा के हृदय में नटसाल की भांति चुभी । तब क्रमशः और कन्धवाहे पल्लव को इस विषय में पृच्छा तो मालूम हुआ कि उन्होंने स्वयं अपनी गति से युद्ध करने का निश्चय कर अपनी सेना अलग करली है, और वीर पञ्जूनराय और उसके पुत्र मलयसिंह ने शत्रुओं पर चढ़ाई करने के लिये आज्ञा प्राप्त करने हेतु राजा से निवेदन भी किया है ।

दल भोला भीमग, साल चिन्तिउ सोनिगगर ।

किण कूच पर कूच, काल घेर्यौ कि कूट गिर ॥

‘चद’ मडि ओपम्म सरह राका परिमान ।

उदधि मडि जिम अनल^१, जलधि लका गढ जान ॥

दल दूत राज पिथ्यह कहिय, हक्कार्यौ पञ्जून बल ।

तुम जाइ जुरौ उपर करौ, हनौ राज भीमग दल ॥ ४ ॥

ग्रा पा १ भीं, का । २-का भीं ।

शब्दार्थ:—साल=शाला, घर, गढ । चिन्तिउ=देखा । सोनिगगर=सौनिगरे क्षत्रिय । कूट-गिरि=गिरिकूट, दुर्ग । राका=चद । दनदूत=मैनिकदूत । पिथ्यह=पञ्चीराज हक्कार्यौ=हकाला, खानाक्रिया । उपर=सहायता । हयौ=नट करना ।

अर्थ:—इतने में भोला भीम की सेना ने सौनिगरो के गृह की (संभवतः जालौर-की) ओर देखा (आक्रमण किया) और कूच करते हुए काल के समान गिरिकूट (दुर्ग) को घेर लिया । जिसकी तुलना कवि (चद) करता है—मानो चन्द्रमा शरद ऋतु से आवृत्त हो, या वाडवाग्नि समुद्र के अन्तर्गत हो । अथवा समुद्र से घिरा हुआ लका दुर्ग हो । इसकी सूचना सेनिक दूत ने आकर पृथ्वीराज को दी । तब बलवान पञ्जून को शत्रुओं की और खाना क्रिया और आज्ञा दी कि तुम जाकर सौनिगरों की सहायता करो और राजा भोला भीम की सेना को नष्ट कर दो ।

दोहा

सकल सूर कूरंभ वर, सथ लिन्नौ अप जित्ति^१ ।

समर धीर वीरत सवर, लज्जी परै न-भित्ति^२ ॥ ५ ॥

प्रा. पा० १ टि. २ । २ भी. ।

शब्दार्थः—अप=अपना । जित्ति=जितने मी । लज्जी परै=लज्जा के लिए धराशाई होने वाले ।
न-भित्ति=निर्मय निडर ।

अर्थः—श्रेष्ठ कछवाहा राजा ने अपने जितने भी वहादुर साथी थे उन सबको साथ मे लिया, वे सब युद्ध-समय धीरवीर और सबल थे । वे अपनी लज्जा के लिये निर्भयता युक्त धराशायी होने (मरने) को तत्पर रहते थे ।

चौकी भीमानी चढै, माला रानिग सथ ॥

छोगा वीर महावली, वरवीरा रस कथ्य ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—चौकी = अंग रक्षक सेना ।

अर्थः—रानिग माला के साथ भीम की अंग रक्षक सेना थी, उसमें रानिग का पुत्र महावली वीर छोगा भी था, जिसकी ख्याति श्रेष्ठ वीर-रस पूर्ण थी ।

कवित्त

चंपि काल पञ्जून, वीर भोरा भीमदे ।

कै आयौ उपरै, फुट्टि पायाल सवहे ॥

सकल सेन चम्मक्यौ, वीर भोरा उठि जग्यौ ।

मलैसीह मुख काल, हाल सम व्याल सुभग्यौ ॥

वक्कार वीर छोगा गह्यौ, सिर मंडन लिय हत्य धरि ।

आणसु सीस पञ्जून करि, समर वाल वीर सु वरि ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—चपि=ट्टाया । भोरा भीमदे=मोला भीम के । पायाल=पाताल । सवहे=थावाज करत हुया, या वाजी मारता हुया । वीर-भोरा=मोला भीम का योद्धा । सुभग्यौ=सुशोभित हुया । वक्कार=ललकार कर । सीस-पञ्जून-करि=पञ्जून के सिर पर धारण किया । वाल=वाला, अप्सरा । वीर-सु वरि=वीरों को वरण किए ।

अर्थः—पञ्जून राय ने भोलाराय के उस वीर-योद्धा (महावली छोगा) को काल स्वरूपी होकर ट्टाया, वह ऐसा मालूम हुआ मानों पाताल फोड़ कर वाजी मारने के

लिये कोई ऊपर उठ आया हो। सारी सेना अचानक चमक पड़ी, तथा वह भीम का सामत (छोगा) जाग उठा। उस समय मलयसिंह ने सागने भयकर हाल के समान देखते ही उस महाबलि भाला की स्थिति सर्प के समान शोभा पाने लगी किन्तु ललकार कर मलयसिंह ने उस (महाबली) के मिर की शोभा स्वरूपी छोगे को लेकर उसने अपने हस्तगत कर लिया। उस छोगे को पुत्र द्वारा प्राप्त कर पञ्जून राय ने अपने सिर पर धारण किया। इस युद्ध में वाला प्रो (प्रभरा प्रो) ने भी वीरो का वरण कर पाया।

- दोहा -

लै छोगा वर वीर चलि, चावक भूत्यौ हथ्य।

सात कोस ते बाहुर्यौ, वर वीरा रम कथ्य ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—चावक=चाबुक। बाहुर्यौ=लौटा।

अर्थः—विजय प्राप्त कर छोगा ले, श्रेष्ठ वीर पञ्जून चला, किन्तु मलयसिंह छोगा लेते समय अपने हाथ का चाबुक भूल गया था। अतः वह वीररम पूर्ण ख्याति करने वाला वीर, सात कोस से वापस लौटा।

पट्टन-हट्टन ममक्त ते, ले आयौ फिरि धीर।

ता पाछै बाहर चह्यौ, दल चालुककी वीर ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—पट्टन-हट्टन=हठी चालुक्यों के। ममक्तें=वीच से। ता पाछै=उसके पीछे। बाहर=मदद।

अर्थः—वह धीर वीर, हठी चालुक्यों के मध्य से पुनः चाबुक ले आया, तब उसके पीछे वीर चालुक्य की सेना महाबली छोगा की मदद पर चढी।

मल्लैसीह पञ्जून रा, दस दिसि कित्ति अवाज।

दै छोगा-भोरा फिर्यौ, गयौ सु पट्टन राज ॥ १० ॥

शब्दार्थः—पञ्जून रा=पञ्जून का पुत्र। छोगा भौरा=भौम से प्राप्त छोगा। राज=राज्य में।

अर्थः—ऋषि कहता है, हे पञ्जून पुत्र मलयसिंह! तेरा दसों दिशाओं में कीर्ति गान होता है। इस प्रकार भोरा से प्राप्त छोगा देकर वह मकवाना (भाला महाबली) फिरा और पट्टन के राज्य में पहुँचा।

गयौ सु चालुक ग्रहे तजि, रही कनैगिरि लाज ॥

छोगा कूरुंभ राव लै, कर दीना प्रथिराज ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—कनै-गिरि=स्वर्ण गिरि, सोनगरों के गिरि, दुर्ग।

अर्थः—इस प्रकार युद्ध छोड़ कर मकवाना चालुक्य के घर पर गया और सौन-गरौ के गढ़ की लज्जा बनी रही, कछवाह-राज पञ्जून ने वह खोंगा लेकर पृथ्वीराज के हाथ में दिया ।

राज सु खोंगा फेरि दिथ, वर हैवर [आरोह] ।

घटि चालुक वदि कूरमा, अयुत पराक्रम सोह ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ पा० भी० ।

शब्दार्थः—फेरिदिय=लौटा दिया । आरोह=चढ़ा कर । घटि=कम । वदि=बढ़ कर । कूरमा=कछवाहे । अयुत=असमान ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने पञ्जून को श्रेष्ठ घोडा दे कर वह खोंगा उसी को लौटा दिया और कहा चालुक्य वीरता मे कम है और कछवाहे बढ़कर हैं । जिनका अतुलनीय पराक्रम शोभित है ।

मलैसिह, रानिग सुत, सुभ्रम भोराराज ।

कूर्म अचानक यों परचौ, ज्यों तीतर पर वाज ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—वाज=पत्नी ।

अर्थः—मलयसिंह और भोलाराय के श्रेष्ठ सामंत रानिग पुत्र महावली खोंगा मे यह युद्ध हुआ, इस युद्ध मे अचानक कछवाहा मलयसिंह विपत्ती महावली खोंगा पर इस प्रकार दूट पडा था, जैसे तीतर पर वाज (पत्नी) पड़ता है ।

पञ्जुनराड महावली, मलैसिह धर पारि ।

खोंगा लै पाछे फिरचौ, सुनि चालुकक पुकारि ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—चालुकक पुकारि=चालुक्य ने पुकार सुनी ।

अर्थः—महावलवान पञ्जुराय और मलयसिंह शत्रु को धराशायी कर खोंगा लेकर लौटे । यह पुकार चालुक्य के पास पहुँची ।

बहुत जुद्ध कीनौ सुवर, सुभर तेज प्रथिराज ।

भट्ट चंद कीरति तवै, कूरभां' सिरताज ॥ ३५ ॥

प्रा०पा०१, पा०का० ।

शब्दार्थः—सुवर=सबल । तेज=विशेष वीर । तवै=स्तवन की, कीर्तिगान किया । कूरमा=कछवाहों के ।

अर्थः—पृथ्वीराज के सामन्तों मे विशेष सबल-सुभट कछवाहा शिरोमणि (पञ्जून मलयसी) थे उन्होने ने यह भारी युद्ध किया, उसी के अनुसार उसका कीर्तिगान मैंने (कविचन्द ने) भी किया ।

पृथ्वीराज चालुक्य

(समय ३७)

बोहा

वालुकका हिंदू कमध, और सु गोरीमाहि ।

साम भेद जैचद क्रिय, पति-दिल्ली । सम ताहि ॥ १ ॥

ग्रा०पा०१, भी०पा०का० ।

शब्दार्थ—वालुकका=मीम का बालक होना या बल्लभेश्वर की उपाधि होना ।

अर्थ—चालुक्य, कमधज्ज और गौरीशाह तीनों पृथ्वीराज के शत्रु थे किन्तु दिल्ली-पति के विरुद्ध साम और भेद नीति का उपयोग करने वाला जयचद ही था ।

कवित्त

आइ खवरि चहुआन, सु दल बालुककराइ सजि ।

आइस पग नरेस, साह साहाव बैर कजि ॥

लख दोड भर दोइ, पुरह-खोवद सु आइय ।

दिखि है गौ अनमित्त^१, दूत दिल्ली दिसि धाडय ॥

प्रथिराज रुधिरुकारी कडिय, समह गम प्रोहित रडिय ।

सुरतान समध बालुक कमध, कहें कौन चम्मू चडिय ॥ २ ॥

ग्रा०पा०१, भी० ।

शब्दार्थ—आइस=आदेश । अनमित्त=अमित, असरय । रुधिरु कारी=ग्वून करने वाली, तलवार । रडिय=रटा, कहा । चम्मू=मेना ।

अर्थ—पृथ्वीराज को सूचना मिली कि चालुक्यकराज की सेना सजी है और जयचद तथा शहाबुद्दीन ने भी बढता लेने के लिए आज्ञा दी है जिससे दोनों के योद्धा दो लाख सेना सहित खोवद नगर आए हैं । उस सेना में अमुख्य हाथी-घोडे हैं, उन्हें देखकर दूत दिल्ली पहुँचे और उपर्युक्त सूचना दी । तब पृथ्वीराज ने उसी समय अपनी खुनी तलवार निकाली और गुरुराम पुरोहित से कहा कि गोरी से सबध

रखने वाले चालुक्यों और क्रमधजों के लिए किसको आज्ञा दी जाय कि वह अपनी सेना उन पर सजाएँ ?

चालुक्यका परिराइ, वीर वज्जे नीसानं ।
सकल सूर सामंत, खग मगह^१ किय पानं ॥
सवर सेन सुरतान, राज प्रथिराज विचारिय ।
विन क्रूरंभ को दलै, नृपति इह तथ उचारिय ॥

जो त्रियन वस्य नन द्रव्य वसि, मरन सु तिन जिम तन मनै ।

सिर धरै काम चहुआन कौ, वियौ काम चित्त न गनै ॥ ३ ॥

ग्रा०पा० १ भी० पा० ।

शब्दार्थः—परिराइ=मप्रणा हुई । पान=पयानं, गमन । सवर=सवल । तथ=तथ्यपूर्ण, तथ्ययुक्त । वस्य=वश में । नन=नहीं ॥ तिन=त्रय । वियौ=दूसरा, अन्य ।

अर्थः—चालुक्यकी वीरों में युद्ध संमति ठीक हो जाने पर वीरों ने नक्कारे वजवाए । सब वहादुर सामंतों ने तलवार के मार्ग पर पैर दिया । तब राजा पृथ्वीराज ने सुलतान की सवल सेना का विचार कर यह तथ्य युक्त बात कही कि क्रूरंभराज पञ्जून के अतिरिक्त उसको कौन विनष्ट कर सकता है ? जो मंत्रियों के और द्रव्य के वशीभूत नहीं है तथा वह मृत्यु को नृणवत् मानता है । ऐसा वीर पञ्जून ही (मेरे) चाहुआन के कार्य को शिरोधार्य कर सकता है । अन्य कोई इस कार्य को चित्त में धारण नहीं कर सकता ।

— दोहा —

बोलिराज प्रथिराज तव, पान हथ्य दिय साज ।

कहौ जाइ क्रूरभ कौ, इह किज्जे हम काज ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—पान=ताम्बूल ।

अर्थः—तब राजा पृथ्वीराज ने अच्छा सजाया हुआ बीडा (ताम्बूल) अपने हाथों में लेकर कहा कि यह क्रूरभ को जाक दो और कहो कि मेरा यह कार्य करें ।

कवित्त

सुनि सु वत्त क्रूरभ, कोइ भिल्लै न पान धर ।

वडगुज्जर दाहिम्म, चूर चालुक्य चंपि धर ॥

परमारह रामगुञ्ज वीर परिगारग भद्रिय ।

सकल मूर वर नट काल नपे मति नटि ॥

पञ्जून राट रग पगरो ररे नाम निरमल मुनग ।

इन सम न कोड रजुन रन डगति काल गिरिगग नितर ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—भित्तोन=पट्टग नहा कस्ता । मूर=नट र । नपे= नपे । गग पगरो= तलवार चलाने में प्रप्रगण्य । निजग=नजर, रटि ।

अर्थः—जब कूरम्भराय ने मुना कि ज्य पेट्ट वीडे को कोर्ड स्त्रीकार नहीं कर रहा है । रामराय बडगुञ्जर, चालुक्या को विनष्ट कर उनकी पृथ्वी को दवाने वाले दाहिमा, परमार, कमधुञ्ज, वीर प्रतिहार और भट्टी (भाटी) प्राणि मव श्रेष्ठ योद्धा वीडा उठाने से इन्कार हो गए, क्योंकि काल के दवाने से उनकी बुद्धि कम हो गई, तब वह पञ्जूनराय जो तलवार चलाने में अप्रगण्य तथा अपने नाम और पृथ्वी को निर्मल करने वाला था, उसके समान युद्ध में जीकने वाला कोई क्षत्रिय नहीं था । स्वयं काल भी उसकी दृष्टि को देख कर डर जाता था ।

कवित्त

ए कुरमह वीर, धीर आवृत्त धनुद्धर ।

जो महनह पूजत, जोग खल खडन सव्वर ॥

इनह आप बल दौरि, जाड' असि असि अरि गारिय ।

एकन्ते पञ्जून, सिघ परि पिसुन पछारिय ॥

लै पान] सीस कूरभ धरि, सकल मूर सामन नटि ।

चालुक्यकाराइ हिंदू, दुसह, विपम काल व्यालह सु जुटि ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—ए=अहो । धीर=धैर्यवान, साहसी । महनह=महान समर । जोग=योग्य । सव्वर=सबल । असि असि=तलवार पर तलवार । परि=प्राक्रमण करके । पिसुन=पशु, शत्रु । नटि=निषेध करने पर ।

अर्थः—अहो साहमी कूरभ वीर जो धनुर्वरों से आवृत्त था, वह महान-समर की पूजा करने वाला था और सबल दुष्टों का खड्ग द्वारा नाश करने योग्य था, उस ने दौड़ कर अपने बल से दुष्टमनों के सिर पर तलवारों के प्रहार पर प्रहार किये थे और अकेले सिंह-स्वरूप पञ्जूनने ही प्राक्रमण कर पशु-तुल्य शत्रुओं को पछाडा था । ऐसे उस वीर कूरभ ने सब वीर सामंतों के इन्कार करने पर वीडा उठा कर शिरोधार्य किया और चालुक्यराय के असह्य वीरों से विपम काल-व्याल सा हो भिडने के लिये उगत हुआ ।

दोहा

काल-व्याल सुरतान दल, कमध सु पंखय कूट ।

हरि वाहन पञ्जून दल, ते सजि धाए ऊठ^१ ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ संशोधित ।

शब्दार्थः—कमध=कमधज, राष्ट्र वर निय । हरिवाहन=गरुड़ । ऊठ=उठ कर ।

अर्थः—चालुक्यों के पक्ष पर आया हुआ शाही दल भी काल-व्याल के समान ही था और उसके कूटपंख स्वरूपी कमधज्ज थे । किन्तु पञ्जून की सुसज्जित सेना उनकी और, गरुड़ स्वरूप होकर बढ़ी ।

लरन हृथ्य लिय तेग वर, वगसि राज तव वाज ।

लिय कूरंभ कुल उज्जले, सीस नवाइ समाज ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—तेग=तलवार । वगसि=वशीश किया, दिया । वाज=वाजी, घोड़ा ।

अर्थः—जब लड़ने के लिये पञ्जूनराय ने श्रेष्ठ तलवार हाथ में पकड़ी तब राजा पृथ्वीराज ने उसे एक घोड़ा उपहार स्वरूप दिया जिसे लेकर उस उज्वल कुल वाले कूरंभ ने वीर समाज को सिर नमाया ।

कवित्त

खग वंधि कूरंभ, आइ पञ्जून आपन भर ।

सुवर वीर वलिभद्र, तात पञ्जून सथ्य वर ॥

कन्ह वीर वर वीर, सिंघ पल्हन सुधारं ।

मलय सिंह सब हृथ्य, सद्ध लीने भर सारं ॥

चित स्वामि ध्रंम सो अरि भिरन, लरन मरन तक सीर नन ।

सुनि राग वीर काडर धरकि, वजिग वीर नीसान घन ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—सुधार=अच्छी घात वाले, श्रेष्ठ खड्ग वाले । भर=सुमट । सार=श्रेष्ठ, अच्छे ।

सीर=साथ, साथी ।

अर्थः—तलवार गृहण कर कूरंभराय पञ्जून अपने शोद्धाओं के पास आया-श्रेष्ठ वीर वलिभद्र जो पञ्जून का भाई था, वह साथ हुआ । वीर-कन्ह, श्रेष्ठ वीर, सिंहराय, पल्हनराय आदि अच्छी खड्ग वाले तथा पञ्जून-पुत्र मलयसिंह जो सब

का बाहु स्वरूपी था वह और अन्य शौर ना । ये । उनका निश्चय स्वामि धर्म में शौर शत्रु से भिड़ने में था, वे लड़ने मरने के ही ना ही नहीं थे. मरगु प्रगत भी स्वर्ग तक साथ देने वाले थे । उनके वीर रस पूर्ण विशेष नक्कारे बजने शौर शौर रामो के सुनने से कायरों के हृदय धड़कने लगे ।

गैहा

बजिग वीर नीमान घन पावस मक ममीर ।

चहिंग जौव पञ्जून भर, मजिज हयगय वीर ॥ १० ॥

शब्दार्थः—मक=शक, १३ ।

अर्थः—वीर रस पूर्ण नक्कारे बादलों की तरह गर्जने लगे, पञ्जून उमके योद्धा और उसके अशवारोही तथा गजारोही वीर क्रमशः ममेघ इन्द्र और पवन तुल्य हो कर बढे ।

तिथि पचमि रविवार वर, छडि पच भर आस ।

चढे जोध हँ गै परिय, मुगति सु लूटन रास ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—रास=राशि, देर ।

अर्थः—श्रेष्ठ पचमी रविवार को वे पाचो योद्धा सासारिक आशा त्याग, हाथी घोड़ों पर सवार होकर मुक्ति की राशि को लूटने के लिये चल पडे ।

साटक

धीरज धर धीर क्रूरम बली, पञ्जून राय वर ।

जित्ते त सुरतान मान सरस, आवृत्त वान चिख ॥

भूयो बाल मुञ्जाल भारथ क्त, कृष्णोधरा धद्विय ।

त काज वर धीर धीर धरयं, ससार मुक्त वर ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—धीरजधर=जिसका धैर्य पृथ्वी के समान निश्चल है । जित्ते=जिता । त=उसने । मान इज्जत । बाल=बालक, या बलभेश्वर । भारथ क्त=युद्ध करके । कृष्णोधरा=कृष्ण की पृथ्वी, द्वारिका बह्मिष्ठ=दृष्टिय, दबाली, टटा दी । मुक्तवर =श्रेष्ठ कल्याण प्रद ।

अर्थ—जिसका धैर्य पृथ्वी के समान अटल है, ऐसा वीर वीर और बलवान श्रेष्ठ कछ्पाह पञ्जूनराय था । उसने भयंकर विपाक कारणों से घेरकर सुलतान की सा

श्रेष्ठ कीर्ति का हरण कर लिया । बालक राजा चालुक्य की कृष्ण वाली (द्वारिका) भूमि को युद्ध कर दवा दिया । इस प्रकार ऐसे कार्यों के लिये वह श्रेष्ठ वीर धैर्य धारण कर ने वाला संसार के लिये कल्याण प्रद था ।

दोहा

सकल सूर कूरंभ वर, भान भयग मुख वीर ।

तवै राइ चालुक्यक वर, आइ सँपत्तौ तीर ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—मान=सूर्य । भयग=हो गये । सँपत्तौ=पहुँचा । वर=बल, सेना । तीर=नजदीक, निकट ।

अर्थ—श्रेष्ठ कछवाह-राज और उसके वीरों के मुख उस समय सूर्य के समान देदिग्यमान होगये । जिस समय की श्रेष्ठ चालुक्यकीराय की सेना समीप आ पहुँची थी ।

आइ सँपत्तौ सूर भर, सुरताना कम धज्ज ।

कूरंभह पञ्जून सम, चढे जोध गुर गज्ज ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—गुर गज्ज=महान गर्जना करते हुए ।

अर्थ—उसी समय कमधज और सुलतान के सामंत और योद्धा आ पहुँचे । तब पञ्जून और उसके समान ही कछवाहे योद्धा महान गर्जना कर के आगे बढ़े ।

करिग^२ सेन संमुख सुवर, गरुड़ व्यूह क्रिय वीर ।

लरन मरन भारथ्य क्रन, जज्जर करन सरीर ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १ भी० का० ।

शब्दार्थ—जज्जर=जर्जरित ।

अर्थ—श्रेष्ठ सेना को सामने कर उस वीर (पञ्जून) ने युद्ध हेतु लड़ मरने और शरीर को जर्जरित करने के लिये गरुड़-व्यूह की रचना की ।

गरुड^१ व्यूह कूरभ करि, नाग व्यूह सुरतान ।

खॉततार खुरसान पति, मंडि फौज मैदान ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थ—मंडि=मंडन किया, खड़ी हुई । मदान=रण क्षेत्र, स्थल ।

अर्थ:—गरुड=व्यूह क्रूरभगाय (पञ्जून) ने रणयोग नाग-पुण्ड्र की रणनागल-
तान के खुरासानी सेनियों के सेनापति तत्कारण ने ही योग सेना छोड़ना गीर्वाण में
खड़ा किया ।

गीर्वाण

पुण्ड्र जगज्ज परिहार, पुण्ड्र पामार गुधारिय ।
भट्टी सेन विदग्ध, पिण्ड पाण अधिहारिय ॥
जानु होट पुण्ड्रीर नगय उरमम पयगरि ।
चञ्च अंग मुभ जीह, वीर क्रूरम पयद्वरि ।
प्रीवा सु जोति गज गह गहि, लहि लोहानो टौर वर ॥
छत्रह मुजीक पञ्जून मजि, दौरि पर्यौ वलिभद्र वर ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—पयद्वरि=पग दिया, उरम दिया । उरमम=हृदय के स्थान । गजगाह=हाथी से कुचलने
वाला । मुजीक=माभा, जर्जन ।

अर्थ:—क्रूरभ के गरुड व्यूह में, पैरों के स्थल पर यादव और प्रतिहार रहे । प्रमारो
ने पूंछ का रूप धारण किया । भट्टी(भाटी)राजा की वीर सेना ने पिण्ड और पांव के
स्थान पर अधिकार जमाया, पुंड्रीराय जघा की जगह हुआ । हृदय, नख, चौच,
आँखे और जिह्वा की जगह श्रेष्ठ क्रूरभी-सेना ने कदम दिया । हाथियों को कुचलने
वाले लौहाने ने प्रीवा और चञ्च-ज्योति का स्थान ग्रहण कर लिया । इस प्रकार
व्यूह-रचना करके पञ्जून ने नवोन छत्र धारण किया । और उसका भाई वलिभद्र
आगे बढ़ कर शत्रुओं पर झपट पड़ा ।

घरिय सत्त दिन रह्यौ, वार नौमीति सुक वर ।
पच वीस आवट्टिट, थट्टिट लोथ सु वधि वर ॥
क्रूरम्मह खग भारि, सार भारथ्य सु किन्नौ ।
सार वज्ज घरियार, टोप टकार सु भिन्नौ ॥
आचार चारु राजन वरे, मरे वीर रजपूत वर ।
सग्राम सूर क्रूरभ सम, नर न नाग दानव्व सुर ॥ १८ ॥

शब्दार्थ:—आवट्टि=उपल पड़े, जोश में आ गये । थट्टि=सग्रह । वर=व्यल, पृथ्वी ।

अर्थः—श्रेष्ठ नवमी शुक्रवार को सात घड़ी दिन शेष रहने पर पच्चीसों योद्धाओं ने जोश में आकर शवसमूह से पृथ्वी को पाट दिया। कूरंभराय ने भी तलवार चला कर तत्वयुक्त महाभारत उत्पन्न कर दिया। लोहा शिरस्त्राण पर भीनी टंकार करता हुआ घड़ी के समान बजने लगा। श्रेष्ठ राजवंशज क्षत्रिय जो मारे गये थे वे सब श्रेष्ठ मंगलाचार के साथ अप्सराओं के द्वारा वरण किये गये। इस युद्ध में वीर कूरंभराय (पञ्जून) की समानतापर नर, नाग, दानव और देवता कोई भी नहीं कहे जा सकते।

श्लोक

मानवं दानवं नैवं, देवानां कुरु पांडवा ।
कूरम्मराइ समो वीरं, न भूतो न भविष्यति ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—समो=समान ।

अर्थः—मनुष्य, दानव, देवता, कौरव और पांडवों में भी कूरंभराय के समान योद्धा न तो उत्पन्न हुआ और न भविष्य में ही होगा ।

कवित्त

हाइ हाइ कहि धृष्ट, इष्ट वलिभद्र समरिय^१ ।
वलिय ताप कूरंभ, सार साहित्त घुम्मरिय ॥
यों पञ्जून दल मल्यौ, सोइ ओपम कवि भाइय ।
कमल पंति गजराज, सरित ममम्ह भुकि ग्राहिय ॥

घन घाइ अघाइ सुघाइ घट, करिय एम कूरंभ घट ।
सुधघट आइ कुधघट किय, सुभट घाइ भारध्य थट ॥ २० ॥

ग्रा० पा० १ सं० ।

शब्दार्थः—धृष्ट=दुष्ट, शत्रु । सम्मरिय=स्मरण करना । सार=लोहा । साहित=साज । घुम्मरिय=घुमड़पड़ा । ममम्ह=बीच में । घन घाइ=विशेष मार । अघाइ=तृप्त हुआ । घट=शरीर । एम=इस प्रकार । घट=घाट, दृश्य । सुधघट=सुडौल । कुधघट=कुडौल । घाइ=काटकर । भारध्य=युद्ध । घट=समूह ।

अर्थः—वलिभद्र ने अपने इष्ट का स्मरण किया, जिससे दुष्ट हाय २ करने लगे । तैजवारी कूरंभ भी अपने लोहे के साज वाज से सजा हुआ उत्साहित हो उठा ।

चन्द द्वारिका

(समग्र ३८)

दोहा

चलन चित चदह कर्यौ, चलि द्वारिका सु चित्त ।

मगि सीख पृथिराज पह, सजिव" सकल अप मथ्य ॥ १ ॥

ग्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—चित्त=चित्तन किया । सीख=विदा पह=से ।

अर्थः—चंद का चित्त द्वारिका मे जा लगा । इसलिये वहां जाने की सोची और पृथ्वीराज से विदा मांग कर अपने सारे साथियों को तैयार किया ।

कवित्त

दोड सहस हैवर विसाल, सत्त वारुन मत सज्जह ।

सत गयद रथरूढ, साज आसन प्रथि रज्जह ॥

पलक वेद जोजन प्रमान, थेट संघल क्रत पाडय ।

साज लकख तन लकख, सकल बल कोरि सजाइय ॥

धानुकक धार सत अट्ट चलि, करन तिथ्य जात्रह चलिय ।

सत सुभट दान दिव्य तुरिय गज, मनहु जमन सागर मिलिय ॥ २ ॥

ग्रा० पा० १, च० । २ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—हैवर=घोड़े । वारुन=हाथी । सत गयद रथ=स्वैत हाथी जुते हुए रथ, या सात हाथी जुते हुए रथ । रूढ=आरूढ । पृथि=पृथ्वीचद, पृथ्वीभट्ट, कविचद । रज्जह=शोभित हुआ । वेद जोजन=चार कोस । थेट=वास । संघल=सिंघत जाति के, हाथियों की एक जाति । क्रत=क्रिये हुए, पैदा हुए । क्रत=क्राम । लकख=लत । लकख=देये गये । कोरि=एकत्रित करके । सजाइय=बनाये ।

अर्थः—उमने दो महस्र दीर्घकाय घोडे और सात (या-सौ) मतवाले हाथी साथ मे लेने के लिये सजाये । जिसमे स्वैत (या-सात) हाथी जुते हुए थे, ऐसे इन्द्र विमान नामक रथ मे विद्ये हुए आनन पर पृथ्वीचद (पृथ्वीभट्ट, कविचद) आरूढ होकर

सुशोभित हुआ। वे हाथी एक पल में चार योजन पार करने वाले थे और खास सिंघली जानि के थे, वैसे ही काम देने वाले थे। प्रत्येक के शरीर पर एक लाख के मूल्य का साज सजा हुआ दीख पड़ता था। वे हाथी ऐसे थे मानों सृजनकर्ता ने विश्वभर के बल को एकत्रित कर उन्हें बनाया हो। कवि के साथ में श्रेष्ठ आठ सौ धनुर्धारी थे। इस प्रकार वह तीर्थ यात्रा के लिये चला। पृथ्वीराज के सौ सामंतों ने भी कवि को हाथी घोड़े दान में दिये। वे ऐसे मालूम होते थे मानो यमुना समुद्र में मिली हो (यहा उछलते हुए अश्व तरंगित-समुद्र रूपी और गज समूह यमुना रूपी कहे गये)।

गज घटन त्रवाल, भेरी सहनाय' सु वज्जिय ।

चलत आइ चित्रकोट, पुरन त्रिय लोक सुरज्जिय ॥

कन्ह मान लेयन कर्विद, 'जोजन दुअ दिक्खिय ।

शृ गारिय गढ हट्ट, मनो इन्द्रथान विसिक्खिय ।

वजि त्रव वं वज्जन वहुल, नन उळाह भिपडा नदिय ।

गढ मद्धि धाम मनु राम पुर, कवि सु तथ्य डेरा करिय ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ २ का० पा० ।

शब्दार्थः—मान=सम्मान पूर्वक। लेयन=लाने के लिये। विसिक्खिय=विशेष रूप में, विस्तृत। भिपदा=वेदच, वेदच नदी (चित्तौड़ के पास नदी है उसका अपभ्रंश नाम वेदच और शुद्ध रूप वेदच और पर्याय रूप कवि ने भिपदा लिखा है)। राम पुर=अयोध्या।

अर्थ—प्रस्थान करने पर हाथियों के घंटे, त्रवाल, भेरी और सहनाड्यो वजी। वह चित्तौड़ पहुँचा। कवि को देखने के लिये उस श्रेष्ठ नगर के स्त्री पुरुष आये। सम्मान सहित उसकी अगवानी के लिये रावल का भतीजा कन्ह आठ कोस सामने आया, चित्तौड़-दुर्ग और हाठों को इस प्रकार सजाया गया कि वह विस्तृत इन्द्रपुरी के समान प्रतीत होने लगा। कई प्रकार के वाजे त्रवाल आदि बजाये गये। वेदच (वेदच) नदी को देखने से मन उत्साहित हुआ। गढ के अन्दर का नगर मानों रामपुर (अयोध्या) के समान था। वहा कवि श्रेष्ठ ने अपना डेरा डाला।

कवि सु सथ्य मत्तिप्रवल, बोलि सहचरी मत्ति वर ।

नव नव रस भोडन, मनो इन्द्रान्ति इन्द्र घर ॥

अर्थ:—उनके साथ पृथा कुमारी ने कवि के लिये शरीर की शोभा बढ़ाने वाले कितने ही उपहार स्वरूप सुवस्त्र, जिन पर मुक्तामाल, मणिमालाये तथा सहस्रों सीता रामियां थी। सब स्वर्ण की थालों में सजे हुए थे। और सहस्रों पंखे तथा ६८ कर्पूर-पूरित बीडे थे। एक चांदी की पालकी तथा एक स्वर्ण पुत्तलिका जो हाथों से पवन करती और मुंह से गाती थी (या—एक चार—नारी जो पवन करती हुई मुंह से गाती थी) इतना साज सामान पृथा कुंवरी ने कवि के लिये पहुँचाया और अपार द्रव्य देकर संतुष्ट किया। कवि ने भी प्रत्येक सखि को दान सम्मान देकर, स्वागत किया।

दोहा

दिय बहोरि नृप नगर को, प्रिया असीस पठाइ १ ।
प्रति सुनंत मति दति प्रबल, करि सकूर कलनाइ २ ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ सं० ।

शब्दार्थ:—दिय बहोरि=बहुरादी, लोयादी। असीस=आशीर्वाद। पठाइ=कहला कर। प्रति=प्रत्येक। मति दति=बुद्धि देने वाला, ज्ञान देने वाला। करि=करलिया। सकूर=सकोर, एकत्रित। कलनाइ=कलावाली, सुन्दरियाँ।

अर्थ:—कवि ने उन सखियों के साथ पृथाकुमारी को आशीर्वाद कहलाकर राजद्वार को लौटा दिया। उन सखियों ने विशेष ज्ञानदाता कवि की बातें सुन २ कर शुभ ज्ञान का संग्रह कर लिया।

नील कंठ सिव दरस करि, मात भवानी भेटि ।
फुनि नरिंद चित्रंग मिलि, चद दंद तन भेटि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ:—चित्रंग=चित्तौड़ेश्वर। दद=दिव्य। भेटि=समाप्त किया।

अर्थ—कविचंद फिर नीलकंठ महादेव और माता भवानी के दर्शन कर चित्तौड़पति से मिला और उसने उस पवित्र राजा के दर्शन कर अपने शरीर के सब विघ्न समाप्त किये।

चलिय चंद पट्टन पुरह, अहि सिर पर धरि पीर ।
पथ एक पक्खह चलिय, दिग मागर दिखि नीर ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—पटन=चन्द्रनगर पान । कवि=विपत्ता । पण—प० प० । । ।

प्रर्थः—कवि-भद्र बहो से पटनपुर की ओर रवाना हुआ । उन् समय के साग में पैप नाग को सिर पर पीडा सहन करनी पडी । कवि को एक पन तक राग लाने के बाद समुद्र दिखाड दिया ।

कवित्त

उत्तरि हृद्यय वाजि, पाड प्रति चले । सुमगल ।
दिदृश्य देवल ध्वज, पाप परहरि अंग अगल ॥
गजन पिठ्ठ गोमतिय, भान तप तेज विराजिय ।
सागर जल उच्छलै, पाप भजन पाराजिय ॥
रिनछोर राइ दरसन करिय, परिय मोह मानुख भर ।
सुरथान मान इतनी सुचित, देव लोक कैलास दर ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ टि० । २ पा० ।

शब्दार्थः—प्रति=प्रत्येक । सुमगल=प्रसन्नता युक्त । देवल=देवालय । अगल=पूर्वगत, पहले के । गजन=आवाज करती हुई । पाराजिय=पराजित । मानुख=मानस, मन । मर=मदृक्वि । सुरथान=देवस्थान । मान=सम्मान ।

अर्थः—तव हाथी घोडों से उतर कर कवि और उसके साथी प्रसन्नता पूर्वक पैदल चलने लगे । जब द्वारिकेश के देवालय की ध्वजा दिखाई दी तो पूर्वकृत शारीरिक पाप दूर हो गये । उस स्थल के पीछे ही सरिता गौमती कल २ कर रही थी । जिसमे तपते हुए सूर्य की किरणें चमचमाती हुई शोभा पाती थी । प्रभूपद-स्पर्शी समुद्र का जल उद्वलता हुआ पाप का नाश कर उसे पराजित करता था । फिर रणछोडराय के दर्शन करने पर वह भद्रकवि मन से मोहित हो गया । उरा देवस्थान का सम्मान सब के मन में स्वर्ग स्थित कैलास के समान पैदा हुआ ।

दोहा

हाटक मडप छत्र लहि, मुत्तिय पंतिन माल ।
मनो चढ बहु भान मख, कलसख कट्ट काल ॥ १० ॥

शब्दार्थः—मान=सूर्य । हाटक=सुवर्ण । मभ्र=मय में । कलसख=कालिमा । काल=समय ।

अर्थः—वे रणञ्जोड़राय छत्र युक्त स्वर्ण-मंडप तथा मुक्तापंक्ति की मालाओं से आवृत्त थे। वह दृश्य ऐसा मालूम पड़ता था मानों चन्द्रमा बहुत से सूर्यों के बीच होकर समय की कालिमाँ को विनष्ट कर रहा हो।

फिरि परदछ दरसन करिय, हुआ परतक्खि प्रमान ।

तव अस्तुति सू प्रनाम करि, प्रभा विराजिय भान ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—परदछ=प्रदक्षिणा। परतक्खि=प्रत्यक्ष।

अर्थः—कवि ने प्रदक्षिणा कर दर्शन किये। ध्यान करने पर ऐसा आभास हुआ मानों सूर्य-प्रभा धारण कर वे प्रभू साक्षात् उतर आये हों (सामने हुए हों)। कवि ने तव स्तुति कर प्रणाम किया।

करि अस्तुति सस्तुति सुवर, होम हवन हरि नाम ।

सोवन तुला सु साज वर, करि सु भट्ट सुचि काम ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ भी० पा० का० ।

शब्दार्थः—सस्तुति=स्वस्तिवाचन। सोवन तुला=स्वर्ण तुला दान। सुचि=शुचि, पवित्र। काम=कर्म।

अर्थः—स्तुति करने के पश्चात्, श्रेष्ठ ढंग से स्वस्तिवाचन के साथ हवन कर ईश्वरोच्चारण किया और वाद में भट्ट-कवि ने स्वर्ण तुलाका दान कर पवित्र कार्य किया।

हय हथ्यी सत दान दिय, रथ रथिय द्रव दिद्ध ।

हाटक चीर वसुन्धरा, कवि घर दीन सु निद्ध ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—रथ रथिय=बहुत से रथ। चीर=चम्र। निद्ध=नव निधि।

अर्थः—सौ या सात हाथी-घोड़े, बहुत से द्रव्य से लदे हुए रथ, स्वर्ण, पट, पृथ्वी, गृह आदि नव निधि तुल्य कवि ने दान किया।

दिय डेरा कुन्दन सु ढिग, जे लीने सुरतान ।

तर तेवर तम्बू तनिय, मनहु कलस के भान ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—कुन्दन=कुन्दनपुर। तर=तरु, वृक्ष। तेवर=नील २ गीर्द वाले।

शब्दार्थः—उच्चैः बहू=ऊँची भूमि, ऊँचास्थल । गोख=भरोखे । पट्टिका=वस्त्र के । गरुत्र=गडे ।
वारद=वादल । रास=समूह ।

अर्थः—कवि चंद्र के वितान जो ऊँची भूमि पर तने हुए थे और जिनमें कपडे के ही वडे २ भरखे थे । वे वितान वादल-समूह के समान शोभा पा रहे थे । उन्हें भीम ने देखा ।

आदर करि आसीस दिय, भुञ्ज भोरा भीमग ।

सिद्ध दिद्ध जैसिघ तुह, तिन पहु पुञ्जि पवंग ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—भुञ्ज=पृथ्वी पर । सिद्ध दिद्ध=मिद्धता दे दी । तुह=तूने । तिन=उस । पहु=राजा ।
पवंग=पवित्र अंग वाले को ।

अर्थः—कवि चंद्र ने भीमदेव का आदर किया और आशीर्वाद दिया तथा कहा कि हे राजा । तूने पृथ्वीपर जयसिंह (सिद्धराज) को सिद्धी दे दी है (तूने अपनी कीर्ति और कर्तव्यों से जयसिंह का वंशज होना सिद्ध कर दिया है) । तब उस राजा ने पवित्र अंग वाले उस कवि की पूजा की (दान-मान में तुष्ट किया) ।

आरोहिय असु उप्परह, उडी रेन खुर खेह ।

भोरा चडि सोरा भयौ, गयौ उपने ग्रह ॥ २० ॥

शब्दार्थः—आरोहिय=चढ़ा । असु=अश्व, घोड़ा । रेन=रजकण । खेह=धूलि । सोरा=प्रसन्न ।

अर्थः—तत् पश्चात् कवि चंद्र घोड़े पर चढ़ कर विदा हुआ । उसके चलने से आकाश मडल रजकण और धूल से आच्छादित हो गया । इधर भोला भीम कवि से मिलकर प्रसन्न होता हुआ घोड़े पर चढ़कर अपने निवास स्थान को गया ।

प्रथु कागद चंदह पढिय, आयौ खरि गजनेस ।

कूच कूच मग चन्द खरि, पहुँच्यौ घर दानेस ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—प्रथु=पृथ्वीराज । खरि=चल कर, चढ़ाई करके । दानेस=दानियों में प्रसन्न (दिल्लीश्वर) ।

अर्थः—इतने ही में कविचन्द्र के पास पृथ्वीराज का पत्र आया । उसमें गजनी-पति के चढ़ आने का हाल था जिसे पढ़ कर कविचन्द्र शीघ्रतापूर्वक स्थान २ पर डेरा डालता हुआ दिल्लीश्वर के पास आ पहुँचा ।

भूमि बंध

(समय ३६)

दोहा

उर अड्डौ भीमंग नृप, नित्त खरुक्के आड ।

वैर दाह दित्त प्रज्जरै, खल पल रुधिर बुभाड ॥ १ ॥

शब्दार्थः—उर अड्डौ=हृदय मे । खरुक्के=खटकता । आड=याकर । दाह=जलन । प्रज्जरै=जलती थी । खल=शत्रु । पल=मांस । बुभा=बुझ पाती, शांत हो पाती ।

अर्थः—पृथ्वीराज के हृदय मे चालुक्य राजा भीम, हमेशा खटकता था । शत्रुता की जलन उसके (पृथ्वीराज के) दिल को जलाती रहती थी । केवल शत्रु के आमिष (मांस) द्वारा निकले हुए रक्त ही से उसकी जलन का शान्त होना संभव था ।

कवित्त

उर अन्तर सोमेस, पिथ्व विसरै न निमख छिन ।

हरि हरि हरि उच्चार करइ, सहसुभट मद्धि गन ॥

करत दुक्ख चहुआन, वरजि प्रम्मार स्यघ तह ।

आदि धर्म छत्रीनि, करै ए सताप समर-गह ॥

खग धार खडि तनु मडि जसु, तदि सुरलोक सु सचरै ।

अज्जानवाह अघनीस वड, अट्टवै इम उच्चरै ॥ २ ॥

शब्दार्थः—सोमेस=सोमेश्वर । पिथ्व=पृथ्वीराज । विसरै=नहीं भूलता था । निमख=निमेष । छिन=क्षण । मद्धि=मध्य में । गन=समूह, समुदाय । वरजि=नियेध किया । प्रम्मार=प्रमार ब्रिय । स्यघ=सिंह । छत्रीनि=क्षत्रियों का । करै=ए=नहीं करते । समर-गह=युद्ध में मरे हुए का । खडि=खड २ । तनु=शरीर । मडि=मटन कर । जसु=यश । तदि=तत्र । सचरै=संचार करना, चला जाना । अज्जानवाह=लम्बी मुजा वाला । अघनीस=पृथ्वी पति । वड=उच्च । अट्टवै=आठ राजवशी ।

अर्थः—पृथ्वीराज अपने पिता सोमेश्वर को निमेषमात्र के लिये भी नहीं भूलता था । वीर-समूह के मध्य मत्र साक्षत उसकी (सोमेश्वर की) मृत्यु पर दुःख प्रगट करते हुए, हे हरि । हे हरि ॥ कह रहे थे । इस प्रकार चहुआन नरेश्वर को पिता के

लिये दुःख प्रगट करते हुए देख आवूराजघशी; सिंहप्रभार ने उसे निषेध किया और कहा कि क्षत्रियों का सदा से यह धर्म रहा है कि युद्ध में मरे हुए वीर का संताप नहीं किया जाता। वही लम्बी भुजा वाला क्षत्रिय नरेश सब में उच्च है जो खड्ग धारा द्वारा अपने शरीर को खंड २ कराकर यश फैलाता हुआ स्वर्ग लोक, चला जाता है।

कहै स्यंघ पामार, वत्त चहुआन धित्त धरि ।

गुज्जर धर उज्जारि, पारि प्रज्जारि छार करि ॥

सोमेसुर सुरलोक, तोहि संमरिय लज्ज भुव ।

कितिक वत्त चालुक्क, किमि सु अगवइ समर तुव ॥

सुरतान भूमि कंकरु जहाँ, तहँ थानौ मडौ भलौ ।

तुछ सुभट संग करि विकट भट, पुन आपन ग्रेहाँ चलौ ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—गुज्जर=गुर्जर भूमि, गुजरात। धर=स्थान। उज्जारि=जन शून्य करने। पारि=ढहाकर। प्रज्जारि=प्रज्वलित कर। छार=छाग, भस्म। तोहि=तुम्हें को। लज्ज=लज्जा। भुव=पृथ्वी। कितिक=भित्तनीक (क्या?)। वत्त=वात। किमिदु=कैसे। अगवइ=स्वीकृत कर सकते हैं, ले सकते हैं। समर=युद्ध, (लोहा)। तुव=तेरे से। कंकरु=युद्ध। थानौ=थाना (रत्नों की चोकी)। तुछ=तुच्छ, थोड़े। सगकरि=साथ में देकर। विकट=सामानक। मट=योद्धा, सामंत। पुन=पुनः। आपन=अपने। ग्रेहाँ=प्रसने के लिये। चलौ=चलना चाहिये।

अर्थः—सिंह प्रभार फिर कहने लगा—हे चाहुआन नरेश! मेरी इस बात को दिल में उतार लीजिये और गुर्जर भूमि स्थित स्थानों को जन-शून्य कर उन्हें ढहा और जला कर भस्मीभूत कर दीजिये, क्योंकि राजा सोमेश्वर तो स्वर्ग प्राप्त कर चुके हैं और अब इस पृथ्वी की लज्जा का भार आप पर ही है। चालुक्य-क्षत्रिय आपके सामने क्या चीज है? वे आपसे लोहा कैसे ले सकते हैं? इसलिये वादशाह के भूभाग की ओर से जहाँ अपने देश में युद्ध की संभावना हो वहाँ अच्छा थाना स्थापित कर वहाँ का भार किसी विकट सामंत को सौंप और कुछ सामंत (योद्धा) उसके साथ देकर हम सब को शत्रुओं को प्रसने के लिये चलना चाहिये।

दोहा

शान सलित अंजुलि करी, प्यड दान दै तात ।

सहस घेन संकल्प करि, ग्रन्था कथ व्रतात ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—सलित=गरिता । ग्रन्था=ग्रथ ग । ऋथ=रुहा । वृतात=वृत्तान्त ।

अर्थः—तत्र पृथ्वीराज सरिता मे स्नान कर पिता का पिंडदान कर के जलाञ्जलि दी और सहस्र गाय का मकल्प किया । यह वृत्तान्त इसी ग्रन्थ मे पहले दे दिया गया है ।

कवित्त

कहहि वत्त प्रभिराज, सुनहु सामत सूर सम ।

जो न्यु म्मान भवस्य, गोड सपजड कंम क्रम ॥

जदिन भीम सग्रहौ, सोम उग्रहौ तदिण रिण ।

जुगिनि वीर विताल, करउ संतुष्ट त्रिपिति तिन ॥

घृत मुक्कि पाग वधनु तज्यौ, सज्यो आपु संभरि दिसह ।

अचतार भूत दानव प्रवल, अ ग अग्नि प्रज्वल रिसह ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—सम=समान । न्यु म्मान=निर्माण । भवस्य=भविष्य । सपजड=होता है । क म्मक्रम=क्रमश । सग्रहौ=पकड़ों । उग्रहौ=मुक्त होऊँ । तदिण=उस दिन । जुगिनि=योगिनियों । विताल=वैताल । विपिति=वृत्त । पाग=पगड़ी । वधन=वाधना । आपु=स्वय । दिसह=दिशा । भूत=प्राणियों । प्रज्वल=प्रज्वलित, । रिसह=क्रोधाग्नि ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज कहने लगा—मेरे समान ही बहादुर सामंतों सुनों, जो भविष्य का निर्माण होगया है । वही क्रमश होता है, मैं जिस दिन भीम को बंधन मे ले पाऊँगा उसी दिन पिता के ऋण से मुक्त होऊँगा । मैं उन योगिनियों वीर वैतालादि को सन्तुष्ट और वृत्त कर दूंगा । यह कह उसने घृत खाना और पगड़ी वाधना छोड़ दिया । वह वीर संभरि स्वयं शत्रु की ओर चढाई करने की तैयारी मे लग गया । प्राणियों मे प्रवल, वह दानव का अचतार था । उसके अग-अग मे क्रोधाग्नि ज्वलित होगई ।

गाथा

जाइ सपत्ते सूर, ग्रहं ग्रहे आप आपाई ।

पिक्खिय नैर विरूप, भूपं विना विह्लल सहय ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—सपत्ते=पहुंचे । अप्प आपाई=अपने २ । पिक्खिय=देखा । नैर=नगर, शहर । विरूप=भयानक । सहय=मव मोई ।

अर्थ—तत् पश्चात् सामंतगण अपने २ घर को चले गये । राजा सोमेश्वर के विना सब ने शहर को भयावना और नगर निवासियों को विह्वल देखा ।

दोहा

भूमि सयन प्रथिराज करि, निसा विहानी निट्टि ।

अरुण समय उदोत ही, मंडि सभा सव विट्ठ ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—विहानी=व्यतीत की । निट्ठि=दुरिकल से । उदोत=उदय होते ही । मंडि=कौ । विट्ठि=वैठे ।

अर्थः—राजा ने उस रात्रि में पृथ्वी पर ही शयन किया । उसकी वह रात्रि कठिनाई से व्यतीत हुई । अरुणोदय होने पर राजा उठ कर सब सामंतों के साथ सभा-स्थान में आकर बैठा ।

करि प्रणाम सामंत सह, बुल्लिय जोतिग जोइ ।

सद्धि महरत चडिदयै, जिहि अगगे जय होइ ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—बुल्लिय=कहा, निवेदन किया । जोतिग=ज्योतिषी । जोइ=खोजकर । सद्धि=साध कर । चडिदयै=चढाई की जाय । जिहि=जिससे । अगगे=आगे जाकर ।

अर्थः—सब सामंतों ने राजा को प्रणाम किया और निवेदन किया कि अच्छे ज्योतिषी को बुलाया जाय ताकि मुहूर्त साध कर चढाई की जाय, जिससे आगे जाकर निश्चय ही विजय हो ।

व्यास आनि दिक्खी लगन, घरी अंस पल जोइ ।

इहि समअँ जौ सज्जियै, सही जित्ति तौ होइ ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—आनि=आकर । दिक्खी=देखा । घरी अस=घटिकांश, इष्टघटी । जोइ=देख कर । इहि=इस । समअँ=समय । सही=निश्चय । जित्ति=जीत, विजय ।

अर्थः—तब व्यास (ज्योतिषि) ने आकर घटिकांश और पल देखते हुए लगन देखा और कहा, इस समय चढाई की जाय तो निश्चय ही विजय होगी ।

कवित्त

केन्द्रीय ससि सोम्य, भौम पंचम अधिकारी ।

राह वीर अष्टमौ, वक्र सत्तम सुद्धारी ॥

जंगम थावर धरिय, हलिय तिहि-नाम-सेन वर ।

गनिक ग्रन्थ बहु मक्खि, राज पंचम पंचम-गुर ॥

मन काम होइ सो किञ्जिये, अरि जित्तै पदर दिवम ।

पीट्टी पवन सम्हौ अरी, तौन वगाउय काल वस ॥ १० ॥

शब्दार्थः—केंद्रीय=केन्द्र मे । गोम्य=बुध । पचम=पाचौं स्थान मे । राह=राह । तीर=उग तीर के । वक=केतू । सत्तम=सातवें । जगम=स्थिर । धारर=शनि । अलिय=ढाई जाय । मेन=मेना । गनिक=गणित । बहु=बहुत । सक्खि=साक्षी गज=गजा को । पचम २=१० म स्थान मे । गुर=गुरु । अरि=शत्रु को । जिते=जीत ता । पदर=पदरे । पीट्टि=पीट्टे । सम्हो=समग्र । अरी=शत्रु । वसाइय=वसाया ।

अर्थः—व्यास कहने लगा, इस वीर के ग्रह, केन्द्र मे चन्द्रमा और पाचवें स्थान मे बुध, अष्टम स्थान मे मंगल, सातवें स्थान मे राहु, केतू और शनि स्थिर है । यह अपनी सेना बढ़ावे तो सफल होगा । बहुत से गणित ग्रन्थ साक्षी देते हैं कि दसवें स्थान मे गुरु हो तो इच्छित कार्य करने पर शत्रु पर विजयी होता है । अत अछे दिन हैं कि सर्व श्रेष्ठ गृह इसके नाम मे है, किन्तु ऐसा होते हुए भी पीछे से ढकेलने वाला (हमला करने वाला) पवन रूपी हो और आगे शत्रु हो तो उस समय वैर नहीं वसाना चाहिये । (व्यास के अंतिम कथन का आशय यह है कि यदि ऐसे ग्रह होने पर भी पीछे से पवन रूपी शत्रु-गोरी के द्वारा आक्रमण की सभावना हो तो आगे स्थित चालुककी शत्रुओं पर इस समय आक्रमण नहीं करना चाहिये) ।

बोहा

रेन परै सम्हौ अरी, चक्र जोगिनी अगग ।

दई होइ दुज्जन-दिसा, तौ तन भग्गे खग्ग ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—रेन=रण, युद्ध । परै=आजाय । सम्हो=सामने । अगग=आगे । दई=ब्रह्मा । दुज्जन-दिमा=दुर्जन की शेर, शत्रु के पक्ष मे । तौ=तो भी । तन=शरीर । भग्गे=नष्ट हो । खग्ग=खड्ग द्वारा ।

अर्थः—युद्ध मे जब शत्रु सामने हो उस समय यदि योगिनि पक्ष मे होकर आगे चक्र चलाने के लिये तत्पर हो, उस समय शत्रु के पक्ष पर यदि ब्रह्मा भी हों तब भी खड्ग द्वारा शत्रु ककालों का नाश निश्चय ही होगा ।

कवित्त

कहै व्यास जगजोति, राज चहुआन प्रमानिय ।

गुज्जर गुज्जर सयन, वैर सोमेसर ठानिय ॥

इक्क लक्ख आहुरहि, लक्खि लक्खनि खग रुं धिह ।

होइ जैति चहुवान, पान भीमगह वंधहि ॥

गुजरात होइ तुअ ग्रेहनिय, यह वानी संमुख मँडौ ।

जो मिटै वत्त इह जोग कोइ, तौ हत्थह पत्रौ छँडौ ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—जगजोति=नाम विशेष, ससार में प्रतिभावान । प्रमानिय=प्रमाण युक्त, सत्य । गुज्जर=गुर्जर देशीय वीर, चालुक्य वीर । सयन=सेना । इक्क=अकेला । लक्ख=लक्ष । आहुरहि=अइपड़ने जैसे । लक्खि=लक्ष । लक्खनि=लाखों से । खग=खड्ग । रुं धिह=रोंध देगे । जैति=जय । पान=पाणी, कर । भीमगह=भीम । वधहि=बँधेगा, गँड़ेगा । ग्रेहनिय=गृहणी (वश में) । वानी=वात । मँडौ=कहता हूँ । मिटै=मिट जाय, असत्य हो जाय । जोग=योग । हत्थ=हाथ से । पत्रो=पतड़ा, पचांग । छँडौ=छोड़ दू ।

अर्थ—पुन जग जोति (जगजोति नाम या जग में ज्योति स्वरूप, प्रतिभावान) व्यास कहने लगा यह सत्य है कि गुर्जर सेना के गुर्जर (चालुक्य) वीरों ने सोमेश्वर से वैर किया, किन्तु आपका एक एक योद्धा एक लक्ष वीरों से भिड़ने जैसा है । आपके लक्षवीर लाखों की संख्या में शत्रुओं का मुकाबला करेंगे तो भी ये खड्ग द्वारा उन्हें रोंध देंगे और आपकी विजय होगी । भीम आपके सामने करवद्ध होगा । गुजरात भूमि आपके वश मे हो जायगी । यदि यह वात असत्य निकल जाय तो मैं हाथ मे पंचांग (पत्रा) रखना छोड़ दूंगा ।

दोहा

वचन व्यास सज्यौ सयन, वुल्लि सुभट भट राज ।

तत्र महरत सद्धि कै, वदिड निसाननि गाज ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—सयन=सेना । वुल्लि=बुला कर । तत्र=तत्त्वण । सद्धि=माधकै । वदिड=फैली । निसाननि=नक्कारों की । गाज=ऊर्ध्व ध्वनि ।

अर्थः—व्यास के वचन सुन, राजा ने श्रेष्ठ योद्धाओं को बुलाकर उसी समय सेना सजाई और तत्काल मुहूर्त साधा । जिससे नक्कारों की ऊर्ध्व ध्वनि चारों और फैल गई ।

दोहा

विक्रम अरु चहुआन नृप, पर धरती सक वंध ।

असस समैं साहस करन, हिन्दु राज दुअ कथ ॥

शब्दार्थः—विक्रम=रावल विक्रम-केशरी (नितोऽश्वर) । सप्त-गपना गिरका जमाने गी, चलाने वाले । असमसमे=उरे ममय मे, (जब कि मम्मिलम प्रनुयो के गताता गेश गीनी नातुय गोर राष्ट्रवर के विरोधी होने पर) हिन्दुगज=हिन्दुस्तान का शासन भार । दग-दोनों ।

अर्थः—विक्रम केशरी (चित्तौडेश्वर) और चहुप्रान राजा (पृथ्वीराज) पराई भूमि मे अपना सिक्का जमाने वाले हे और (जब कि मुगलमानो के हमले के अलावा भी देश द्रोही चालुक्य और राष्ट्रवरो के हमले होते हे) इस आपत्ति के समय यही साहस रखने वाले हे और इन्हो दोना के कर्नो पर हिन्दुस्तान का शासन भार हे ।

निड्डुर मन सजुरि सयन, हुअ इक्कत पृथिराज ।

जनु टिड्डी धर उल्लटिय, वडिद निशाननि गाज ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—मन-सजुरि=मन के मुताबिक पक्ति वद्ध की गई । मयन=मेना । हुअ इक्कत=सहमत हुआ । वडिद=वृद्धि हुई ।

अर्थः—निड्डुराय ने अपनी वुद्धि के अनुसार सेना को पक्तिवद्ध किया जिससे राजा पृथ्वीराज भी सहमत हुआ और वह सेना ऐसी दीख पडी मानों टिड्डीदल उमड आया हो । उसी समय नक्कारों की ध्वनि हुई ।

पच सवद वज्जे गहिर, घन घु मर वरजोर ।

जग जुभाऊ वज्जिया, वडिद श्रवन्न सोर ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—पच सवद=पचम स्वर या पच स्वर । घनघु मर=आकाश मे प्रतिध्वनित । वरजोर=जोर शोर से । जगजुभाऊ=रणवाद्य । वज्जिया=वजे । सोर=शोर गुल ।

अर्थः—पचम स्वर मे अथवा पांचों स्वरों मे रणवाद्यों के गभीर घोष से आकाश-गडल प्रतिध्वनित हो उठा, जिससे श्रोतागणों के कान केवल शोरगुल ही सुनने लगे ।

चढै दिक्खि चालुकक दल, वहुरे सभरि दूत ।

भेप दिगवर दुति तनह, जे अबधूत नि धूत ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—चढै=सजने पर । ऋहे=फिरे, लांटे, आयें । सभरि=सभरेश्वर । दिगवर=दिशाओं के आखों पर पड़दा टालने वाले, दिशाओं से लुप्त । दुति=द्वितिय । अबधूत=साग्र्यों मे । धूत=धूर्त ।

अर्थः—चालुक्यकी सेना द्वारा की गई चढ़ाई को देख कर सोमेश्वर (पृथ्वीराज) के दूत लौट गये । वे इतने दक्ष और धूर्त थे कि अवधूत वेश बना कर दिशाओं से भी छिपे हुए थे ।

गनिका गनिक कव्यद की, ठग विद्यापरवीन ।

दूत धूत अनभूत तम, नवनि राज तिन कीन ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—गनिका=वेश्या । गनिक=ज्योतिषी । कव्यद=कवि की । परवीन=प्रवीण-। अनभूत=अदभूत । तम=तिम, तैसे । नवनि=नमस्कार । राज=राजा से । कीन=किया ।

अर्थः—वेश्या, ज्योतिषी और कवि उनके सामने क्या वे ठग (कपट) विद्या में प्रवीण थे । ऐसे अदभूत दूतों ने आकर राजा को नमस्कार किया ।

गाथा

संमुख पित्रिखय राज, वुल्ले वयन सु हित्त सभाज ।

चढि चालुक्यकी गाजं, नर भर समुद उलाटि जनुपाजं ॥ १९ ॥

शब्दार्थ—समुख=सामने । पित्रिख=देखा । राजं=राजा ने । वुल्ले=कहे । वयन=वचन । सुहित=हित प्रद । समाज=समा में । गाजं=गर्जना की । नरभर=वीर योद्धा, सैनिक । समुद=समुद्र । उलाटि जनुपाजं=तूफान पर आ गया हो, कार लोप हो गया हो ।

अर्थ—आये हुए दूतों की ओर राजा ने देखा और दूतों ने समा में उसके हित के वचन कहे—चालुक्यकी वीर गर्जना कर सैनिकों-सहित इस प्रकार बढ़ चले जैसे समुद्र में तूफान उठ आया हो ।

दोहा

इक्क लक्ख संन्या सकल, अकल कही नहि जाइ ।

इक्क सहस मद् गज्ज की, दिखिये जानु वलाइ-॥ २० ॥

शब्दार्थ—संन्या=सेना । अकल=अनिश्चित । मद्=मतवाले-। गज्ज=हाथी । दिखिये=देखे जाते हैं । जानु=जैसे ।

अर्थ—उनकी सेना अनुमानत. एक लाख है जिसको भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । इस सेना में एक हजार मद्मस्त हाथी बला की भांति दिखाई देते हैं ।

कवित्त

इम भंजौ भीमग, जुद्ध जौ मोहि जुरै रण ।
 ग्रीषम पवन महाड दग जरि जात सघन वन ॥
 यौ भजौ भीमग भीम कुरनद पञ्चरिय ।
 यौ भजौ भीमग, सञ्चित महिचागुर वारिय ॥
 इमि जुरौ जुद्ध भीमंग सौ, 'अग्नि' तेज चाडहि हिता ।
 पृथ्वीराज नाम तदिन धरौ, उदर फारि फटहौ पिता ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ भी० प० ।

शब्दार्थः—भजौ=नष्ट कर दौं । भीमग=चालुक्य भीम या भीम, के अग स्वरूपी वीर । जुरै=बुटे, सामने होवे । दग=चिनगारी । कुरनद=कौरव । सञ्चित=देवी । वारिय=मम । अग्नि=अग्नि, रोती । वाह=वायु । हिता=हता, नष्ट करे ।

अर्थः—यह सुन कर पृथ्वीराज ने कहा कि यदि युद्ध मे मेरा और भीम का तथा उसके अग स्वरूपी वीरों का सामना हो गया, तो उन्हे इस प्रकार नष्ट कर दूंगा जैसे ग्रीष्म काल की हवा चिनगारी की सहायता से सघन वन को, भीम-कौरवों को, देवी-महिपासुर को और तेज पवन-कृपि को नष्ट कर देता है । मैं अपना पृथ्वीराज नाम तब ही सार्थक समझूंगा जब चालुक्यों के उदरों को विदीर्ण कर मेरे पिता का बदला लेलूंगा ।

दोहा

आखेटक खिल्लन चलिय, सुभट पंति सजि साज ।
 चावहिसि वनु विट्टिकै, मद्धि सपत्तिय राज ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—खिल्लन=खेलने । पति=पत्ति । चावहिसि=चारों ओर । विट्टिकै=घेरकर । मद्धि=अदर । सपत्तिय=पहुँचा । राज=राजा ।

अर्थः—इतना कह शिकार खेलने के बहाने सामंत पत्ति सुसज्जित कर चारों ओर घेरा डालता हुआ राजा अनान्तर मे प्रविष्ट हुआ ।

वन वेहड घग्घे विपम, हकत पत्तिय सज ।
 जो जह विट्टौ गो तहाँ, हुब डेरा वन मभ ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—वेहड़=वीहड़ । बंधे=बेढे । हकत=फिरते हुए । पत्तिय सज=रात्रि आ पहुँची । विद्रौ=वैठा । डेरा=मुकाम ।

अर्थः—उस वीहड़ वन में शक्ति शाली वीरों को फिरते हुए सायंकाल होगया इस लिये जो जहाँ था वहीं उन्होंने डेरा डाला ।

सूर उदै चट्ट हते, उतरे संध्या सूर ।
अन्न पान पहुँच्यौ सकल, कह नीरै कहदूर ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—सूर=सूर्य । चट्टहते=चढाई की थी । उतरे=विश्राम किया, मुकाम किया । सूर=शूर-वीर । कह=क्या । नीरे=नजदीक ।

अर्थः—सूर्योदय होने पर उन वीरों ने चढाई की । सायंकाल होने पर वहीं आस-पास विश्राम किया और सबके लिये अन्नजल पहुँचाया गया ।

हुकम नकीवति कहि फिरै, डेरा डेरा गाहि ।
जो जीउ जा ढिग निक्करै, राजन खिष्मै ताहि ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—हुकम=आज्ञा । नकीवती=नकीब, दूत । डेरा २=मुकाम मुकाम । गाहि=ग्रहण करते हुए । जा=जाकर । जीउ=जीव, जानवर । ढिग=पास । निक्करै=निकले । खिष्मै=नाराज होवे । ताहि=उसपर ।

अर्थः—प्रत्येक सामंत के डेरे पर दूत द्वारा आज्ञा भेजी गई कि जिसके निकट जो जानवर निकले वह उसी का शिकार है (वह उसे मार सकता है) । राजा उससे नाराज नहीं होंगे ।

उत्तरि सेन सुराजं, निद्रा छुभित सव्व सुभटाई ।
मोहं वस ज ग्यान सहसुत्तैव खग्ग वंधाई ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—उत्तरि=मुकाम किया । निद्रा छुभित=निद्रा से व्याकुल, निद्रा प्रसित । ज=जैमे । ग्यान=ज्ञान शक्ति । सुत्तैव=सो गये । खग्ग वंधाई=खड्ग कमे हुए ही, या खड्गधारी ।

अर्थः—राजा ने ससैन्य पड़ाव किया और तलवारें कसी हुई होने पर भी सब सामंत निद्रा के वश में इस प्रकार चेतना शून्य हो गये जैसे समत्व के कारण ज्ञान लुप्त हो जाता है ।

सुत्तेय सहसेन. निद्रा विवस चपिग वीर ।
जम वस ज जीव. निज्ज ^१-ग्यान चपिज काल ॥ २७ ॥

मा० पा० १ टि० ।

शब्दार्थः—जम=यमराज । ज=जैसे । निज्ज-ज्ञान=स्तज्ञान, ज्ञान मरानो गाल=काल हो, समय हो ।

अर्थः—समूची सेना को निद्रा ने इस प्रकार दवा दिया जिस प्रकार यम प्राणी हो और आत्म-ज्ञान का को दवा देता है ।

कवित्त

राज पास कयमास, कन्ह कनकू सव्वूरा ।

सवर सूर पामार, जैत साहिव अक्वूरा ॥

सलख चन्दपु डीर दई, दाहिम चामड ।

सारग गुर सिरमौर, राज हमीर ति सड ॥

पञ्जून सूर कूरम्भ वलि, वर पहार तौवर सुभर ।

लगरीराउ लौहान भर, रहिग सेन जु रि सूर वर ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—कनकू=कनकराय । सव्वूरा=सबल बलवान एक प्रकार का सबल शस्त्र भी होता है

जिमका रूप लोहे के बरत्ते के रूप में होता है उसे धारण करने वाला । सवर=सबल । साहिव=सजाधजा । अक्वूरा=आतू का । दई=दवा । गुर=गुरु । ति=वह । सड=माड, नषम । तौवर=तोमर क्षत्रिय । रहिग=रही । जु रि=छुटा कर ।

अर्थः—राजा के पास कैमास के अनिरिक्त सबल वीर (या उत्तम साबल बर्द्धशिखर रखने वाले) नरनाह कन्ह, कनकराय रघुवशी वीर, सजाधजा अक्वू राजवशी जैत्र प्रमार और सलख, चन्द पुण्डीर विधि स्वरूप दाहिमा चामुण्डराय, राजगुरुओं का सिरमौर सारगराय, वृषभ तुल्य हम्मीरराय, बलवान वीर कूरम्भराय, श्रेष्ठ योद्धा पहारराय तोमर, वीर लघरीराय और लोहाना आदि थे । इन श्रेष्ठ बहादुरों ने सेना एकत्रित की (चालुक्यों पर चढ़ाई करने की तैयारी करली) ।

जाम एक निसि पन्छ, उठन आखेट विचारिय ।

सुनौ सव्य सामत मत, यह न्यत सुधारिय ॥

जंत जीव जगौ न, तत क्रम्म, सिद्धि न होई ।
 पुव्व श्रवन संभर्यौ, निगम जंपै वर लोई ॥
 चित्तयौ चित्त चिन्ता सु मन, मा सुत्ती तिय सह सुनि ।
 त्रिस्मान राज प्रथिराज गुन, सुवर सगुन वज्जै सु धुनि ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—जाम=याम, प्रहर । निसि=रात्रि । पच्छ=पिछली । उठन=उठे । सव्व=सव । च्यत=चिंतन करके । धारिय=धार लिया, निश्चय कर लिया । जत-जहाँ तक । जीव=प्राणी । जगौन=जागृत नहीं होता, पुरुषार्थ को काम में नहीं लेता । तत=तब तक । क्रम्म=कर्म, कार्य । पुव्व=पहले से । समर्यौ=सुना । निगम=वेद, शास्त्र । जपै=कहा है । लोई=श्रेष्ठ लोगों ने । मा=माता, देवी (श्याम-चिड़िया) । सुत्ती=श्रुति, कान । तिय=तीन । सदद=शब्द । त्रिस्मान=निश्चय विचार किया हुआ (युद्ध करना सोचा) । गुन=गणना की (ऐसा ही होना निश्चय पाया) । सुवर=श्रेष्ठ । सगुन-वज्जै=शकुन के वाद्य की ध्वनि हुई ।

अर्थः—जब एक प्रहर रात्रि शेष रही तब उठ कर आखेट करने का निश्चय किया और राजा कहने लगा, हे सामंतो । मैंने यह चिंतन कर निश्चय किया है कि जहां तक मनुष्य जागृत नहीं होता (पुरुषार्थ को काम में नहीं लेता) वहाँ तक कार्य की सिद्धि नहीं हो पाती यह बात पूर्व परम्परा से चली आरही है । शास्त्रकारों ने भी यही कहा है । राजा की इस बात को सामंत अच्छी तरह सोच रहे थे कि इतने में श्यामा देवी (काली चिड़िया जिसे देवी कहते हैं) की तीन आवाज कानों में सुनाई दी । इस उत्तम शकुन से राजा पृथ्वीराज ने जो निश्चय किया था और कहा था उसी की पुष्टि हुई सोच कर (युद्ध के भविष्य का विचार करते हुए) मंगलिक वाजे वजवाये ।

दोहा

वन हंकम नृप हुकम किय, जह तह गज्जै सूर ।
 तवल तूर त्रंभक त्रहिय, कह नीरे कह दूर ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—हकम=बठने की, घेरने की । गज्जै=गर्जना करने लगे । तूर=तुर ही । त्रहिय=बजने लगे ।

अर्थः—वन को घेरने की राजाने आज्ञा दी और जहाँ तहाँ वीर गर्जने लगे । नजदीक और दूर सर्वत्र तवल, तुरही और त्रम्बक आदि विविध वाद्य बजने लगे ।

घुघ्वर गज घटानि धुनि, हय गय हयमह लच्छिद्र ।
सयन सब्ब मोघत जगिय, कानन हकिय पच्छिद्र ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—घुघ्वर=घुघरू । हयमह=येना । लच्छिद्र=दिखारि पक्षे । सयन=शयन । जगिय=जगे ।
हकिय=विहार करने लगे । पच्छिद्र=पक्षी ।

अर्थः—उसी समय घुघरू की ध्वनि होने लगी और सेना के हाथी तथा घोड़े दिग्बाई पडे जिससे सब सुशुभ पक्षी जाग गये और वन में विचरने लगे ।

सिंघ छुधित निद्रा ग्रमित, स्यघिनि सिंसु दुव पास ।
काल व्याल नागिनि जग्यौ, वहि वीरा रस त्रास ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—छुधित=नुधित । स्यघिनि=सिंहनी । सिंसु=सिंशु । दुव=दो । त्रास=भय, भयानकता ।
अर्थः—भूखसिंह निद्रा ग्रस्त था तथा सिंहनी के दोनों बच्चे पास थे । सिंह सिंहनी इस शोर गुल से यमराज के व्याल दम्पति (सर्प सर्पिणी) के समान जाग गये ।

कवित्त

भपटि लपट जनु अग्गि, कुंनि दिसि-कन्ह लटकिय ।
अतुलि पाइ वल अतुल, अग्गि जनु जग्गि भटकिय ॥
जाजुल्लित गभीर, गरुव सहह उच्चारिय ।
हाइ हाइ आरिष्ट, राज हकत वकारिय ॥
असवार चुक्कि चण्यो ति हय, कर कुडलि कमानरजि ।
नरनाह वाह अवसान फवि, परिसु वत्य नर अस्व तजि ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—भपटि=भपटना । लपट=ज्वाला । अग्गि=अग्नि । कुंनि=खूनी । दिसि=ओर । लटकिय=लूमा, छूटपड़ा । अतुलि=अनुत्प । पाइ=पाकर । जनु=मानों । जग्गि=जाग्रत हो कर । भटकिय=चल पड़ा । जाजुल्लित=जाञ्जल्पमान । गभीर=गहरी । गरुव=भारी । सहह=शब्द, आवाज । हाइ हाइ=हा हा । आरिष्ट=अरिष्ट । राज=राजा (पृथ्वीराज) । हकत=बढता हुआ देखकर । वकारिय=आवाज दी । चुक्कि=चूक कर । चण्यो=दवा दिया । ति=उमके । हय=घोड़े को । कुडलि=कुण्डलाकृति, गोल । कमान=कमान, चाप । रजि=सुशोभित हुई । नरनाह=नरनाह कह । अवसान=मौका । वत्य=गुन्धम

अर्थ:—वह खूनी शेर नरनाह कन्ह की ओर इस तरह झपटा मानों आग की ज्वाला धधक उठी हो। उस बलवान सिंह को देखकर शक्तिशाली नरनाह कन्ह भी अग्नि के समान झपट कर चल-ड़ा। उस जाज्वल्यमान वीर ने शेर को गंभीर ध्वनि से ललकारा। काका कन्ह को सिंह की तरफ आगे बढ़ते हुए देखकर राजा पृथ्वीराज ने हा अरिष्ट २ आवाज दी। उधर सिंह ने झपट कर अश्वारोही, कन्ह को छोड़ उसके घोड़े को दवा दिया। उस समय कन्ह की आकृति कुन्डलाकृति-कमान के समान शोभा पाने लगी। नरनाह कन्ह को धन्य है जो मौका पाकर घोड़े को छोड़ सिंह से गुत्थम-गुत्था होगया।

इतहि स्यघ उत कन्ह, जन्ह जुग जानि प्रबल वर ।

दुव दतिनि दल दलनि, दूवो जम जोध अडर डर ॥

कध कख तिहि चपि, कन्ह कढडिय कट्टारिय ।

पिट्ट फारि धर डारि, फेरि पग भुमि पछारिय ॥

सिर फट्टि छट्टि भिज्जिय उडिय, हइ मस नस भूर हुव ।

जय जया सह खह भुमि भय, वलि वलि कन्ह नरयंद भुव ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ:—जन्ह=जहाँ । जुग=युगल, दोनों को । दुव=दोनों । दतिनि=हाथियों के । दल=समूह । दलनि=दल देने वाले, नाश कर देने वाले । दूवो=दोनों । जम=यम । जोध=योद्धा । अडर=निडर । डर=मयस्वरूप । कध=कथा । कख=कुत्त । चपि=दवा कर । पिट्ट=पेट, उदर । फारि=फाड़कर । छट्टि=छाँटे । भिज्जिय=भेजी, खोपड़ी का मज्जा । हइ=हड्डियाँ । मस=मांस । नस=नसे । भूर हुव=चूर्ण हो गई । खह=आनाश । मय=हुथा । वलि=बलिहारी (या वलि वलि=बलवानों का शिरोमणि) । भुव=पृथ्वी ।

अर्थ:—उधर सिंह और उधर नरनाह कन्ह दोनों जहान में श्रेष्ठ बलशाली माने गये । दोनों ही हाथियों के समूह को नष्ट करने वाले थे । दोनों यमराज के तुल्य निर्भय और वीरों के लिये भय स्वरूप थे । कन्ह ने सिंह को बगल में दबाकर अपनी कटार निकाल ली और उसका उदर फाड़ डाला और पृथ्वी पर पटक दिया । फिर उसके पैर पकड़ कर उसे घुमाया और जमीन पर दे मारा । कन्ह द्वारा बवाने से शेर की खोपड़ी फूट गई और मज्जा के छींटे उड़े । सिंह के तन-पंजर की हड्डियाँ, मांस, और नसे, चूर २ हो गई । यह देखकर आनाश-मण्डल और भूमण्डल से

जय २ कार की आवाज हुई कि पृथ्वी पर चलाना वीर कन्ह ही नलिहारी है ।
(या पृथ्वी पर राजा कन्ह नरनाह ही चलाना हा गिरोमणि) है ।

भय्यौ म्यप् स मर कन्ह गज्यौ चाहुवान ।
उभय मर मुख नर, सगुन लद्रो परिमान ॥
गठि सगुन हिय मठि गुज्ज वृञ्ची न ममरति ।
कच कच उपरे, देस पट्टन नर चरति ॥
आकास मग तारक तुटे थो, तुट्टे अरि सेन परि ।
कल मलहि शेष कायर कॅपहि, किञ्जलि उज्जर जारि वरि ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—भय्या=नष्ट किया, मार दिया । म्यप=गिरा । स=तह । मर=मर, बहादुर । गज्यो=गर्जना की । उभय=दोनों (पृथ्वीराज और मारा कन्ह) । नर=कृति । लद्रो=पाया । परिमान=प्रमाण युक्त । सगुन गठि=गुण शक्त मान कर । हिय=हृदय । मठि=जाड कर । गुज्ज=आगज, कहर । वृञ्ची=पृथ्वी । ममरति=ममावरा, सम्मति । कच कच=मुकाम पर मुकाम । उपरे=ऊपरने हुए । पट्टन=पाटण (गुजरात) । धर=पृथ्वी, भूभाग । चरति=चूरे, पहुँचे । मग=मार्ग । तारक=तारे । तुटे=टूट पड़े । परि=पर, उपर । कलमलहे=तिलमिलाने लगा । किञ्जलि=किया गया । उज्जर=उजड़ । जारि=जला कर । वरि=भूभाग

अर्थः—बहादुर कन्ह चाहुवान ने सिंह को मार कर गर्जना की जिससे पृथ्वीराज के मुख पर कान्ति व्याप्त होगई और सिंह पर विजय पाना शुभ शकुन मान कर छाती से छाती छुआ कर कन्ह से मिला, वाद मे कोई परामर्श नहीं किया गया और बराबर पडाव करते हुए पट्टन प्रदेश (गुजरात) की ओर चले । आगे वे शत्रु सेना पर इम प्रकार टूट पड़े जिस प्रकार आकाश मार्ग से नक्षत्र टूट पड़ते हैं । उनके आक्रमण से शेषनाग तिलमिलाने लगा । कायर पुरुष कम्पित हो गये और शत्रु के भूभाग को जला कर उजाड दिया ।

गाथा

मर किरनि प्रकार, मार मर जुद्ध सत्तार् ।

कै मयमत विछुडा, कै तुट्टाड कालग किरणी ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—मर=मर्त्य । मार=लोहा । जुद्ध=युद्ध के । सत्तार्=मतवाले । कै=कितने ही । मयमत=भयभीत गयो । विछुडा=टूट गये । तुट्टाड=टूट पड़े । कालग किरणी=काल क्रय के लिये ।

अर्थः—युद्ध-मतवाले वहादुरों के लोहे उस समय सूर्य-किरण के समान चमकने लगे और कितने ही वहादुर मतवाले हाथी के समान छूट पड़े तथा कितने ही काल कृत्य करने के लिये टूट पड़े ।

राजन हिय हुव सुक्खं, लद्ध सगुण सत्ति परमानं ।

अचल गंठि सदीयं, अग्गं चले ठट्ठि ठट्ठाई ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—लद्ध=प्राप्त किया, पाया । सगुण=शकुन । परमान=प्रमाण युक्त । अचल=आंचल, दुपट्टे का छोर । गंठि=गांठ, ग्रथि । ठट्ठि ठट्ठाई=ठाट सजा कर, ठाट बाट से ।

अर्थः—सामंतों को इस प्रकार बढ़ते देख राजा के हृदय में प्रसन्नता हुई और पूर्व शकुनों को सप्रमाण सत्य पाकर अपने दुपट्टे के छोर पर गांठ दी (शुभ शकुन होते हैं तो अपने वस्त्र के गांठ देने की रस्म है) तथा ठाट बाट के साथ आगे बढ़े ।

कवित्त

सिलह सज्जि सामत, मंत मंते जनु चल्लिय ।

सा चौसट्ठि, हजार, भार भारथवै हल्लिय ॥

वानै वैरख चमर, छत्र सज्यौ सिर कन्ह ।

छुट्ठी पट्टि नयन, विरद नरनाह जिन्नन ॥

सेनाधिपत्ति काका कियौ, अग्ग फौज प्रथिराज वर ।

पच्छिंली फौज निड्डर वली, ता पच्छै पामार भर ॥ ३८ ॥

शब्दार्थः—सिलह=कवच । मतमते=मतवाले हाथी के समान । सा=वो । चौसट्ठि=चौसठ । भारथवै=युद्ध कर्ता । हल्लिय=चले । वानै=वाना शोभा । वैरख=पता का । छुट्ठी=छोड़ी गई, खोनी गई । पट्टि=आंख की पट्टी । जिन्नन=जिमके । पच्छे=पीछे ।

अर्थः—यौध्यागण कवच धारण कर इस प्रकार आगे बढ़े, जैसे मतवाले हाथी चलते हैं । चौसठ योद्धा ही हजार योद्धाओं के समान थे वे युद्ध का भार वहन करने के लिये बढ़े । उनकी शोभा का स्वरूप कन्ह था, जो सेनापति था । और उसने पताका, चमर, छत्र आदि सेनापति के सब चिन्ह धारण किये । उन वीर कन्ह की उमावि नरनाह थी, उनकी आंखों से पट्टी खोली गई । इस प्रकार आगे की

फौज का सेनापति पृथ्वीराज ने काफ़ा कन्ह को बनाया और पीछे ही फौज का सचालक वीर निड्डुरराय हुआ । उससे पीछे की सेना का सचालक प्रमार योद्धा हुआ ।

दोहा

कूच कूच जिम जिम चलिय, तिम तिम अडिय मोह ।

जिम वच्यौ दुजराज नै, तियि पत्रा नहिं मोह ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—कूच कूच=मुकाम पर मुकाम करते हुए । अडिय=चोर दिया । वच्यौ=पढाहुया ।

दुजराज=द्विजराज, ब्राह्मण । पत्रा=पत्राग । नहिं मोह=शोभा नहीं पाता, अच्छा नहीं लगता ।

अर्थः—जिस प्रकार सामन्त आगे २ बढ़ते गये उसी प्रकार उनका मोह बराबर घटता गया, जिस प्रकार वीते वर्ष का पञ्चांग ज्योतिषी छोड़ देता है ।

कवित्त

ढिग बुलाइ प्रथिराज, हथ निडुर कर धारिय ।

सकल सूर सामन्त, जुद्ध मत्तह अधिकारिय ॥

(तुम) आदि राज पहु आदि, आदि सम जुद्धहि मडौ ।

दैव काल सम्रहौ, बलह भारत्य जिम पडौ ॥

चित्तह अनन्य ससार सह, छिति छत्रिनि महि छजति रज ।

एकंग अग जगह अचल, रण रत्ते माया निकज ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—ढिग=नजदीक हथ=हाथ । निडुर कर=निड्डुर राय के हाथ पर । धारिय=दिया ।

सकल=सकलवाले, (या मन्त्रणा के) । पहु=राजा । सम्रहौ=मान कर । बलह=बल । भारत्य=महा-

भारत । पडौ=पाडव । चित्तह=चितने लग जाय, समझने लगजाय । छिति=पृथ्वी के । छत्रिनि=

छत्रियों में । छजति=सुरोभित हों । रज=रजोगुण । एकंग=एक ही अंग, एक्यंग (एक होकर) ।

अचल=अटल । निकज=निरर्थक ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने निड्डुरराय को पास बुलाया और उसके हाथ पर हाथ दिया तथा सब वीरों को सम्बोधित कर कहा कि हे वीरो ! तुम सब बहादुर युद्ध के मतवाले तथा युद्ध के अधिकारी योद्धा हो, पूर्वकाल के शिष्ट राजाओं के समान युद्ध की रचना करनी चाहिये । समय को देवाधीन मान कर महाभारत-युद्ध कालीनपाडवों के समान शक्ति का उपयोग करो जिससे नारा मसार तुम्हें सर्वश्रेष्ठ प्रवीर समझने लगजाय ।

इस प्रकार सब एक काय हो युद्ध में अडिग बन जाओ और माया को निरर्थक कर दो ।

कह निडुर रट्टौर, जूह जगिनि बल मडन ।
समर समय रत स्वामि, तनहि तिनुका जिमि खंडन ॥
इक्कउ भत उध जुद्ध, इक्क गज दत्त उखारै ।
इक्क कमध उठि चलहि, इक्क रुपि वीर वकारै ॥
सभरि नर्यद सामन्त असि, उदर लवन तुम हमहि बल ।
बड़ वंस अंस दानव बली, करहु मोह हम भाग भल ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—जूह=समूह । जगिनि=युद्ध कर्ताओं के । इक्कउ=एक ही । भत=मांति, तरह, प्रकार । उध=ऊर्ध्व, उन्नत । कमध=रुएह, धड़ । रुपि=डटकर । वकारै=तलकारना । असि=ऐसे । लवन=निमक । बल=बल । बड़=बड़ा । माग=भाग्य । मल=मला, अच्छा ।

अर्थः—योद्धा समूह के बल में वृद्धि करने वाला निडुरराय राष्ट्रधर कहने लगा—हम क्षत्रियों का धर्म है कि युद्ध के समय स्वामी धर्म में रत होकर शरीर को तिनके के समान खण्ड २ कर दें । हम सब एक ही प्रकार से धर्म युद्ध करें जिसमें कोई हाथियों के दांत उखाड़ता हुआ, किसी का रुएह खड़ा होकर चलता हुआ, कोई वीर शत्रु को ललकारता हुआ दिखाई पड़ेगा । हे सभरेश्वर ! आपके सब सामन्तों के उदर में आपके नमक का बल है । आप बड़े वंश के हैं और आप में बलवान वृद्धा दानव (तृतीय वीशल) का अंश है । हम से आप स्नेह करते हैं यह हमारा सौभाग्य है ।

दोहा

बालापन जोवन विरध, रन रत्तौ जौधार ।

कन्हु दल नि अरि मडइय,तिन तिरुका करि डार ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—बालापन=शिशुत्व । जोवन=यौवन । विरध=वृद्ध । रन=युद्ध । रत्तौ=रत्त, लीन । जोधार=योद्धा । दल=सेना । नि=नहीं । अरि=शत्रु । मडइय=नडन करना, सामना करना, राजना, सजाना । तिन=तन, शरीर । तिरुका=तिनका । करि डार=कर डालेगा ।

अर्थः—बाल्यावस्था से लेकर युवा और वृद्धावस्था तक जो योद्धा युद्ध में अनुरक्त रहने वाला है, ऐसे वीर कन्ह से, हे शत्रुओं ! सेना के मध्य में सामना मत करो

नहीं तो यह तुम्हारे शरीर को तृण तुल्य कर देगा (अर्थात् तिनके के समान तोड़ मरोड़ डालेगा) ।

जिन अखिनि पट्टी रहे, सो छुट्टे ह्वै ठाम ।

कै सज्या रमनी रमन, कै छुट्ट सप्राय ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—अखिनि=नेत्रों की । छुट्टे=खुलती हैं । ह्वै ठाम=दो स्थानों पर । हे=या । सज्या=शैया ।

अर्थः—वीर कन्ह की आँखों पर पट्टी रहती थी । वह दो स्थान पर हटाई जाती थी । या तो रमणी से रमण करने के समय शैया पर अथवा युद्ध-समय शत्रुओं पर आक्रमण करते समय ।

जो वके विरदनि वहे नरणिनाह जिन जपि ।

कै भारत भीषम सुभट, कै रामायन कपि ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—वहै=चलै (प्रचलित) । नरणिनाह=नरनाह । जिन=जिने । जपि=कहते हैं । कपि=कपीश्वर, हनुमान ।

अर्थः—जिसके विरुद्ध प्रचलित थे और जिसे नरनाह कहा जाता था, ऐसा श्रेष्ठ योद्धा था तो महाभारत के समय भीष्म अथवा रामायण में वर्णित हनुमान ही कहा जा सकता है ।

अमुल माल मुत्तिय सजल, मोल लख गुन मानि ।

अपु उर ते उत्तारि कै, दीनी निहुर दानि ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—अमुल=अमूल्य । माल=माला । मुत्तिय=मोतियों की । सजल=पानी वाली (कान्ति युक्त) । मोल=मूल्य । लख=लक्ष, लाख । गुन=गिनने, आकने पर । मानि=माना गया । अपु=अपने । उर तें=हृदय से । उत्तारि=उतार कर । दानि=उदार ।

अर्थः—अमूल्य मोतियों की कान्ति युक्त माला को, जिसका मूल्य लाखों रुपयों का माना जाता था, उदार राजा (पृथ्वीराज) ने अपने गले से उतार कर निड्डुरराय को दे दी ।

कवित्त

हालाहल उर भाल, माल मुत्ती दुति राजै ।

रवि कठह जनु गग, ईस जनु सीस विराजै ॥

जैसे वज्रत डक, वीर वद्धत बल ताजै ॥
 सुभ निडुर रटोर, वज्जि नीसान विराजै ॥
 मंडइय मरन मन अरि कलन, चलन चित्त मन अचल हुव ।
 सह सेन मद्धि यौं राजई, खह मग्गह ज्यौं जानि धुव ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—हालाहल=जहर । उर=हृदय । भाल=ज्वाला । माल=माला । गुती=मोती । दुति=द्युति, चमक । राजै=शोभित हो । रवि=सूर्य । जनु=ज्ञानो, मानो । ईस=महादेव । डक=डका । वद्धत=बढ़ता है । बल=शक्ति । ताजै=अच्छे । वज्जि=वज्र कर । मंडइय=रचना, सजाना । अरि=शत्रु । कलन=कँसाने को । हुव=हुआ । सह=सब । मद्धि=मध्य, बीच । खह=आकाश । मग्गह=रास्ते । धुव=ध्रुव ।

अर्थः—वह मोतियों की माला निडुर के गले में ऐसी मालूम दे रही थी, मानों हलाहल की ज्वाला पर कांति या सूर्य के समीप आकाश गंगा अथवा शिव के सिर पर भागीरथी हो । उस समय जैसे ही नक्कारे पर डका पडा, वैसे ही शक्तिशाली वीर बढ़ने लगे । उसी समय श्रेष्ठ वीर निडुर राय राष्ट्रवर ने भी नक्कारे वजवाये और सेना में सुशोभित हुआ । शत्रुओं को फांसने के लिये उसने मन से मृत्यु का मंडन किया, वह विचलित न होकर अचल बना रहा । सारी सेना के मध्य में वह ऐसा शोभित हुआ, जैसे आकाश मार्ग में ध्रुव शोभायमान हो ।

दोहा

पुनि कन्हह प्रथिराज नृप, पाट पवंग परट्टि ।
 लई नहीं मन मम्म मल, निट्टि चढ़ायौ हट्टि ॥ ४७ ॥

शब्दार्थः—पुनि=फिर । पाट=प्रमुख । पवंग=घोड़ा । परट्टि=दया । लई=लिया । मन मम्म मल=मन को अन्दर ही अन्दर मल (कुचल) दिया । निट्टि=नीठ, कठिनाई से । हट्टि=हठ, आग्रह पूर्वक ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज ने नरनाह कन्ह को अपना खास घोडा दिया, लेकिन कन्ह को अपने मन की वेदना (सोमेश्वर की मृत्यु की उदासी) को अन्दर ही अन्दर कुचलने लगी । तब राजा ने हठ पूर्वक कठिनाई से उसे घोडे पर चढ़ाया ।

कन्ह कहै नृप जंगलह, मोहि सु जीवनु भिद्ध ।
 सोमु अर्थनिनि सट्टयो, (तजि) पंजरु हंसुन नट्ट ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—ज गतार=जगतोत्तर । मित्र=भ्राता, तथा । गोप=गोपिता । गोपिणि पिपिनिय
ने । सद्गयो=साधा, निपाता । गिजा । हार=पाण्डुरी । न=अगा, गो । ।
अर्थः—कन्ह काने लगा-मेरा जीवन गुना है । गोमेश्वर के साथ पिपिनियों ने
युद्ध किया (उसे मार डाला) । फिर भी मेरे प्राण-परंपर उम शरीर स्त्री पिपिनियों
से नहीं निकल ।

कवित्त

एक समै सुग्रीव, त्रीय रग्वी न अप्पु वल ।
इक्क समय दुज्जोध, करनु रग्यो न जित्ति खल ॥
एक समय श्रीराम, सीथ वनवास अरिण ग्रहि ।
इक्क समय पडौनि, चीरु रग्यौ न द्रुपत्तहि ॥
तुम कन्ह कक अकलक महि, इष्ट रूप हम सब जपहि ।
तुम तेज अखि दिक्खत नयन, मयुर अप्प जिमि भर कपहि ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—त्रीय=स्त्री । अप्पु वल=अपने बलपर । दुज्जोध=दुर्योधन । करनु=कर्ण । जित्ति=
जीत कर । खल=शत्रुओं को । अरिण=शत्रुओं । ग्रहि=ग्रहण किया, अपहरण किया । पडौनि=पाँडवों ने ।
द्रुपत्तहि=द्रौपदी का । कक=शरीर । अकलक=निरकलक । महि=पृथ्वीपर । अखि=आँखों से । नयन=
नम जाते हैं । अप्प=सर्प । भर=भट, वीर । कपहि=कपित हो जाते हैं ।

अर्थः—निड्डुरराय ने कन्ह से कहा-एक वार सुग्रीव भी अपनी शक्ति के बल पर
अपनी स्त्री की रक्षा न कर सका, शत्रुओं पर विजय पाकर दुर्योधन भी कर्ण की
रक्षा न कर सका, राम चन्द्र के होते हुए भी सीता वन से शत्रुओं द्वारा अपहरण
करली गई और पाँडवों के होते हुए भी द्रौपदी के चौर को रक्षा न हो सकी । अतः
हे कन्ह ! तुम्हारा शरीर तो पृथ्वीपर निरकलक है । हम सब तुम्हें इष्ट-स्वरूपी
समझकर तुम्हारा बखान करते हैं । शत्रु के योद्धा तुम्हारे तेज को देखते ही भुक्तकर
इस प्रकार कपित होने लगते हैं जैसे मयूर को देख कर सर्प कापने लगता है ।

दोहा

निड्डुर कन्ह प्रमोधि इम, सोलकी सीमग ।
सुनि अप्प धाप दुसह, दल दारुन भीमग ॥ ४० ॥

शब्दार्थ—प्रबोधि=प्रबोध किया, समझाया। सोलकी=चालुक्य। सीमग=सीमापर रहने वाले। दुसह=असह्य। सीमग=भीम के अंग स्वरूपी वीर, या भीम।

अर्थ—निड्डुरराय कन्ह को इस तरह समझा ही रहा था कि इतने में पृथ्वीराज के आने की सूचना सीमापर रहने वाले भीम के अंग स्वरूपी दुसह वीर चालुक्यों को मिली और उनका दारुण दल आ पहुँचा।

दिखा दिक्खि दुव सेन हुव, नारि गोर गहराण ।

कुहक वान आघात उठि उडी अग्गि असमान ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—दिखा दिक्खि=देखादेखी, । दुव=दोनों। नारि गोर=आग्नेय अस्त्र के गोले। गहराण=गहराये, गहरी आवाज की। कुहक=त आवाज। आघात=वार होने पर। उठि=हुई। अग्गि=आग।

अर्थ:—आग्नेय सामने होने पर एक सेना दूसरी सेना को देख सकी। उस समय आग्नेय अस्त्रों के चलने की गहरी ध्वनि होने लगी और वार होने लगे। साथ ही तीरों की आवाज होने लगी एवं अग्नि प्रज्वलित होकर आसमान को छूने लगी।

अग्ग पच्छ वाजू वियनि, दल मंडे दुव राइ ।

तत्त तुरिणि जे तत्त भर, असि कड्डे घनघाइ ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ:—अग्ग=आगे। पच्छ=पीछे। वाजू वियनि=दोनों पार्श्व को। दल मंडे=सेना पकित वद्ध हुई। दुवर इ=दोनों राजाओं की। तत्त=तेज। तुरिणि=चोड़े वाले। जे=वे, जो। सर=मट। असि=तलवार। कड्डे=निकाली। घनघाइ=विशेष अघात।

अर्थ:—दोनों राजाओं की सेना आगे पीछे और दोनों पार्श्व में व्यूह वद्ध हुई। युद्ध में तेज घोड़े रखने वाले तेज सामंन थे। उन्होंने भयंकर आघात करने के लिये तलवारें निकाल लीं।

पट्टे छुट्टे कन्ह चख, खल धारा हर वज्जि ।

मानहु मेघनि मडली, वीर विज्जुली रज्जि ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ:—पट्टे=पट्टी। छुट्टे=हटाई गई। चख=चबु, आँखों से। खल=शत्रुओं पर। धाराहर=तलवार। वज्जि=त्रजी, चलो। विज्जुली=विजली। रज्जि=सुशोभित हुई।

अर्थ — कन्ह की आँवो से पट्टी खुलते ही उसकी तलवार शत्रु-समूह पर उस प्रकार चलने लगी मानो मेघ मडली में विजली शोभा देती हो ।

कवित्त

इतहि कन्ह चहुआन, उतहि सारंग मकवान ।

वल वड्डे वलिवड, जानि कठीर लुहान ॥

कर कड्डे करिवार, भार ठिल्लै भर भारी ।

स्वामि धर्म सुद्धरै, वार वर्ती सु करारी ॥

लिखे जि अंक जिन कक विहि, आणि सपत्ती सो घरिय ।

अद्भुत रऊद्र रस विस्तरयउ, सुकविचद छदह धरिय ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—उतहि=उधर से । मकवान=मकवाना (भाला) कविय । वलवड्डे=वल वृद्धि । वलिवड=वरिवड, वलशाली । जानि=मानो । कठीर=सिंह । लुहान=लहया, खुनी । करिवार=तलवार । ठिल्लै=वहन किया । भरभारी=बड़े बड़े योद्धाओं का । वारवर्ती=समय उपस्थित किया । करारी=करारा । जि=जो । अक=अक्षर । कक=शरीर । विहि=विधि, ब्रह्मा । आणि सपत्ति=आ पहुँची । सो=वह । घरिय=घड़ी । अद्भुत=अद्भुत । रऊद्र रस=रौद्ररस । विस्तरयउ=विरतृत वर दिया । छदह धरिय=छदवद्व किया ।

अर्थः—इधर कन्ह चाहुआन और उधर सारगदेव मकवाना जो प्रचण्ड वलशाली थे उन्होंने अपने वल की वृद्धि इस प्रकार की मानो खूनी शेर हों । वे हाथों में तलवारें लेकर वडे २ योद्धाओं को ठेलने लगे । स्वामी-धर्म के धारक वीरों ने उस समय करारा वातावरण उपस्थित कर दिया । विधि ने उनके विषय में जो अक लिख दिये थे उसकी घडी आगई । उन वीरों ने अद्भुत और रौद्र रस का विस्तार किया, उसी को (मैंने) कवि चन्द ने इस प्रकार छन्द वद्व किया ।

दोहा

खत फट्टै सारग ने, जस कन्हा आवत ।

जुझि पर्यौ मकवान रण, गल गज्जै सावत ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः—खत=पत्र । फट्टे=खाना किये, पहुँचाये । मकवान=मकवाना (भाला) कविय ।

अर्थः—नरनाह कन्ह से सामना होने पर सारगदेव मकवाने ने अपने यश की सूचना यत्रतत्र पहुँचाई (अर्थात् उसका यश फैलाया) और आप स्वयं युद्ध में जुझ कर (युद्ध करता हुआ) मारा गया, यह देख सामन्तगण गर्जने लगे ।

रंडरि धर चालुकक की, परत धरणि मकवान ।

सूर सु गञ्जे जेंगलह, भैं भग्गौ अरियान ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ — डरि=विधवा । भैं=भय । भग्गौ=भग गया, दूर हो गया । अरियान=शत्रुओं का ।

अर्थ:—वीर मकवाने के धरा शायी होते ही चालुक्य-राज की पृथ्वी विधवा हो गई, उस मृत वीर के शत्रु जगलेश्वर के सामंतों का भय नष्ट हो गया और वे गर्जने लगे ।

सिद्ध न लभ्भैं सिद्धि जो, सो लभ्भी सामत ।

छाया माया मोह विन, विमल सु मन धावत ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ:—लभ्भैं=प्राप्त कर पाते । लभ्भी=प्राप्त की । धावत=बढ़ने लगे ।

अर्थ:—जिस सिद्धि को सिद्ध प्राप्त नहीं कर पाये उसे सामंतों ने प्राप्त किया और उन निर्मल मन वालों ने माया और मोह की छाया तक को शरीर का स्पर्श नहीं होने दिया तथा युद्ध में बढ़ने लगे ।

कवित्त

द्रुमति तजत वर अंत, रत्त चच्चरि सी भारण ।

आपु अप्प सग्रहै, आपु पर पार उतारण ॥

सार मुकति सग्रहै, जीयनु सपनौ करि जानै ।

रत्ति पिक्खि जजाल, प्रात पिच्छै न पिछानै ॥

इम जानि सूर सद्धै रणह, वनह अग्गि जनु वाइ वस ।

स्वामित्त तेज तिन तन तवहि, दोखु न लग्गइ जारि जस ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ:—द्रुमति=द्रुमति, कुबुद्धि । वर अंत=जिनका अंत समय श्रेष्ठ । रत्त=लीन । चच्चरि=मुड़ । सी=वह । भारण=जाड़ने में, काटने में । आपु=अपने । अप्प=स्वयं । जीयनु=जीवन, जिन्दगी । रत्ति=गति को । पिक्खि=देखने हैं । जजाल=ध्वन । पिच्छै=ग़ने पर । न पिछानै=नहीं देखवाने, नहीं समझ पाते । सद्धै=माधन करते हैं । रणह=रण का । वनह=वनान्तर, वन में । अग्गि=आग । वाइ=पवन । स्वामित्त=स्वामि का । तवहि=तपहि, तपता है । दोखु=दूषण नहीं । लग्गइ=लगता । जारि=जलाने का । जस=यश ।

अर्थ:—मुण्डों को काटने में लीन होकर वे शत्रु-वीरों की दुर्बुद्धि को मिटा उनका अन्त समय श्रेष्ठ कर देते थे । वे अपने वीरों का मंगल और विपत्तियोंको पर

लगाना जानते थे। लोहे द्वारा मुक्ति का समग्रह करते और जिन्दगी को स्वान तुल्य मानते थे। वे यह बात भली प्रकार जानते थे कि रात्रि का स्वान प्रात नहीं दिखार्ता देता (अर्थात् सप्तर अमार और अमत्य है)। यही जानते हुए वे उम प्रकार युद्ध की योजना करते थे। जैसे वन में लगी हुई अग्नि, वायु के सहयोग से बढ़ती है। वे स्वामी के प्रताप में वृद्धि करते थे। लेकिन स्वामी के यश को जलाने के दृष्टान्त से रहित थे।

गाथा

उड्डिड अवनिय धार, सार पहार पति सुभटार्ई ।

घहरि घोरि घन भद्र, य वरखत वीर विशमार्ई ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—उड्डिड=उड़ती है। अवनिय=पृथ्वी पर। धार=वाग अनी। सार=मार, लोहा, शस्त्र। पहार=प्रहार। पति=पति। सुभटार्ई=योद्धार्यों की। घहरि=गहरी। घोरि=गर्जना। घन=वादल। भद्र=भाद्रपद के। य=ऐसे। वरखत=बरसते, बरसाने। विशमार्ई=विषम।

अर्थः—वीर-पक्ति द्वारा शस्त्र प्रहार हुआ जिससे उनकी धारे टूट कर पृथ्वी पर गिरने लगी और वे प्रचण्ड वीर भाद्रपद के वादलों के समान गहरी गर्जना करते हुए शस्त्र बरसाने लगे।

दोहा

बहुरि ण हसा पजरह, जे तुट्टे खगधार ।

हस उडा जब पजरह, पजर सार असार ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—बहुरि ण=फिर नहीं। हसा=प्राणपखेरू। पजरह=पिंजरे में, शरीर में।

अर्थः—जो खड्ग की धार द्वारा कट गया है। वह प्राण पखेरू फिर पिंजरे में आता हुआ नहीं देखा गया (मोक्ष को प्राप्त करजाता) और जब प्राण पखेरू उड गये तो वह शरीर रूपी पिजडा तत्व युक्त होते हुए भी नि सार है। (पचतत्व से बना हुआ शरीर तत्व विना हो जाता है, वृथा सा हो जाता है)।

कवित्त

पहर इक्क भर भरह, टोप असिवर वर वज्जिय ।

वखर पव्वर जिनसाल, मूर सामतनि भज्जिय ॥

हय हय हय उच्चार, घाइ घाइनि घट गज्जिय ।
 त्रह त्रह त्रंवक त्रहिय, टुट्टि पाइनि विनु तज्जिय ॥
 रोस रूद्र रसय रसिय, अभुत जुद्ध उद्धह गतिय ।
 सामंत सूर सुर दिखि लरत, कहै धनि राजन रत्तिय ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—पहर=प्रहर । इक्क=एक । मरमर=एक योद्धा दूसरे योद्धा के । टोप=शिर स्त्राण । असिवर=श्रेष्ठ तलवार । वज्जिय=त्रजाई । वखर=वखर । पखर=पाखर । जिन=जैनियों के तीर्थंकर । साल=स्थान, आश्रम । सामतनि=सामंतों ने । मज्जिय=मजिय, नष्ट कर दिया । हय ३=मार ३ । घाइ=वार किया । घाइनि=वायलों के । त्रवक=वाघ । त्रह=तडाक, स्वर विशेष । त्रहिय=त्रजे । रसय रसीय=रसके रसीक । अभूत=अद्भुत । उद्धहगतिय=ऊँचे प्रकार का । लरत=लड़ते हुए । रत्तिय=क्रीड़ा ।

अर्थः—एक प्रहर तक एक वीर दूसरे वीर के शिरस्त्राण पर श्रेष्ठता से तलवारों वजाता रहा । वहादुर सामंतों ने, कवच पाखर जैन धर्मावलम्बियों के तीर्थंकरों के स्थानों को नष्ट कर दिया । घायल वीर मार मार उच्चारण के साथ वार करते हुए गर्जने लगे । रण वाघ वजने लगे; पैर कट जाने पर ही युद्ध बन्द करते थे, क्रोध में आये हुए उन रौद्ररस के रसिकों का अद्भुत युद्ध ऊँचे प्रकार का था । इस प्रकार वहादुर सामंतों को लड़ते हुए देख कर देवतागण कहने लगे कि इन राजवंशों की क्रीड़ा । (रणक्रीड़ा) धन्य है ।

गाथा

साभरमती सरित्तं, गुञ्जर खडेव धार-धारायं ।
 दुअ तद् रुधिर उपट्टं, वहै प्रवाह हथियं वाजं ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—साभरमती=सावरमती । सरित्त =नदी । गुञ्जर खडेव=गुर्जर खण्ड स्थित । धार=खड्ग-धाग । धाराय=धारण की । दुअ=दोनों । तद=तब, तहाँ । उपट्ट=उमड़ पडा । वहै=त्रह गये । हथियं=हाथी । वाज=वाजि, घोड़े ।

अर्थः—गुर्जर खण्ड स्थित सावरमती नदी के किनारे खड्ग धारण कर दोनों सेनाओं ने युद्ध किया । जिससे श्रोणित (रक्त) वह निकला और उस प्रवाह में हाथी घोड़े बहने लगे ।

श्लोक

रिखि राजि नग भर परहि, म्गिनी मर गर्जत ।

उवकधरी अटभुत रगह, रुद्र भगौ विगमत ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—रिखि=हाथी । राजि=घोड़े । भर=भट, योद्धा । परहि=भराशाही होने लगे । म्गिनी=प्रत्यक्षा । सर=पाण । गर्जत=गर्जना, टकार करने लगे । रगह=रगम । रुद्र-शकर । विगमत=विस्मित हो गया ।

अर्थः—हाथी घोड़े और योद्धा बराशाही होने लगे । प्रत्यक्षाओं से लगे हुए ब्राह्मण टंकार ने लगे । स्वयं रुद्रभी एक घड़ी तक अटभुत रस से प्रभावित होकर विस्मय करने लगे ।

कवित्त

खिभि खीची परसग, समुद्र रिखि प्रसन कि वस्सिय ।

वडवानल वलिवड, खग्ग खोहिनि दल खस्सिय ॥

वढहि सेन तेइ जरहि, परहि जिमि भस्म कुड्ड हुड ।

जह तह जगल सूर, कडिह मुह सक न आन कुड ॥

कर पत्र मत्र जुग्गिणि जपहि, रजि पलहारी रक्त चर ।

चमरैत चैत जनु क्यमुवनु, इम रण वज्जिय सोम भर ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—खिभि=कोव में आकर । खीची=खीची जाति का कृत्रिय । समुद्र=समुद्र । रिखि=रिखि (अगस्त्य) । प्रसन=पीने का । वस्सिय=बड़ा । खोहिनि=अर्त्तौहियाँ । खस्सिय=खिसका । तेइ=वे । भस्म कुट्ट=भस्म कुट । मुह=सामने । आन=अन्य । कुड=कोई भी । पत्र=पात्र, खप्पर । जुग्गिणि=योगिनियों । पलहारी=मासाहारी । रक्तचर=रक्तभोक्ता । चमरैत=चवरधारी । चैत=चैत्र । म्गुवनु=क्यसुक । सोम=शोभा । भर=भट, योद्धा ।

अर्थः—उसी समय प्रसगराय खींची क्रोध में आकर इस प्रकार बड़ा मानो समुद्र की तीन अजुलि करने के लिये अगस्त ऋषि बड़े हों । उस बलिवड प्रसगराय की बडवानल तुल्य खड्ग से एक अर्त्तौहियाँ सेना खिसकती हुई दिख पड़ी । जो सेना उससे पास बढ़ती थी । वह इसप्रकार जलजाती थी जैसे भस्मकुड में पड़ने वाले की दशा होती है, उस समय यत्र तत्र जगलेश्वर के योद्धा ही दिखाई पड़ते थे । उनके सामने से कोई योद्धा बचकर नहीं निकल पाता था । हाथ में खप्पर लिये हुए

योगिनियों मंत्र जप रही थी। मासाहारी और रक्तशोषक प्राणी वहाँ दीख पड़ते थे। चंवर धारी योद्धा वहाँ चैत्रमास के किंशुक बने हुए थे। जिससे युद्ध स्थल की शोभा बढ़ी हुई थी।

कवित्त

खिम्भि नर्यद् हय नंखि, वज्जि खुरतार कपि भुव ।

अप्र सु चलि दह विचलि, कपि संपात पात हुव ॥

उट्टि मुख्ख मुख्ख वंकि, सीस लग्गौ असमान ।

पंखि जान पावै न. करहि कुंडलि कंमानं ॥

घरि इक्क घाइ विभ्रम भयौ, हाइ हाइ मच्च्यौ हलक ।

तिहि सह स्यंभ स्यंभासनह, उघरि आपु दिक्खिय पलक ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—हय नखि=वाड़े को बढ़ाया। अन्ट=आठों दिग्पाल। दह=दमों दिशायें। सपात=सपा, विजली। मुख्ख=मूँ छ। जान=जाने। पावै न=नहीं पाता। घाइ=आघात। हलक=गले से। सह=शोर-गुल। स्यंभ=शिव,सुकृति-पुरुष,या शम (इन्द्र)। स्यंभासनह=शिव की समाधि। उघरि=खोल कर,स्वय।

अर्थः—राजा ने क्रुद्ध हो घोडा बढ़ाया, जिससे खुरताल वजी और पृथ्वी कांप उठी। आठों दिग्गज चल पड़े, दसों दिशायें विचलित हो प्रकंपित हो गईं, जिससे ऐसा ज्ञात हुआ मानों विजली टूट पड़ी हो। राजा की वक्र मूर्खें ऊपर को उठ चली। उसका सिर आत्मान को छूने लगा। कुंडलाकृति कमान करने पर शरापन्जर में होकर पत्नी नहीं जा पाते थे, एक घड़ी के आघात से युद्ध स्थल में विभ्रमता छा गई। गले से हाय २ शब्द उच्चारण होने लगा। उस शोर गुल को सुन सुकृत पुरुष शिवजी की समाधि छूट गई और वे पलकें खोलकर देखने लगे।

दोहा

काल-व्याल सम अरि डसन, भिरत परहि अरि तथ्य ।

देवासुर सम जुद्ध भय, धनि सामन्तनि हत्य ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—तथ्य=तहाँ। मय=हुया। धनि=धन्य। हत्य=हाय।

अर्थः—शत्रुओं को वे घोर, काल-व्याल के समान डस लेते थे। उनके भिड़ते ही शत्रु वहाँ गिर पड़ते थे, उस समय देवासुर संग्राम के समान युद्ध छिड़ा, ऐसे युद्ध-कर्ता सामन्तों के हाथों को धन्य है।

घट घूटै लुट्टै मुकति, छिति तुट्टै रति पाउ ।

यौ मन मत्तै मूर रण, ज्यौ बलि वाचन पाउ ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—घट=गले । घूटे=रुद हो गये । पाउ=पाय ।

अर्थः—उनके द्वारा शत्रुओं का श्वास रुद्ध हो गया और वे मुक्ति को प्राप्त हुए पृथ्वी की उनकी अभिलाषा छूट गई । मन के मतवाले सामन्त युद्ध में ऐसे दिखाई पड़े जैसे बलि का सर्वनाश करने के लिये वामन ने चरण बढ़ाया हो ।

गाथा

वाचन लिद्ध जु पाय, इ स चक्खि मुर्वियं सहय ।

इक्क पाइ स मूर, सा जित्तेव त्यनय लोक ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—लिद्ध=लेली, छिन ली । इ स=चक्खि=शिव के नेत्र, । मुर्वियं=पृथ्वी । सहय=सारी । पाइ=पाँव । त्यनय=, तीनों लोक ।

अर्थ—वामन ने तीन कदम कर बलि से पृथ्वी छीन ली किन्तु इन बहादुरों ने एक ही चरण रख कर त्रिलोक विजय कर लिया ।

दोहा

वजहि घाइ घरियार जन, टरहि न उभय ति सेन ।

चालुक्का चहुवान रण, भयौ भयानक गैन ॥ ६९ ॥

शब्दार्थः—घरियार=घड़ियाल । जन=जनु, मानों । गैन=आकाश ।

अर्थः—घड़ियाल की चोटों के समान आघात होने लगे, किन्तु दोनों सेनाओं के वीर युद्ध-स्थल से नहीं हटे । चालुक्यों और चौहानों के युद्ध से आकाश में भी भय छा गया ।

कवित्त

सिलह मद्धि खग धार, बीय उग्यथौ ससि सोभै ।

कै नव वधु नखछित्त, काम कामिनि रस लोभै ॥

मर्म वीर कत्तरी, दिसा दुति तिलक पुव्व वर ।

कै कृची स्यगार, सुभग भाभिनि म्यध्या कर ॥

सोमंति चंद्र की कला नभ, कल कलंक सुभ्रमै न तन ।

दृ द्यौ खेत सामंत नृप, बुम्भि राज - तामंस मन ॥ ७० ॥

शब्दार्थः—सिलह=कवच । वीर=वीर । उग्रौ=उदय हुआ । नखच्छित्त=नखचत । लौमै=मुग्ध । मर्म=चोट । वीर=वीर रस । कत्तरी=कत्ती (एक प्रकार की पतली तलवार) । द्रुति=युतिवान । पुव्व=पूर्व । कू ची=कपाट के अर्गला को खोलने की एक प्रकार की वक चाबी । श्यगार=शृ गार । कर=किरण । सोमति=सुशोभित, शोभायमान । कल=पुन्दर । सुभ्रमै न=सुशोभित नहीं होता । दृ द्यौ=खोजपाया, दृ दा, हस्तगत कर लिया, वधन में कर लिया । बुम्भि=बुभ गया, शांत हुआ । तामंस=तामस. क्रोध ।

अर्थः—कवच युक्त चालुक्यराज के अंग में लगी हुई खड्ग धारा ऐसी शोभा पा रही थी मानों द्वितीया का चांद्र उदय हुआ हो या काम रस मुग्ध नव कामिनी को नखचत लगा हो अथवा वीर रस की कत्ती (एक प्रकार की तलवार) की चोट हो या चम चमाता हुआ पूर्व दिशा का तिलक हो अथवा शृ गार रस की अर्गला की ताली हो या सध्या रूपी श्रेष्ठ भामिनी की किरण हो अथवा नभस्थित चन्द्र-कला हो । इतना होने पर भी युद्धस्थल में उसके जो चोट लगी वह कलक तुल्य थी और श्रेष्ठ शोभा का कारण नहीं हो सकी । ऐसे शत्रु (चालुक्य) को सामंत और राजा ने खोज निकाला (हस्तगत कर लिया) तब राजा के मन का क्रोध शांत हुआ ।

दोहा

ल्यन वयर सामंत नृप, वजि नृधोप सु घाड ।

चावहिसि सेना फिरी, वर वीरारस चाड ॥ ७१ ॥

शब्दार्थः—ल्यन=लिया । वयर=वैर, वदला । वजि=व्रजाते हुए । नृधोप=निधोप, ऊँची यात्राज । घाड=चोट (डकेकी चोट) । वीरारस=वीररस । चाड=इच्छा ।

अर्थः—इस प्रकार राजा और सामंतों ने नक्कारे पर डंका देकर शत्रु से वदला लिया और श्रेष्ठ वीर रस की उत्सुक सेना ने शत्रु को चरों और से घेर लिया ।

गाथा

लज्जी कज्ज मरिज्जै, उदरं वृत्ति चाड घन घटयं ।

कठिन कृप्पि कलहंतं, मरणं पच्छि निप्पजे साई ॥ ७२ ॥

शब्दार्थः—लडिज=लाज । कञ्ज=के लिये । मग्निजे=मग्ना पत्ता है । उ रगति अरगोपण । घाइ=घाव । घन=विशेष । घटा=शरीर पर । कृपि=कृपि, रोती । मरणागति मरने पर । निपजे=उत्पन्न होती है, पकती है, प्राप्त होती है । साइ=वद, म्नामी, पम् ।

अर्थः—लज्जा के कारण शरीर पर विशेष घाव सहन कर वीर को मारना पड़ता है । युद्ध कृपि बड़ी कठिन है । मरने पर ही वह खेती पकती है, (या अकुरित होती है)।

गर्जित बल वयताल, रण रगेव रच्चिचय काली ।

पलहारी पल पूर, हूर सूर वरण वरनाई ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—बल=बलवान । वयताल=वैताल वीर । रगेव=रग, दृश्य । काली=कालिका देवी । पल-हारी=मांसाहारी । पूर=पूर्ति । हूर=अप्सराए । वरनाई=चर्चा हुई, वर्णन हुआ ।

अर्थः—युद्धस्थल में बलवान वैताल गर्जना करने लगे । काली ने रणरग की रचना की । मांसाहारियों को भरपेट मांस मिला और अप्सराओं ने बहादुरा को वरण कर लिया, जिसकी चर्चा होने लगी ।

कवित्त

भिरिग सूर सामन्त, लुत्थि पर लुत्थि अहुट्टिय ।

सघन घाइ पामार, वीर वीरा रस जुट्टिय ॥

उलटि सेन भीमग, क्य न डेरा चहुवानह ।

उतरि मुमि भर भार वत्त वट्टी पहु वामह ॥

वहु दान मान सम स्वामि डिय, नीन अटल कीत्ती कलह ।

सामन्त सूर सह स्वामि सम, सुकवि चन्द्र जपिय बलह ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—भिरिग=भिड़गये । लुत्थि=शव । अहुट्टिय=अड़गई, लगगई । सघन=गहरे । घाइ=घाव । पामार=प्रमार वीर, प्रमार क्षत्रिय । उलटि=लोट गई, मुड गई । क्यन=किया । डेरा=वितान, मकाम । वट्टी=बटगई, फैलगई । वत्त=वात । पहु वामह=वाके राजा की, (पृथ्वीराज की) । सम=सामने, समक्ष । कीत्ति=कीर्ति । कलह=युद्ध । जपिय=वर्णन किया । बलह=बल, शक्ति ।

अर्थः—बहादुर सामन्तों के भिड़ने से शवों पर शव लगा गये । घने घावों से पूरित प्रमार-वीर, वीर रस से छाका हुआ टूट पडा । जिससे भीम की सेना मुड गई और

चाहुआन नरेश्वर ने विजय प्राप्त कर वहीं अपना डेरा डाला । इस प्रकार वहादुरों द्वारा पृथ्वी का भार हलका हुआ और उस बांके नरेश पृथ्वीराज की युद्ध-चर्चा फैल गई । सब के समक्ष पृथ्वीराज ने बहुत दान सम्मान किया और युद्ध-कीर्ति को अमर कर दिया । (मैंने) कवि चन्द ने वहादुर सामन्त और स्वामी जो समान ही योद्धा थे उनकी शक्ति का वर्णन किया ।

कवित्त

डेढ हजार तुरग, परे रण वीर धीर भट ।
 एक सत्ता हृथ्यी प्रमान, मद् आरुहिय मेघ घट ॥
 पंच सहस परि लुत्थि, दंत सौ अंत अलुम्भिय ।
 दर्ईकाल संग्रहे, लिखे विनु कोइन जुम्भिय ॥
 दुइ घरी श्रोन वरखंत घर, पतिपहार भर डुल्लयौ ।
 सामंत सूर स्वामित्त मत, जीह चंद जसु वुल्यौ ॥ ७५ ।

शब्दार्थः—वीर वीर=वीराग्रणी, वीर शिरोमणि । सत्त=शत, सौ । मद् आरुहिय=मद चढा हुआ, मतवाले । घट=घटा । अलुम्भिय=उलभ गई । दर्ईकाल=विधाता का निश्चय किया हुआ, अतिम समय । संग्रहे=प्रसित हुए । जुम्भिय=जूम्हे । पतिपहार=पर्वतीय भू भाग का स्वामी, गुर्जर धरा का स्वामी । डुल्लयो=डुल्लगया, विचलित होगया । जीह=जिह्वा । जसु=यश । वुल्लयो=कहा, वर्णन किया ।

अर्थः—युद्ध स्थल में डेढ हजार घोड़े, कितने ही वीराग्रणी योद्धा, मेघ-घटा तुल्य एक सौ मदमाते हाथी और पांचसहस्र सैनिकों के शव गिरे । जिनकी अतडियाँ मांसाहारी जानवरों के दातों में उलभ गई । ब्रह्मा द्वारा जिनका अतिम दिन आचुका था, वे ही इस युद्ध में काम आये । ललाट पर जिनके जाने का दिन नहीं लिखा गया था, वे नहीं लड़ सके । दो घड़ीतक पृथ्वी पर रक्त वर्षा हुई जिससे पर्वतीय भूभाग (गुर्जर प्रदेश) के स्वामी के योद्धा विचलित हुए । मैंने (कवि चन्द ने) अपनी जिहवा से स्वामी के मंत्रणा तुल्य (स्वामी के विचारों के अनुयायी) वहादुर सामंतों के यश का वर्णन किया ।

यह ससार प्रमान, सुपनोसोहै सु वस्त सह ।
 दिष्टि मान विनसि हैं, मोह बन्धु सुकाल ग्रह ॥

दया देह उदरै, वध वीर यह देही ।
 कर्म काल खट्टीरु, अजा वधौ नरु येही ॥
 सामतनाथ सामत धनि, सञ्जिय भञ्जिय जानीये ।
 संसार असति तिन सत्ति मति, यहै तत्तु करि मानीये ॥ ७६ ॥

शब्दार्थः—प्रमान=प्रमाण, देखा गया, माना गया । प्रस्त=प्रस्तु । दिग्गमान=दग्गमान । निनिगि =
 नागवान है । प्रह=प्रसित । उदरै=वचा पाये । देही=प्राणी । वधो=वधा है । वधीरु=वधैरु
 (एक प्रकार की हिन्दू कमाई जाति, मास विक्रेता) अजा=अज्ञेरी ग्रेही=घर पर । धनि=धन्य ।
 सञ्जिय=सज कर । भञ्जिय=नाश कर देते हैं, उपासक बन जाते हैं । मति=विचार, भाषणा । तत्तु=तत्त्व ।

अर्थः—संसार में देखा गया कि सब वस्तुमें स्वप्न तुल्य हैं और जो दृष्टि गत
 हैं वह नाशवान है । कालप्रसित सब मोह बंधन में बंधे हुए हैं, किन्तु जो पराई दया
 का पात्र हो शरीर को बचाता है वही प्राणी सच्चे बंधन में बंधा हुआ है । कर्म और
 काल कसाई तुल्य है । उसके घर पर मानव शरीर बकरे के समान बंधा हुआ है,
 किन्तु सामतों का स्वामी पृथ्वीराज और उसके सामत धन्य हैं, जो युद्धार्थ तैयारी कर
 शत्रुओं का नाश कर देते हैं (या तैयारी कर युद्ध के उपासक बन जाते हैं) । उनके
 सामने संसार असत्य है केवल उनके विचार ही सत्य हैं । वही एक तत्व मानने योग्य
 है (इसमें पराई दया का पात्र होकर शरीर को बचा पाता है वही सच्चे बन्धन
 में बंधा हुआ कहा गया, यह ताना गुर्जरेश्वर भीम को पृथ्वी राज ने बन्धन में लिखा
 और उस पर पुन दया की, यह बात स्पष्ट करती है) ।

गाथा

सभ सपत्ती सूर, भेख भयान भतिय करूर ।

करूण वीर रस पूर, नूर दुव सेन दिखवाई ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—सभ=साम सध्या । सपत्ती=हो पाई । सूर=शूरवीर । भेख=भेष । भयान=भयानक ।
 भतिय=तरह । नूर=काति ।

अर्थ —भयानक आकृति और करूर स्वरूप वहादुरों ने सध्या काल होने तक करूण
 एव वीर रस की पूर्ति करदी अत दोनों सेनाएँ काति युक्त दिखाई दी । (इस पद्य के
 अर्थ में दोनों सेनाएँ काति युक्त दिखाई दी ऐसा लिख कर कवि संकेत करता है कि
 विजय प्राप्ति के कारण पृथ्वीराज की सेना और भीम को बंधन मुक्त देख कर चालु-
 क्य सेना काति युक्त दीख पडी) ।

कैमास युद्ध

(समय ४०)

गाथा

इक दिन साहिं-सहाब, अक्खियं समह खान तत्तारं ।
अरु खुरसान विचारं, संमरं समुख राज प्रथिराजं ॥ १ ॥

शब्दार्थः—साहि-सहाब=शहाबुद्दीन । अक्खियं=कहा । समह=सामने । विचार=विचार करो ।
अर्थः—एक दिन शहाबुद्दीन ने तत्तारखॉ और खुरसानखॉ से कहा-कि राजा पृथ्वीराज से युद्ध करने लिये विचार करो ।

उच्चरि ताम ततार, अरि अति जोर सूर सम-रार ।
सम कैमास विचारं, खट्ट दिसि मंत साहॉबं ॥ २ ॥

शब्दार्थः—ताम=तव । सम-रार=समानता रखने वाला । विचार=विचार ने पर । खट्ट=खट्टू ।

अर्थः—तत्तारखॉ ने कहा:- पृथ्वीराज अति बलवान और बहादुर शत्रु है तथा युद्ध में बराबरी करने वाला (समानता रखने वाला) है उसके समान ही विचारवान् उसका मंत्री कयमास भी है । इसके पश्चात् खट्टू की ओर शहाबुद्दीन ने प्रस्थान करने का निश्चय किया ।

दोहा

पारसपुर तहां सरित तट, उत्तरि आय साहाब ।
रवि उगगत दल कूंच किय, जलटि कि साइर आव ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—साहर=समुद्र । आव=जल ।

अर्थः—शहाबुद्दीन ने चढाई की और पारसपुर के पास नदी के किनारे आ कर विश्राम किया । सूर्यदोय होते ही पुनः उसकी सेनाने इस प्रकार प्रस्थान किया मानो समुद्र का जल उमड़ रहा हो ।

उतरि साह^१ वर सिंधु नदि, किय गुकाम सब सग^१ ।

निसा महल सुरतान किय, बोलिवे गान समथ^१ ॥ ४ ॥

ग्रा० पा० १ का० २ गी ।

शब्दार्थः—महल=ममा ।

अर्थः—शाह ने सिंधु नदी पार कर सब साथियो सहित पड़ाव किया और रात्रि होने पर सभा की आयोजना की जिसमे सब सामर्थ्यवान खानो को बुलाया गया ।

आइ भट्ट केदार वर, दै दुवाहु तिन वार ।

कहै साहि केदार सम, कहौ अर्थ गुण चार ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—दुवाहु=हाथ पसार कर मिलना । चार=चलाने वाला, फैलाने वाला ।

अर्थः—इतने मे श्रेष्ठ केदार भट्ट(वदी)भी आ गया जिसे बादशाह ने बांह प्रसाव दिया (मिला) । शाह ने केदार से कहा-हे अर्थ गुण के विस्तार कर्ता-कुछ कहो ।

मडि भट्ट गुन जगरिन, साहि पिथ^१ सम सोड ।

तन विभूति सिंगी गरै, आइ दूत तव दोइ ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ का० पा० भी० ।

शब्दार्थः—जगरिन=युद्ध कर्ता ।

अर्थः—कैदार भट्ट ने युद्ध कर्ता शहाबुद्दीन और पृथ्वीराज के युद्ध की तुलना की । थोड़ी देर में शरीर पर भस्म लगाये और गले मे सिंगी धारण किए हुए दो दूत आए ।

धृम्माइन काइथ सु कर, इह लिक्खी अरदास ।

आखेटक खिल्लन^१ नृपति, मन किय खट्टू पास ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अरदास=प्रार्थना पत्र । खिल्लन=खेलने के लिए ।

अर्थः—उन दूतों के साथ धर्मायन कायस्थ ने यह प्रार्थना-सूचक-पत्र भेजा था कि राजा पृथ्वीराज ने आखेट खेलने के लिए खट्टू की ओर जाने का विचार किया है ।

परी हक्क दिसिदस नृपति, चडि चल्लौ चहुआन ।

धर गुज्जर अरु मालवै, सब दिसि परत भगान ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—मगान=माग—दौड़ ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज का शिकारार्थ चलने का हल्ला दसों दिशाओं में फैल गया । जिससे मालव और गुर्जरधरा तथा सब ओर भागदौड़ मच गई ।

सुनिय वत्त ए^१ दूत मुख, भय चलचित्त सुरतान ।

गुज्ज महल सब बोलिकै, वैठे करन मतान ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ टि०, भी० ।

शब्दार्थः—ए=यह । गुज्ज महल=गुप्त खेमा, एकान्त समा । मतान=मंत्रणा ।

अर्थः—दूत के मुंह से यह बात सुन शाह का चित्त अस्थिर हो गया और सब योद्धाओं को एकान्त (गुप्त) खेमे में बुला कर मंत्रणा करने बैठा ।

सुनिय मंत्र सब खान मुख, बंध्या जोर सहाव ।

रह खट्टू दिसि चल्लिये, उलट कि साइर आव ॥ १० ॥

शब्दार्थः—बध्या=बंधा । जोर=बल । रह=राह ।

अर्थः—सब खानों की मंत्रणा सुन शाह को बल मिला और कहाः— समुद्र के जल की भांति उमड़ कर खट्टू के मार्ग की ओर चलना चाहिए ।

कवित्त

ग्यारह सत^१ च्यालीस, चैत विदि सस्सिय दूजौ ।

चढ्यौ साहि साहाव, आनि पजावह पूज्यौ ॥

लक्ख तीन असवार, तीन सहसंमय मत्तह ।

चल्यौ साहि दरकूच, फटिय जुगिनि धर^२ वत्तह ॥

सामंतसूर विकसे, उअर, काइर कंफे कलह सुनि ।

कैमास^३ मंत्रि मंत्रह दियौ, ढिग वैठे चामुंड फुनि ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ दे० । २ टि० । ३ सं० ।

शब्दार्थः—ग्यारह=ग्यारह सौ । सत=ब्यालीस=सैंतालीस । सें=सौ । सस्सि=चन्द्रमा । अगनि=आकर । पूज्यो=पहुँचा । दरकूच=कूच पर कूच करता, मुकाम पर मुकाम करता हुआ । फटिय=फट गई, फैल गई । जुगिनि धर=दिल्ली के भूभाग । उअर=उर, हृदय । फुनि=पुन ।

अर्थ:—अ० म० ११४७ (वि० म० १०३८ के पारभ मे) के नैनगाग के कृ० पक्ष की द्वितीया सोमवार को शहाबुद्दीन को जन्म से दूसरा चंद्रमा था तब वह युद्धार्थ चढा और पजात्र तरु था पहुँचा। उसके साथ तीन लक्ष अश्वारोही और तीन सहस्र मस्त हारी थे। वह निरन्तर चला था रहा था। यह वान दिल्ली के भूभाग मे फैली। उसे सुन वीर सामंतों के हृदय प्रमन्नता से भर गये और कायर कौपने लगे। मंत्री कयमास ने चावडराय की उपस्थिति मे राजा को मंत्रणा दी।

दोहा

कहो मंत कैमास तँह, सजि अयो सुरतान ।
अव विलंब किज्जै नही, दल सज्जौ चहुआन ॥ १२ ॥

शब्दार्थ:—मंत=मन्त्रणा ।

अर्थ:—मंत्री कयमास ने कहा - सुलतान चढ कर आया है, अतएव हे चाहुआन नरेश ! अव विलंब न कर अपने दल को तय्यार करना चाहिए।

वेर वेर आवत इह, मानै मेछ न सधि ।
उरह लोन प्रथिराज को, आनौ साहि सुवधि ॥ १३ ॥

शब्दार्थ:—वेर वेर=बार बार । मेछ= मुसलमान । साहि=शाह ।

अर्थ:—कैमास ने फिर कहा-शाह बार २ चढकर आता है और यह म्लेच्छ पूर्व की सधि नहीं मानता । अस्तु इस बार मैं पृथ्वीराज का नमक सार्थक करूँगा और शाह को वाध कर ले आऊँगा।

सुनत वचन कैमास के, कही राव-चावड ।
आन राज चहुआन पिय, हौं भजौं गज भुड ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—आन=दुहाई, शपथ । पिय=पृथ्वीराज । हौं=मैं । भजौं=नष्ट कर दूँगा ।

अर्थ:—कैमास के ये वचन सुन चामंडराय ने कहा -चाहुआन नरेश की शपथ खत कर कहता हूँ कि मैं हाथियों के भुण्ड को नष्ट कर दूँगा।

सुनि संभरि नृ^१ मौज दिय, हैवर सहस मँगाइ ।

मनि मोती सोवन^१ रजक ,हसती सपत सजाइ^२ ॥ १५ ॥

ग्रा० पा० १-२ भी० ।

शब्दार्थः—मौज दिय=प्रसन्नता का उपहार दिया । सोवन=स्वर्ण । रजक=रजत । चादी । हसती=हाथी । सपत=सात ।

अर्थः—इस प्रतिज्ञा को सुन कर सांभरपति (पृथ्वीराज) ने अन्यसामंतों को प्रसन्नता पूर्वक उपहार दिया, जिसमें एक सौ श्रेष्ठ घोड़े, मणि, मोति, स्वर्ण-रौप्यादि द्रव्य और सात सुसज्जित हाथी थे ।

गैवर^१ दस हय सात सै, दिय कैमासह राइ ।

तुरी तीन सै वीज गति, दै चावँड चित चाइ ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—गैवर=श्रेष्ठ हाथी । राइ=राजा । तुरी=घोड़े । वीजगति=विद्युत् गति । चित-चाइ=चित्त से चाह कर, चित्त में स्थान देकर ।

अर्थः—वाद में कैमास को श्रेष्ठ दस हाथी, सात सौ घोड़े, और चामुंडराय को विद्युत्-गति वाले तीन सौ घोड़े देकर हृदय से लगाया ।

चारि कोस चौगिरद रिन^१, दोऊ समद समान ।

उत साहिव खुरसान कौ, इत सभरि चहुआन ॥ १७ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—गिरद=घेरा । रिन=युद्ध भूमि ।

अर्थः—चार कोस के घेरे वाली युद्ध-भूमि में दोनों दल समुद्र के समान थे । एक तरफ मुसलमानों का मुखिया शहाबुद्दीन तथा दूसरी तरफ सांभरपति चहुआन (पृथ्वीराज) था ।

कवित्त

खवरि आइ पृथीराज, निकट सुरतान सु आइय^१ ।

सज्जि सूर गज वाजि, धाऊ दुरजन दल पाइय ॥

किय मुकाम दिन च्यारि^२, रहे गोडन्डपुरा मह^३ ।

सुनी अवाज ससार, लक्ख त्रय मीर सु मग्रह ॥

सत लक्ष्मण पदच्छ भर प्राड मिलि, कहे नग वरगाउ नर ।

चहु प्रान कलह सुरतान सम, धम वमकि भुजिजय सु भर॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० पा० । २,३, का० । ५ पा० ।

शब्दार्थः—खवसि=सूचना । धाक=पातक । दिन चारि=चार दिन, दिनागत, सर्वागत । मदि=मे । सम्रह=ग्रहण । पच्छ=पक्ष ।

अर्थः—पृथ्वीराज को सूचना मिली कि वादशाह निकट आ गया है । तब बहादुरों ने अपने हाथी, घोडों को सजाया । जिससे शत्रु दल आतंकित होगया । चार दिन उन्होंने गोविंदपुरा मे (या सूर्यास्त होने तक) रहकर विश्राम किया । समार मे यह फैल गया कि तीन लक्ष मोर (मुसलमान) नष्ट होने वाले है । क्योंकि पृथ्वीराज के पक्ष मे सात लक्ष योद्धा आ मिले है । कवि चन्द बरदाई कहता है कि चाहुआन नरेश और सुलतान का युद्ध बराबरी का ही है । जिसकी धमधमाहट से पृथ्वी कम्पित होती है ।

दूहा

चल्यौ साहि खट्टू दिसा, दिथ मेलान मिलान ।

लाल हसन आकूव सम, च्यारि भण अगिवान ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—मेलान मिलान=मुकाम दर मुकाम । अगिपान=अग्रगण्य ।

अर्थ—सुलतान खट्टू की ओर पडाव करता हुआ आ रहा था और लालखा, हसन-खा, आकूवन्ना और स्वयम शाह के सहित मुस्लिम सेना के चार अगुण थे ।

कवित्त

च्यारि खान अगवान, साहि सारु ड सु आइय ।

सुनिय खवरि चहुआन, मत्रि कैमास बुलाइय ॥

कहे राज प्रथिराज, साहि आयौ तुम उपर ।

दल मज्जौ अपान, जुरे जिम आइ^१ अड्ड भर ॥

इह कहै राव चामण्ड तव, राज रहै खट्टू धरह ।

हम जाइ जुरे सामत सब, वधि साह आने घरह ॥ २० ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० ।

शब्दार्थः—साहि=शाह । सारुण्ड=स्थान विशेष । अप्पान=अपना । छर=छटे । अड्ड=आइ देते, रोकते हुए । राज= पृथ्वीराज । खट्टू धरह=खट्टू भूमि ।

अर्थः—मुस्लिम अरगुए और बादशाह सारुण्ड आये । जब यह सूचना पृथ्वीराज को मिली तो उसने कैमास को बुलाया और कहा कि सुलतान चढ़ आया है, अतएव अपना दल तैयार करो और ऐसा करो कि अपने योद्धा शत्रुओं को रोक कर जूझपड़ें । यह सुन चामण्डराय बोला हे राजन् ! आप यहां इस खट्टू-भूमि पर ही ठहरिये । हम सब सामंत जाकर शत्रुओं से लड़ पड़ते हैं और शाह को बांध कर ले आते हैं ।

कहै राज पृथिराज, राइ चामंड महाभर ।
 तुम कुलीन वर लज्ज, लज्ज मो तुमह कंध पर ॥
 रहत घटे मुहि लज्ज, बांधि आनै लज बहूँ ।
 कहै ताम कैमास, राज दिन सुध लै चहूँ ॥
 इह कहिरु घाव नीसान किय, भर-सामंत सु बोलि लिय ।
 पृथिराज चह्यौ रवि उगातह, पंचकोस मेलान दिय ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—रहत=रहने पर (युद्ध में सम्मिलित न होने पर) । घटे=घट जाती है, तुच्छ हो जाती है । बांधिआने=बांध कर (शाह को) पकड़ लाने पर । सुध लै=जांच करके (सुदृढ़ निश्चलता कर) । चहूँ=चढ़ाई करें । घाव=डके की चोट । मेलान दिय=मुकाम किया ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज कहने लगा—हे चामण्डराय ! तुम महान योद्धा, श्रेष्ठ हेलज्जा युक्त और कुलीन हो । हमारी लज्जा भी तुम्हारे ही हाथ है । किन्तु मेरे यहां रहने से मेरी कुलीनता में कमी आती है शत्रु को पकड़ कर लाने में ही लज्जा की वृद्धि है । तब कैमास ने कहा—हे राजन् ! शुभ दिवस की जांच कराकर (सुदृढ़ निश्चलता कर) चढ़ाई करना चाहिये । यह कह कर नक्कारों पर डका दिलवाया तथा श्रेष्ठ सामंतों और योद्धाओं को बुलाया । प्रातः काल होते ही पृथ्वीराज ने चढ़ाई की और पांच कोस पर जाकर पड़ाव डाला ।

दोहा

किय मुकाम चहुआन दल, पुर पांचौसर नाम ।
 सुनी खरि सुरतान की, लखि लाइन मुकाम ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—सरतान=सततान ।

अर्थः—पाचो वर नासक ताम मे शा चौतानी सेनाने पाचव दिगा तव गुलतान के समाचार मिले नि उतने हाटन मे डेरा टाला हे ।

दूत पाह पहरेक निभि, कही मगर कैमान ।

पहर पछ पतिसाह को मो पच्छे डिभि पास ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—पतिसाह=सातसाह । मो पच्छे=मेरे पीछे ही ।

अर्थः—एक प्रहर रात्रि रहने पर दूतने प्राकर कैमान को सूचना दी कि मेरे पीछे एक प्रहर बाद आप शाह को अपने पास देखेगे । (अर्थात् शाह यहाँ पहुँचने ही वाला है) ।

कवित्त

राज पास कैमान, खबरि मुरतान कही अप ।

सजौ सेन अपान, जाइ सनमुख मडै वप ॥

पच फौज साहाव, करिय भर पच सु अग्रर ।

सजौ फौज अपान, नाम लिखि २ तहाँ सुम्भर ॥

मन्ती सु वत्त सामतमिलि, पच फौज राजन करिय ।

अनभग जग नरनाह नृप, कन्ह कक अगों धरिय ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—वप=शरीर । पच फौज=पाच भाग मे विभाजित (सेना) । अग्रर=अग्रगण्य । नाम-लिखि २=नामजद । मन्ती=माननी । कक=युद्ध ।

अर्थः—स्वय कैमान ने गुलतान के आने की सूचना राजा पृथ्वीराज को दी । तव राजा ने कहा—कि अपनी सेना सजाओ और सम्मुख जाकर स्वय सामना करो । शाह ने पांच योद्धाओं को अग्रगण्य (सेनापति) बना कर अपनी सेना को पाच भागों मे विभक्त किया है । अत नामजद सैनिक नियुक्त कर उसी के अनुसार अपनी सेना को भी तैयार कर विभाजित कर दो । यह बात सब सासतों ने मानी और राजा ने सेना के पाच विभाग किये । बाद मे निर्भयता से युद्ध करने वाले नरनाह कन्ह को सर्व प्रथम युद्ध करने के लिये आगे किया ।

वेहा

मुनो वत्त साहाव तव, सजि आगौ चहुआन ।

फौज पच सज्जौ सुभर, मीर मलिक सञ्चान ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—मलिक=उपाधि, (मुसलमानों में राजा या नवाब की उपाधि वाले) । सन्वान=सव ।

अर्थः—जब शाह ने यह बात सुनी कि पृथ्वीराज चाहुआन सज कर आगया है, तब उसने अपने साथियों से कहा:- हे मीर मलिक ! सव योद्धाओं और सेना को ५ भागों में विभाजित कर तैयार हो जाओ ।

दोहा

दूँ दल वीच स कोस दूँ, प्रथीराज कहि वात ।

चौकी चढ़ि चक्रह कटक, दल अरियन करि घात ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—चौकी=अंग रक्षक । चक्रह=चक्रमेन चाहुआन । कटक=सेना । घात=वार

अर्थः—दोनों सेनाओं के बीच जब दो कोस का अन्तर रहा, तब पृथ्वीराज ने कहा—अंग रक्षक सेना चक्रसेन चाहुआन के सेनापतित्व में रह कर शत्रु दल पर वार करें ।

कवित्त

ग्यारह सै च्यालीस, सोम ग्यारसि वदि चेतह ।

भए साह चहुआन, लरन ठाढ़े वनि खेतह ॥

पंच फौज सुरतान, पंच चहुआन वनाइय ।

दानव देव समान, ज्वान लरन रिन धाइय ॥

कहि चद दंद दुनिया सुनौ, वीर कहर चच्चर जहर ।

जोधान जोध जगह जुरत, उभय मध्य वित्यौ पहर ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—ज्वान=युवा । धाइय=बढ़े । दद=युद्ध । कहर=विघ्न । चच्चर=सिर, मस्तक । वित्यौ=बीता, व्यतीत हुआ ।

अर्थः—अनंद संवत् ११४० (वि० स० १२३१ अर्थात् ३२ का प्रारम्भ) चैत्र कृष्णा ११ सोमवार (कानौड़, भींडर प्रति में भौम लिखा है) को चाहुआन और सुलतान रण क्षेत्र में युद्धार्थ सन्नद्ध हुए । सुलतान ने अपनी फौज के ५ भाग किए, उसी प्रकार चाहुआन राजा ने भी अपनी फौज को पाँच भागों में विभक्त किया । वे युवक वीर दानवों और देवों के समान लड़ने के लिए रण क्षेत्र की ओर बढ़े । कवि कहता है कि मैं इस युद्ध विषयक वर्णन करता हूँ । उसे संसार पढ़े-सुनें । उन

योद्धाओं के मस्तिष्क विघ्न रूपी विष से परिपूर्ण हो गए। दोनों ओर के योद्धा एक दूसरे से भिड़ गये। इस प्रकार लड़ते लड़ते एक पहर समय व्यतीत हो गया।

दोहा

इस चित्ती एकादशी, होत द्वादशी प्रात।

रवि उगत सम द्वै लर हिन्दू तुरक नपात ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—त्रघात=उरे पत्रा मे पाग रग्ने हण।

अर्थः—इस प्रकार एकादशी व्यतीत हुई और प्रात काल होने पर द्वादशी का युद्ध-रम् हुआ। सूर्योदय होते ही यवन और हिन्दू मैनिक समान रूप से बुरी तरह वार करते हुए लड़ने लगे।

कविता

घेरयो नृप चहुआन, सग सव सथिय छुट्टौ।

जग करे चामड, खरिग गज भुएडन जुट्टौ ॥

वाग लेइ वग मेलि, सेल मैगल गिर कुट्टौ।

करन कहिडु करिगग वत सम भसुएड सु तुट्टौ ॥

तुट्टौ सु वत सम सुएड मुख, रुख किन्निय सुरतान तन।

दल दद करत दाहर सुतन, मद वारुन दारुन दलन ॥ २९ ॥

प्रा० पा० १ का०, पा०, भी०।

शब्दार्थः—खरिग=चल पड़ा। वाग=राम। वग=टोली, समूह। मैगल=हाथी। कुट्टौ=फोड़ दिया, वेध दिया। करिगार=करवाल, तलवार। सम=सहित। भसुएड=भ्रसुएड, सूड का अग्र भाग। मद वारुन=मतवाले हाथी।

अर्थः—सब साथियों का साथ छूट गया, तब राजा पृथ्वीराज का दुश्मनो ने घेर लिया। उस समय चामु डराय गज समूह से जूम रहा था। घोड़े की रास खींच कर गज-समूह को निशाना बनाने लगा और भाला चला कर शाह के मुख्य हाथी का सिर वेध दिया। इसके पश्चात् दोनों हाथों से तलवार निकाल कर हाथी के सिर को दातों सहित काट दिया। इस प्रकार हाथी के दात तथा भ्रसुड के अग्रभाग को तोड़ कर उस वीर ने शाह की ओर अपना रुख किया और उस दाहिर पुत्र ने सेना तथा भयानक मतवाले हाथियों को नष्ट करना प्रारम्भ किया।

दोहा

कलह राह चामंड करि, इह मारथौ गजराज ।
साह गइन कों मन करथौ, चढथौ हांसले वाज ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—कलह=युद्ध । इह=इस प्रकार ।

अर्थः—चामुण्डराय ने इस प्रकार युद्ध कर गज को मार दिया । वाद मे शाह को पकड़ने की उसके मन मे इच्छा हुई । इसलिये वह हांसले नामक घोडे पर सवार हुआ ।

कवित्त

गुरि गथंद गोरी नरिंद, चतुरंग दल सज्जिग ।
अरु निसान धु मरिग, आइ उपर सिर गज्जिग ॥
जहाँ हक्यौ तहँ भिरथो, तिनह—घर नदी पलटिटय ।
खग ताल वाजंत, सीस^२ तरवर वन तुटिटय ॥
कत्तरिय पुरख गय घर मुरिग, चंद वरदिय इम भन्यौ ।
भाजत भीर तुख्खार चढि, चौडराव चावक हन्यौ ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ भीं । २ का० भीं पा० ।

शब्दार्थः—गुरि=गड़का, लुढका कर । सज्जिग=सजा, बढा । अरु=और । धु मरिग=धुमड़ना, गढ़ गड़ाहट । हक्यौ=गया । तिनह घर=तृण गृह । पलटिय=उमड़ पड़ी । लगताल=खड्ग ध्वनि । तुटिय=टूट पडे । कत्तरिय=कातर, कायर । भीर=समूह । तुख्खार=घोड़ा । चावक=चावुक ।

अर्थः—इस प्रकार गौरी शाह के हाथी को मार कर चामुण्डराय चतुरंगिनी सेना की ओर चला, जिससे नक्कारों की गड़गड़ाहट हुई । वह वीर शत्रुओं के सिर पर गर्जने लगा । जिस ओर वह गया उसी ओर तीव्र गति से इस प्रकार भिड़ पड़ा, मानो तृण-गृह पर सरिता वह चली हो, खड्ग-ध्वनि के साथ ही शत्रुओं के सिर वन वृक्ष के समान कट कट कर गिरने लगे । जिससे कायर आदमी खिसक कर घर की ओर मुड़ गये । चंद वरदाई कहता है कि शत्रु समूह को भागता हुआ देख अश्वारोही चामुण्ड राय ने अग्ने घोडे को चावुक मारा (अर्थात् वेग के साथ बढाया) ।

दोहा

लाल खान मारुफ खा, हसन खान याकूब ।

न्यार लरे चामड सौ, खग्ग गहो तुम नव ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—खूब=प्रचंडी तरह ।

अर्थः—भागते हुए मुस्लिम सैनिकों में लाल खान, मारुफ खान, हसन खान और याकूब खान ये डटे रहे और लड़ते हुए चामुण्डराय से बोले कि अब तुम अच्छी तरह तलवार पकड़ो ।

कवित्त

खूब खान तहँ लाल, वान वरखत वीर पर ।

हद मरद मारुफ नेज^१ फेरत कहर कर ॥

हसन खान सेहत्य, खग्ग वाहंत सीस पर ।

कहि कटारिय जग, अग आकूब डक्क भर ॥

भर भार सहचौ भुज दुअन परि, दाहिम्मे कीनो समर ।

कवि चद कहै वरदाइ वर, कलह केलि भूले अमर ॥ ३३ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—खूब=धन्य । हद मरद=मर्दानगी की सीमा । नेज=नेजा । फेरत=घुमाने लगा । सेहत्य=पौष्टता, साफ करता हुआ । परि=पर ।

अर्थः—धन्य है लाला खान को जो ऐसे वीर पर बाण वर्षा करने लगा । मर्दानगी की सीमा के तुल्य मारुफ खान भी अपने विघ्नकारी नेजे को हाथ से घुमाने लगा, हसन खान भी तलवार साफ करता हुआ सिर पर चलाने लगा और उस अकेले सामंत पर याकूब ने भी कटारी निकाली, किंतु उस दाहिमे वीर (चामुण्डराय) ने अपनी दोनों भुजाओं पर उस रण आपत्ति का भार उठाकर युद्ध किया । कवि कहता है कि उसके द्वारा की हुई श्रेष्ठ युद्ध क्रीडा देखकर देवता भी अपने को भूल गए (स्तब्ध रह गये) ।

लाल खान दुअ वान, तानि सुरतान आन किय ।

पक लगि हय अग, पक चामड वेधि^१ हिय ॥

सकति छंडि मारूफ, जंघ ह्य उर महि मिहिय ।
हसन खान तरवारि, मारि द्वै घा मुख किद्धिय ॥
आकूव कटारी कट्टि कर, घल्लिय चामंडह गरे ।
सुम्भिय सुभट्ट संग्राम इम, भगल खेल नड्डह करे ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—ग्राम क्रिय=दुहाई को शपथ खाई । सकती=शक्ति, एक प्रकार का वाण । मिहिय=मेदा, वेधा दिय । घा=घाव । भगलखेल=एक प्रकार का खेल, जिसमें मार काट बताई जाती है ।

अर्थः—लालखान ने सुलतान की दुहाई देकर (शपथ खाकर) दो वाण ताने, उनमें से एक वाण चामुंड के घोड़े के अग में लगा और दूसरे वाण ने चामुंड का हृदय वेध दिया । मारूफखान ने शक्ति (एक प्रकार के वाण को) चलाई जो घोड़े की जंघा और हृदय को पार कर गई । हसनखान ने तलवार से मुँह पर दो घाव कर दिए, याकूबखान ने कटारी निकाल कर चामुंड के गले में भोंक दी । उस युद्ध-स्थल में वह श्रेष्ठ योद्धा चामुंड इस प्रकार सुशोभित हुआ मानों नट, भगल खेल कर रहा हो ।

दोहा

च्यारि खान चामड इक; एकाकी जुरि जोध ।
अंग श्रम्म दाहिम्म को, भिरथो भीम सम क्रोध ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—को=कौन ।

अर्थः—उधर चार खान थे और इधर अकेला चामंडराय था । फिर भी वह अकेला डटा रहा । उस समय दाहिमे वीर का शरीर घावों से छलनी हो गया था फिर भी वह तो भीम काय होकर क्रोध करता हुआ लड़ रहा था ।

कवित्त

क्रोध जोध जुरि जंग, अग चावंड राइ जुरि ।
खग जगि करि रीस, सीस सिपर समेत डुरि ॥
एक घाव आकूव, ग्वूव जस लियौ लोह लरि ।
हसन मारि कट्टारि, पारि मारूफ मुर्च्यौ धर ॥

गाम् रु गुर्यो उर्ग्यौ त्मन, पाऊवह गिर 'पर परगो ।

दुअ आन साह चहुआन क्रिय, लालखान रन पिपपुर्यौ ॥ ३६ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति ।

शब्दार्थः—कोध=योद्धा । अरि जग-पूर का मउन क्रिया । गग्ग जगि=ग ग गत । पिपस= सिर ढाल घचात्र का शरत्र (ढाल) । लोह तपि=शस्त्र कीडा तर्फ लोहे काय त, क। पिपकरया= उत्पात मचाने लगा ।

अर्थः—उस योद्धा चामुंडराय ने क्रुद्ध हो युद्ध को जमा कर शत्रुओं के अंग से अपने अंग को भिडा दिया । कोधवश हो उमने खंग रूपी यज्ञ (स्थापित) क्रिय जिससे शत्रु का सिर ढाल सहित लुढ़क पडा (वचाव के लिये सिर को ढाल की आड़ में लिया था लेकिन सिर और ढाल दोनों साथ ही फट गये) । एक घाव उमने याकूव के क्रिया और शस्त्र क्रीडा कर अति कीर्ति प्राप्त की । हसन खा पर कटारी का वार किया, मारूफ खा को पछाड कर उमके धड को मरोड दिया । यह देख कर हसन खां उड्डल कर हट गया । याकूव खां का सिर पृथ्वी पर पड गया, तब शाह की शपथ लाल खां ने की और चामुड ने चाहुआन नरेश की दुहाई दी । उस समय लालखान उस वीर से सामना कर उत्पात मचाने लगा ।

दोहा

लाल ढाल दिंचाल दिग, लाल वरन हय अग ।

लाल सीस-सिंधुर धजा, लाल खान क्रिय जग ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—दिंचाल=भयकर, दीर्घकाय । वरन=वर्ण । सीस=ऊपर । सिंधुर=हाथी ।

अर्थः—लाल वर्ण की ही जिसके पास ढाल है, लाल वर्ण (सुरग या कुमैत) ही जिसका घोडा है और लाल वर्ण की ही जिसके हाथी पर ध्वजा है । ऐसे दीर्घकाय लालखा ने युद्धारंभ किया ।

कवित्त

लाल वरन वानैत, खग्ग कदि आन जुद्ध कय ।

खान खान क्रिय घाव, कध कटि गिर्यौ तास हय ॥

निरखि राइ चामड, विरचि फिरि वीर पचार्यौ ।

गहिय तेग खा लाल, अग्ग नप धरनि पछार्यौ ॥

धर डारि रिदय^३ परि पाँव दिय, केस गहै वंकुरि- करहि।

ए कथ्य सुनौ हिन्दू तुरक, जै जै सुर नारद ररहि^३ ॥ ३८ ॥

ग्रा० पा० १ भौ० । २ पा० ३ भौ० ।

शब्दार्थः—वानैत=धनुर्धारी।- कय=किया। खान खान=खानों का भी खान, शिरोमणि (श्रेष्ठ-खान)। विरचि=ललकारा। पचार्यौ=सामने आने को कहा। दिदय=हृदय। परि=पर। वंकुरि=मरोड़ दिये। ए कथ्य=यह ख्याति। ररहि=कहने लगे, रटने लगे करने लगे।

अर्थः—उस लाल चर्चा वाले धनुर्धारी (लालखां) ने तलवार निकाल सामने आकर युद्ध किया। उस खान के आघात से चामुण्डराय के घोड़े का स्कंध कट गया और वह घोड़ा ज़मीन पर गिर गया। यह देख चामुण्डराय ने उस वीर को ललकारा और सामने आने को कहा। उसकी तलवार पकड़ कर उसे राजा पृथ्वीराज के देखते २ पृथ्वी पर पछाड़ दिया तथा उसके हृदय पर पाँव रख कर उसके सिर के बाल हाथों से पकड़ मरोड़ दिये। कवि कहता है—हे हिन्दू और मुसलमान वीरो। उस वीर की ख्याति सुनों। उस समय देवता और नारद भी यह देवकर जय २ कार करने लगे।

दोहा

लाल खान के केस गहि, सिर धरि करि दुआ खंड-।

दूसासन ज्यों भीम बल, रन ठड्ठौ चामड ॥ ३९ ॥

शब्दार्थः—धरि=धड़। बल=बलि, बलवान। ठड्ठौ=खड़ा हुआ।

अर्थः—लालखां के बालों को पकड़ कर सिर और धड़ अलग कर दिया और जिस प्रकार बलवान भीम दुःशासन को मारकर खड़ा हुआ था उसी प्रकार चामुण्डराय युद्ध क्षेत्र में शत्रु को मार कर खड़ा हो गया।

कवित्त

रन ठड्ठौ चामड, मंत्रि कैमास पहुँचौ।

हयह चढ़ायौ आइ, बहुरि मुख बचन कहतौ ॥

तू मेरौ लघु बध, इतौ दुख कौन सहंतौ।

तो विन जग सब धध, अंध हुअ अवनि रहंतौ ॥

चहि वाज आज मयाम मे, राज लाज मो गुजनि पर ।

हठि हसन खान प्राकृत मे, खल पडे ते अग वर ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—पहुंचो=पहुंचा । हयद=घोड़े पर । कहतो=कहा । वध=पथ । मध=गायारिक मधे, कार्य ।

अर्थः—जहाँ रण क्षेत्र मे लाल खा फो भार कर चामु डराय खडा था, वहा मंत्री कैमास पहुँचा और चामु ड को घोड़े पर चढाकर बोला कि तू मेरा छोटा भाई है अन्यथा इतनी युद्ध आगति कौन सहन कर पाता ? तेरे अतिरिक्त सारा संसार सात्कारिक कार्यो मे अया है तू ही एक पिरक वीर है । अत आज युद्धस्थल मे पुन घोड़े पर चढ जा, क्याकि राजा की लज्जा का भार आज मैंने अपनी मुजाओ पर लिया है । वन्य हे तुमे ! तू ने हठीले हसनवा और याकूबवा जैसे दुष्टों के श्रेष्ठ अगों को काट दिया ।

दोहा

खल खड तुम अग वर, रगत वरन किय अग ।

रहि ठहौ डक खिनक रन, करौ निरिखि हों जंग ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—रगत वरन=रक्त रजित, रक्त वर्ण । खिनक=क्षणमात्र ।

अर्थः—तू ने श्रेष्ठ अगों वाले शत्रुओं का खंडन कर अपने शरीर को भी कृ रजित (वर्ण) कर दिया । अत अब क्षण भर के लिये रण क्षेत्र मे खडा रह कर मेरे द्वारा किये जाने वाले युद्ध को देख ।

दोहा

ताज वाज सहवाज खा, जाज खान महवूव ।

मान अदन कैमास कौ, लगी खुरसानह खूव ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—अदन=मर्दन ।

अर्थः—इने मे ताजखा, वाजखा, जाजखा और महवूवखा आदि खुरासानी योद्धा कैमास का मान मर्दन करने के लिये आ गये ।

कवित्त

सुनत साहि की वत्त, सत्त सब मित्त सम्हारै ।

करत कलह अम्मान, वान कम्मान प्रहारै ॥

सख सार की मार, हक्क मंत्री तहँ टेर्यौ ।

जवर जंग नीसान, मनहुँ वहल घन घेर्यौ ॥

जिम पथ्य वान कर वेग गहि, च्यार्यौ कैमासह लगे ।

दिक्खेव सवल सप्रास भर, ब्रह्म जोग निदह जगे ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—वत्त=वात, आवाज, ललकार । अम्मान=यमानी, नहीं मानने वाले । को=कली, करके । हक्क=हुँकार, गर्जना । घन=विशेष । पथ्य=पार्थ, अर्जुन । च्यार्यौ=चल पड़ा । लगे=लगने पर, मिड़ने पर ।

अर्थः—शाह के ललकार ने पर उसके मित्रों ने अपने वीरोचित सत्य को सभाला । उन शक्ति वाले वीरों ने युद्ध समय वाण को कमान पर चढा कर प्रहार करना शुरू किया । तब लोहास्त्र की मार (वार) करता हुआ, ललकारता हुआ मन्त्री कयमास इस प्रकार गर्जने लगा मानों भारी युद्ध के नक्कारे वज रहे हों या आकाश में घिरकर वादल गरजते हों । शत्रुओं के आ जाने से (मिड़ने पर) अर्जुन के समान वाण ग्रहण कर वह वीर शत्रुओं पर दूट पड़ा । उस समय वह योद्धा युद्ध-स्थल में सवल दीख पड़ा । उसके द्वारा शत्रुओं के आक्रमण करने से ब्रह्मा की योग-निद्रा दूट गई ।

तीर^१ मीर सव^२ सत्त्र, मत्री कयमास तमकि तिम^३ ।

कर गहि कठिन कमान, वान वाहंत पथ्य जिम ॥

जाज खान दुअवान, तानि मार्यौति पर्यौ धम ।

तपि वाज सहवाज, मरद महिमूव^४ मुरहि किम ॥

अहँकार धरवि मन महि अधिक, जाइ जुर्यौ चामंड सम ।

दुअ करत जुद्ध मत्री सरिस, लरत घाव दुअ धरिय जम ॥ ४४ ॥

आ० पा० १ पा०, भी० का० । २ टि० पा० । ३ पा० । ४ टि० पा० । ५ भी० ।

शब्दार्थः—तीर=किनारा । धम=धड़के के साथ । तपि=सतप्त । सम=से । सरिस=श्रेष्ठ या सक्रोध ।

अर्थः—जैसे ही मंत्री कैमास आवेश में आया, वैसे ही सत्र शस्त्रधारी मीर युद्ध से किनारा करने लगे । वह वीर कठिन कमान हाथ में ग्रहण कर ऊपर अर्जुन के समान वाण वर्षा करने लगा । उसने जाज खान के दो वाण खींच कर मारे जिससे वह धड़ाम से गिरपड़ा । वाज खां तथा सहवाज खा उसके द्वारा संतप्त हो गये ।

परन्तु पुरुषार्थी महव्यूव कां किम प्रकार मुड सकन था ? वह विशेष ग्रहकार धारण कर चामु डराय से जा भिडा । उपमे दोनो श्रेष्ठ मत्री (चामु ड और कैमास) युद्ध करने लगे और उनकी लडाई के कारण घावों मे युद्ध भूमि मे दो घडीतक श्रम छा गया (अर्थात् उनके घावो मे शत्रु शक गये) ।

घरिय दौड वर जुद्ध क्रुद्ध जोधा रन जुट्टे ।

मत्रि मिया महव्यूव जग से अग निहट्टे ॥

परिय मीर सिर मार, भार दुअ भुज बल पिल्ले ।

घायत्तन घन घुमि, चाय खित्री खग खिल्ले ॥

खग खेल मेल महव्यूव सिर, कैमासह कर टारियो ।

तकि वाज खान बल खण्ड^३ करि, गहि गिरदान पछारियो ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १ का० । २ टि०, भी ।

शब्दार्थः—मत्रि=कयमास । निहट्टे=नहीं हटे । पिल्ले=पेले । घायत्तन=घायल शरीर, घायल होते हुए । घु मि=भूमते हुए । चाय=इच्छा पूर्वक, इच्छा करते हुए । खिल्ले=खेलने लगे । मेल=मेल दी, रख दी, प्रहार किया । टारियो=राक दिया । ताकि=देखकर । खण्ड=नष्ट । गिरदान=चारों ओर घुमा कर ।

अर्थ—इस युद्ध मे कुद्ध यौद्धा (कयमास और चामुड) दो घडी तक लडते रहे (युद्ध से नहीं टले) । उन दोनो वीरों ने (कयमास और चामुण्ड ने) युद्ध-भार अपनी मुजाओं के बल पर वहन किया जिससे मीर महव्यूव के सिर पर मार पडने लगी । घायल होकर वे वीर क्षत्रिय विशेष भूमते हुए इच्छापूर्वक तलवार का खेल खेलने लगे । उस रण-क्रीडा मे कयमास ने महव्यूव के सिर पर खड्ग प्रहार कर अपने हाथ को रोक लिया । पश्चात् वाजवा की ओर देखकर उमने उसका बल नष्ट कर उसे पकड कर चारों ओर घुमाकर पछाड दिया ।

चिति राड चामड, टें उत निरखि उभयतन ।

खग करह खनकत, मत्रि सहवाज घाव घन ॥

पहुँच जाज परि-हार, वार मीरन सिर वद्विय ।

रन जित्यौ दाहिम्म, कित्ति पटुमि पर चद्विय ॥

दल दल्यौ सवल दाहर सुतन, कहै धन्य हिन्दू तुरक ।

सुनि वत्त साह संमुह अरिय, जनु असिवर उग्यौ अरक ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—उभयतन=दोनों के शरीर (मंत्री कैमास और शहवाज के शरीर) । खनकत=खन खनाते हुए । मन्त्रि=कैमास मन्त्री । परि-हार=पड़ा, पराजित हो गया । धार=खड्गधारा । दाहिम=दाहिमा क्षत्रिय कैमास । चड्ढिय=चढगई, फैलगई । दाहर सुतन=दाहर पुत्र (कैमास) । समुह=सामने । अरिय=अडगया । असिवर=श्रेष्ठ खड्गधारी । उग्यौ=उदय हुआ । अरक=अरक, सूर्य ।

अर्थः—फिर कयमास मंत्री और शहवाज खां मे युद्ध ठना । उस समय चामुंडराय चिंतन करता हुआ दोनों के शरीर को देखने लगा । वे दोनों (कयमास और शहवाज) हाथों से तलवारें खनखनाते हुए एक दूसरे पर अधिकाधिक घाव कर रहे थे । इतने मे जाज खां भी आपहुँचा, किन्तु वह कयमास से पराजित हो गया । इस प्रकार वह दाहिमा वोर विजयी हुआ और उसकी कीर्ति पृथ्वीपर फैलगई । बलवान दाहर-पुत्र ने शत्रुदल का नाश कर दिया । जिससे उसे हिन्दू और मुसलमानों ने धन्य २ कहा । यह बात सुन स्वय सुलतान सामने आगया । वह खड्गधारी शाह उस समय ऐसा दिखाई दिया मानों सूर्योदय हुआ हो ।

करिय साहि ठेलत, मीर हक्कत प्रवल दल ।

खां ततार रुस्तम्म, मीर मगोल सवल वल ॥

चक्रसेन चहुआन, लोह वाहत आय खल ।

नर ह्य गय गुंजार, लोह लगगत ह्यदल ॥

असिमार धार आकास उडि, उट्टि जुरत कमंध रिन ।

चहुआन चक्र सुरतान लागि, तन तिखंड खडे करिन^१ ॥ ४७ ॥

ग्रा० पा० १ का०, टि० ।

शब्दार्थ—ठेलत=बढाने पर । हक्कत=बढा, बढे । वाहत=चलाने लगा । आय खल=दुष्टों के, शत्रुओं के) आने पर । गुंजार=शोर, आवाज । ह्यदल=अश्वारोही । धार=श्रेष्ठ धारा या शस्त्र धारा । कमध=मुड रहित धड़ । करिन=हाथी ।

अर्थः—शाह के द्वारा हाथी बढाये जाने पर मीरों का प्रवल दल बढा । उसमें ततार खा, रुस्तम खां और मीर मगोल आदि सशक्त वीर थे । शत्रुओं के सामने

उम समय चक्रसेन चाहुआन उन पर लोहघात करता हुआ बढा । मनुआ, घोडे और हाथियों का शोर मचने लगा, तथा गुड सवारों (अश्वारोहियों) के दल पर लोहघात होने लगा । तलवार के आघातो से गगन-मडल तक रक्तवारा उखलने लगी और कमध उठ २ कर युद्धस्थल मे भिडने लगे । इस प्रकार चाहुआन चक्रसेन सुलतान से जा भिडा और हाथिया के शरीरो के तीन २ टुक करने लगा ।

तव सहाव सुरतान, वान कमान कोपि धरि ।
अलखान आलम, सार वहि कटी सु खुपरि ॥
चक्रसेन सिर खडि, कियौ दह भरे लोह लरि ।
खा ततार रुस्तम, खान गुरसान रहै डरि ॥

उर डरपि धरकि हिंदू तुरक, मूर नूर सामत मुख ।
कवि चढ देखि कीरति करत, लरत आप आपनी सु रुख ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—खुपरि=खोपडी । दह=गड्ढे, नदी में हसमय जलभरे रहने वाले, गड्ढे । रुख=पत्त ।

अर्थः—यह देखकर शाह ने क्रोध कर वाण कमान पर चढाया । अलखा और आलमखा ने शस्त्र चला चाहुआनी दल के वीरों की खोपडी की मज्जा निकाली तब चक्रसेन चाहुआन ने विपन्नियों के सिर तोड कर श्रोणित के दह (नदियों मे हर समय भरे रहने वाले गड्ढे) भर दिये । यह देख कर तत्तार खा, रुस्तम खा, भयातुर हो गये । उस वीर चक्रसेन का नूर युक्त मुख देखकर हिन्दू और तुरक योद्धाओं के हृदय भयभीत हो धडकने लगे । कविचढ कीर्ति वर्णन करता हुआ कहता है कि प्रत्येक योद्धा उम समय अपने २ पत्त पर रह कर लडने लगा ।

दोहा

अप आपानी रुख लरत, करत अग अँग मार ।
चक्रसेन चहुआन कौ, भरनि सहौ मुजभार ॥ ४९ ॥

शब्दार्थः—अग अँग=प्रत्येक अँगों पर । भरनि=सामतों ने ।

अर्थः—वे योद्धा अपने अपने पत्त पर लडते हुए दूसरे के अँगों पर आघात करने लगे । उस समय चक्रसेन चाहुआन को आपत्ति-ग्रस्त देखकर वीर सामतो ने उसकी आपत्ति के निवारण का भार अपनी मुजाओं पर लिया ।

कवित्त

भरनि सखौ भुजभार, साह सक वान प्रहारिय ॥
 एक वान चामंड, लगिग भुज दंड मुहारिय ॥
 दुतिय वान सिर वहिग, चक्रसेनह सिर संघे ।
 सु कर कट्टि अप वान, खचि वसतर सम वंधे ॥
 वर वधि घाय कर खग गहि, विजल खान वगसी बहौ ।
 कैमास राइ चामड मिलि, धन्य दुअन जै जै कहौ ॥ ५० ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ भी०, पा० ।

शब्दार्थः—सक=सुसलमान । मुहारिय=पुछाले । सिर=ऊपर । संघे=लक्ष्य करके । सु=उस चक्रसेन ने । वसतर=वस्त्र । सम=से । घाय=घाव । वगसी=वत्ती । बहौ=नाग किया, चलता किया ।

अर्थ —सामतों ने उस युद्ध का भार भुजाओं पर लिया । तब मुस्लिम बादशाह ने वाणों का प्रहार करना शुरु किया । उनमें से एक वाण मूँछवाले चामुंडराय के भुजदण्ड पर लगा । शाहने दूसरा वाण चक्रसेन के सिर को लक्ष्य कर चलाया वह चक्रसेन के सिर पर लगा । उस वाण को हाथ से निकाल कर अपने विहीरुण सिर को वस्त्र से खींच कर बांधा । घाव को बांध लेने के पश्चात् उसने हाथ में तलवार पकड़ विज्जूलखां वत्ती का नाश किया । यह देख कयमास और चामुंडराय ने मिलकर उस वीर को धन्य २ कहकर उसकी जय २ कार की ।

कैमास रु चामड, साहि-गजतेग प्रहारिय ।
 अलूखान आलम, सीस दुअ घाडन पारिय ॥
 चक्रसेन खग वहिग, चमरकट सिर सम तुट्टिय ।
 वहि क्रपान कासिम्म, लरत धरपर धर लुट्टिय ॥
 लुट्टैति मीर तिहि साहरिन, छत्रधार छत्रिय खगन ।
 दाहिम्म जुद्ध दिखि ब्रह्मसुर,भय तु मर नारद मगन ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—साहि=बादशाह के हाथी पर । लुट्टे=लुटके । तु मर=तु मर नाद हुआ । तु मर=नाद किया मगन=प्रसन्न ।

अर्थः—कयमास और चामुंड ने शाह के हाथी पर तलवार का प्रहार किया और अलूखां तथा आलमखां, दोनों के सिर पर आघात कर उन्हें पटक दिया ।

उत्तने में चक्रसेन को तलवार चली जिसे पाह के चमर करने वाले का गिरा तथा हाथ चमरमहित कटपडा । फिर कानीन पर तलवार चलाई, जिगमे उमका लउता हुआ धड धराशाथी हुआ । उन वृत्र-धारण करने वाले चनिपो की तनवारो ने उस युद्ध में शाह के कई वीरो को लुटका दिया । उन प्रकार द्रहिम्म गीरो (कगमाम और चामड) का युद्ध ब्रह्मा और देवगण देवते रहगये और देवधि ने प्रमन्न होकर तुम्मर नाद किया ।

अलूखान वर उठिग, पानि वरि खग खनक्यौ ।
चक्रसेन कटि कथ, सिलह फुटि तनह न नक्यौ ॥
उमडि उट्टि अधकाड, घुमडि घनघाड घन क्यौ ।
तीन भरन किय घाउ, ठाम तिन तनह ठनक्यौ ॥
जुध करत खग तिय जोध सम, चक्रसेन सिर धर पर्यौ ।
बोहिथ्य वीर तर वारि सर, उभय हथ्य धर रन तिर्यौ ॥ ५२ ॥

शब्दार्थः—धर=धड, र ड । नक्यौ=पकडा । घन=बहुतां के । कयो=किये । ठनक्यौ=बजा, प्रति ध्वनित हुआ । बोहिथ्य=नौका, नाव । वीर=वीरस ।

अर्थः—धराशाई अलूखान का धड उठा उसने हाथ में तलवार लेकर खन खनाई जिसके वार से चक्रसेन का स्कंध कट गया, कवच टूट गया, किन्तु फिर भी उस वीर का शरीर जमीन पर नहीं पडा । उसकी अर्ध काया उट खडी हुई और मुडकर उसने बहुतां के घाव कर दिये । उसने तीन विपत्ती योद्धाओं पर वार किया । जिससे उनके अग स्थल पर उसका शस्त्र प्रतिध्वनित हो गया । इस प्रकार तीन योद्धाओं से समान खड्ग युद्ध करता हुआ चक्रसेन का सिर पृथ्वी पर जा पडा । वह वीर, वीरस रूपी तालाव में तलवार रूपी नौका को दोनों हाथों से खेता हुआ युद्ध क्षेत्र को पार कर गया ।

वर करगहि तरवार, हेत हिंगोल सँभारिय ।
चढत साहि दिग मञ्जि, वाज सिरताज विहारिय ॥
सत्रह वरस सपन्न, राग बाहर कौ जायौ ।
कलिजुग जम विस्तरिय, बहुरि वैकुंठ मु आयौ ॥

विन सिर कमव करिवार गहि, खगन मरिक्खल खड किय ।

मारथौ मीर जद्धव मलिक, गीर परे पारंत विय ॥ ५३ ॥

शब्दार्थः—हेत=हित । हिंगाल=स्थान विशेष । संमारिय=समाला, रत्ना की । विहारिय=चलाया, पहुँचाया । मपन्न=पहुँचा हुआ । जद्धव=युद्ध में, या युद्ध करता हुआ ।

अर्थः—चक्रसेन के धड ने हाथ में तलवार ग्रहण कर हिंगोल के हित की रक्षा करली (अपने स्थान हिंगोल की अपकीर्ति नहीं होने दी) । युद्ध के प्रारंभ में सुसज्जित होकर उसने अपने सिरताज नामक अश्व को शाह के निकट पहुँचा दिया । वह दाहरराय का पुत्र उस समय १७ वर्षों में पहुँचा था । वह कलियुग में यश विस्तार कर वैकुण्ठ पहुँचा । उसके रुंड ने विना मुंड के ही तलवार ग्रहण कर खड्ग प्रहारों द्वारा शत्रुओं को खण्ड कर दिया । लड़ने वाले मीर मलिक को युद्ध में मारझाला और दो और विपक्षियों को धराशाई कर वह वीर वराशाई हुआ ।

दोहा

जित्ति मत्रि सुरतान धर^१, वधव चोंड हजूर ।

उमै लक्ख असुरान के, मेटि प्रवल दल पूर ॥ ५४ ॥

ग्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—धर=पकड़ा । हजूर=उपस्थित, साथ में ।

अर्थः—मंत्री कयमास ने विजय प्राप्त की, सुलतान को पकड़ा और कैमास का साथ उसके भाई चामुड ने दिया । दोनों वन्धुओं ने शाह के दो लाख मुसलमानों के सम्पूर्ण दल को किस प्रकार नष्ट किया उसका वर्णन कवि करता है ।

कवित्त

मेटि प्रवल दल पूर, साह समुह गज पिल्ल्यौ ।

वाज राज चामड, मंति वंधव मिलि ठिल्ल्यौ ॥

संगि वाहि कैमास, पीत वाने विच ठट्टिय ।

गहिय समर चामण्ड, तु डपर करिय निहट्टिय ॥

कड्डि म सु - गजान गम गिरत गज सागत नर ।

दाहिम्म नगो गजजन चमर जय २ मुग सने चमर ॥ ५५ ॥

शब्दार्थ पि-स गंगा नग । गजान=गज । गि=गिरा । गी । गी । पातान-
पात-यात्र परा मत्तग परा । ठरिय=ठरई, पाश कर्मई पञ्चमित दुर् । गणिय यमर=
युद्धभार ग्रहण किया । गिरिय=गिरात । गम=गमित । भग परा । गज नपपर गजजंगर
ममत्तमान हो । मर=प्राजा, ग । शमर=देवता ।

अर्थ:—उम सम्पूर्ण गुमलमानी प्रवल सेना को नष्ट हुई देखकर शाह ने अपने
हाथी को बढाया—तब चामु डराय और उसके भाई मत्री कयमास ने अपने २ घोडे
शाह की ओर बढाये । कयमास ने साग (सम्पूर्ण लोहे के बर्डे) का वार किया ।
वह बादशाह के स्वर्णम कवच मे प्रवेश करगई और चामु डराय ने भी युद्ध भार
ग्रहण कर गज तु ड पर आघात किया, जिससे हाथी की सु ड दोनो ढंती सहित कट पडी
और हाथी लुढक पडा, उसी समय कयमास ने गजनेश्वर शहाबुद्दीन को पकड लिया ।
यह देख देवताओ ने जय २ शब्दोच्चारण किया ।

अमर सह जयकार, डारि साहाव कध हय ।

लै मंत्री सुरतान, वध विय राज पास गय ॥

दिकखि नृपति साहाव, ताम आपन हिय डर्यौ ।

किय हुकम्म चहुआन, आनि सुख्यासन धर्यौ ॥

नृप जीति चलयौ दिल्ली पुरह, उपार्यौ चामड वर ।

हु डर्यौ खेत दाहिम्म तई, उपारिग केइक सुभर ॥ ५६ ॥

शब्दार्थ: लै=लेकर, । भिय=दोनों भाई । धर्यौ=विठलाया । केइक=कितने ही ।

अर्थ:—देवताओ के जय जय कार करने पर मत्री कयमास ने शहाबुद्दीन को पकड
कर अपने घोडे के रुन्धे पर डाल दिया और दोनों भाई (कयमास और चामण्ड-
राय) शाह को लेकर राजा के पास गये । राजा को (पृथ्वीराज को) देख कर
शहाबुद्दीन भयभीत हो गया, किन्तु चाहुआन नरेश ने आज्ञा दी और उसे लाकर
सुखामन पर विठाया । इस प्रकार पृथ्वीराज विजय प्राप्त कर दिल्ली-रवाना हुआ ।
घायल हो जाने से श्रेष्ठ वीर चामण्डराय को उठाकर साथ मे लिया और मत्री
कयमास ने रणक्षेत्र की खोज करवा कर घायल सामनो को भी उठराया ।

उपारिग चहुआन, राज वंधव सु चक्रधर ।
 राम किष्ण गहिलोत, वंध रावर सु समर वर ॥
 उपारिग नर सिंघ, वीर कैमास अनुज्जिय ।
 सामल सेखा टाक, नेह जं जरिय वंध त्रिय ॥
 उपारि^१ खेत सामंत खट, खट्टूपुर भारथ परिग ।
 दल हिंदु सहस असुरह अयुत, रहे खेत कंदल करिग ॥ ५७ ॥

प्रा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—ज=जो । जरिय=जकड़े हुए थे । खट=छ । भारथ=युद्ध । अयुत=दो सहस्र । कंदल=क दल, नाश ।

अर्थः—राजा के भाइयों में से चक्रसेन चाहुआन था उसका मृत शरीर उठवाया गया तथा रावल समर केशरी के भाइयों में से गुहिलोत राम और कृष्ण, कयमास के भाइयों में से वीर नरसिंह और प्रेम वन्धन से जकड़े हुए ऐसे दोनों भाई टांक क्षत्रिय सामल और शेषा भी उठवाये गये । इस प्रकार छः सामंत खट्टूपुर के युद्ध में धराशायी हुए । उस युद्ध में एक सहस्र हिन्दू वीर और दो सहस्र मुसलमान रणक्षेत्र में विपक्षियों का नाश करते हुए (युद्ध करते हुए) काम आये ।

दोहा

जे भग्ने तेऊ मरे, तिन कुल लाड्य खेह ।

भिरेसु नर गय जोति मिलि, वसे अमरपुर तेह ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—लाड्य खेह=धूल में मिला दिया । तेह=वे ।

अर्थः—कवि कहता है—युद्धस्थल से भाग गये थे, वे भी एक दिन मरे, किन्तु वे अपने कुल को कलकित कर मरे (अर्थात् पीठ बतलाकर अपने वश-गौरव को उन्हीं धूल में मिला दिया) । परन्तु जो वीर युद्धस्थल में युद्ध कर मारे गये थे, वे परम ज्योति में मिल गये और स्वर्ग में जा वसे ।

कवित्त

गय दिल्ली पृथिराज, दड सुरतान मीस क्रिय ।

गज द्वादस दल सोभ, वाज हज्जार अट्ठ विय ॥

परध दड पृथ्वीराज, द्वियौ रेमाम चौड तिन^१ ।

दड परध द्विय राज, सु भर उणारि मभरिन ॥

पतिसाह गयौ गज्जन पुरह, बद्राडय सामत घर^२ ।

जै जै सु मवद सव लोक किय, चद अक्खि कीरति अमर ॥ ५६ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—तिन=उनसे, या उमने । मभरिन=युद्ध स्थल में ।

अर्थः—पृथ्वीराज ने दिल्ली जाकर शाह को दंडित किया और उस दंड स्वरूप सेना की शोभा बढ़ाने वाले वारह हाथी और आठसहस्र घोड़े लिये । उस प्राप्त दण्ड में से आधा कयमास और आधा चामुण्डराय को दिया गया तथा शेष आधा दण्ड उन सामन्तों को दिया गया जो युद्धस्थल से उठाये गये थे । इस प्रकार दण्ड देकर वादशाह गजनी पहुँचा । वीर सामन्तों के घर पर युद्ध की वधाई वाटी गई । सब लोगों ने इस विजय की जय २ कार की और मैंने (कविचन्द ने) भी इस विजय के उपलक्ष्य में अमर कीर्ति का गान किया ।

हंसावती विवाह

(समय ४१)

दोहा

इक तप पंग नरिंद कौ, मुनि अवाज सुरतान ।

आखेटक पृथिराज गय, खट्टू पुर चहुआन ॥ १ ॥

शब्दार्थः—तप=प्रताप । अवाज=आवाज, शोरगुल । गय=गये ।

अर्थः—जयचन्द का प्रताप फैला हुआ था, उधर शहाबुद्दीन का शोर गुल सुनाई देता था फिर भी पृथ्वीराज शिकार के लिये खट्टूपुर की ओर गया ।

कवित्त

रा जद्व रिन थंभ, भान पंचाइल भारी ।

हंसावति तिन नाम, हंसवती गति सारी ॥

अवनि रूप सुंदरी, काम करतार सुकीनी ।

मन मन्नवै विचार, रूप सिंगारस लीनी ॥

लक्म्वन वत्तीस लच्छी सहस, अति सुंदरि सो भासु-कवि ।

अस्तम्भ उदै वर चक्र विच, दिक्खिन न कहु चक्रंत रवि ॥ २ ॥

शब्दार्थः—राजद्व=राज । रिनथम=रथ थम्भौर । हंसवती=हंस के समान । सारी=श्रेष्ठ । मन्नवै=मानने योग्य । सो=वह । मासु-कवि=कवि की वाणी । अस्तम्भ=अस्त । उदै=उदय । चक्र=एरिया, क्षेत्र । दिक्खिन=देख नहीं पाया । चक्रत=चक्रर लगाता हुआ ।

अर्थः—इधर यादव राज रणथम्भौर में था । वह (भानुराय) और उसका विपत्ती पचायन दोनों भारी योद्धा थे । यह युद्ध जिस कुमारी के लिये हुआ उस कुमारी का नाम हंसावती था । जिसकी श्रेष्ठ गति हंस तुल्य थी । कामदेव और ब्रह्मा (सृजता, ब्रह्मा) ने उस सुंदरी की रचना संसार के समस्त सौन्दर्य द्वारा की थी, उसके विचार मानने योग्य थे, और उसका सौन्दर्य शृंगार रस से श्रोत प्रोत (परिपूर्ण) था । वह लक्ष्मी के समस्त लक्षणों से

युक्त थी। वट ऋषि की वाणी के नृत्य विनोप सुन्दरी (या जिम्हा ऋषि वर्गान करता है वैसी अति सुन्दरी थी)। अन्य प्यक्त होते हुए मूर्ध ही सीमा मे मूर्ध ने भी ऐसी सुन्दरी नहीं देखी थी।

नाग वेनि सह^१ पीन, कति दसनह सोभत सम ।
 अखि पदम पत^२ मानु^३, भाल अष्टम रतिपति क्रम ॥
 सिखा-नामि^४ गज गत्ति, नाभि दखनावृत सौभै ।
 सिंघ नार कटि चारु, जघ रंभा जुखि^५ लौभै ॥
 सुदरी सीत सम वरि चरित, चतुर चित्त हरनी विदुख ।
 सतपत्र गव मुख ससिय सम, नैन रभ आरभ रुख ॥ ३ ॥
 प्रा० पा० १ पा० । २, ३ भी० पा० । ४, ५ पा० ।

शब्दार्थः—सह=वह, जिसकी, उसकी सुहावनी, शोभित । पीन=वेनी,(पतली)। कति=कति । दसनह=रद पक्ति । सम=एक सी, समरूप में । अंखि=अंखें । पदम पत=पद्म पखुड़ी । अष्टम=अष्टमी का चन्द्रमा सा । रतिपति=कामदेव । क्रम=विहार । सिखा-नामि=शिक्षितों में जिसका नाम । दखनावृत=दक्षिणावर्त, दक्षिण को चक्कर खाती हुई । नार=तत्व (पतली, सूक्ष्मरूप) । रभा=कदली स्तम्भ । जुखि=यक्षिणी । सीत=सीता । वरि=श्रेष्ठ । चरित=चरित्र । विदुख=विदुषा, पडिता । सत पत्र=शतपत्र, कमल । गध=सौरभ । रभ=रभा । आरभ=प्रारभ । रुख=चितवन ।

अर्थ—नाग के समान पेनी (पतली, तीखी) आकृतिवाली उसकी वेणी,पद्म पखुड़ी के समान उमके नैत्र, कति युक्त और पक्ति वद्ध उसकी रदपक्ति, अष्टमी के चद्रमा (अर्ध चद्र) के समान या कामदेव के विहार स्थल के समान उसका भाल, शिक्षित हाथियों मे जिसे गिना जा सकता है, ऐसे हाथी के समान उमकी गति, यक्षिणी की और चक्कर खाती हुई उसकी नाभि, तत्वरूप मे (पतली) श्रेष्ठ सिंह सी उसकी कटि । जिसे देख यक्षिणी भी मोहित (लोभित) हो जाती थी, ऐसी कदली सी जिसकी जघा थी, वह श्रेष्ठ सुन्दरी चरित्र मे सीता के समान थी । वह चतुर, चित्त को हरने वाली और विदुषी थी । कमल के समान उसकी सौरभ, चन्द्रमा के समान उसका मुख और रभा के समान उमकी चितवन (नैत्रों की रुख का आरंभ) थी ।

गाथा

वर वंसी सिसुपालं^१, चित्त^२ जस संभलं वालं ॥

मन मननं^३ तन वट्टु^४, रिनथम मुक्कवै दूतं ॥ ४ ॥

आ० पा० १, २ पा०। ३ सं० ।

शब्दार्थः—जस=यश । 'मुक्कवै=मेजे' ।

अर्थः—शिशुपाल के वंशज का चित्त जैसे ही उस वालाके यश श्रवण में लगा वैसे ही उसके मन और शरीर में कामदेव ने विशेष रूप से स्थान पाया और उसने यादव भान जो उस समय रण थमौर में ठहरा हुआ था उसके पास दूत भेजा ।

कवित्त

रा जहव रिन भान, तमकि कर चंपि लुहट्टी ।

वर रन धंभ उत्तरी, वीर वस्सी आहुट्टी' ॥

वर कग्गद कर फेरि, सुभित^३करियो^३वर राजन ।

मनै वैठि मडली^४, धम्म छत्री जिन भाजन ॥

बुल्लइन एन दुज्जन भिरन, तरन-तार साधन मरन ।

वर वीर जुद्ध चालू-करन^५, हक्कार्यो^६ दुज्जन भिरन ॥ ५ ॥

आ० पा० १, २, ५ स० । ३, ६ पा० । ४ का० ।

शब्दार्थः—रिन=रणथमौर स्थित, ठहरा हुआ । चपि=दृढता के साथ ग्रहण की । लुहट्टी=तलवार । उत्तरी=उतर पड़ी । वस्सी=वस ही (साथ में आये हुए लोग) । फेरि=लौटा दिया । सुभित=थच्छा । मते=मंत्रणा के लिये । मडली=मामन्त मडली । तरन-तार=तरन-तारन । चालू-करन=गुरु करने को । हक्कार्या=ललकारा, बुलवाया ।

अर्थः—शिशुपाल-वशी दूत के आने पर रणथंभोर में ठहरे हुए यादव राजा भान ने क्रोध में आकर तलवार दृढता से पकड़ी और उस वीर के अडिग साथी (उसके साथ में देवास से आये हुए लोग) रणथंभोर से नीचे उतरे । शिशुपाल वशी का आया हुआ पत्र लौटा दिया गया । राजा ने यह कार्य अच्छा किया । फिर वह सामन्त-मंडली सहित मंत्रणा के लिये बैठा और निश्चय किया कि भाग जाना शत्रु को युद्धार्थ घर पर निमंत्रण देना चाहिये, क्योंकि मृत्यु

ही तरन-तारन की भावना है। वह निश्चय कर उग गेष्ठ वीर गगन ने युद्ध प्रारम्भ करने के लिये शत्रु को ललकारा।

मुनि बग्गी मग्निपाल, वीर पचाउन लोट्यो ।
 मह मह गज जेमि, तगभि वीरज गग लोट्यो ॥
 रिन थभठ दिमि थभ, दिग्यो वर वीर मिलान ।
 हय गय दल चतुरग, मजे तिन वेर प्रमान ॥
 वर वीर थग्ग वस्सीठ चलि, राजदौ समुह दिसा ।
 परनाइ कुंथरि ह्सावती, सु वर कोपि प्राथो निमा ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—सदद=शब्द, आवाज। मदद=मतवाले। जेमि=जैसे। तमसि=तेज में आकर, तमक कर। सम=से। थभ=थमकर, सम्हल कर। दियौ=क्रिया। मिलान=कूच। तिन वेर=उम्मी समय। निसा=निशा, रात्रि के तुल्य।

अर्थः—युद्धार्थ यादव भान का सन्देश सुन शिशुपाल वशी वीर पचायन क्रुद्ध हो उठा और मस्त गजराज के समान गर्जता हुआ जोश में वैर्य भूल गया। रणथभौर की ओर सावधानी से उस वीर श्रेष्ठ ने कूच किया। उसने उसी समय हाथी घोड़े और चतुरगिनी सेना सजाई और उस वीर श्रेष्ठ ने यादव राजा की तरफ आगे दूत भेजकर कहलाया कि कुमारी ह्मावती का ब्याह करदे। अन्यथा वह सबल वीर क्रुद्ध होकर रात्रि के तुल्य बढा आरहा है (अधकार के समान भयानक हो गया है)।

दोहा

जस बेली रिन थभ नृप, फल पच्छे नृप आइ ।
 रा जहव, सुरतान सौ, कहि चर' जाइ सुधाइ ॥ ७ ॥

आ० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—रिन थभ नृप=रण थभौर का स्वार्थ राजा पृथ्वीराज। पच्छे=मादम, पश्चात्। आइ=आया हुआ।

अर्थः—रणथभौर का स्थायी राजा पृथ्वीराज की यश बेली के तुल्य था। पीछे से आया हुआ यादवराज (भानु) फल स्वरूप दिखाई पडा। इस श्रेष्ठ सयोग की बात दूतों ने जाकर शाह से भी नहीं (यह दूत शिशुपाल-वशज का भेजा हुआ शाह के पास पहुँचा)।

कवित्त

सोय रक्खि रावनह, लंक तोरन कुल खोयो ।
 कपट रक्खि दुरजोध, खग्ग खोहनि दल वोयौ' ॥
 संत हीन वरचंद, कियौ गुरवारसु हिल्लौ ।
 क्रम्म रक्खि रघुराइ, अजै जान्यौ न पहिल्लौ ॥
 रनथभ मडि छंडी सरन, भिरन कदौ वरवीर सव ।
 ससिपाल वीर वसी विलस, हमदेखै आयौसु अत्र ॥ ८ ॥

आ० पा० १ भी ।

शब्दार्थः—तोरन=टूटी, नष्ट हुई । खोयो=नष्ट कराया । दुरजोध=दुर्योधन । खोहनि=अज्ञौहिणी ।
 वोयौ=डूबो दिया, नष्ट किया । संत हीन=कुमत्रणा युक्त । गुरवारसु=गुरु की वाणा (पत्नि से) ।
 हिल्लौ=वदनाम, फजीता । क्रम्म रक्खि=कर्तव्य का पालन करता हुआ । रघुराइ=रघुवशी राजा दशरथ ।
 अजै=विजयी । पहिल्लौ=प्रथमता । रनथम=रणथभोर पर । मडि=ग्रहण की हुई । छंडी सरन=शरण
 को छोड़दिया ।

अर्थः—रावण ने सीता का अपहरण किया जिससे लंका और उसके वश का नाश हुआ । दुर्योधन ने द्रौपदी पर बुरी दृष्टि डाल पांडवों से कपट किया । इसीलिये अज्ञौहिणी सेना का खड्ग द्वारा क्षय हुआ । श्रेष्ठ चन्द्रमां ने गुरु पत्नि से सयोग कर अपनी अप्रतिष्ठा करवाई । राजा दशरथ ने कर्तव्य का पालन करते हुए भी अपने विजयी पुत्र (राम) को स्त्री के (कैकई के) कारण प्राथमिकता नहीं दी (अर्थात् स्त्रीके कारण विद्रोह होता रहता है) । यही सोचकर यादव राजा भान ने भी रणथभोर से शरण ग्रहण की थी । उसे छोड़कर अपने श्रेष्ठ वीरों को युद्ध की आज्ञा दी और कहा- वीर श्रेष्ठ शिशुपाल का वशज अकड़ कर आया है उसे अत्र हम देखना चाहते हैं ।

जीवन बलह विनोद, अलह नव्वी घन मंगहि ।

जीवन बलह विनोद, आस आसन असु रग्गहि ॥

जा जीवन सुंदर सुगध, वर बंधव लोकै ।

जा जीवन काजे कपूर, पूरन प्रभू कौकै ॥

जा जियन देव दानव मिलन, किल मन कलि आवन गवन ।

तिन भवन छद छंडित गुहर^२. तजित तुंग तन सौं भवन ॥ ९ ॥

आ० पा० १ पा० । २ सं० ।

शब्दार्थः—वन्द्य=वन्दना । वत्स वती समन्तातो वी देती । वाग्य=वाशा गो । वाग्यन ग्यान रक्ष । वसु=प्राण । रत्नद्वि=मलन ह, देने है । लोके गोच, गगार । एतन=पर्याता शिगे, गगार स्वने के लिये । प्रमोस=रत्न मे पक्ष की जाती है । मितन=मितते है, गप र साभते है, गेता रगते है । वितन=निश्चय । मन=मानने है, गीकार रगते है । नितन गान विगता । य=रग, तगिना । गुरह=रहने ह रगित । तु ग=उत्तग ।

अर्थः—जीवन-चल और आनन्द के लिये अल्ला और नवी से विशेष याचना की जाती हैं और उम्मी आशा से प्राण भी त्यागना पडता है । उम सुन्दर जीवन वाग्यना के लिये ही भाई और ससार आदि श्रेष्ठ दीव पडते है । उस कर्पूर-रूपी जीवन की परिपूर्णता और अखडता के लिये ही ईश्वर से पुकार की जाती है । उसी जीवन के लिये देवता और दानवों से सर्पर्ष करना पडता (सेवा की जाती) है । उसी के लिये कलियुग मे भी आवागमन के बन्धन को निश्चित मान स्वीकार करता है, किन्तु त्रिभुवन-कथित यह तरिका है कि उक्त ग शरीर-रूपी भुवन को वह जीवन एक दिन अवश्य तज देता है ।

दोहा

रा जहव वर मानने, बहु मग्यौ वर हट्ट ।

वाजी वार पयानरे, तु गी तेरह थट्ट ॥ १० ॥

शब्दार्थः—बहु=लौटा दिया । मग्यौ=मगौती । (कुमारी की मगनी) । वर=दुलहा, शिशुपाल वशी । वाजी=अश्वारोही । वार पयानरे=प्रयाण, समय । तु गी=तु ग, टोली, विभाग । थट्ट=किया ।

अर्थः—यादव राजा भान ने शिशुपाल वशी दुलहे की सगाई के प्रस्ताव को लौट दिया (निपेव कर दिया) और उसने प्रयाण के समय अपनी अश्वारोही सेना को तेरह विभागों मे विभाजित किया ।

इह सुनि वीर वसीठ उठि, भानह हल्यौन हल्ल ।

तीस कोस सम्मौ मिल्यौ, वर पचाइन ढल्ल ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—हत्यौन हल्ल=डिगा नहीं, टस से मस नहीं हुआ । सम्मौ=सामने जाकर ।

अर्थः—इस प्रकार भानराय को अपनी बात से टस-से-मस नहीं होता हुआ देव कर वीर वसीठ (जो पचायन के लिये ढाल स्वरूप था) उठा और तीस कोस सामने जाकर पचायन से मिला ।

अग्निवान अज वक्क, धाइ; भाई परवानिय ।
 ता पच्छे साहाव, खान वंधै तुरकानिय ॥
 ता पच्छे नूरी हुजाव, सेनी^१ संचारिय ।
 केलीखान कुलाह, सव्व सेनी कुटवारिय ॥
 वानिक्क वीर दुल्लह सुजर, भाइ खान रन अंभ वर ।
 ससिपाल वीर वंसी विलस, वर आयौ रनथंभ पर ॥ १२ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—अग्निवान=अग्रगण्य । धाइ भाई=घातु सुत । परवानिय=प्रमाण, समान । वंधै=सजाये ।
 कुटवारिय=कुतुबुदीन की, या नगर रक्षक । सुजर=अच्छे सजे हुए । अंभ=अन्न, वादल ।

अर्थः—पंचायन के दूतों द्वारा सूचना मिलने पर शाह ने भी उसकी सहायता के लिये अपनी सेना भेजी । जिसमें प्रमुख वीर घातुसुत के समान अग्रगण्य उजवक, खान कहलाने वाले तुरुष्क, नूरीखां, हुजावखां, केलिखान और कुलाहखान तथा वादः में कुतुबुदीन की सारी सेना (या नगर रक्षक सेना) व अन्य सारी फौज क्रमशः सजाई गई । इस प्रकार वे तुरुष्क वीर दूल्हे के वेश में सजे । जिनमें से कितने ही शहाबुदीन के सगोत्री योद्धा युद्ध में वादल-स्वरूप थे । सहायतार्थ आये हुए मुस्लिम वीरों को साथ में लेकर शिशुपाल वंशी वह वीर उत्साह युक्त रणथंभोर की और चला ।

पचाइन बल पक्खरै, थह रन थंभह काज ।

कक वंक वर कट्ट नह, चडि चल्ल्यौ रनकाज ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—बल पक्खरै=अश्वारोही ताकत । थह=स्थल, स्थान । कक वक=नाके ककाल. उत्तम-शरीर । कट्टनह=काटने के लिये ।

अर्थः—रणथंभोर के भूभाग के लिये वीर पंचायन ने अपनी अश्वारोही ताकत फैलाई । इधर उन वीर कंकालों (शरीर) को काटने के लिये यादव राज ने भी चढ़ाई की ।

घन घैरयौ रिनथंभ परि^१, लिखि दिल्ली परवान ।

तव जहव रा भानने, दिय कग्गद चहुआन ॥ १४ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—घनधेरयो=गान्तो नच येरे गुण । परि-पर ।

अर्थः—यादव राजा भान ने एक परवाना दिल्ली में उपस्थित मामन्तो को दिया कि रणथभौर को वादलो की भाति मन्त्रियों ने घेर लिया है । पश्चान एक पत्र पञ्चराज को भी (खट्टपुर की ओर) इसी विषय मे लिखा ।

रा जहव वीराधि, वीर गुज्जह अनुसरयो ।

॥ हयदल पयदल गज-प्ररोहि रिन यमह ॥ अरयो ॥

धधे रा धधेल, चढ मसिपालह वसिय ।

। अध लख देलहि हिलोर, जोर गरुवत गसिय ॥

हम्मीर राव हाडा हठी, खीचीराव प्रसग दुह ।

। अरभ करै सभरि । धनी, जोरै वध खुमान सह ॥ १५ ॥

। अ० पा० १, पा० १२ ॥

शब्दार्थः—वीराधि=वीरों में श्रेष्ठ वीर । गुज्जह=गर्जना करता हुआ । अनुसरयो=पीछा किया । गज-अरोहि=हाथी पर चढ कर । अरयो=डटा । धधे=कार्य । रा=राजा । धधेल=धांधली करने वाला । जोर=शक्ति । गरुवत=मारी । गसिय=गाठ ली, सगठित करली । दुह=दोनों । जोरै=जोडे, एकत्रित करियेगा । वध=बधु । खुमान=खुमाण वशज, आहडे ।

अर्थः—पत्र मे लिखा था कि श्रेष्ठ वीर यादव नरेश भान ने वीर गर्जना कर दुश्मनों का पछा किया है और वह पैदल तथा अशवारोही सेना साथ लिये हाथी पर सवार हो रणथभौर पर डट गया है । उधर शिशुपाल वरौ राजा ने धांधली मचा कर अपनी अर्ध लक्ष सैन्य-सक्ति को सगठित कर जोर पकड़ा है । अत हे सभरेश्वर । हम्मीरराव हठी हाडा, प्रसगराय खीची और सब खुमान वशज आहडों को एकत्रित करने का कार्य आप ही आरभ कर दीजिये (अर्थात् सामंतों सहित आकर हमारी सहायता करिये) ।

दोहा

सुनि कभद चर चितकै, तिथि साते चहुआन ।

समर सिंघ रावर दिसा, गुर जन मुक्यौ कान्ह ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—चर=दूत । चितकै=चितन करके । मुक्यौ=छोडा, खाना किया ।

अर्थ:—चाहुआन पृथ्वीराज दत्त द्वारा उस पत्र को सुनकर चिंतन करने लगा तथा सप्तमी के दिन से अपने गुरुजन कन्ह को रावल समर केशरी की ओर रवाना किया।

वर पचाइन सवर सवर वंसी, सिसुपाल
घरथौ तिन रन थभ, सुवर जपे वर कालं ॥
भान वीर पुक्कार, धाड आई दिल्लीवे ।
अद्ध अद्ध पहुपगे, सथ्य अद्धो वर ह्वे ॥
जोगिन्द्राव ॥ जग ह्वथ्य वर, महन रंभे उपर करन ॥
कालंक राइ कपन विरद, तुम आओ सेना वरन ॥ १७ ॥

शब्दार्थ:—सवर=सवल । दिल्लीवे=दिल्लीश्वर के पास । अद्ध अद्ध=ठीक आधी । ह्वे=अश्वारोही । उपर करन=सहायता करने को । कालंक=कलंक ।

अर्थ:—कन्ह ने समर केशरी से जाकर कहा कि वीर शिशुपाल के वंश में उत्पन्न सवल वीर पंचायन ने रणथंभोर घेर लिया है और वहां वीर काल स्वरूप कहा जाता है । इसीलिये यादव राजा भान की पुकार सहायतार्थ दिल्लीपति के पास पहुँची है । पंगुराज की सैन्य-शक्ति से उसकी अश्वारोही सेना की शक्ति ठीक आधी है । अतः जोगिन्द्रराज उपाधिधारी रावल आप सेंसार के श्रेष्ठ वाहु स्वरूप हैं । आपका विरुद्ध कलंक निवारक (कलकन्ताशक) है । आप इस महान युद्ध में सहायता करने और शत्रु सेना को वश में (काबू में) करने के लिये अवश्य पधारें।

दोहा

चित्रांगी चतुरंग सजि, वर रनथभ सु काज ।

महेट रावर समर, आवन वदि प्रथिराज ॥ १८ ॥

शब्दार्थ:—महेट=महेत । वदि=कहा ।

अर्थ:—हे चित्तौड़ेश्वर रावल समर ! रणथंभोर के लिये आप अपनी चतुरंगिणी सेना सजाइये । पृथ्वीराज ने भी स्वयं चढकर आने का संकेत किया है ।

चलत कन्ह चहुआन वर, कहि चतुरगी राज ।
तुम अगौ हम आड है, पावन मुनि पृथिराज ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—सधि=स्मृति ।

अर्थः—कन्ह चहुआन के प्रत्यावर्तन के समय चित्तौड पति ने कहा—हम तुम से पहले आयेगे, किन्तु पृथ्वीराज को भी आने की स्मृति दिला देना ।

पच कोस वर सट्टि अग, चीत्तौरह रनथभ ।
तुम अगौ हम आड है, महनरभ आरभ ॥ २० ॥

शब्दार्थः—अगौ=आगे, पहले ।

अर्थः—चित्तौड से रणथंभोर सीधे रास्ते से ६५ कोस पर ही है । अतः हम इस महान् युद्धारंभ के अवसर पर तुम्हारे से पहले ही आ जायेगे ।

कवित्त

महन रभ आरभ, कन्ह चालत मत^१ मडिय ।
अट्ट दीह हम अगग, राज तेरसि गृह-छडिय ॥
वर वसी सिसुपाल^२, गज्जी^३ लग्गिय नृप भान ।
धरती ववर नहताम^४, सेतमिसि देही दान ॥
अगृहन गृहन रिन थभ मति, इह सु मित्र अगौ^५ पढन ।
कालक राइ कपन चिरद, महन रभ बढ्यौ बढन ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० । २ सं० । ३ पा० । ४ भी० का० । ५ भी० ।

शब्दार्थः—मत=मत्रणा । मडिय=दी । धवर=धवल । ताम=उसकी । सेतमिसि=सहज मे । दान=कन्यादान । अगृहन=नहीं घेरा जाने लायक । अगौ=आ गया, आया । पढन=कहने की । बढन=बढना ।

अर्थः—चलते समय रणथंभोर पर छिडे हुए महान युद्ध के लिये मत्रणा देता हुआ कन्ह रावलजी से कहने लगा— हे नरेश, मैं यहाँ के लिये रवाना हुआ, उससे आठ दिन पहले राजा पृथ्वीराज त्रयोदशी के दिन दिल्ली छोड़ शिकार के लिये खट्टपुर चले गये थे, पीछे से श्रेष्ठ शिशुपाल वशी ने राजा भान को दवाना शुरू किया । यह यादव बलवान धवल (वृषभ) कहलाने योग्य है, किन्तु इस समय उसकी पृथ्वी

उससे छुटी हुई है। संभव है, आपत्ति ग्रस्त होने से वह विपत्ती को सहज ही में कन्या दान कर दे। विपत्ती ने नहीं घेरे जाने योग्य दुर्ग रणथभोर को ले लेने का विचार कर लिया है। हे मित्र ! मैं आपसे यही कहने आया हूँ कि आप के विरुद्ध कलंक निवारक हैं और वहां महान युद्ध छिड़ गया है, इसलिये आपका आना आवश्यक है (अर्थात् निष्कलक यादव को कलंक लगाकर, बलात् पुत्रीदान करने के कलंक से बचायें)।

सुनि कन्हा चहुआन, रीति आहुद्ध ग्रेह कुल ।

सरन रक्खि कहुइ न, मिले जो कोरि देव^१ बल ॥

संग्रामं हरखै न, सुवर खत्री वर धायौ ।

रन रक्खै रजपूत, छत्र छल छांह नवायौ ॥

द्विग रत्त बहुल^२ वंछै^३ सुवर, वेद धम्म वंध्यौ चवै^४ ।

कालंक राइ कप्पन विरद, किन्ति काज नव निधि^५ द्रवै ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १, ३ पा० का० । २ भी० पा० का० । ४, ५ पा० ।

शब्दार्थः—कहुइ न=नहीं निकालते, नहीं त्यागते। कोरि=करोड़ों। संग्राम=युद्ध से। हरखै न=हतोत्साह। सुवर=सबल। खत्री=क्षत्रिय। वर=द्वल। धायौ=माग गया। छल छाह=छलकती हुई गहरी धाया। नवायौ=नमाकर, डाल कर। बहुल=विशेष। वंछै=चाहते हैं। वंध्यौ=बन्धन। चवै=चाहते हैं, मानते हैं। द्रवै=बहा देते हैं।

अर्थः—तव राजल ने कहा—हे कन्ह चहुआन ! हम आहड़ों के घर और कुल की रीति है कि शरण मे आये हुए को करोड़ों देवताओं के द्वारा ताकत लगाने पर भी नहीं त्यागते। रणस्थल से जो सबल क्षत्रिय के बल से भाग कर हतोत्साह हो जाता है, ऐसे राजपुत्र को हम छत्र की गहरी छाया मे शरण देकर युद्ध से बचा लेते है। जिसके नैत्र विशेष अरुण हों, ऐसे श्रेष्ठ वीर के हम इच्छुक हैं। वेद और धर्म के बन्धन को हम मानते हैं। हमारा यश कलंक-नाशक है। अत हम कीर्ति के लिये नव निधियों को बहा देते हैं।

बोहा

तिय हजार तेरह तुरग, हत्थि मत्त वर तीन ।

मनि गन मुत्तिय माल दस, रक्खै कन्ह सुव्वीन ॥ २३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

चक्कर खाते हुए कुम्भरूपी नगर को हाथों के बलपर उन्होंने पकड़ लिया हो। उम्मी समय चाहुवान और चित्तौड़ पति की सेना ने चारों दिशाओं से शत्रुओं को घेर लिया। यह देख चदेरी पति (चदेले) ने उस दुर्ग को छोड़ कर दिल्लीश्वर का सामना किया।

दोहा

उत चपे चहुआन ने, इत चपे चित्रग।

मूदि साम अरि सम दरी, जनु चप्यौ सु मृदग ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—मूदि=गोठ कर। साम=श्याम। सम=समान ही। दरी=दलते हुए, या दलित करके।

अर्थः—उधर से चाहुआन नरेश्वर ने और इधरसे चित्तौड़ पति ने दुश्मन का श्वास लेना मुश्किल कर इस प्रकार दबाया, जैसे मृदगी मृदग को दबाता है।

कवित्त

प्राची दिसि चहुआन, चह्यौ पच्छिम चतुरगी।

दुहू बीच रिनथभ, बीच अरि फौज सुरगी ॥

दहू सेन सम कत, नग मत्ता गज अगगी।

मनु राका रवि, उदै, अस्न होते रथ भगी ॥

ससिपाल वीर वसी विमल, दुहुन बीच मन मेर दुअ।

खह मिलै खेह खग्गह हर्यौ, चवै चन्द रवि दद दुअ ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—प्राची=पूर्व। चतुरगी=चित्तौड़ेश्वर। सम=समान। कत=स्वामी। नग=नग, पहाड़। मत्ता=मतवाला। अगगी=अग्रगण्य, अग्रगण्य। राका=चंद्रमा। रथ भगी=रथ भाग। मेर=सुमेरु। खह=शकाश। खेह=धूल। दद=दद, युद्ध।

अर्थः—प्राची दिशा से चौहान नरेश और पश्चिम दिशा से चित्तौड़ेश्वर बढ़े। इन दोनों के बीच रणथंभौर और शत्रु की सुरगी सेना थी। दोनों की सेनाओं के (चौहानी और गुहलोती सेना के) समान ही स्वामी थे। इनमें एक पहाड़ स्वरूप व दूमरा मस्त हाथी के समान था। वे अपनी अपनी सेनाओं के अग्रगण्य थे। उसमें एक चन्द्रमा और दूसरा सूर्य के समान तेजस्वी था, किन्तु उन दोनों के बीच उज्जयल मन के सुमेरु तुल्य वीर शिशुपाल वशी के होने से वे उदय (उपस्थित)

होते हुए भी उनके रथ भाग अस्त हों गये हो ऐसे (अनुपस्थित से) दिखाई दिये । किन्तु कवि कहता है कि उस नभ-चुम्बित सुमेरु को (शिशुपाल वंशी) खड्ग द्वारा धूलि में मिलाते हुए शशि-सूर्य तुल्य दोनों राजा (पृथ्वीराज और समर) युद्ध में एक दूसरे को दिखाई देने लगे (चंदेले को कुचल कर वे एक दूसरे से आ मिले) ।

अनल पंख अक्रुर्यौ, जुद्ध पंचाइन मंह्यौ ।

इक सपंख खग वीय, पेट रन थंभ सु छड्यौ ॥

पीठि पिंढ^१ पावार, सु वर हूअौ नख पंखं ।

एक मुखल वनवीर, धीर उभमौ विय मुखल ॥

त्रिन्मान वंभ वर पुंछ करि^२, पुंच्छ^३ पाइ साधन समर ।

दुह लोह कडि परिया रतें, समर मोह भूलै^४ अमर ॥ ३० ॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० का० । ३ का० भी ।

शब्दार्थः—अनल पख=एक प्रकार का पत्ती । अक्रुर्यौ=पैदा हुआ । खग वीय=खड्ग धारी । रनयम सुखड्यौ=रणयमोर को छोड़ने वाला भानुराय । पीठि=पीठ, पृष्ठ भाग । पावार=जैत्र प्रमार । पख=पत्त, स्थान । मुखल=अर्थ चोंच । त्रिन्मान=निर्वाण क्षत्रिय । वम=ब्रह्म क्षत्रिय (समव हैं कोई चालुक्य हो) । पु छ=पूछ । पुंच्छ पाइ=पहुँच पाये । परिया=उमड़ पडे । रतें=लीन होकर । अमर=देवता ।

अर्थः—पंचायन से युद्ध छिड़ा, उसमें व्यूह-रचना अनल पंख-पत्ती के रूप में की गई । एक खड्गधारी राजा (समर) पंख, रणथंभौर को छोड़ने वाला भानुराय पेट, प्रमार जैत्र पीठ और अग, श्रेष्ठ दुल्हा पृथ्वीराज नख, वनवीर और धीर अर्द्ध २ चंचु, निर्वाण और ब्रह्म क्षत्रिय पूंछ के स्थान पर हुए । इस तरह वे समर-साधन के मार्ग पर पहुँच पाये और दोनों ओर के योद्धा शस्त्र निकाल कर युद्ध में जूझ पडे । उस समय रावल समर पर देवतागण भी ऐसे मोहित हुए कि वे अपने आपको भूल गये ।

उत वसी ससिपाल, इतै रुस्तम्म दुंद वल ।

वीच^१ समर रावर नरिंद, धीर^२ वीरन गाहरमल ॥

उतै तेग उभमारि, इतै सिंगनि धरि वान ।

छडि निधक अरिचान, उररि पारी परितान ॥

रत्नगुंग अवर चिते रिपुन, हवि मुख रुख मुक्के नहीं ।

भर-सुभर-दार रक्खन सुवर, समर समर उम्भौ^३ पहीं ॥ ३१ ॥

पा० पा० १, २ पा० का० भी० । ३, भी० ।

शब्दार्थः—दु द=द्व द्व । गारमल=गाढमल, मल्ल के समान द्रव । उम्भारि=उठाई । सिंगनि=कमान । धरि=धरा, चढाया । छडि=छोडा । निधरु=निर्मयता से । उररि=उमडकर । परितान=परित्राण, बचाव, रक्क, कक्क । तु ग=उत्त ग । अवर=अवल । हवि=होमाग्नि । मुक्के=छोडे, छोडा । सुभर-दार=अच्छे योद्धा वाला । पहीं=निकट ।

अर्थः—समर विक्रम द्वारा युद्ध किये जाने पर एक तरफ से शिशुपाल वशी, दूसरी तरफ से द्वन्द्व बलधारी रुस्तमखा ने बढकर, धैर्यवान वीरों के बीच मल्ल तुल्य दृढ रहने वाले रावल समर नरेन्द्र को बीच में लेकर तलवारें उठाई । इधर से कमान पर वान चढाये गये और बढ बढकर निर्भीकता के साथ शत्रुओं पर छोडे, जिससे धडाके की आवाज के साथ शत्रुओं के कक्क टूट गये । उस समय रण में प्रमत्त उस वीर समर की ओर निर्वल शत्रुओं ने देखा, किन्तु उस वीर के मुख की आकृति ने हवि के समान अपने तेज को नहीं छोडा । वह श्रेष्ठ सामत और बलशाली समर विक्रम युद्ध में शत्रुओं के निकट ही डटा रहा ।

समर^१ रत्त वर-समर^२, डिक्रिख चहुआन कीय^३ वल ।

वाम मुखव आरोहि, नीर असि भल्ल मुखह भल ॥

सौ सामत छै मूर, सथ्य प्रिथुराज^४ सु धायौ ।

सार कोट अरि जोट, खग खल खभ हलायौ ॥

जै जैत देत^५ जै जै करहि, देव वीर आनन्द बह्यौ ।

तारुन्न तु ग तन तेज वर, असि पहार धरभर चह्यौ ॥ ३२ ॥

पा० पा० १, २ का० पा० । ३ भी० । ४ का० । ५ भी० ।

शब्दार्थः—वर=समर=वल=ममर, समर विक्रम । भल्ल=पकड़ी । भल=तेज । सार=लोहा । जोट=समान । देत=दानव । तारुन्न=तरुण या सूर्य ।

अर्थः—इस प्रकार समर विक्रम को जुद्ध में जूझता देखकर चाहुवान नरेश ने भी शक्ति दिवाई और चाये मुहाने की ओर बढा । तेजस्वी सु ह वाले (पृथ्वीराज) ने पानीदार

तलवार पकड़ी । अपने एक सौ छः सामन्तों सहित बढ़कर लोहे की दीवार के समान वन स्तम्भ स्वरूप शत्रुओं को तलवार से हिला दिया । यह देख दानव जय जय कार करने लगे और देवताओं व वीरों (योद्धा या वाचन ही वीर) में आनन्द-वृद्धि हुई । उस (पृथ्वीराज) के ऊचे शरीर से रण पहाड़, (रणथमोर) उसके भूभाग, तथा उसके सामन्तों में तेज और बल एक ही साथ छागया ।

दोहा

रा जहव रिनथंभ तजि, मिलिय राव प्रति मान ।

समर सिंह रावर सु प्रति, चरन चंपि चहुआन ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—मान=सम्मान पूर्वक ।

अर्थः— (इस प्रकार समरसिंह और पृथ्वीराज के हमले से जब शिशुपाल वंशी का व्यूह टूट गया तब) रण थमौर को छोड़ कर डटा हुआ यादव राजाभान, राजा पृथ्वीराज से सम्मान पूर्वक आकर मिला और चाहुआन नरेश पृथ्वीराज ने भी समर केसरी के चरण छूकर भेंट की (पृथ्वीराज का समर विक्रम के चरण छूने में शका होती है लेकिन एक तो वह उनके जामाता थे और दूसरे वह उम्र में भी बड़े थे । तीसरा कारण वे परम योगी और उच्च राजवंश के थे । इसलिये कोई शका नहीं रहती) ।

दिन धवलो धवली दिसा, धवल कध भारथ्य ।

समर सिंघ रावर मिल्यौ, चाहुआन समरथ्य ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—धवलो=उज्वल । धवल=बलवान वृषभ ।

अर्थः—कवि कहता है—यह समय अति उत्तम था, जब उज्वल दिवस और उज्वल दिशाये थीं, उस समय जिन वृषभ समान वीरों के कन्धों पर युद्ध-भार था । ऐसे उन समर केसरी और बलवान चाहुआन नरेश का उत्तम ढग से मिलना हुआ ।

सद्धि फौज प्रथिराज बल, राज हव दिसि वाम ।

समर सिंध बच्छिन दिसा, चढि संग्राम सु काम ॥ ३५ ॥

शब्दार्थः—काम=लिये ।

अर्थः— (मिलने के पश्चात् व्यूह रचना की गई) सेना के मध्य भाग में अपने दल बल सहित राजा पृथ्वीराज, वाम पार्श्व में यादव राजा भान और दाहिने पार्श्व में रावल समर केसरी हुए और युद्ध के लिये बढ़े ।

कवित्त

दस क्रम्मन अरि ठेल, मुरिय पचाइन सेन ।

वीर छक्क उत्तरी, मुत्ति भिरि रन रत नैन ॥

सुरस पियौ प्रथिराज, प्रगटि अंखिन जल मलकिय ।

पी अधरा रस पीन, प्रात सौकी मुख जकिय ॥

चहुआन सुवर सोरह परिग, समर सिंघ तेरह त्रिघट ।

ससिपाल वीर बंसी सुवर, सहस पंच लुथ्यय सुभट ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—दस=दसों दिशाएँ । क्रम्मन=चल पडी, विचलित हुई । ठेल=धकेल दिए । मुरिय=मुड़ गई, मोड़ दी । वीर=वीर रस । छक्क=झलकता हुआ । उत्तरी=उतर पडा । मुत्ति=मुक्ता रूप में । पी=पति । पीन=पिया । सौकी=सवति । जकिय=चकित होकर देखा । तेरह त्रिघट=तीन कम तेरह (दस) । लुथ्यय=लोथें, शव ।

अर्थः—दिशाओं को विचलित कर पृथ्वीराज ने शत्रु को धकेल दिया । जिससे पचायन की सेना भाग गई । भिड़ते समय विपत्ती पचायन के रक्त वर्ण नैत्रों द्वारा झलकता हुआ वीर हस उस समय अश्रु विन्दु की तरह मुक्ता रूप में टपक पडा । उसी से पृथ्वीराज सन्तुष्ट हुआ । उस समय एक सेना दूसरी सेना की ओर इस तरह आश्चर्य युक्त होकर देखने लगी जैसे पति ने एक स्त्री का रात्रिको अधर रस-पान किया हो, उसे जान कर प्रात दूसरी सवति (स्त्री) उसके मुख को चकित दृष्टि से देखती है । उस युद्ध में चाहुआन के १६, समर केसरी के १० और वीर शिशुपाल वशी के ५ सहस्र उत्तम योद्धा धराशायी हुए ।

दोहा

निग्रह नर बद्धत त्रपति, अहि गवन्न सुख वान ।

पच अनी करि खेत चडि, खेत अरक चहुआन ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—निग्रह=पकड़ना । नर=शत्रु । बद्धत=सींच कर, इच्छा कर के । अहि-गवन्न=सर्प रूप में बढना । सुखवान=सुख प्रद, श्रेष्ठा । पचअनी=सेना का पाच भागों में विभाजित । खेत चडि=रण क्षेत्र में बढा । अरक=अर्क, सूर्य ।

अर्थः—रण क्षेत्र के सूर्य स्वरूप राजा पृथ्वीराज ने शत्रु को पकड़ने के लिये सर्प व्यूह को ठीक मान कर अपनी सेना को उसी रूप में बढाने का विचार कर उसे पाच भागों में विभक्त किया और रणक्षेत्र में आगे बढा ।

कवित्त

जिहि^१ गुन प्रगटत पिंड, सोई^२ सिंघार सूर भय^३ ।
 भ्रत्त कुसल^३ तन जान लभ्भ किच्चीति सुभट लय^४ ॥
 जिहि मरन्न मन सूर, मरन जेही जसु^५ उत्तरि ।
 पच पंच पथ गोअ, फिर न एकठ्ठे नर नरि ॥
 घरियार रूप कुट्टार घट, तंत मुक्कि लग्गी नदिय ।
 सिंचिय किच्ची तर अमिय मे, धूँअ^७ वाव^८ नन^९ लगन दिय ॥३८॥
 प्रा० पा० १ से ५, ७ से ९ भों० । ६ का० ।

शब्दार्थ—गुन=फल, कार्य । पिंड=तन । सिंघार=सहार । भय=हुए, हुआ । भ्रत्त=मृत्यु । लभ्भ=प्राप्त । लय=की । मरन्न मन=निर्जीव चित्त । जसु=यश । उत्तरि=उतर गया, नष्ट हो गया । पच=पांचों (तत्व) । गोअ=गया, लुप्त । एकठ्ठे=एकत्रित । घरियार=घडियाल, । कुट्टार घट=शरीर का शत्रु, यमराज । तत=तंतु । मुक्कि लग्गी=फैलाए हुए, छोड़े हुए । नदिय=संसार रूपी नदी । तर=तर, वृत्त । धूँअ=धूप । वाव=पवन ।

अर्थ:—जिसके लिए (युद्ध के साधन के लिए) उन वीरों का शरीर उत्पन्न हुआ था, उसी कार्य मे उन वहादुरों का शरीर काम आया । ऐसी मृत्यु को उन्होंने कुशल समझी, क्योंकि ऐसा करके ही उन वीरों ने कीर्ति प्राप्त की थी । उनकी मृत्यु, मृत्यु नहीं थी अपितु अमर कीर्ति थी । मरे हुए तो उन्हें मानना चाहिए जिनका मन युद्ध समय मे निर्जीव हो गया हो या जिनका यश नष्ट हो गया हो । पांचों तत्व एक दिन पांचों मार्ग मे से निकल कर लुप्त होने के लिये हैं और यह साथी समूह फिर एकत्रित होने का नहीं है । संसार रूपी नदी में यमराज रूपी मगर (घडियाल) ने (प्राणियों को फँसाने के लिए) अपना जाल फैला रखा है । अतः मनुष्य को चाहिए कि कीर्ति रूपी वृत्त को अमृत रस से सींचते रहें और उसे धूप और पवन से वचाए रखे ।

दोहा

वाल कुँवर घरियारि घरि, विय तरवर वरछीह ।

जिम जिम लग्गे तिम अरिय, ढाहन ढाहैं ढीह ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ:—वाल कुँवर=कुमारी वाला, हसावती । घरियारि घरि=यम रूपी मगर की घड़ी, अंतिम घटिका । विय=देनों के लिए । ढाहन=सत्तम कर्ने को । ढाहैं=ग्रस्त हो गया । ढीह=दिन ।

अर्थः—वह वालिका (हंसावती) वीरो के लिये अन्तिम घडी के समान थी, किन्तु पृथ्वीराज के लिये वृत्त के समान (हरी भरी) और विपत्ती (पचायन) के लिये वरछी की भांति चुभने वाली थी। किसी प्रकार दोनों विपत्ती एक दूसरे को समाप्त करने में लगे थे। इतने में वह दिन भी समाप्त हो गया।

निसी वीर^१ कद्विय समर-काल फद अरि कट्ट^२ ।

होत प्रात चित्र ग पहु, चकाव्यूह रचि ठट्ट^३ ॥ ४० ॥

प्रा० पा० १ सं० । २, ३ का० पा० ।

शब्दार्थः—वीर=विपत्ती पचायन। समर-काल=समर केसरी रूपी काल। चित्रग पहु=चित्तौटे-श्वर। चकाव्यूह=चक्रव्यूह। ठट्ट=अड़ गये, डट गये।

अर्थः—वह रात्रि पचायन और उसके साथियों ने समर केसरी रूपी काल के फन्दे से बच कर वितादी, परन्तु प्रात काल होते ही वह चित्तौडेश्वर पुन चक्रव्यूह रच कर आ डटा।

कवित्त

समर सिंघ रावर नरिंद, सैन^१ कुण्डल अरि घेरिय ।

एक २ असवार, बीच बिच पाइक फेरिय ॥

मद सरक्क तिन अगग, बीच सिल्लार सु भीरह ।

गोरधार विहार, सोर छुट्टे कर तीरह ॥

रन उदै उदै वर अरुन हुअ, दूह लोह कड्डी विभर ।

जल उकति लोह हिल्लोर ही, कमल हस नचै जु^२ सर ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० पा० । २ का० ।

शब्दार्थः—पाइक=पैदल। मद सरक्क=मद में छके हुए (हाथी)। सिल्लार=सिपहसालार, सेना। गोरधार=कुण्डलाकृति व्यूह रचना या गोलदाज। सोर=(तीरों की सनसनाती) श्रावाज। रन उदै=युद्ध क्षेत्र का सूर्य (रावल समर केसरी)। अरुन=सूर्य। लोह=लोहित, खड्ग और अरुणिभां। कट्टी=फैलाई, प्रकट की, जल=जलातर (नरधारी सेना और समुद्र)। उकति=युक्ति। हिल्लोर ही=लहराने लगे। हम=प्राणियों के, सूर्य। सर=मुण्ड, सरोवर।

अर्थः—रावल पद धारियों के राजा समर केसरी ने अपनी सेना को कुण्डलाकार व्यूह बद्ध कर शत्रु को घेरा। जिसमें एक २ सवार और एक २ पैदल का बीच २ में

रखा । मदोन्मत्त हाथी उनके आगे थे और बीच में सैनिक समूह था । इस प्रकार सेना के पंक्ति बद्ध होने पर गोलदाज या आग्नेयास्त्रधारी (गोलंदाज) आगे बढ़े । तीरंदाजों ने सनसनाते हुए तीर चलाये । उस समय युद्ध-क्षेत्र का सूर्य, समर विक्रम और साक्षात् सूर्य दोनों एक साथ ही उदय हुए । उन दोनों ने क्रमश तलवार और लालिमा प्रगट की और ऊपर उठे । समर की लोहित (खड्ग) जल पूर्ण सिन्धु (नूरधारी सेना) में और सूर्य की अरुणिमां सरोवर मे लहराने लगी, जिससे प्राणियों के मुख-कमल वहाँ (युद्ध सिन्धु और समुद्र मे) नृत्य कर तैरने लगे ।

दोहा

समरसिंघ दिखवत सुवर, उपारे रन भान ।

दइ समान दुज्जन दवन, तिरछौ परि चहुआन ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—दिखवत=देखा गया । सुवर=श्रेष्ठ । उपारे=उठाए गए । दइ=दी । दुज्जन दवन=शत्रुओं का दमन करने में । परि=होकर ।

अर्थः—इस युद्ध में समर केसरी की श्रेष्ठता और रण चातुर्य का प्रदर्शन हुआ और घायल अवस्था मे यादव राजा भान उठाया गया । चाहुआन नरेश ने भी तिरछे हो कर शत्रु का समान रूप से दमन किया ।

कवित्त

वर वसी ससिपाल, समर रावर रन जुद्धे ।

अमर वध चित्रग, वीर पंचाइन वद्धे ॥

सवै सत्य सामन्त, खेत दोहयौ विरुम्हाइय ।

गुरिन गयौ अरि ग्रह न, लद्ध नन लुधिय न पाइय ॥

प्रथिराज वीर जोर्गिद न्रप, दिष्ट देव अंकुरि रहिय ।

बंधनह-वत्त वद्धन दिवन, दिष्ट कूट हसि हसि कहिय ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—वध=वन्द्य, माई । वद्धे=वध किया, नाश किया । दोहयौ=खोजा । विरुम्हाइय=उलभ कर । गुरिन=लुटक कर । अरि ग्रह न=शत्रु द्वारा पकड़ा नहीं गया । लद्ध=मिला, प्राप्त । लुधिय=लोभ, शत्रु । अंकुरि रहिय=देखतो ही (उठी हुई ही) रह गई । बंधनह-वत्त=पकड़ लेने वाले वद्धन दिवन=मार देने वाले । दिष्टकूट=कूट काव्य ।

अर्थः—जिस समय शिशुपाल वशज और समर रावल का युद्ध में सामना हुआ उस समय चित्तौड़ेश्वर समर के भ्राता अमर ने विपत्ती घीर पंचायन को रणक्षेत्र में नष्ट कर दिया। सब स्त्रियों और सामंतों ने उलझ कर रण क्षेत्र में उम मृत शत्रु (पंचायन) को खोजा, किन्तु वह न तो गिरा हुआ दिखाई दिया और न वह शत्रु द्वारा पकड़ा ही गया एवं उसका शव भी प्राप्त नहीं हुआ। उसको देखने के लिये वीर पृथ्वीराज, योगेन्द्र उपाधिकारी समर और देवताओं की दृष्टि टकटकी लगाये रही। उसको (पंचायन को) मारने की इच्छा रखने वाले और मार देने वाले उसके लुप्त होजाने पर (सशरीर स्वर्ग में जाने पर) हँस कर यही कहने लगे कि इस वीर की मृत्यु तो दृष्टि कूट काव्य की तरह हो गई है (दृष्टि कूट काव्य का ज्ञान दुसह है)। इसीलिये लुप्त हो जाने पर पंचायन की मृत्यु को दृष्टि कूट कहा गया।

लुट्टि लच्छि चित्रग, राज रिन थभ उवारे।

खेत दु डि चहुआन, कन्ह चहुआन उपारे ॥

उभै घाइ वर अस्सु, घाइ आहुट्ट अठोभिय।

पच घाइ हुसैन, खान चौडोल घालि लिय ॥

प्रथिराज वीर वीरग बलि, निसि सपनतर अद्ध पहि।

या गति जागि दिख्लै^१ त्रपति, तवह कन्ह जल पान^२ लहि ॥ ४४ ॥

ग्रा० पा० १ पा० । २ भी० ।

शब्दार्थः—लच्छि=लक्ष्मी। राज=पृथ्वीराज के। अस्सु=अश्व, घोड़े। आहुट्ट=आहूडे, रावल समर केसरी। अठोभिय=आठ हुए, आठ लगे। घालि लिय=उठा लिया। वीर वीरग=वीरों का शिरोमणि। अद्ध पहि=अर्ध रात्रि होने पर। या गति=इस विषय को। तवह=तब तक। लहि=लिया, किया।

अर्थः—युद्ध के बाद चित्तौड़पति ने शत्रु की लक्ष्मी का अपहरण किया और पृथ्वीराज के दुर्ग रणथम्भौर को बचाया। रण क्षेत्र में खोज कर पृथ्वीराज ने काका कन्ह को उठाया। आहूडे नरेश रावल समर के आठ और उसके घोड़े के दो घाव लगे। हुसैन के (मीर हुसैन या गाजी हुसैन के) पाच घाव लगे और वह डोले में उठाया गया। अर्ध रात्रि में विश्राम के समय पृथ्वीराज को स्वप्न आया। जिसके विषय में प्रातःकाल जाग कर राजा पृथ्वीराज विचार करने लगा। इतने में कन्ह भी सचेत हुआ, और जल पान करने लगे।

कवित्त

हस सुगति माननी, चंद जामिनि प्रति घट्टी ।
 इक तरग सुंदरि सुचंग, सुभति^१ हँस^२-नयन प्रगट्टी ॥
 हंस कला अवतरी, कुमुद वर फुल्लिस-मथ्यै ।
 एक चित सोइ वाल, मीत संकर अस रथ्यै ॥
 तेहि वाल संगमे पुहुप^३ लिय, वरन वीर सं गति जु वह ।
 जाप्रत्त देवि बोली न कछु, नवह देव नन मानवह ॥ ४५ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० । २ पा० । ३ भी० का० पा० ।

शब्दार्थः—जामिनि प्रति=उस रात्रि को । घट्टी=घटित हुई, दीख पड़ी । इक तरग=एक ही विचार तरग । सुचंग=सुन्दर, श्रेष्ठ । सुभति=सुशोभित, मनी प्रकार । हस-नयन=पुलकित नयन । हस=सूर्य, भानुराय । कुमुद=कुमोदिनी । मथ्यै=ऊपर से, प्रगट में । चिन्त=चितन किया । मीत सकर=शकर की मैत्री, (शिव प्रिया) गौरी । अस=उस । रथ्यै=अर्थ के लिये । स=सम, समक्ष । गति=चली आई ।

अर्थः—स्वप्न मे राजा को एक बाला दिखाई दी, उसकी गति श्रेष्ठ हस के समान थी । वह मान प्रिय थी, रात्रि के समय वह चंद्रमा के समान पृथ्वीराज के सामने आई । वह सुन्दर विचार वाली एक सुन्दरी थी । देखने के समय उसके नैत्र पुलकित थे । वह हस की (भानुराय या सूर्य की) कला लेकर उत्पन्न हुई और कुमोदिनी के समान ऊपर से (प्रत्यक्ष में) प्रफुल्ल थी । उस बाला ने विचार कर शिव प्रिया (गौरी) से एक ही बात (पृथ्वीराज की प्राप्ति) की याचना की थी । वह अन्य बालाओं सहित पुष्प लिये हुए वीर (पृथ्वीराज) को वरण करने के लिए समक्ष आई ; किंतु राजा के जाग कर देखने पर वह कुछ न बोली (लुप्त हो गई) । वह न तो देवागना थी और न मानवी ही थी, (अर्थान् वह हंसावती) । वह तो एक अर्ध बाला थी ।

कहि सुपनंतर नृपति, सुवह श्रोतान बढ़ाइय ।
 तव लागि भान नरिंद वीर दुजराज पठाइय ॥
 वर दुजराज पठाय, रतन उर कीनी अपी^१ ।
 तिथ पचम रवि भोम, लगन प्रथिराज सु थपी ॥

कमल हु सरोज किन्नौ कमल^२, किति लम्भी दुज्जन बहिय ।
तप तेज भान मध्यान ज्यौ, तिन चौहान चढह कहिय ॥ ४६ ॥

प्रा० पा० १ पा० भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—बढाइय=उत्साहित किए । वर=दुलहा (पृथ्वीराज) । रतन=रत्न (हसावती) । उग कीनी=हृदय में स्थान दिया । अर्पि=अर्पित । भोम-लगन=मागलिक लगन । थप्पी=निश्चय किया । कमलहु=कमला रूप हसावती । सरोज=कमल (पृथ्वीराज रूपी कमल पुष्प) । किन्नौ कमल=मिर पर धागण किया । किति=कृति । लम्भी=प्राप्त की । दुज्जन=दुर्जन । बहिय=विचलित किये, चला दिए । भान=मानु, सूर्य ।

अर्थः—प्रातः काल होने पर राजा ने स्वान की वात श्रोताओं को कह कर उत्साहित किया । इतने में वीर यादव राजा भान ने पुरोहित को कुमारी के सम्बन्ध के लिए श्रीफल लेकर भेजा । पृथ्वीराज ने भी अपने पुरोहित को भानुराय के पास भेजा और यह मांगलिक लगन पचमी रविवार को करने का निश्चय कर भानुराय द्वारा अर्पित रत्न (हंसानती) को हृदय में स्थान दिया । कमला तुल्य हसावती ने पृथ्वीराज को जिसने कि शत्रु को पराजित कर यश प्राप्त किया था, अपने मिर का सरोज (कमल पुष्प) बनाया । यह देख कवि चद ने उस प्रतापी चाहुआन नरेश को मध्याह्न के सूर्य की उपमा दी ।

वर पचाइन समर, दंड मुक्किय वर मुक्किय ।
मत्थि सेन सागर^१ समूह, रत्त^२ कित्ती फल रुक्किय ॥
लच्छि भाग चहुआन, हथ्य हसावति लच्छिय ।
अमृत भाग चित्रग, सेन हालाहल सद्धिय ॥
वारुनी वीर अस्मिय सु भर, अरिन पाइ जस रतन लिय ।
मह महन रग हथह कपट, सिंभ सीस वर आप लिय ॥ ४७ ॥

प्रा० पा० १ का० पा० भी० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—दड=मथन दड । मुक्किय=छोड़ा । वर=वल । मुक्किय=प्रदर्शित किया । रुक्किय=रुका, हट गया । लच्छि=लक्ष्मी स्त्री । भाग=दत्त । हालाहल=जहर । अस्मिय=तलवार । भर=भड़ी । अरिन

पाइ=शत्रुओं को छका कर । जस=जैसे । मह महने=महान से महान । रंभ=रभा, अस्सरा । हथ्यह
कमट=वार करने में छत्र कुशल, हस्तकुशल । सिम=शंभू, शिव । अष्प=स्वय, आप ।

अर्थ:—रावल समर केसरी ने बल प्रदर्शित कर समुद्र के समान विशाल विपत्ती
सेना और पचायन का मथन कर (नष्ट कर) दिया और उस कीर्ति रत्न ने फल की
हृच्छा कर सेना का संहार किया, जिससे चाहुञ्चान नरेश के हाथों में लक्ष्मी रूपी
हंसावती, चित्तौडेश्वर को अलुण्ण ख्याति रूपी अमृत, सेना को युद्ध साधन रूपी
हलाहल और महान से महान हस्त कौशल योद्धाओं को रभा (आसराएँ)
प्राप्त हुई, शत्रुओं को खड्ग रूपी वारुणी पिलाकर (छकाकर) ही उन्होंने ये रत्न
प्राप्त किए और युद्ध स्थल में आकर शत्रु ने श्रेष्ठ वीरों के मुण्ड प्राप्त किये ।

दूसासन अग में, राज-विहंगम गति कीनी ।

मध्य देश मालव नरिंद, हंस^१ हंसध्वज भीनी ॥

नीलध्वज कर धरिग, विप्र वंदन संपन्नौ ।

नालि केल तरु फूल, अनंत^२ सौनह सुभ किन्नौ ॥

सत पत्र लगन लम्भह भरिय, धरिय अट्ट तेरह तिनह ।

रन थंभ सेन सचरि न्रपति, करिय अवधि ता करि रनह ॥ ४८ ॥

ग्रा० पा० १ मी० का० । २ का० पा० ।

शब्दार्थ:—दूसासन=दो शासन शक्तियाँ (चदले और शाही योद्धा) । अग में=अपनाई, युद्ध ठाना ।

राज-विहंगम=विहगराज, हसराज, मानुगय (यों तो विहगराज गरुड़ को कहते हैं पर पत्नियों में
हंस भी मुख्य है) । हस=हसिनी, हंसावती । हसध्वज=जिसकी पताका में सूर्य का चिन्ह है । मीनी=
प्रेम में सन गई । नीलध्वज=हरित पताका (प्रसन्नता की पताका या मांगलिक हरी दुर्वादि) । सौनह=
शकुन । सुभ किन्नौ=मांगलिक किये । सत=सच्चा । लम्भह=लाम के चोगडिये । ता=वह ।

अर्थ:—दो शासन शक्तियाँ चदले और शाही योद्धाओं से युद्ध ठान कर पृथ्वीराज
ने यादव हंसराय (भानुराय) को मुक्त किया (बचाया) । उस मध्य देशीय मालवेश
यादवभान की कुमारी हंस (हंसावती) भी जिसकी पताका में सूर्य का चिन्ह है
के प्रेम में सन गई । तब हरित दूर्वा की पताका (लग्न पत्रिका) हाथ में लेकर यादव
राज का पुरोहित वर की वन्दना करने के लिये आया और श्रीफल, तरु-पुष्प भेंट
कर मांगलिक शकुन निकाले । सच्ची लगन का लग्न पत्र आठ घड़ी तेरह पल जाने

पर लाभ का चोगडिया देव कर भेट किया। तब युद्ध के बाद रणथम्भौर दुर्ग में पृथ्वीराज ने ससैन्य प्रवेश कर लग्न की विधि पूरी की (अर्थात् शादी की)।

दोहा

आगम वीर वसत कौ, रन जित्ते जुधवान ।

वर हसावति सुदरी, चलि व्याहे चहुआन ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—जुधवान=युद्ध करने वाले योद्धा ।

अर्थः—वसतागम होने पर वीर योद्धाओं ने विजय प्राप्त की और बाद में हंसावती सुदरी से राजा ने पाणि ग्रहण किया ।

गाथा

रग सुरग सुदीह, ज्यों कुजनि मेलय सब्ब ।

वयरुख मुख अकुरिय, सा मिलय वकुरी मुन्छ ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—कुजनि=कुंज, लता भवन । मेलय=मेल । सब्ब=सब । वयरुख=वयरुख पताका ।

अर्थः—जैसे वसत के आगमन से ही लता भवन में अनेक प्रकार के पुष्पों का मेल हो गया, वैसे ही वह मांगलिक दिन विविध वस्त्राभूषणों से शोभित हो गया । उस समय पृथ्वीराज के मुख पर भ्रुवों से मिली हुई मूँछें पताका के समान दीख पड़ी ।

दोहा

मुच्छ रवन्निय राज सुख, वर वधिग सुरतान ।

तिय दिननि आवन लगन, आय सगध पुरान ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—रवन्निय=रमन करने वाली । तिय=तान । आवन लगन=लगन की अवधि । आय=आगई पहुँच गई । सगध=सुगध । पुरान=पूर्व ख्याति ।

अर्थः—राजा के मुख पर रमण करने वाली मूँछों से ज्ञात होता था कि इस श्रेष्ठ वीर ने सुलतान को बंधा है यह पूर्व-ख्याति लग्न के तीन दिनों में ही हंसावती के पास जा पहुँची ।

अवन रवन अरु सिख भवन, पवन त्रिविध तन लग्ग ।

वापी कृप तडाग वृख, विधि व्रनन कवि लग्ग ॥ ५२ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—खन=रमणी । वृख=वृक्ष ।

अर्थः—उस रमणी के शिखागृह तुल्य कानों द्वारा पृथ्वीराज की प्रशंसा (श्रोतानुराग) के त्रिविध (शीतल, मंद और सुगन्धित) पवन ने उसके शरीर को स्पर्श किया । कवि ने इसका वर्णन क्रमशः इस प्रकार किया है—उसकी शीतलता वापी-कूप के जल के समान, मद्गता तालाव की मंद मंद चलने वाली लहरों के समान और सुगन्धि वृक्षों की सुरभि के समान थी ।

सा सुन्दरि हंसावती, सुनि श्रोतान सुरुक्ख ।

वर दिघानन मानियै, वेत्ता लग्गि गवक्ख ॥ ५३ ॥

शब्दार्थः—सा=वह । श्रोतान=श्रोतानुराग । रुक्ख=इच्छा । वर=दूल्हा । दिघानन=दृष्ट्यानुराग, देखते समय । वेत्ता=लतिका ।

अर्थः—पृथ्वीराज का यशगान सुन कर सुन्दरी हंसावती में श्रोतानुराग उत्पन्न हो गया था । इसके पश्चात् उसके (पृथ्वीराज के) वर रूप में आने पर प्रत्यक्ष-दर्शन (दृष्ट्यानुराग) के लिए वह झरोखे के पास आकर (स्वर्णिम) लतिका के समान उससे (झरोखे से) लग गई ।

सुनि आयौ चहुआन, अप गुरुजन वंध्यौ जानि ।

तव मति सुन्दरि चित्तवै, भेदक गोख वखानि^१ ॥ ५४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अप=आपको, अपने को । वंध्यौ=अधीन । मति=बुद्धि से । चित्तवै=ध्यान पूर्वक देखा । भेदक=भेद से, वहाने से । गोख=गवाक्ष झरोखा । वखानि=प्रशंसा करती हुई ।

अर्थः—चाहुआन नरेश का आगमन सुन कर, अपने को गुरुजनों के अधीन समझ कर, उस सुन्दरि ने बुद्धि द्वारा गवाक्ष रचना की प्रशंसा के वहाने से पृथ्वीराज को झरोखे से देखा ।

कवित्त

पथ वाल पिय मखि^१, सुभ्रित विंटिय^२ सु राजै ।

मनौ चद उडगन विचाल, चन्द^३ मेरह चढ़ि भाजै ॥

सुनिय श्रवन दै सैन, अलिन अलि मैन सरोजं ।

रति मच्छर मति काम, जानि अच्छरि^४ सुर साजं ॥

धावत वेस अकुरित वपु, वसि मैसव तिन वेस धुरि ।
 श्रोतान सुक्ख दिष्टान धनि, यह कहि चलि सैमव व्हुरि ॥ ५५ ॥
 प्रा० पा० १, २ का० । ३ भी० पा० का० । ४ का० ।

शब्दार्थः—भक्ति=देखा । मुभित=गेठ दाभियां । निटोय=घिरी हुई । राजे=गुशोभित । पिवाल=बीच में । 'चन्द'=रुचिचन्द । मेरह=समेरु । भाजे=भाजे, सुशोभित । दे मैन=मकेत करके । अलिन=सखियों द्वारा । रति=प्रेम । मच्छर=मस्ती । अत्रिअरि=अपरा तुल्य (हसावती) । सो=समान । ज=जिसे । धावत=जाती हुई । वैस=श्रेष्ठता । वेस=अवस्था । धुरि=निश्चय । धनि=धन्य । व्हुरि=गुड़कर ।

अर्थः—कवि कहता है— प्रीतम की राह को भरोखे से देखती हुई वह वाला दासियो से घिरी हुई ऐसी शोभित थी, मानों चन्द्रमा नक्षत्र माला के बीच सुमेरु पर्वत पर चढा हुआ सुशोभित हो । राजकुमारी ने सखियों के साकेतिक वचनों से दुलहे के बारे में (पृथ्वीराज के), सुना था कि वह भ्रमर, कामदेव और कमल के समान है, तथा प्रेम की मस्ती से भरा हुआ है एव काम में जिसकी मति है, किन्तु आसरा-तुल्य कुमारी ने उसे देखकर देवतुल्य माना । उस वाला के शरीर में बसी हुई शैशवा-वस्था यौवन के अकुरित होने से विदा होने लगी, तब वह मुडकर यह कहती हुई चलती बनी कि इस वाला के श्रोतानुराग के सुख और दृष्ट्यानुराग का धन्य है ।

दोहा

प्रथम वत्त श्रोतान सुनि, सुख पै दिखहिस लोड ।
 सच्च वात भूठी चर्वै, तव जिय सुक्ख न होइ ॥ ५६ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—दिखहिस=देखे जाते हैं । चर्वै=रुहने पर ।

अर्थः—कवि कहता है— कानों से सुनी हुई वात से ही मनुष्य पहले प्रसन्न दीख पडता है किन्तु यह भी सत्य है कि असत्य वात कह देने से श्रोता के प्राण उससे विशेष दुःख पाते हैं (अर्थात् हम्भावती ने जैसे गुण सुने, वैसाही पृथ्वीराज को पाया)।

सुनि श्रोतान सु मन्नियै, दिखि दिष्टान सचीय ।

बीज चन्द्र पूरन्न जिम, वधै कला मनि जीय ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—सत्वीय=सत्य । मनि जीय=मन में मानकर, मन को सतोष होने पर ।

अर्थः—किन्तु श्रोतानुराग प्राप्त कर जो बात ठीक समझी थी, वह देखने के द्वारा हसावती ने वास्तव-में सत्य पायी । अतएव उसके द्वितीया के चन्द्रमा के समान मुख पर मन की सन्तुष्टि के कारण कला-वृद्धि हुई और वह पूर्ण चन्द्रमा के समान विकसित हो गया ।

वर वेहरि दिक्खि नृपति, गौ नृप त्रिप वर थान ।

वालु सुअंवर काज कौ, वर वज्जै नीसान ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—वेहरि=वैर, स्त्री, हसावती । सुअंवर=स्वयंवर ।

अर्थः—राजा ने भी सुन्दरी को देखा और वह अपने विश्राम-स्थल (जनवासे) पर पहुँचा । वाला के स्वयंवर के लिये श्रेष्ठ नक्कारे वजने लगे ।

आभूपन भूपन नृपति, वैसँधि कहिन कविंद ।

कवि व्रनन इह लगिग त्रिय, ज्यौं वूढत लघु चन्द ॥ ५९ ॥

शब्दार्थः—आभूपन=भूषण । भूपन=भूषित । कहिन=कहो । वूढत=वदता है ।

अर्थः—राजा ने कवि से कहा—हे कवि । आभूषणों से विभूषित वाला की वय-संधि का वर्णन कर के कहो । तब कवि ने कहा कि वह तो ऐसी है, जैसे बाल चन्द्रमा वृद्धि प्राप्त करता है ।

कवित्त

वर भूपन तजि बाल, सुवर मज्जन आरभिय ।

सोइ छवि वर दिक्खनह, कोटि ओपम पारंभिय ॥

वर सैसव वर चंपि, कपि चिहु कोद भपायौ ।

सो ओपम कवि चन्द, जौन्ह वूढत न लधायौ ॥

बालपन वीरवर मित्र पन, रवि ससि करि अंजुरि भरिय ।

वय बाल उवीचन प्रीति जल, सैसव तें हरई करिय ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—मज्जन=मंजन । दिक्खनह=देखने वाली, अतरग सखियें । ओपम=उपमा । आरभिय=प्रारम्भ, शुरु की । चिहु कोद=चारों ओर । भपायौ=भेषने लगा । जौन्ह=जिसने, जिसका । लधायौ=

लोज समा । वीरवग्=श्रेष्ठ वीर प्रयोगज । मित्रपन-प्रेम । यज्ञरि गरिय=यज्ञलि देवी । उनीनन=उलीच न्न, सीच फर । हर्गई=हर्गीभरी । हरिय=मी ।

अर्थः—अच्छे भूपणो को उतार कर बाला ने उत्तम ढग से मंजन करना गुरु किया । उस समय उसकी अतरग सवियों ने उसके अगो को देव कर करोड़ों उपमायें देनी शुरु की । यौवन के सामने उन बाला का शिशुत्व दब कर लज्जा अनुभव कर रहा था । उसकी उपमा की खोज में कविचन्द्र ने विचारों में गहरे गोते लगाये, फिर भी उपयुक्त उपमा नहीं खोज पाया । बाला ने वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज को मूर्ख और उसके प्रति प्रेम को चन्द्र की भाति (वृद्धि पाने वाला) बना कर बाल्यावस्था को अजुलि दे दी । प्रीति-रूपी जल से सींचकर उस बाला ने शिशुत्व को हरा भरा कर दिया अर्थात् शिशुत्व से यौवनत्व को प्राप्न कर लिया ।

वर सैसव अच्छर नहीं, जोवन जल वरमै न ।

बाल घरी घरियार ज्यौ, नेह नीर बुडिनै न ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—अच्छर=अक्षरश । वरमै=अभिहित होना, दृवना । बुडि=दृव गया ।

अर्थ — उसमें शिशुत्व वास्तव में नहीं था, न वह यौवन रूपी जल में ही डूबी हुई थी । उस बाला के नैत्र तो जल-घाटका तुल्य थे, जो स्नेह रूपी जल में डूब कर अपने प्रेम का परिचय देते थे ।

दोहा

वदन वर आयौ नृपति, तोरन संभरि वार^१ ।

प्रीति पुरातन जानिके, कामिनि^२ प्रजति^३ मार ॥ ६२ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० । २ पा० । ३ का० ।

शब्दार्थः—वार=द्वार पर । मार=कामदेव ।

अर्थः—तोरण-वदन करने के लिए सभरी नरेश पृथ्वीराज द्वार पर पहुँचा । उस समय सुन्दरियों द्वारा उसका स्वागत किया गया, मानों पुरातन प्रीति के कारण ही वे कामिनियाँ काम को प्रज रही हों (काम के साथ ससर्ग रखने ही से कामिनियाँ नामकरण हुआ) ।

कवित्त

वदि सुवर चहुआन, मंभ ग्रह राज^१ सुलिनौ ।
 बाल रूप अवलोकि, महुर महुरं रस पिन्नौ ॥
 द्विग सू^२ द्विग संमुहे, पीय^३ उमगे द्विग ओरन ।
 सो ओपम प्रथिराज, चन्द ज्यौ चन्द चकोरन ॥
 नव भवर पिट्ट वर कमल मे, कै मकरंद भुलावहीं ।
 आनंद उगति मगल अभिप, सो कवि वरनन गावहीं ॥ ६३ ॥
 पा० पा० १ पा० भी० का० । २, ३ का० ।

शब्दार्थः—राज=यादव राजा । मंभ=में, मंडप गृह में । महुर महुरं=मधुर २ । सगुहे=सामने, मिले । पीय=पीकर । उमगे=उमड़ पड़े । ओरन=और भी, ओर, तरफ । पिट्ट=प्रवेश कर, प्रविष्ट कर । मकरंद=रस । आनन्द=हर्ष । उगति=उक्ति । वरनन=वर्णन । गावहीं=कह सकता है ।

अर्थः—दुल्हे राजा चाहुआन नरेश को स्वागत पूर्वक मंडप-गृह में यादव राजा ले गया । वहा बालिका (वधू) का रूप देखा और एक दूसरे के सामने होते ही मधुर रस उत्पन्न हो गया । नैत्र परस्पर मिलते ही उक्त रस का पान करने के लिये एक दूसरे के हग और भी अधिक आतुर होगय । उस समय पृथ्वीराज चंद्र और चंद्रमुखी-हसावती चकवी के समान दीख पड़ी । परस्पर नैत्रों का समागम ऐसा प्रतीत हुआ, मानों पृथ्वीराज नव भ्रमर तुल्य नैत्र कुमारी के श्रेष्ठ कमल तुल्य नैत्रों में प्रवेश कर एकाकार हो गये हों या उन एकाकार भ्रमर और कमलवत नैत्रों को मधु रस झुत्ता रइ हो । उस समय के मंगलाभिषेक के अरसर का वर्णन सूक्ति द्वारा श्रेष्ठ कवि भी नहीं कर सकता ।

दोहा

वर अचल सोमेश चित, वधि वीर वर नारि ।
 देव क्रम दुज क्रम कहौ, सो वर वीर कुआरि ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—सोमेश=द्वितीय सोमेश्वर (पृथ्वीराज) । अचल=गठवधन । दुज क्रम कहौ=द्विजों ने अपने धर्म का कथन किया, अर्थात् मन्त्रोच्चरण किया ।

अर्थः—उस समय द्वितीय वीर सोमेश्वर (पृथ्वीराज) और सुन्दरी हंसावती के चित्त और अचल का गठवधन एकसाथ ही हुआ । किन्तु देव-प्रतिष्ठा और

द्विजों द्वारा मन्त्रोच्चारण के साथ वीर श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने कुमारी हंसावती का वरण किया ।

कवित्त

वैनि नाग लुट्टयौ, वदन मसि राका लुट्टयौ ।

नैन पदम पखुरिय, कुभ कुच नारिंग छुट्टयौ ॥

मद्धि भाग पृथ्वीराज, हस गति शारद मत्ती ।

जघ रभ विपरीत, कठ कोकिल रस मत्ती ॥

ग्रहि लियौ साज चपक वरन, दसन बीज दुज नास वर ।

सेना समग्र एकत करिय, काम राज जिप्पन सुधर ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—वैनि=चोटी । लुट्टयौ=लूट लिया । वदन=वदन, मुख । राका=पूर्णिमा । मद्धिभाग=कटि-भाग । शारद=शारदा । बीज=विजली । दुज=द्विज, पत्नी शुरु । एकत=एकत्रित । जिप्पन=जीतने के लिये ।

अर्थः—हंसावती की चेनी ने सर्प को, मुख ने शशि को, नेत्रों ने पद्म पखुडी को, कुच ने कलश और नारंगियों को, कमर ने अजेय पृथ्वीराज को (कटि प्रदेश ने पृथ्वीराज को वश में किया), हस-गति ने शारदा की मति को (शारदा भी वर्णन नहीं कर पायी), जघा ने कइली को, कठ ने रत्नोत्तम कोकिलाओं को, साज शृंगार ने चंपा के रंग को और हृदय पक्ति ने विद्युत् प्रभा को फीका कर दिया । यह समग्र सौन्दर्य सृजता ने मानों काम-साम्राज्य पर विजय प्राप्त करने के लिये ही एकत्रित किया हो ।

दोहा

कवि लघु लघु वत्ती कही, उकति चन्द नन छेव ।

मनों जनक वन्दन कवन, जानु किवदँ देव ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—लघु २=श्लोक २ में, सक्षेप में । उकति=उक्ति । नन=नहीं । छेव=पार । वदन=सामारिक मोह के वधन में । वन्दन=वन्दन वाली । जानुकि=जानकी ।

अर्थः—यद्यपि श्रेष्ठ उक्तियों का पार नहीं है, फिर भी मैंने (कवि ने) इस कुमारी का वर्णन सूक्ष्म रूप से ही किया है । वह हंसावती ऐसी थी, मानों जनक को सामारिक समत्व में बाँधने वाली एवं देवताओं द्वारा उदित साक्षात् जानकी हो ।

कवित्त

चट्टिग सब सामन्त, चूक सब सेन सु दिक्खिय ।
 खट दस वर सामन्त, मरन केवल मन सिक्खिय ॥
 खां^२ निसुरत्ति समूह, जूह दैवान सु धाइय ।
 मार मार उचरंत, मारकहि समर सुसाइय ।
 इत उतह सव्व सामन्त रजि, तिन अरि तन तिन वर करिय ॥
 मानव न नाग दिन आइ जुध, सुवर जुद्ध रत्ती करिय ॥ ६७ ॥
 ग्रा० पा० १ का० । २ का० पा० भी० ।

शब्दार्थः—चूक=धोखा । खट दस=साठ । जूह=जुष्ट, समूह । दैवान=देवता तुल्य । मारकहि=मार करने वाले । सुसाइय=शोषण करना शुरू किया, शोषण किया । तिन=तृण । दिन आइ जुध=हमेशा युद्ध करने वाले । रत्ती=रात्रि ।

अर्थः—इतने में विपक्षियों ने (शिशुपाल वंशज पचायन की मदद पर आये हुए शाही योद्धाओं ने) पुन धोखे के साथ हमला किया । यह देखकर सब सामन्तों ने भी चढ़ाई की । वे साठ श्रेष्ठ सामन्त केवल मरना ही सीखे थे । निसुरत्तिखों के साथी-समूह की ओर वह देवता तुल्य सामन्त समूह बढ़ा और मार २ उच्चारण किया । रावल समर ने भी विपक्षी वीरों का शोषण करना शुरू किया । उसके आस पास सुशोभित हो, सामन्तों ने भी शत्रु जनों का तृण-तुल्य कर दिया । हमेशा युद्ध करने वाले ऐसे श्रेष्ठ वीरों के समान न तो मानव और न नाग ही हुए । उनका वह युद्ध रात्रि में हुआ ।

दोहा

कन्ह वध मभमें रझौ, रई सुजैत कुआर ।
 है मुक्किव सामंत गौ, उपर मेर पहार ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—वध=वधु । मभमें=बीच में । है=हय, घोड़े । मुक्किव=छोड़ कर, बढ़ाकर । मामत=पामतसिंह । गौ=गया । उपर=महायतार्थ ।

अर्थः—गुहिलोती सेना मे-से कन्ह का साई और जैत्र कुमार तथा चाहुआन की सेना का मेरु तुल्य पहाडराय तोमर शत्रु सेना से घिर गये । यह जानकर इनकी सहायता के लिये घोड़ा बढ़ाकर सामंतसिंह आहड़ा आया ।

कवित्त

प्रात खान सुरतान, सेन बंधी ग्रह सारी ।
 वर सौभे "कविचंद्र", चंद्र अष्टमी आकारी ॥
 अर्द्ध चंद्र महमूँदि, अर्द्ध खुरसान खान करि ।
 मध्यभाग रुस्तमा^१, सेन खुरसान जित्ति वरि ॥
 दल धरकि भरकि सिपर लई, अरुनदीय उद्दिम सुभर ।
 चित्र ग राइ रावर समर, चडि मग्यौ बधव अमर ॥ ६८ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—अह=सर्प । सारी=श्रेष्ठ । सेन खुरसान=खुरासानी सेना । जित्ति=विजेता ।
 सिपर=शीघ्र । अरुनदीय=अरुणोदय । उद्दिम=उद्यम, प्रयत्न । मग्यौ=प्रस्तुत करने को कहा, बुलाया ।

अर्थः—प्रात काल के समय शाह के खान योद्धाओं ने अपनी सेना श्रेष्ठ ढंग से सर्पव्यूहाकार जमाई । कवि कहता है कि वह अष्टमी की रात्रि के अर्ध चंद्र के समान शोभा पाने लगी । उसमें अर्ध चंद्र के आधे टुकड़े के स्थान पर महमूद और अर्ध टुकड़े के स्थान पर खुरासान खा तथा मध्यभाग में रुस्तम और विजयी खुरासानी सेना थी, किन्तु अरुणोदय होते ही सामंतों ने शत्रुओं को दवाने का प्रयत्न किया, जिससे शत्रु सेना में शीघ्र ही खलबली मच गई । उसी समय चित्तौड़ेश्वर रावल समर घोड़े पर चढा और भ्राता अमर को सामने उपस्थित करने के लिये कहा (बुलावाया) ।

बोहा

उट्टि ढाल चहुआन वर, बडि अवाज पर वान^१ ।
 सुनि वरनी सू^२ रत्त तिन, सत छुट्टे वर थान ॥ ६९ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—उट्टि=उमड़ पड़ी । ढाल=टलेती सेना, अग रत्त मेना । बडि अवाज पर=आवाज के साथ बड़े, चल पड़े । वरनी=नव विवाहिता । सू =मे । तिन=उसने । सत=निश्चय ।

अर्थः—इतने में चाहुआन नरेश की अग-रत्तक सेना भी आगई और सनसनाहट के साथ बाण चलने लगे । नव विवाहिता में अनुरक्त राजा पृथ्वीराज ने भी यह सुना कि सभय है, यह स्थान रण यभोर के अधिकार से जाता रहेगा ।

कवित्त

धुअ मुख रावर, समर, खान निसुरत्ति खेत तजि ।

घरी अद्र वजि लोह, सवै चतुरग सेन भजि ॥

जुद्ध कंध कुल नास, खान निसुरत्ति अहुट्टे ।

चामर छत्र रखत्त, तखत है-वै वर लुट्टे ॥

प्रथिराज वीर रावर समर, मिलि नखित्रपति ग्रहन् वरि ।

धर लज्जि लज्जि आहुट्टपति, तीन वार अट्टंग गिरि ॥ ७१ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—धुअ=धुव, अटल । मुख=मुहाने पर । जुद्ध कंध=युद्ध का मार जिसके कंधों पर । अहुट्टे=मिड़कर । रखत्त=रसद (खाद्यान्न) । है-वै=अश्वारोही । मिलि=संपर्क किया । नखित्रपति=नखत्रपति, चन्द्रमा, चन्द्रमा तुल्य हसावती । ग्रहन=घेरा । अट्ट गगिरि=अष्टाचल पहाड़ ।

अर्थः—रावल शत्रु-मुहाने पर अटल रहा । यह देख निसुरत्ति खान ने रणक्षेत्र छोड़ दिया और अर्ध घड़ी तक लोहा वजता रहा, जिससे शत्रु की सत्र चतुरंगिनी सेना भाग गयी । जिसके कंधों पर युद्ध का भार था ऐसे निसुरत्तिखां ने अड़कर कुछ का नाश कराया और उसके सेनापतित्व के चिन्ह, चमर, छत्र, तख्त, रसद (खाद्यान्न) और घुड़सवार लूट लिये गये । पृथ्वीराज और रावल समर दोनों वीर थे । उनमें से पृथ्वीराज तो चन्द्रमा तुल्य हसावती के संपर्क में था, किन्तु रावल समर शत्रुओं के घेरे (ग्रहण) में दिखाई दिया । उस समय वह पृथ्वी और आहड़ों का स्वामी कहलाने की लज्जा रखने के लिये अष्टाचल पहाड़ के तुल्य हो गया ।

जीत लियौ चतुरंग, चारु चतुरग सु मोरी ।

एक लख पक्खर^१ प्रमान, ढाल गौरी ढ ढोरी ॥

खा पिरोज परि खेत, खेत कोका उपाारी ।

समर सिंघ रावर-नरिद^२, वीर मोरी करि डारी ॥

वज्जे निसान जयपत्त के, विन सुरताने लुट्टि दल ।

नीसान नह उनमह के, चामर छत्र रखत्त बल^३ ॥ ७२ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० । २ ३ पा० ।

कवित्त

प्रात ग्वान सुरतान, सेन वंधी ग्रह सारी ।
 वर सौभे “कविचंद्र”, चंद्र अप्ठमी आकारी ॥
 अर्द्ध चद्र महमूदि, अर्द्ध खुरसान ग्वान करि ।
 मध्यभाग रुस्तमां^१, सेन गुरसान जित्ति वरि ॥
 दल धरकि भरकि सिपर लई, अरुनदीय उहिम सुभर ।
 चित्रंग राड रावर समर, चढि मग्यौ वधव अमर ॥ ६८ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—ग्रह=सर्प । सारी=श्रेष्ठ । सेन खुरसान=खुरासानी सेना । जित्ति=विजेता ।
 सिपर=शीघ्र । अरुनदीय=अरुणोदय । उहिम=उद्यम, प्रयत्न । मग्यौ=प्रस्तुत करने को कहा, बुलाया ।

अर्थः—प्रात काल के समय शाह के ग्वान योद्धाओं ने अपनी सेना श्रेष्ठ ढंग से सर्पव्यूहाकार जमाई । कवि कहता है कि वह अप्ठमी की रात्रि के अर्ध चद्र के समान शोभा पाने लगी । उसमें अर्ध चद्र के आधे टुकड़े के स्थान पर महमूद और अर्ध टुकड़े के स्थान पर खुरासान खा तथा मध्यभाग में रुस्तम और विजयी खुरासानी सेना थी, किन्तु अरुणोदय होते ही सामंतों ने शत्रुओं को दवाने का प्रयत्न किया, जिससे शत्रु सेना में शीघ्र ही ग्लबग्लि मच गई । उन्ही समय चित्तौड़ेश्वर रावल समर घोड़े पर चढा और भ्राता अमर को सामने उपस्थित करने के लिये कहा (बुलवाया) ।

दोहा

उट्टि ढाल चहुआन वर, बढि अवाज पर वान^१ ।
 सुनि वरनी सू^२ रत्त तिन, सत छुट्टे वर थान ॥ ६९ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—उट्टि=उमड़ पड़ी । ढाल=टलेती सेना, अग रत्तक मेना । बढि अवाज पर=आवाज के साथ बढ़े, चल पड़े । वरनी=नव विवाहिता । सू=मे । तिन=उसने । सत=निश्चय ।

अर्थः—इतने में चाहुआन नरेश की अग-रत्तक सेना भी आगई और मनमनाहट के साथ वाण चलने लगे । नव विवाहिता में अनुरक्त राजा पृथ्वीराज ने भी यह सुना कि सभव है, यह स्थान रण-भोर के अधिकार से जाता रहेगा ।

रत्ना की है। अब आपके कंधों पर ही दिल्ली नगर का भार है। हे चित्तौड़ेश्वर ! यह अक्षुण्ण पगड़ी आपके ही सिर पर शोभा देती है (पुरुषार्थ के चिन्ह आपमें ही दिखाई पड़ते हैं ।

दोहा

तेजसिंह सुत समरसी, तिह सुत कुम्भ-नरेस ।
संभरि संभरि वारि दै, दोहित्तौ सोमेस ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—तेजसिंह=पर्याय रूप चौडसिंह, चडसिंह । कुम्भ-नरेस=कुम्भराज (नेपाल राज वंश के पूर्वज कुम्भकर्ण) समरि=समरि नरेश पृथ्वीराज । समरि वारि=सांभर के सकल्प का जल । दोहित्तौ=दोहित्र ।

अर्थः—तेजसिंह (पर्याय रूप चौडसिंह का पुत्र समर केशरी (विक्रम केसरी) था । उसका पुत्र कुम्भराज (नेपाल राज वंश का पूर्वज कुम्भकर्ण) था जो सोमेश्वर का दोहित्र था । अस्तु, इस विजय के उपलक्ष में संभरी नरेश पृथ्वीराज सांभर का सकल्प करने लगा (जल देने लगा, दान देने लगा) ।

कवित्त

तव चित्रंग नरेस, खिभवि नख्यौ वर पट्टौ ।
तुम दृढा कुल दृढ सुमनि ऐसी-मति ठट्टौ ॥
हथ्य नीच करतार, हथ्य उपर जगत्तु^१ गुर ।
हम आहुट्ट मम्मामि, स्वामि कहिजै सु उंच वर ॥
कालंक राइ कापन विरुद, कुलह कलंक न लगायौ ।
दग्यौन हाथ चित्तौरपति, हम जगत्त सब दग्यौ ॥ ७५ ॥

आ० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—खिभनि=क्रोध करके । नख्यौ=फैंक दिया । पट्टौ=मनद । दृढा=उन्मत्त तृतीय वीरल के समान । कुल दृढ=उन्मत्त तृतीय वीरल के वंश में । मनि=मन में । ठट्टौ=स्थान देते । नीच=नीचे, तले । करतार=ईश्वर । जगत्तुगुर=जगत के गुरु (मेवादेश्वर सबको रास्ते पर चलाने वाले होने से जगत गुरु कहा गया) । कुलह=कुल को । दग्यौन=दागित नहीं किया, मकल्प का जल नहीं भेला । दग्यौ=दागित किया, ऋणी किया, मकल्प किया ।

शब्दार्थः—जीत लियो=विजय प्राप्त की । चतुरंग=चित्तौडेश्वर । पारार=पल्लव, अश्वारोही । प्रमान=समान, बराबरी । जयपत्त=जयपत्र । उन्मत्त=उन्मत्त । बल=बल ।

अर्थः—चित्तौडेश्वर ने श्रेष्ठ चतुरंगिनी सेना को भगा कर विजय प्राप्त की । इम युद्ध में एक लक्ष अश्वारोही वीरों की बराबरी करने वाले गौरीशाह के अग्ररक्षक सैनिकों को उसने परख लिया (उनकी शक्ति की परीक्षा करली) । फिरोजखा युद्ध में धराशायी हुआ और कोका भी रणस्थल से (घायल अवस्था में) उठाया गया । रावल उपाधिधारी वीरों के राजा ममर केसरी ने कितने ही विपत्ती वीरों को भोली में डलवा दिया । तब उसने विजय के उपलक्ष्य में नक्कारे बजवाये और सुलतान के दल को लूट लिया । नक्कारों के नाद से उन्मत्त होकर उसने शत्रु के चमर छत्र भी छीन लिये ।

मिले आइ चहुआन, सब्व सामतन मन्ने ।
 उच्च भाव आदर सु दीन, राज उरि चपि सु लिन्ने ॥
 नैन-चैन-तन^३ वैन, हीन सुखन्न कडि दोऊ ।
 बर समान तुम राज, तेग-राज न विधि कोऊ ॥
 रक्खयौ ग्राम रतिवाह दै, तुम कधें दिल्ली नयर ।
 चित्रंग राव रावर समर, पाघ सीस बधी अमर ॥ ७३ ॥

प्रा० पा० १, ३ का० । २ का० भी० ।

शब्दार्थः—सामतन मन्ने=सामन्तों से सम्मानित । चपि=लगा लिये । नैन=चैन-तन=नैत्र और शरीर पुलकित था । चैन=वचन । हीन=नीच (शत्रु) । सुखन्न=सुख पूर्वक, सहज ही । तेग-राज=खड्ग धारी राजा । ग्राम=रणभूमि । रतिवाह=छापा । अमर=अचतुष ।

अर्थः—इतने में सब सामन्तों से सम्मानित चाहुआन नरेश्वर रावल समर से आकर मिला और उसने उच्च भाव के साथ (हृदय से) रावलजी का सम्मान करके उन्हें हृदय से लगा लिया । जब उसके नैत्र और शरीर पुलकित हो गये तब उसने कहा—हे रावल ममर ! आपने इन दोनों दुष्ट-समूहों (चढ़ेले और मुस्लिम योद्धाओं) को सहज ही में हटा दिया है । आपके समान खड्गधारी और कोई राजा नहीं कहा जा सकता । आपने छापा मार कर मेरे दुर्ग (रणभूमि) की

रक्षा की है। अब आपके कंधों पर ही दिल्ली नगर का भार है। हे चित्तौड़ेश्वर ! यह अक्षुण्ण पगड़ी आपके ही सिर पर शोभा देती है (पुरुषार्थ के चिन्ह आपमें ही दिखाई पड़ते हैं ।

दोहा

तेजसिंह सुत समरसी, तिह सुत कुम्भ-नरेस ।
संभरि सभरि वारि दै, दोहितौ सोमेस ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—तेजसिंह=पर्याय रूप चौड़सिंह, चडसिंह । कुम्भ-नरेस=कुम्भराज (नेपाल राज वंश के पूर्वज कुम्भकर्ण) समरि=समरि नरेश पृथ्वीराज । समरि वारि=सामर के सकल्प का जल । दोहितौ=दोहित ।

अर्थः—तेजसिंह (पर्याय रूप चौड़सिंह का पुत्र समर केशरी (विक्रम केसरी) था । उसका पुत्र कुम्भराज (नेपाल राज वंश का पूर्वज कुम्भकर्ण) था जो सोमेश्वर का दोहित था । अस्तु, इस विजय के उल्लङ्घन में संभरी नरेश पृथ्वीराज सांभर का संकल्प करने लगा (जल देने लगा, दान देने लगा) ।

कवित्त

तव चित्रंग नरेस, खिभवि नख्यौ वर पट्टौ ।
तुम दृढा कुल दृढ. सु मनि ऐसी मति ठट्टौ ॥
हथ्य नीच करतार, हथ्य उप्पर जगत्तु^१ गुर ।
हम आहुट्ट मम्मामि, स्वामि कहिजै सु उच वर ॥
कालंक राड कपन विरुद, कुलह कलक न लगायौ ।
दग्यौन हाथ चित्तौरपति, हम जगत्त सव दग्यौ ॥ ७५ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—खिभनि=क्रोध करके । नख्यौ=फैंक दिया । पट्टौ=मनद । दृढा=उन्मत्त तृतीय वीषल के समान । कुल दृढ=उन्मत्त तृतीय वीषल के वंश में । मनि=मन में । ठट्टौ=स्थान देते । नीच=नीचे, तले । करतार=ईश्वर । जगत्तुगुर=जगत के गुरु (मेवाड़ेश्वर सक्को रास्ते पर चलाने वाले होने से जगत गुरु कहा गया) । कुलह=कुल को । दग्यौन=दागित नहीं किया, संकल्प का जल नहीं भेला । गग्यौ=दागित किया, ऋणी किया, सकल्प किया ।

अर्थः—यह देख कर चित्तौड़ेश्वर ने सागर के समाना में लिये हुए सागर का क्रोध में आकार फेर दी और पृथ्वीराज से कहा तुम कृपा जाना (उन्नत तलीय वीसल) के वश में उत्पन्न हुए हो और उसी के समान उन्नत भी हो, उगीलिये तुमसे ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई (उन्नत राजवशज को सकल्प द्वारा पृथ्वी राज को की सोचते हो) हमारा हाथ सदैव केवल ईश्वर के नीचे एवं हम जगत-गुरुओं का हाथ सदैव औरों के ऊपर ही रहा है । हम आहडों के मुखिया और उन्नत तथा श्रेष्ठ वीरों के स्वामी कहे जाते हैं । हमारा यश कलक निवारक है । हमारे कुल को कभी कलक नहीं लगा है । हमने अपने हाथ में कभी दाग नहीं लगाया है । (सकल्प रूप में किसी से पृथ्वी प्राप्त नहीं की है) । हमने तो सागर को दान दिया है । ससार हमारे कर्तव्यों का ऋणी है और हमसे सकल्प का जल ग्रहण करता है ।

दोहा

प्रेह गयौ चित्रग पति, गौ दिल्लीय नृप-छेह ।

मास वीय-वित्ते-नृपति, मतौ मडि नृप एह ॥७६॥

शब्दार्थः—प्रेह=घर (चित्तौड़), नृप-छेह=राजाओं की सीमा, राजस्व की सीमा । मास=एक माह । वीय-वित्ते-नृपति=दूसरा राजा यादव भान, वहीं पर (रणथभौर पर) एक मास व्यतीत करे । मतौ मडि=मंत्रणा दी । एह=यह ।

अर्थः—तदुपरान्त इधर चित्तौड़ेश्वर रावल समर अपने घर चित्तौड़ चला गया, उधर राजाओं का सीमा स्वरूपी (राजस्व की सीमा) पृथ्वीराज की शरण में आये हुए राजा भान को एक मास तक रणथभौर में ही रहने की मंत्रणा देकर दिल्ली पहुँचा (यादव राजा को एक मास तक रणथभौर में इसलिये ठहराया कि शत्रुओं का वहा तक, यादव के भूभाग पर आक्रमण का डर था) ।

विमल विलोकन कोकरस, सोक हरन सुख सत्त ।

समुख हस प्रभू नीलप्रभ, विभ्रम वर द्रिग मत्त ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—विलोकन=देखा गया । कोकरस=कोक शास्त्र से सम्बन्धित रस, शृ गार रस । सत्त=सत्व, तत्व । समुख=शत्रुकूल । हस=हसरूपी, हमावती । प्रभू=स्वामी, पति । नीलप्रभ=अंतर से नील वर्ण मरोवर । विभ्रम=चञ्चित ।

प्रर्थः—जो शोक का हरण करके आनन्द दायक शुद्ध कोकरस (कोकशास्त्र से सम्बन्धित शृ गार रस रूपी जल) से भरा हुआ है और जिसको देखकर श्रेष्ठ और मतवाले नैत्र (युवा सुन्दरियों के) भी चकित हो जाते हैं, ऐसा सरोवर रूपी पृथ्वीराज हंसरूपी हंसावती के लिए (केलि क्रीड़ा करने हेतु) अनुकूल होगया ।

मन हिय वृत्त-न मुगधनिय, रमि राजन निय नेह ।

नमिय निसाकर अग-रथिय, निसि त्रिम्ल दिय छेह ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—वृत्त-न=वेरी नहीं गई । रमि=विनोद, प्रमोद की रचना की । निय=निष्कट । छेह=किनारा दिया ।

अर्थः—यद्यपि राजा पृथ्वीराज स्नेह मुक्त होकर आमोद प्रमोद की रचना (सुरति सुख) करने को उत्सुक था, किन्तु वह मुग्धा रानी (स्वाभाविक लज्जा-संकोचके कारण चन्द्रोदय और निर्मल रात्रि का वहाना लेकर) उसके हृदय और मन की भावनाओं के वशीभूत (घेरे मे) नहीं हुई । इतना होने पर भी (कुछ समय वीतने पर) मृग-रथवाही निशाकर (चन्द्रमा) और निर्मल रात्रि ने उसको धोका ही दिया अर्थात् उनके विनोद मे बाधा देना ठीक नहीं समझा । दोनों ने ही किनारा कर लिया (शुक्ल पद्म से कृष्ण पद्म आगया) ।

काव्य (श्लोक)

गगन सरसि हंसं श्याम लोक प्रदीपं ।

सर-सरसिज वधू चक्रवाकोपि कीरा ॥

तिमिर गज मृगेन्द्र चन्द्रकातः प्रमाथी ।

चिकसि अरुण प्राची भास्करं तं नमामी ॥ ७८ ॥

शब्दार्थः—गगन सरसि=आकाश स्थित, आकाश तुल्य सीमा रहित । हंसं= हंस, (सूर्य), हंसावती । श्याम=ईश्वरीय, स्वामी । सर-सरसिज=तालाव स्थित कमल, कर कमलों में जिनके बाण हैं । वधू=प्रेमी । चक्रवाकोपि=चक्रवाक दपति की मी, शासन चक्र, और वाङ्मिलास की मी । कीरा=क्रीड़ा । तिमिर=अधेर, अन्याय । चद्रकात =चद्र प्रसा, चद्रमा तुल्य प्रमा वाली । प्रमाथी=नागकर्ता, मधन कर्ता । अरुण=अरुणिमा, भोजस्विता । प्राची=पूर्व दिशा, पूर्व प्रांत, पूर्व देग । भास्करं=भास्कर, सूर्य स्वरूपी पृथ्वीगज ।

अर्थः—यह देख कर चित्तौड़ेश्वर ने सांभर के सम्बन्ध में लिखी हुई सनद को क्रोध में आकार फेंक दी और पृथ्वीराज से कहा तुम ढूँढा दानव (उन्मत्त तृतीय वीसल) के वंश में उत्पन्न हुए हो और उसी के समान उन्मत्त भी हो, इसीलिये तुममें ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई (उच्च राजवशज को संकल्प द्वारा पृथ्वी दान देने की सोचते हो) हमारा हाथ सदैव केवल ईश्वर के नीचे एव हम जगत-गुरुओं का हाथ सदैव औरों के ऊपर ही रहा है । हम आहड़ों के मुखिया और उन्नत तथा श्रेष्ठ वीरों के स्वामी कहे जाते हैं । हमारा यश कलक निवारक है । हमारे कुल को कभी कलंक नहीं लगा है । हमने अपने हाथ में कभी दाग नहीं लगवाया है । (सकल्प रूप में किसी से पृथ्वी प्राप्त नहीं की है) । हमने तो ससार को दान दिया है । संसार हमारे कर्तव्यों का ऋणी है और हमसे सकल्प का जल ग्रहण करता है ।

दोहा

ग्रेह गयौ चित्रग पति, गौ दिल्लीय नृप-खेह ।

मास वीय-वित्ते-नृपति, मतौ मडि नृप एह ॥७६॥

शब्दार्थः—ग्रेह=घर (चित्तौड़), नृप-खेह=राजाओं की सीमा, राजस्व की सीमा । मास=एक माह । वीय-वित्ते नृपति=दूसरा राजा यादव भान, वहीं पर (रणथंभौर पर) एक मास व्यतीत करे । मतौ मडि=मन्त्रणा दी । एह=यह ।

अर्थः—तदुपरान्त उधर चित्तौड़ेश्वर रावल समर अपने घर चित्तौड़ चला गया, उधर राजाओं का सीमा स्वरूपी (राजस्व की सीमा) पृथ्वीराज की शरण में आये हुए राजा भान को एक मास तक रणथंभौर में ही रहने की मन्त्रणा देकर दिल्ली पहुँचा (यादव राजा को एक मास तक रणथंभौर में इसलिये ठहराया कि शत्रुओं का वहा तक, यादव के भूभाग पर आक्रमण का डर था) ।

विमल विलोकन कोकरन, मोक हरन सुख सत्त ।

समुख हस प्रभू नीलग्रभ, विभ्रम वर द्विग मत्त ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—विलोकन=देखा गया । कोकरन=कोक शास्त्र से सम्बन्धित रस, शृंगार रस । सत्त=सत्त्व, तत्त्व । समुख=यत्कूल । हस=हसरूपी, हसावती । प्रभू=स्वामी, पति । नीलग्रभ=अंतर से नील वर्ण मरोवर । विभ्रम=चरित ।

अर्थः—जो शोक का हरण करके आनन्द दायक शुद्ध कोकरस (कोकशास्त्र से सम्बन्धित शृ गार रस रूपी जल) से भरा हुआ है और जिसको देखकर श्रेष्ठ और मतवाले नैत्र (युवा सुन्दरियों के) भी चकित हो जाते हैं, ऐसा सरोवर रूपी पृथ्वीराज हंसरूपी हंसावती के लिए (केलि क्रीड़ा करने हेतु) अनुकूल होगया ।

मन हिय वृत्त-न मुगधनिय, रमि राजन निय नेह ।

नभिय निसाकर म्रग-रथिय, निसि त्रिम्मल दिय छेह ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—वृत्त-न=घेरी नहीं गई । रमि=विनोद, प्रमोद की रचना की । निय=निकट । छेह=किनारा दिया ।

अर्थः—यद्यपि राजा पृथ्वीराज स्नेह मुक्त होकर आमोद प्रमोद की रचना (सुरति सुख) करने को उत्सुक था, किन्तु वह मुग्धा रानी (स्वाभाविक लज्जा-सकोचके कारण चन्द्रोदय और निर्मल रात्रि का वहाना लेकर) उसके हृदय और मन की भावनाओं के वशीभूत (घेरे में) नहीं हुई । इतना होने पर भी (कुछ समय वीतने पर) मृग-रथवाही निशाकर (चन्द्रमा) और निर्मल रात्रि ने उसको धोका ही दिया अर्थात् उनके विनोद मे वाधा देना ठीक नहीं समझा । दोनों ने ही किनारा कर लिया (शुक्ल पत्र से कृष्ण पत्र आगया) ।

काव्य (श्लोक)

गगन सरसि हस श्याम लोक प्रदीप ।

सर-सरसिज वधू चक्रवाकोपि कीरा ॥

तिमिर गज मृगेन्द्र चन्द्रकांत प्रमाथी ।

विकसि अरुण प्राची भास्करं तं नमामी ॥ ७८ ॥

शब्दार्थः—गगन सरसि=आकाश स्थित, आकाश तुल्य सीमा रहित । हसं= हस, (सूर्य), हसावती । श्याम=ईश्वरीय, स्वामी । सर-सरसिज=तालाव स्थित कमल, कर कमलों में जिनके बाण हैं । वधू=प्रेमी । चक्रवाकोपि=चक्रवाक दपति की मी, शासन चक्र, और वाक्विलास की मी । कीरा=क्रीड़ा । तिमिर=अधेर, अन्याय । चद्रकांत=चद्र प्रमा, चद्रमा तुल्य प्रमा वाली । प्रमाथी=नाशकर्ता मथन कर्ता । अरुण=अरुणिमा, श्रोजस्विता । प्राची=पूर्व दिशा, पूर्व प्रात, पूर्व देश । म' रूण=मास्कर, सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज ।

अर्थ—(कवि श्लेष में मूर्ध और पृथ्वीराज की वदना करता है) ।

मूर्ध के पक्ष में—आकाश-मडल पर जो हनु कहा जाता है, ईश्वरीय लोकों का जो प्रदीप है, तालाब स्थित कमलो का जो प्रेमी है, जिसके साम्राज्य में चक्रवाक-दपति की भी क्रीडा है, अधेरे रूपी हाथी का जो मृग है, चन्द्र-प्रभा का जो नाश-कर्त्ता है ऐसे पूर्व दिशा से अरुणवर्ण युक्त विक्रान्त उस मूर्ध को मैं नमस्कार करता हूँ ।

पृथ्वीराज के पक्ष में— जो आकाश-तुल्य गुण रूप आदि सीमा से परे है, हसावती का जो श्याम है, लोकों का जो दीपक है, कमल तुल्य हाथों में वाण रखने वालों का जो प्रेमी है, शासन चक्र और वाक् विलास की क्रीडा भी जिसके साम्राज्य में है, अधेरे (अन्याय) रूपी हाथी का जो मृगराज है, चन्द्रमा जैसी प्रभावती युवती का जो मथन-कर्त्ता है, पूर्व प्रात में जो अरुणवन लिए (ओजस्विता लिए) हुए प्रकट हुआ है, ऐसे भास्कर रूपी पृथ्वीराज की मैं वन्दना करता हूँ ।

अमृत मय शरीर सागरा नद हेतु ।

कुमुद वन विकामी रोहिणी जीवितेस ॥

मनसिज नस वधू माननी मान मदी ।

रमति रजनि रमन चद्रमा त नमामी ॥ ८० ॥

शब्दार्थः—सागरानद=सिंधु पुत्र, हर्ष सिंधु । हेतु =कारण । कुमुद=कुमोदिनी, पृथ्वी (पृथ्वीराज) के प्रमोद । रोहिणी=चद्रमा की स्त्री, रोक्ने वाली-कात्र में करने वाली । जीवितेस=प्राणेश । मनसिज नस, मनसि-जन स=कामशत्रु शिव, मानते हैं सेवक और जनता । माननी=मानवती, रूप प्रेम और गुण का गर्भ करने वाली । रमति=विहरता है, रमण करती है । रजनि रमन=रजनी पति, रात्रि में पति में । चद्रमा=शशि, चद्रपृथ्वी हसावती ।

अर्थः—(कवि श्लेष में चद्रमा और चद्रमुखी हसावती को वदना करता है) ।

चद्रमा के पक्ष में—

अमृत मय शरीर वाला होने के कारण समुद्र पुत्र है, जो कुमुद-वन का विहसित करने वाला है, रोहिणी का जो प्राणेश है, काम-गत्र-गदर का जो वल्लभ

है, मानवती स्त्रियों का जो मान-मर्दन करने वाला है और जो रजनी-रमण कहला कर विहरता है, ऐसे उस चंद्रमा को मैं नमस्कार करता हूँ ।

—चन्द्र मुखी हंसावती के पत्न मे—

जिसका अमृतमय शरीर है, जो हर्ष सिंधु का कारण है, जो पृथ्वीराज के प्रमोद-वन को विकसित करने वाली है, जो अपने प्राणेश को कावू मे किए हुए है, सेवक और जनता जिसे मन से कृपालु मानती है, रूप, प्रेम और गुण का गर्व करने वालियों का जो मान मर्दन करने वाली है, और जो रात्रि में पति से रमण करती है, ऐसी चन्द्रिका (चन्द्र मुखी हंसावती) को मैं नमस्कार करता हूँ ।

गाथा

उवनि फलानि फंदा, विसनि पत्त वलाकरे हृथ्य ।

मरकति मनि भाजन्ने, परठिय पडुप सु तीयं ॥ ८१ ॥

शब्दार्थः—उवनि=अवनि, पृथ्वी । फंदा=फंदे हुए, लगे हुए । विसनि=वृच्छनि, वृत्त । पत्त=पत्ते, पन्ने । वलाकरे=वल्लिकाएँ, लतिकाएँ । हृथ्य=हत, नाश । भाजन्ने=पात्र । परठिय=पहुँचाई, भेंट की । तीय=स्त्री (हंसावती) ।

अर्थः—(कवि दपति के प्रेम वर्णन के साथ २ पदच्छतु का वर्णन करता है, वसंत मे हंसावती के साथ राजा का विवाह हुआ था, अतः ग्रीष्म से वर्णन शुरू होता है)

वृत्त और फल देने वालो लताओं मे लगे हुए पत्ते नष्ट हो गये है, ऐसी ग्रीष्म ऋतु मे वह सुवाला हंसावती मरकत-मणि के पात्र में पुष्प सजाकर स्वामी को भेंट करती थी ।

मिल्ली भिंगुर रवरी^१, गावन पुत्रिललित लुम्भरियं ।

पडु किय खंख सहासं^२, मलकिय सीताड मंद^३ मदाई ॥ ८२ ॥

ग्रा० पा० १, ३ भों का० पा० । २ भों ।

शब्दार्थः—रवरी=स्वर । लुम्भरियं=मोहित करती । पडु=राजा । खंख=अक, कुचि । सहास=सहर्ष । सीताड=शीतलता । मंद मदाई=मंद २, शनै २ ।

अर्थः—जिस समय वर्षा ऋतु मे मिल्ली, भिंगुरादि की मकर सुन्दर गायिका-पुत्री

की (स्वर लहरी की) तरह मोहित कर देती थी, उस समय राजा ने महर्षि अपनी प्रेयसी (हसावती) को अक्र मे भर लिया, जिस से वर्षा कालीन तपन (तप्त) मे भी उस वृषति मे शनै २ शीतलता झलकने लगी ।

क्रिय मडिस पुक्करिय, मैन राड सिरीय वधाय ।

पर दार चौर साही, पुक्कारे जाहु' रे जाहू ॥ ८३ ॥

प्रा० पा० १ भी पा० ।

शब्दार्थः—मडि=मडन । पुक्करिय=पुक्कर, तालाव । मैन=कामदेव । राड=राजा (पृथ्वीराज) । सिरीय=सेहग । वधाय=वाधा । साही=वनाड्यों के ।

अर्थः—शरदागम मे तालावों का सुन्दर दृश्य हो गया (निर्मल हो गए) और राजा (पृथ्वीराज) ने (अपने मस्तक पर) कामदेव का सेहरा वाधा (कामोन्मत्त हुआ) । शरद की चादनी को देख कर लोगो ने कहा— पर-दाराओं से प्रेम करने वाले और धनाड्यों के चोर(धन चुराने वाले तस्कर) अब तुम्हारी नहीं बनेगी । अतएव चले जाओ (चोर और कामी पुरुषों के लिए चादनी रात वाधक कही गई है) ।

पपट करि करतार, हसा सयनेव हस सहाय^१ ।

निसि वड्य अक्रिय, कुक्कडय कठ कल्लाय ॥ ८४ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० का० ।

शब्दार्थः—पपट=पोपट, तोता । सयनेव=सहयोगिनी । सहाय=सहयोगी । वड्य=वडी । कुक्कडय=मुर्गे । कल्लाय=कुलाना (राग) देना ।

अर्थः—हेमत के आगमन पर प्रेक्ष-मडिरा ने सहयोगिनी हसावती और उसके सहयोगी मूर्ध-स्वरूपी राजा पृथ्वीराज को पोपट (तोता) पक्षी के तुल्य बना दिया (अर्थात् वे एक दूसरे को 'तू ही' 'तू ही'—तुम मेरे हो, तुम मेरे हो—कहने मे तन्मय हो गये) । उस हेमत की रात्रि की वृद्धि के साथ ही साथ उनका प्रेमाकुरं भी बढ़ता रहा और कुक्कट के बोलने पर्यन्त वे सयोग-सुख मे लीन होते रहने लगे ।

अचलीय नेह ससिहर, रस रह^१ रगी सुरंगय देह ।

उवकठय सदेम, गावै पकत^२ चित्त सालाई^३ ॥ ८५ ॥

प्रा० पा० १, भी० का० । २, पा० । ३, का० ।

शब्दार्थः—अचलीय=अचल, अमिट । ससीहर=शिशिरऋतु- । रस-रह=रस के रास्ते पर । उक्कठय=उत्कंठिता । चित्र-सालाह=चित्रशाला में ।

अर्थः—शिशिर-ऋतु में उस दंपति का स्नेह अमिट हो गया । जब उन प्रेम मांगियों की सुन्दर काया प्रेम रंग से रंगी जाने लगी तब पृथ्वीराज की अभिलाषा करने वाली अन्य रानियाँ (उत्कंठिताएँ) चित्रशाला में एकांत बैठ कर प्रियतम के प्रति संदेश सूचक गीत गाने लगी ।

मौनं करि कोकिलयं, जलधर सम एह कठ उचती १ ।

विकसित करजल वदे, विकसित रमे कोक सावासी ॥ ८६ ॥

शब्दार्थः—एह=यह । उचती=उच्चारण करने लगी । कजल=कजरारे । कोक=कोकशास्त्र । सावासी=सहवासी ।

अर्थः—जलधर के समान काली कोयल वसंतागम में अपने मधुर स्वर से मुग्ध कर अन्य सब जीवों को चुप कर देती है । वे कन्ठों से उच्चारण करती हुई उस दंपति (हंसावती-पृथ्वीराज) के विषय में यह संकेत करने लगी कि (हंसावती के) विकसित एवं कजरारे नैत्र वंदना करते हैं और उसका सहवासी (पृथ्वीराज) प्रसन्नता पूर्वक कोक शास्त्र की रीति के अनुसार रमण करता है ।

संग्राम गए सूरौ, संपगो होइ चंद्रोदए ।

विविधा काम तीयं, अवसर रत्त काम लभ्माई ॥ ८७ ॥

शब्दार्थः—सूरौ=सूर्य । सपगो=संपर्क रखने वाले । विविधा=विविध, अनेकों, तरह । काम तीय=काम की स्वीरति । लभ्माई=देखा, प्राप्त किया ।

अर्थः—वह पृथ्वीराज युद्ध स्थल में प्रतापशाली सूर्य के समान, अपने सम्पर्क में आने वालों के लिए चन्द्रोदय के समान (शान्तिप्रद) और रति तुल्य वालाओं के लिए कामदेव के समान दिखाई देता था ।

गाहा नक्किय तत्ती, सदानं नूपुर उरवा ।

जिह अकुर पठिवत, भूतं जुध्याइ मग भगुरया ॥ ८८ ॥

शब्दार्थः—नक्किय=निश्चय । तत्ती=तत्त्व युक्त । सदानं=श्रावण । उरवा=हृदयमें । जिह=जिहसे । पठिवत=पठित (भाव) । मत्=प्र.णी (दम्पति) । जुध्याइ=उलभते है । मग=भाग । भगुरया=नन्द ।

अर्थः—यह गाथा निश्चय ही तत्व युक्त है इस रति-रण मे नूपुरों की ध्वनि हृदय मे पवित्र (काम) भाव अकुरित कर देती है, जिससे दंपति तो उलभ जाते हैं, पर वेचारी माग भग हो जाती है ।

जोई छविना वेन, रचया सि महिलान रूप महु कमले ।

सा^५ न चिय सु वियोगे, निमह मुत्तं च जुग जुगाण ॥ ८६ ॥

ग्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—जोई=देखा । ना=नहीं । वेन=उसकी । रचया सि=रचना की । महु कमले=मुख कमल । मा=उसको । न=नहीं । चिय=छिया, छूआ । वियोगे=विछोह । निमह=निमाया । मुत्तच=उत्तम ।

अर्थः—राजा की प्रियतमा हंसावती के मुख पर (प्रेम की अति शयता के कारण) जो छवि सुशोभित थी, वह किसी अन्य स्त्री के मुख पर नहीं देखी गयी । उसे कभी वियोग ने नहीं छूआ उनका वह उत्तम प्रेम आजन्म बना रहा ।

पिय आरभन^१ त्रियय, त्रिय आरभ कत^२ चित्ताय ।

सो तिय पिय पिय, पतौ-मा पिम विद्दम धाम ॥ ६० ॥

ग्रा० पा० १ भी० पा० । २ का० पा० ।

शब्दार्थः—चित्ताय=चित्त । पिय=प्रिय । पतौ=पतित । मा=नहीं । पिम=प्रेम । विद्दम=वद्रिका-श्रम । धाम=स्थान ।

अर्थः—जो पति स्त्री के और स्त्री पति के चित्त मे प्रेम का प्रस्फुटन कर देती है, उस दपति का प्रेम कभी पतित नहीं होता । ऐसे दपति का गृह वद्रीका श्रम (तीर्थ स्थान) के समान शोभित होता है ।

अज्जासन जो होज्जा, कठायं पयोहर फलय ।

दीह ते सय लख, हसन रसनाय स बकियं होई ॥ ६१ ॥

शब्दार्थः—अज्जासन=ब्रह्मासन । पयोहर=पयोधर । दीह=दिन । ते=वह । सय लख=सोड़ । हसन=रस कर । रसनाय=रस चुखाती हुई । बकिय होई=बोली, तिग्नी होकर ।

अर्थः—जिम व्यक्ति के कठ पयोधर-फल का स्पर्श कर लेते हैं (सुन्दर कुर्चों पर शयन कर पाते हैं) । उसको ब्रह्मासन की प्राप्ति के समान सुख होता है । जिस दिन

वाला वक्र होकर प्रेमरस का स्त्राव करती हुई हँस देती है, तब समझना चाहिये कि उसका वह दिन करोड़ों दिवस के समान सुख देने वाला होचुका ।

जो ती अह रस हाञ्चौ, उच्चसि या कील कंताई^१ ।

सो तिय अगग सुहाई, दिसअसि^२ नीरसं नायं ॥ ६२ ॥

आ० पा० १ पा० । २ का० ।

शब्दार्थः—जो=वह । ती=स्त्री । अह=अहो । हाञ्चौ=हाव । उच्चसि=उच्च । कील=कीलना, वश में किया । कंताई=पति को । तिय अगग=स्त्रियों के आगे, स्त्रियों में । सुहाई=सुहागिनी, सुहावनी । दिस असि=देखी गई । नायं=नहीं ।

अर्थः—अहा । जो स्त्री रस-युक्त उच्च हावों द्वारा स्वामी को वश में कर लेती है, वह स्त्रियों में सुहागिनी है (या सुहावनी है) । उस की ओर नीरसता नहीं फटकती (वह कभी नीरस नहीं देखी गई) ।

कवित्त

रयनि पंच संकुलित, पंच लज्जित दुरि लोइन ।

भिरत उभय भिरि खगग, मगग लग्गिय जुरि जोइन ॥

मिलत चतुर इक रीय, अतुर ग्रह ग्रह^१ दुद्दुर वल ।

कमल कमल मडिय सु, चित्त नख अक्ख चक्ख वल ॥

आरत्ति सोइ दइता विल्लुटि, पार समुद्र न नेह लहि ।

इय प्रात-पतिवृत प्रथम पहु, नवति चित्त आचंस लहि ॥ ६३ ॥

आ० पा० १ पा० भी० । २ प्र० प्रति टिपणी नं० ६ । ३ का० ।

शब्दार्थः—रयनी पंच=पांच रात्रि, कुछ दिन । संकुलित=पिक्कुड़ी हुई, सकुचित, गफित । लोइन=नेत्र । खगग=तलवार (दगकृपाण) । रीय=रीति । अतुर=आतुर । दुद्दुर=दुधुर्ष । कमल कमल=दोनों के हृदय कमल । मडिय=मडन क्रिया, गोसा बढाई, एक हो गए । चित्त=चितवते, देखते । नख=नख शिख । चक्ख वल=चलुवल । आरत्ति=दुःख, दी-नता । दइता=देवता, ईश्वर, दया । विल्लुटि=दूर हो गई, हो गए । इय=यह । प्रात=प्रात । पहु=राजा । नवति=नमा दिया, नमगया । आचंस=अश्चर्य ।

अर्थः—कुछ समय तक तो वह नव विवाहिता रानी मुग्धत्व के कारण संकुचित (शक्ति) ही रही, पश्चात् मध्यत्व (मध्यावस्था) में लज्जा युक्त नेत्रों में छिप कर देखने लगी किन्तु प्रौढावस्था में तो दोनों के नेत्र रक्त होकर प्रेममार्ग पर तलवार के समान (कटाक्ष करते हुए) टकराने लगे। इस प्रकार वे दोनों प्रणयी एकाग्र हो गये जिससे दुधुर्ष आकर्षण-शक्ति के कारण प्रीति-गृह में मिलने के लिए आतुर रहने लगे। उनके हृदय-कमल एक हो गये। वे एक दूसरे को टकटकी लगा कर चक्षु द्वारा नख से शिख तक देखते रहते। ईश्वरीय कृपा से वे दुःख मुक्त थे (या सुरति समय में होने वाली दीनता और दया दूर हो गई)। कोई उनके स्नेह-सागर का पार नहीं पा सकता। उस रानी का यह पतिव्रत प्रातःकाल के समान है जिसने प्रारंभ में ही राजा को भुका दिया (सुबह वदना की जाती है, इसलिए पतिव्रत को प्रातःकाल का रूप दिया गया है) उसी का मन में आश्चर्य है।

हसराइ हसनिय, पानि ग्रहनी ग्रह हल्लिय ।
मालव द्रुग देवास, वास मुद्धत नव वल्लिय ॥
हय गय धुर धर धम्म, कम्म किन्ती अति दानह ।
ता पाडे रनथंभ, प्रीति खींची चौहानह ॥

चित्रगराइ रावर रमिय, देव-राज जहय वहिय ।
विचिय वसंत रिति अभ्रिय, अचल एक किन्ती रहिय ॥ ६४ ॥

शब्दार्थः—हसराइ=पर्याय रूप भानुराय । हसनिय=हसावती । हल्लिय=गई । मालव=मालव प्रातः । द्रुग=गढ । वास=स्थान, उत्पत्ति स्थान । मुद्धत=मुग्धा । नव वल्लिय=नवीन लतिका । कम्म किन्ती=क्रीति कार्य । ता पाडे=उसके पीछे, उसीके कारण । खींची=खींच लिया, आकर्षित किया । रमिय=प्रस्थान किया । देव राज=देव-राज, देवास । वहिय=गया । रिति=रतु । अभ्रिय=अलम्ब, अभिगम ।

अर्थः—(कवि इस पद्य में राज कुमारी हसावती का परिचय देता है) ।

हसराय (पर्याय रूप में वही देवास का यादव राजा भानुराय) की सुपुत्री हसिनी (हसावती) ने पाणिग्रहण के पश्चात् गृह में (दिल्लीश्वर के राज महलों में) प्रवेश किया। जो मालव प्रातीय देवास दुर्ग में उत्तन्न हुई थी वह मुग्धा नवीन लतिका के समान थी जिमकी शादी में यादव राजा ने कीर्ति प्राप्त करने के लिये हाथी घोड़े पृथ्वी आदि का सकल्प किया। उसी (हसावती) की प्रीति के कारण

पृथ्वीराज का चित्त रणथंभोर की ओर आकर्षित हुआ (उसी के कारण पंचायन से लोहा लिया और उसे प्राप्त किया) । युद्ध के बाद चित्तौड़ पति रावल ने अपने स्थान की ओर प्रस्थान किया और यादव राजा भो देवास (देव-राज) चला गया । इस तरह दुर्लभ वसत ऋतु व्यतीत हो गई । केवल उन वीरों की कीर्ति ही अटल रही

गेहा

वित्त^१ कवित्त उगाह करि, चद छद कवि चंद ।

समर अठारह वरप दस, दिवस त्रिपंच रविद ॥ ६५ ॥

शब्दार्थः—वित्त=सपति । उगाह=उगाहा छद । चद=चद्रमा । छद=वार्षिक, मासिक, गणवद्ध । कवि-चद=चद बर्दाई के ईश्वर (स्वामी) राजा-पृथ्वीराज । रविद=रवि और इन्द्र ।

अर्थः—(कवि, इस पद्य में पृथ्वीराज और समर-केशरी रावल की हंसावती के विवाह के समय जो आयु थी, उसका उल्लेख करता है) ।

मेरे (कविचंद के) स्वामी पृथ्वीराज की आयु इस समय-वित्त ८ (सपति आठ प्रकार), कवित्त १ (पट्पदी छंद), उगाह १ (उगाहा छद), करि ८ (दिग्गज), चन्द १, छद ३ (वार्षिक, मासिक, गणवद्ध), कुल २२ वर्ष और समर-केशरी की आयु अठारह १८, दस १०, दिवस १, त्रिपंच १५, रवि १२, इन्द्र १, कुल ५७ वर्ष की थी । (समर-केशरी पृथ्वीराज से अधिक आयु के थे । पृथ्वीराज की वहिन पृथा-कुंवरी, समर-केशरी की पाचवीं रानी थी) ।

पहाड़ राय

(समय ४२)

दोहा

दुज समु^१ दुजी सु उच्चरिय, ससि निमि उज्जल देस ।

किम तौवर^२ पाहार पहु, गहिय सु असु^३ नरेस ॥ १ ॥

प्रा० पा० १ का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—दुज-दुजी=द्विज-द्विजी (कविचन्द और उसकी स्त्री के प्रश्नोत्तर के साथ जो समय चलाया गया उसमें कविचन्द अपने को कहीं कहीं शुक और द्विज और अपनी स्त्री गो शुकि या द्विजी लिखता है । शुक शुकी से स्वकीय (अनूकूल) और स्वकीया मतलब है, और द्विज द्विजी से चन्द्र मुखी और चन्द हो जाता है, कवि चन्द और उसकी चन्द्रमुखी पत्नी या-वदी भी ब्राह्मण माने गये हैं) । ससिनिस=चन्द्रमा युक्त रात्री, शुक्लपक्ष । तौवर=तैवर क्षत्री । पहु=राजा । असुर नरेस=म्लेच्छ-राज शहाबुद्दीन ।

अर्थः—शुक्ल पक्षीय रात्रि मे जिस समय चन्द्रोदय से सारा देश उज्ज्वल हो रहा था । उस समय चंद्र मुखी (कविचन्द की स्त्री) ने चन्द (कविचन्द) से कहा कि तौमर पहाडराय और पृथ्वीराज ने बादशाह को किस प्रकार पकडा, उसका वृत्तान्त कहिये ।

कवित्त

सवत सर च्यालीस, मास मधु पख्व धम्म धुर ।

त्रतिय दोह अहरुन्न, उदित रवि व्यव वरन तर ॥

आलिय आल आलोल, गरुअ गु जे विसम्म गन ।

रस रसाल मजरि तमाल, पल्लव कमल्ल मन ॥

साहाबदीन सुरतान भर आनि द्वार ठहौ सु वर ।

अख्यै ततार खुरसानखा, कहा खवरि चहुआन घर ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—सर=शामदेव के प्राण पाच । च्यालीस=४० अक्ष (जुमले दोनों की संख्या ११४५) ।

मधु=चैत्र । पखल=पक्ष । धम्म=धर्म, धर्म उज्ज्वल है अतः शुक्लपक्ष । धुर=निश्चय । अहरुन्न=अरुण ।

तर=नीचे । अलिय=भ्रमर । आल=आलवाल, वयारियें । आलोल=किल्लोल । गरुध=गहरे । विषम=विषम ढग से, अस्थिर रूप से । रसाल=आम्र । मर=वीर । अरुखै=कहो ।

अर्थ:—तब कवि चंद्र कहने लगा—अनद संवत् ११४५ (वि० सं० १२३६) चैत्र-मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को अरुणिमा लिये हुए सूर्य उदय हुआ और उसने अपना प्रतिविंब नीचे फैलाया । भ्रमर गुन्जार करते हुए चंचल गति से (विषम ढग से) कभी रसयुक्त मजरी के रस के लिये, कभी तमाल-पल्लव और कभी कमल की आकांक्षा से क्यारियों में किल्लोल कर रहे थे । उस समय वीर सुलतान शहाबुद्दीन अन्तपुर से बाहर दरवाजे पर आया और तत्तारखॉ तथा खुरसानखॉ से कहने लगा कि आज कल चाहुअन नरेश पृथ्वीराज के वहाँ की क्या सूचना है ।

गाथा

उच्चरि खान ततार, अरि वरजोर अतर अत्तार ।

सामंत सुर स भारं, मत्त अमित्त जम्म^१ आकार ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—अरि=शत्रु पृथ्वीराज । वरजोर=प्रवल । अतर=दुस्तर । अत्तारं=पार नहीं किया जाता । मार=मारी, बड़े-बड़े । मत्त=मतवाले । जम्म=यम ।

अर्थ:—तब तत्तारखॉ ने कहा—वह शत्रु सरजोर (प्रवल) और दुस्तर है उससे पार पाना मुश्किल है । उसके बड़े बड़े बहादुर सामंत विशेष मस्ती वाले और यम-स्वरूप हैं ।

दोहा

तवि^१ ततार खुरसानखॉ, सुनौ साह साहाव ।

अरि अभंग दल सक्क रस, अमित तेज बल आव ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ टि० न० ४ ।

शब्दार्थ:—तवि=स्तवन किया, स्तुति वाक्य कहे । अरि=अड़िष्ट । सक्करम=मक, इन्द्र ।

अर्थ:—फिर तत्तारखॉ और खुरसानखॉ ने शहाबुद्दीन के विषय में भी स्तुति-वाक्य कहे—हे शाह आपका शक्तिशाली दल है और आप स्वयं इन्द्र तुल्य प्रताप, बल और नूरवाले हैं । आपको शत्रु से अवश्य लड़ना चाहिए ।

अरुन वरुन उदित अरुन, वदि प्राची रुचि रूप ।

मेच्छ सामि चदि सेत अह, रन दिल्ली सम भुप ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—वरुन=वरुन, रग । अरुन=सूर्य । वदि=उठा । रुचि=रुचिकर । सामि=सामी । सेत=श्वेत । अम=अश्व, घोड़ा ।

अर्थः—पूर्व दिशा से लालिमा लेकर सूर्य उदय हुआ और ऊपर उठने लगा है । उसी प्रकार है—म्लेच्छों के स्वामी शहाबुद्दीन । दिल्लीश्वर जैसे राजा से युद्ध करने के लिये श्वेत रग के घोड़े पर चढ़िये ।

कवित्त

अरुन कोर वर अरुन, वदि सहाव साहि चदि ।

दिसि प्राची दिक्खन विपथ्थ, पच्छिम उत्तर वदि ॥

सेस भाग भै भाग, भोमि म्कुचि कुकपि निल ।

गमन सेन उडि रेन, गेन रवि पत्त धु ध इल ॥

दस कोस थान दल उत्तरिग, घन अवाज घर रिपु परिग ।

गत मेच्छ मडि मडल सु मति, गति सु जग अगार धरिग ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—अरुन कोर=अरुण किरण । प्राची=पूर्व । दिक्खन=दक्षिण । विपथ्थ=राह कुराह । सेस भाग=शेषभाग को कपाली । भै=होने लगी । भाग=हिस्से, उडित, भजित । कुकपि=बुरी तरह से कापने लगा । निल=अनिल, पवन । रेन=रेणुकरण, धूलि । गेन=गगन, आकाश । पत्त=पहुँच कर । धु ध इल=धुंधला कर दिया । उत्तरिग=उत्तर पड़ा । घन-अवाज=विशेष आवाज, गोर गुल । परिग=पहुँच गई । गत मेच्छ=गमन करने वाले म्लेच्छों ने । मडि मडल=समा की । सु मति=थेष्ट मन्त्रणा । गति=हालत । अगार धरिग=सामने गया ।

अर्थः—सूर्य की श्रेष्ठ अरुण किरणों की वदना कर शहाबुद्दीन घोड़े पर सवार हुआ, उसकी सेना राह कुराह होती हुई पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण की तरफ घटचली, जिससे शेषभाग का कपाल भग होने लगा, भूमि मशक होगई । अन्य को कपा देने वाला पवन भी स्वयं बुरी तरह कापने लगा । सेना के चलने से धूल उड़ने लगी और वह आकाश में फैल गई, जिससे सूर्य धुंधला दिखाने लगा । दस

कोस चलने के बाद सेना ने पड़ाव ढाला, जिसके शोरगुल से शत्रु तक सूचना पहुँच गई। फिर चढ़ाई करने वाले मलेच्छों ने सलाह करने के लिये सभा बुलाई और युद्ध-स्थिति का प्रश्न सामने रक्खा।

दोहा

रति निसान डग मग अरुन, जिम दीपक वसि वात ।
सुनिव चप अति साह मन, तन विकंप अकुलात ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—रति=लाल । निसान=पताकाएँ । डग=हिलने । मग अरुन=सूर्य के रास्ते पर, सूर्य को स्पर्श करती हुई । वसि वात=पवन के कारण । चप=दवाया जाना । विकंप=प्रकंपित । अकुलात=व्यथित ।

अर्थः—अरुण पताकाएँ सूर्य का स्पर्श करती हुई इस प्रकार हिलने लगीं, जिस प्रकार पवन के कारण दीप शिखा हिलती हो, अथवा पृथ्वीराज द्वारा विशेष रूप से दवाये जाने पर शाह का तन-मन व्यथित और प्रकंपित होता हो ।

मिले मीर भर खान सब, रचि दिवान दरवार ।
मंड मसूरति मत्त वर, तव खुरसान ततार ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—भर=मट, योद्धा । मंड=मंडन किया । मत्त=मंत्रणा ।

अर्थः—मीर और खान योद्धाओं ने मिल कर दीवान भवन में सभा की और मसुरत्तिखॉ, खुरासानखॉ और तत्तारखॉ ने मंत्रणा की ।

कवित्त

मीर खान सेरन वितड, हक्किय हक्कारिय ।
सन मुख साहि सहाव, बोलि वह वह वक्कारिय ॥
हनों सेन हिँदवान, ऐन चहुआनह संधौ ।
अरि अरिन्न अरि भीर, हक्कि हक्कों खग वधौ^१ ॥

गज वाज साजि ऊयल पथल, खल अटुन भंजौ भरन ।
भुभ माव भिस्त मुंकों^२ दरन, के घोरह जीवत^३ धरन ॥ ९ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ ३ का० ।

शब्दार्थः—वितंड=वितुण्ड, हाथी तुल्य । हविः=चल कर । हनकारिण=हनुकार की । बह बह बवकारिण=उर्ध्व घोषणा की । ऐन=मृग । मर्धौ=पाधन करो, लोहा लों । अरि=अङ्क । अग्नि=शत्रु । अरि भीरु=शत्रु और शत्रु-भ्रूण । हनिकर=विचलित करके । हनिको=नहीं । खग वधौ=तलवार बांध कर । अदुन=शृ तला । भुअ माख=पृथ्वी पर कहा जाऊ । मिस्त=गहिशत । मुको दरन=दलन करना, बन्द करों । घोरह=घोर में, कत्र में ।

अर्थः—मीर और त्वानं योद्धाओं में वितुण्ड-तुल्य शेरन वीर था । उसने उठ कर हुंकार की और शहाबुद्दीन के समक्ष उर्ध्वघोष कर कहने लगा—मैं हिन्दू-सेना का नाश करूँगा और मृग-स्वरूपी चाहुवान नरेश पर शस्त्र आजमाऊँगा । मैं तलवार लेकर आक्रमण करूँगा और शत्रु समूह से लड़कर उसको विचलित कर दूँगा । विपत्ती के हाथी, घोड़ों आदि साज बाजों को उथल पुथल कर शत्रु योद्धाओं की शृंखला तोड़ दूँगा । शत्रुओं का नाश होना मेरे द्वारा तब ही बन्द होगा जब ससार की जबान पर मेरे बहिश्त में जाने की बात होगी, नहीं तो मैं जीता ही कत्र में निवास करूँगा

दोहा

रावण प्रव्व विनाश रज, ऐन सीस हय वीर ।

अर्पा^१ कौनन उच्छ्रयौ^२, कालू सेरन मीर ॥ १० ॥

प्रा० पा० १-२ का० ।

शब्दार्थः—प्रव्व=गर्व । विनाश=विनाश समय । रज=शोभित हुआ, किया । ऐन=उसका । हय=काटे गए । अर्पा=शक्ति । कौनन=किसका नहीं । उच्छ्रयौ=उछटा, दूर हुआ । कालू=काला, पगला ।

अर्थः—तब बादशाह ने कहा—हे पागल शेरन मीर । विनाश-समय रावण को गर्व हो आया था । हे वीर । इसीलिए उसका सिर खडित हुआ और किस बलवान का बल क्षीण नहीं हुआ है ?

गाथा

बुल्लवि^१ दूत हजूर, मडे पत्रीय वीर पत्राय ।

अखित पान प्रमान, कथी गाथाय सूर चहुवान ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—बुल्लवि=बुलाया। हजूर=मेवामें। मंडै=लिखी। वीर पत्राय=वीर रस पूर्ण पत्र।
अखित=अक्षत (निमंत्रण के तदुल)। पान=हाथ। प्रमान=समभेना। कंधी=कहना।

अर्थः—फिर बादशाह ने दूतों को हजूर में (सेवामें) बुलाया और वीरता की द्योतक (वीर रस से परिपूर्ण) पत्रिका लिखी और कहा— बहादुर चहुआन को कहना कि मेरे हाथों में यह (गाथावद्ध) पत्रिका निमंत्रण के चॉवल की भांति है।

दोहा

बोलि दूत वच^१ निकट लिय, दिय सु पत्र तिन हृथ्य^२ ॥

कहौ जाइ ध्रम्मान सों; सजि चहुआन समध्य ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—वच=मध्यस्थ। ध्रम्मान=धर्मायन कायस्थ। समध्य=समर्थ।

अर्थः—शाह और दूतों के मध्यस्थ व्यक्ति ने दूतों को निकट बुलाकर उनके हाथों में वह पत्र दिया और कहा—धर्मायन से जाकर कहना कि बलवान चाहुआन को सजने के लिए सूचित कर दे।

गाथा

निज केवी सारूढ, वर साहाय दिल्लीयं प्राप्तं ॥

वरति मत्र मख किन्न; गजिनय मद भद नीसान ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—निज=स्वयं। केवी=कहा। सारूढ=चढ़ा हू। प्राप्त=प्राप्तने के लिए। वरति मत्र=अतिम मत्र। किन्न=क्रिया। मद=मस्ती। मद=भ्राद्रपद के। नीसान=नक्कारे।

अर्थः—स्वयं बादशाह ने भी कहा—मैं (शहाबुद्दीन) दिल्ली विजय के लिए चढ़ा हूँ। मेरे इस युद्ध-यज्ञ का यह अतिम मत्र-पाठ (मत्रणा) है। उसी मस्ती के कारण मेरे नक्कारे तेरे सिर पर भ्राद्रपद के मेघ के समान गर्ज रहे हैं।

दोहा

गए दूत चलि निकट चव, करि सलाम वर साह^१।

पुर डकिन ककन सजन, वलि आतुर वर राह^२ ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—चव=चार। पुर डकिन=योगिनि पुर (दिल्ला)। ककन=ककाल, उतग शरीर।

अर्थः—उन चारों दूतों ने निकट जाकर शाह को सलाम किया और दिल्ली के बलवान ककालों को (उत्तंग शरीर वाले योद्धाओं को) युद्ध के लिए तैयार करने की शीघ्रता के साथ रास्ता पकड़ा ।

स्याम पख्व पूरन क्रमिग, पहु जुगिन पुर नैर ।

दिय कगर धस्मान कर, वर मगै रिन वैर ॥ १५ ॥

प्रा० १ भी० का० ।

शब्दार्थः—स्याम पख्व=कृष्ण पक्ष । क्रमिग=चल कर । पहु जुगिन पुर=योगिनी पुर के राजा के, (दिल्ली पति के) नैर=नगर (दिल्ली) । कगर=कागज ।

अर्थः—कृष्ण पक्ष के पूर्ण होने पर वे दूत दिल्ली पति के नगर (दिल्ली) पहुँचे और धर्मायन के हाथ में शाह का पत्र दिया और कहा—हमारा वीर स्वामी युद्ध करना चाहता है ।

गाथा

दिय पत्री धस्मान, पान गहि पाइ नाइ वर मथ्य ।

भर चौहान समथ्य, सज्जौ सम साह कज्जय वैर ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—पान=हाथ में । पाइ नाइ=चरण-वदना करके । मथ्य=सिर । कज्जय वैर=शत्रुता के लिए ।

अर्थः—धर्मायन को जो शाही पत्र दिया गया था, उसे उसने शाह की चरण वदना कर हाथों में लिया और सभा में जाकर कहा—हे चाहुआन के सामर्थ्यवान योद्धाओं ! शाह से वैर लेने के लिये तैयार हो जाओ ।

दोहा

कायथ कगर वचिकर, हाय थहाय सु कीय ।

साहि काल सुभर-सुभर, आय पहुँयो दीय ॥ १७ ॥

शब्दार्थः—कायथ=कायस्थ (धर्मायन) । वचिकर=पढकर । हाय=खेद । थहाय=स्तमित होकर । साहि काल=शाह के लिए काल स्वरूपी । सुभर सुभर=ग्रेष रग से मिड़ने वाले सामत । दीय=दिन ।

अर्थः—धर्मायन ने वह पत्र पढ़कर सुनाया और स्तम्भित होकर खेद प्रकट किया और कहा—हे शाह के काल स्वरूपी योद्धाओं ! वह दिन (युद्ध का दिन) आ गया है ।

दोहा

मरदां खेती खग मरन, अस्थि समप्पन हथ्य ।

सो सच्चवा कच्चवा अवर; कौइ दिन रहै सु कथ्य ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—खग-मरन=तलवार द्वारा मारा जाना । अस्थि=अर्ध, दान । समप्पन=देना । कौई दिन=सदैव ।

अर्थः—दान देना और खड्ग द्वारा मारा जाना वहादुरों की खेती (व्यवसाय) है । ऐसे वीर ही सच्चे वीर हैं अन्य सब कच्चे हैं । ऐसे वीरों की ही ख्याति हमेशा बनी रहती है ।

कथा रही पैगंवरों, अरु भारथ्य पुरान ॥

तानें हठ हजरत्ति है, सुनौ राज चहुआन ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—हजरत्ति=हजरत, बादशाह ।

अर्थः—राजा को सन्नोधित कर कहा—पैगम्बरों की ख्याति, कथाओं में और हिंदुओं की ख्याति महाभारत तथा पुराण ग्रन्थों में अब भी बनी हुई है । इसीलिए हे चाहुआन नरेश । बादशाह ने हट पकड़ रखा है ।

दौ पत्री इह कहि सु कर, करि सलाम तिय वार ।

साहिव तुम सन लरन कौ, आयौ सिंधु उतार ॥ २० ॥

शब्दार्थः—तिय वार=तीन वार । साहिव=शहाबुद्दीन । मन=मे । सिंधु=सिंध नदी ।

अर्थः—उसने राजा की तीन वार वन्दना की और शाही पत्र हाथ में दे कर कहा कि शहाबुद्दीन आपसे लड़ने के लिए सिंध नदी पार कर आ गया है ।

सुनि मत्री नृप अखिख सम, वंचि पत्र तिनवार ।

कूंच कूंच खवार पति, आयो सिंधु उतार ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—अखिख=म्हा । सम=समय । तिनवार=उस समय । खवार पति=बादशाह ।

अर्थः—यह सुन मंत्री कयमास ने उस पत्र को पढ़ उम्मी समय राजा से निवेदन किया कि पडाव करता हुआ कधार-पनि (शहाबुद्दीन) सिंधु उतर कर आ गया है ।

सुनि पत्री चहुआन ने, सम सामतन राज ।

बात परद्विय सब भरन, आप आप कल^१ साज ॥ २२ ॥

प्रा० १ पा० का० ।

शब्दार्थः—सम=सहित । बात परद्विय=सूचना दी । आप २=बुद्ध बखुद, अपनी २ ।

अर्थः— यह पत्र सामतों सहित राजा ने सुना और सामतों को अपने-अपने योद्धाओं (शक्ति) सहित सजने के लिए सूचित किया ।

कवित्त

कहै राज प्रथिराज, सुनौ सामत सूर भर ।

गज्जनेस चतुरथ्य, विरथ आयौ सु आप पर ॥

साज बाज मयमत्त, खग वर भर उभारिय ।

उतरि वेग नदि सिंधु, सुनिय धुनि अर उत्तारिय ॥

सज्जौ समथ्य सामत सब, समर चावर हवरन ।

सुरतान खान खुरसान पति, दल बहल पर वस परन ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—चतुरथ्य=चारों अर्थ-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष । विरथ=व्यर्थ, कुछ नहीं समझता हुआ । आप=अपने । मय मत्त=मस्ताने, मतवाले । अर=अरि, शत्रु । उत्तारिय=उतावल, आतुर । समर=युद्धार्थ । चावर=चँवरी । हवरन=आडवर । परन=पड़ने वाला, प्रवाहित होने वाला ।

अर्थः—राजा पृथ्वीराज कहने लगा—हे बहादुर सामतों ! अपने ऊपर गजती पति चारों अर्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को कुछ नहीं समझता (परवाह नहीं करता) हुआ चढ आया है । जिसके बहादुर योद्धा मस्ताने साज बाज युक्त हैं, उन ने तलवारे उठाई हैं । वह शीघ्रता पूर्वक सिंधु नदी पार कर आ गया है । शत्रु के आने का शोर गुल सुनाई दे रहा है । अब हे मामर्ध्यवान मप्रस्त सामतों ! युद्धार्थ चँवरो के आडम्बर सहित तैयार हो जाओ मर्याक खुरसान पति खान सुलतान के दल-बादल आने वाले हैं ।

तमकि राज प्रथिराज, कहै मामंत-सूर भर ।
 -चाहुआन समरथ्य, पृथ्य भारथ्य चारु चर ॥
 सिंधु साह गज गाह, खग खडौं खल खित्तह ।
 कर अजुरि रिखि आस्त, चन्द अचवन दल कित्तह ॥
 हर हार सार समुख समर, अमर माह जग्यौ अमर ।
 व्योमान^३ व्योम आरुढ धर^४, वनी चमू चौसर चमर ॥ २४ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ भी० पा० । ३ पा० का० । ४ का० ।

शब्दार्थः—तमकि=तैश में आता हुआ । पथ्य=पथ (अर्जुन) । चारु चर=श्रेष्ठ ढंग से सचालन करने वाला । गाह=कुचलता हुआ । खित्तह=रण क्षेत्र में, पृथ्वी पर । रिखि=ऋषि । अस्ति=अगस्त । चद=कविचन्द या एक की सरुया । अचवन=आचमन पीना । कित्तह=कीर्ति । हार=माला (मुण्डमाला) । सार=मजादूगा । अमर=अमरत्व । अमर=अनुकरण । व्योमान=विमान । व्योम=आकाश । वनी=वन गई । चमू=सेना । चौसर चँवर=चौसरे चँवर (एक महावत के, दूसरा खवाषी में बैठे हुए के और एक-एक दाहिने बायें हाथी पर चढे हुए सामन्तों के हाथों द्वारा राजा या बादशाहों पर चलाये जाने वाले चँवर को चौसरे चँवर कहते हैं) ।

अर्थः—तैश में आकर पृथ्वीराज कहने लगा—हे बहादुरों ! मैं चाहुआन-नरेश सामर्थ्यवान हूँ युद्ध का श्रेष्ठ ढंग से सचालन करने में मैं अर्जुन के समान हूँ । सिंधु की ओर से आने वाले शाह के हाथियों को कुचल कर खड्ग से उन दुष्टों के पृथ्वी पर टुकड़े कर दूंगा । अगस्त ऋषि के समान अञ्जलि भर कर एक ही अञ्जलि से शत्रु दल और कीर्ति का आचमन कर डालूंगा (पी जाऊँगा, नष्ट कर दूंगा) । युद्ध में सामन्ता कर शिव का गला मुण्ड-माल से सजा दूंगा । मुझ में अगस्त्य का (यश रूप से अमर रहने का) अनुकरण मोह जाग्रत हो गया है । राजा के इतना कहते ही आकाश-मण्डल विमान स्थित देवताओं और आसराओं सहित और पृथ्वी चौसरे चमरों से सुसज्जित सेना सहित दिखाई पड़ने लगी ।

दोहा

सुनि अवाज सुरतान दल, हरखि राज पृथिराज ॥
 कोस पच दुअ स वचिग, हिंदुअ मेअ अवाज ॥ २५ ॥

शब्दार्थ—पच दृष=दस । स=उसके । वचिग=वीच मे ।

अर्थ:—शाही सेना के आने की सूचना सुन कर राजा पृथ्वीराज उत्साहित हुआ और हिंदू तथा मुस्लिम सेना के बीच दस कोस का अंतर रह गया, जिस से शोर गुल मच गया (दोनों सेनाओं के पडाव मे दस कोस का अन्तर था) ।

उदय भान प्राची अरुन, चह्यौ राज सजि सेन ॥

उर पातर कातर इसे, मेछ पीर फरसे न ॥ २६ ॥

शब्दार्थ:—उर पातर=वैश्या का हृदय । इसे=ऐमे, समान । कातर=कायर । फरसे=फलसे, फलसा, द्वार ।

अर्थ:—पूर्व दिशा अरुण वर्ण हुई और सूर्यादय हो पाया, उम समय पृथ्वीराज सेना सजाकर सवार हुआ । जिससे कायरों के हृदय वैश्याओं के समान चंचल दीख पडे और मुसलमानों के दरवाजे (द्वार) पर पीर दिखाई नहीं दिए ।

गाथा

अच्छरि कच्छिय गैन, चैन चवसठु गैन गोमाय ॥

हर हरखै हाराय, जुद्ध सज्जाइ दो दसा दीन ॥ २७ ॥

शब्दार्थ:—अच्छरि=असगएँ । कच्छिय=कसी, बनी ठनी । गैग=गगन, आकाश । चैन=सुख-पूक । चवसठु=चौसठ योगिनिये । गोमाय=गमन करने लगीं । हाराय=हार के लिए (पु ड माला के लिए) । दो दसा=दोनों ओर से । दीन=दीन-हिंदू-मुसलमान ।

अर्थ:—सज कर (बन ठन कर) असराएँ और चौसठ ही योगिनियाँ सुख पूर्वक आकाश-मडल में विचरने लगीं । दोनों ओर से दोनों दीन युद्ध के लिए तैयार हुए, यह देख कर शकर को भी मुण्डमाला प्राप्ति की अशा से प्रसन्नता हुई ।

दोहा

मिलिवि सेन अरुन सु अनी, तनी तनी दुअ दीन ।

आसुर^१ सुर सज्जे सयन, दुअ^२ वीरा रस भान ॥ २८ ॥

प्रा० १ पा० । २ का० ।

शब्दार्थ:—मिलिवि=मिली, मिल गई । अनी=पुढाना । आसुर^१=दानव । वीरा रस=वीर रस में । भान=भीनी हुई, नहा कर ।

अर्थः—दोनों दीन की सेना तन कर मुहाने पर अरुण वरण धारण कर इस प्रकार मिली मानो वीर रस (वीर रस का रंग भी अरुण माना गया है) में नहा कर देवता और वानव दोनों की सेना सुसज्जित हुई हो ।

भेटि^१ साहि भर खान सब, पतिपुच्छीं इह वत्त ।

अरि प्रचंड दल वल प्रवल, करहु समर सक मत्त ॥ २६ ॥

प्रा० १ भी० का० पा० ।

शब्दार्थः—पतिपुच्छीं=प्रतिपत्नी, विपत्तियों के लिए । इह वत्त=यही एक निश्चय किया । सकमत्त=शक्ता नहीं करनी चाहिये ।

अर्थः—समस्त खान योद्धाओं ने शाह से भेंट की और विपत्तियों के लिए यही बात निश्चय की कि शत्रु की सेना प्रचण्ड और प्रवल है । फिर भी युद्ध करना चाहिये और मन में शक्ता नहीं रखनी चाहिए ।

दोहा

ढलकि ढाल बहु रंग वर, गुरुतम चढि गजराज ।

मलकि नीर वपु दल चढिय, मनु पावस गुर राज ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—गुरुतम=गुरुत्तम, बड़े और उत्तम । दल चढिय=चढाई की, बढ़ा । पावस गुर=वीर पावस, घृति वृष्टि । राज=सुशोभित हो ।

अर्थः—बड़े और उत्तम योद्धा हाथियों पर सवार हुए । उनकी विविध रंगों युक्त ढालें झूलने लगीं (लटक कर हिलने लगीं) और उन वीरों के शरीर पर नूर मलकने लगी । उस समय सेना इस प्रकार बढ़ने लगी, मानों अति वृष्टि होने लगी हो ।

भर सहाव सञ्जिय अनि, जवन^१ जोर चतुरग ।

सुभर प्रफुल्लित वीर मुख, काश्र कंठ अग ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० ।

शब्दार्थः—जवन जोर=यवन शक्ति ।

अर्थः—वीर शत्रुहीन ने यवन शक्ति के बल पर चतुरगेन, सेना सजाई, जिससे वीर योद्धाओं के मुख प्रफुल्लित हो गए और कायरों के शरीर झंपने लगे ।

जनुकि पथ्य भारथ्य भर, लगि कुर दड प्रचट ।

चाहुआन दल मेच्छ दल, हकि हयगय भुएड ॥ ३२ ॥

शब्दार्थः—जनुकि=जानो, गानो । पथ्य=पार्थ । भर लगि=भिड़ने लगा । कुर=कोरन । पड प्रचट=प्रचड काय । हकि=बटे । हय-गय=घोड़े हाथी ।

अर्थः—जिस प्रकार महाभारत युद्ध मे अर्जुन प्रचडकाय-कोरवो से भिड़ने लगा था, उसी प्रकार चाहुआनी और मुस्लिम सेना हाथी घाडा के समूह के साथ वढ कर भिड़ पड़ी ।

इत हिंदू उत मेछ दल, रन चहुे वर धीर ।

हकि तेज असि वेग वढि, लगे सु भरहर भीर ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—रन चहुे=युद्ध में उमड़ पड़े । हकि=चलाते हुए । असि=तलवार । भरहर=मड-हड़ाने, भयातुर । भीर=समूह ।

अर्थः—इधर से हिंदू और उधर से मुस्लिम सेना के श्रेष्ठ धैर्य धारी योद्धा रण क्षेत्र मे स्तर पड़े और तेजी से तलवार चलाते हुए तीव्र गति से वढ कर शत्रु-समूह को भयातुर करने लगे ।

गाथा

नचिय नारद मोद, क्रोध घन देखि सुभट्टाय ॥

हर हरक्खिय हार, पत्तो चदय भान पयान' ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ प० भी० ।

शब्दार्थः—नचिय=नाचने लगे । मोद=प्रसन्नता पूर्वक । सुभट्टाय=सुभट्टों को । हार=(मुण्ड) माला के लिए । पत्तो=आ पट्टा उदय हुआ ।

अर्थः—श्रेष्ठ वीरों को विशेष क्रोध से भरे हुए देख कर प्रसन्नता युक्त नारद नाचने लगे और मुण्ड माला की इच्छा मे शकर भी प्रसन्न दीख पड़े । सूर्य के अस्त होने के बाद चंद्रमा भी आकाश मंडल मे आ पहुँचा ।

दोहा

यकि जुभक्त सभ्या सपत, सपत भान पायान ।

पट्ट प्राची वजि पचजन, लहु सुभत गैयान' ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—धक्कि=धमित हो गए। सपत=आ पहुँची, हो गई। पहु=प्रात होने पर। पच जन=शंख। लहु=अरुण वरण। सूभत्त=दिखाई देने लगा। गैयान=गगन, आकाश।

अर्थः—युद्ध करते-योद्धागण थक गए सध्या आ पहुँची और सूर्य अपने स्थान को लौट गया। दूसरे दिन सुबह होनेपर पूर्व दिशा से शंख नाद होने लगा और आकाश अरुण-वर्ण दिखाई देने लगा।

कवित्त

उदय भान पायान^१, कोरि^२ दिख्खिय दल चट्टिय ।

हय गय नर आ ररिय^३ सह पर सहन वट्टिय ॥

अच्छरि तन सच्छरिय, व्योम, विम्मानह चट्टिय ।

दिख्खि सूर सामत, देव जै जै मुख पट्टिय ॥

हथिय सुधारि हथनारि धरि, गजैनारि करनारि वजि ।

चढि हिंदु मेच्छ मुँह मिलि अनिय, मनो अंभ पावस सु रजि ॥ ३६ ॥

पा० पा० १ भी० पा० २ का० ३ । पा० ।

शब्दार्थः—कोरि=किरणों। आ ररिय=आकर रल गये, ठिल गए। सह=आवाज। तन=तनकर (इठला कर)। सच्छरिय=मंचार करने लगी। व्योम=आकाश। मुख पट्टिय=मुँह में उच्चारण करने लगे। हथिय सु धारि=हाथी वाले, हाथी पर चढ़ने वाले। हथनारि=तुपक, आग्नेयास्त्र। गजैनारि=गर्जना करने लगी। करनारि=करनाल, वाद्य विशेष। अम=अम्र, बादल।

अर्थः—सूर्य के उदय होने और उसके ऊपर चठने से कुछ २ किरणें दिखाई देने लगीं उसी समय सेनाएँ चढ़ीं। हाथी, घोड़े और सेनिक आ २ कर युद्ध स्थल में ठिलने लगे। और आवाज पर आवाज बढ़ने लगी। इठलाती हुई आसराएँ आकाश-मण्डल में विमानों पर चढ़ी हुई विचरण करने लगीं। वहादुर सामन्तों को देख कर देवतागण मुँह से जय जय उच्चारण करने लगे। हाथियों पर चढ़े हुए योद्धाओं ने आग्नेयास्त्र (तुपकादि) प्रहण किए जिनका शोर होने लगा। करनालादि रण वाद्य बजने लगे। इस प्रकार हिन्दू-मुस्लिम सेना चढ़ कर आमने सामने मिली, जैसे पावस ऋतु में बादल मिल कर गोभीं पाते हों।

दोहा

भर भीखम तीकम अमर, धनुप वान अमान ।

हिंदुअ मीर सु इक हुअ, वीर^१ चद सनमान ॥ ३७ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—भर=भिड पड़े। भीखम=भीषम, भयानक रूप से। तीकम=तिक्कम, पृथ्वी के तीन पैड करने वाले विष्णु [विष्णु तुल्य पृथ्वीराज]। अमर=देवता तुल्य सामन्त। अमान=अग्ने किए। बढ़ाये। इक हुअ=मिल गए, गुथम गुथा हुए।

अर्थः—धनुप बाणों को बढ़ाते हुए भयानक रूप से विष्णु सहित देवताओं तुल्य हिन्दू योद्धा भिड पड़े। और रण स्थल में हिन्दू और मुस्लिम योद्धा गुथम गुथा हो गए। मैंने (कवि चन्द ने) भी यह देख उन वीरों का सम्मान किया (प्रशंसा की)।

कवित्त

नेत बधि हिंदू नरिंद सामत मत्त भर ।

मीर भार असवार^१, सवे ढाहे सु सद्धि सर ॥

पथ जेम भारथ, कथ सुभै जिम कथिय ।

सुकवि चद वरदाइ, एम कथिय रन वत्तिय ॥

वन घाइ अघाइ^२ सुघ इ घट, तेक तानि नचिय करस ।

चहुआन राइ सुरतान दल, नृत्य-वीर मड्यौ सरस ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० । २ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—नेत बधि=नेतृत्व गृहण किया। हिंदू नरिंद=राजा पृथ्वीराज। भार=मारी, बड़े। सद्धि=साधकर, निशानाकर। पथ=पार्थ। कथ=ख्याति। सुभै=सुशोभित। कथिय=कही। एम=इस तरह। घाइ=घाव करते हुए। अघाइ=प्रकर। तेक=नैग, तलवारें। तानि=तानकर। नचिय=नाचने लगे। करस=प्रर्षण करने लगे। नृत्य योग=वीर नृत्य।

अर्थः—उस समय हिन्दू राजा पृथ्वीराज ने नेतृत्व गृहण किया और वीर सामंत भिड़ने लगे। बड़े २ अश्वारोही मीरों को तीर का निशाना बनाकर उन सबको धराशायी किया। महाभारत युद्ध में जैसी अर्जुन की ख्याति थी वैसी ही ख्याति राजा की फैल गई। उसका (वरदायी कविचंद ने) मैंने रण चर्चा के बढ़ाने वणन

क्रिया । बहादुरों के शरीर घावों से छूक गये और तलवारें तानकर संघर्ष करते हुए नाचने लगे । इस प्रकार का वीर-नृत्य चाहुआन और सुलतान की सेना में होने लगा ।

दोहा

तेग तार मडिय समर, नचिय नच बिन खैर ।

चाहुआन सुरतान रिन, रचे नृत्य वर वैर ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—तार=तन्त्री तार । नचिय=क्रिया । नच=नृत्य । खैर=कुशल । रिन=रण । रचे=रचना की ।

अर्थः—तलवारें ही उस समय तन्त्री तार की तरह बजने लगीं और जिनकी कुशल नहीं थी (जो मरने को तैयार थे) वे ही नृत्य करने लगे । चाहुआन और सुलतान के इस युद्ध में यह श्रेष्ठ नृत्य-रचना शत्रुता के कारण ही हुई ।

कवित्त

नव वडिय नाटिका, खग कट्टी असु हकिय ।

हिन्दु मेच्छ मिली खेत, आप अप्पन चडि ककिय ।

रा चावड रा-जैत^२, राइ-पञ्जून कनकइ ।

मीर खांत भर पच, खग वड्य^२ तननकह ।

वपु वेद चन्द वानी विगल, विदुरि खग खल खेत वडि ।

कै-वल सु कट्टि सुरतान दल, लियरतन्न मथि देव वधि ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—वडिय=बढी । नाटिका=नृत्यकारिणी । असु=अश्व । हकिय=चल पडे । अप्प=आपा, शक्ति । चडि=चढाया, वृद्धि की । कंकिय=कमलों में, अगों में । भर=भिड़ने वाले, लड़ाकू । वड्य=काट दिये तननकह=मनसनाती हुई । वपु वेद=वेदांग । विदुरि=लुटकाकर । कै-वल=वल करके । वधि=पमुद्र, (सेन्य-समुद्र) ।

अर्थः—जिस प्रकार नवीन नाटिका (नृत्य कारिणी) रंग भूमि में आगे बढती है (नृत्य करती हुई सामने आती है) उसी प्रकार म्यान से तलवारें निकाले हुए वीरों के अश्व चल पडे । हिन्दू और मुसलमानों समरांगण में एकत्रित होकर अपने २ अगों में शक्ति की वृद्धि की । चावडराय, जैत, पञ्जून, और कनक राय ने पाच

मुस्लिम वीर जो लडाकू योद्धा थे, उन्हें गनगनाती हुई खड्ग द्वारा काट दिया ।
(कविचद) मैंने वेदांग तुल्य निर्मल वाणी द्वारा वर्णन किया है कि-इस प्रकार
उन मीरों को खड्ग द्वारा लुटका कर सामत रणक्षेत्र में आगे बढ़े और उन देव तुल्य
सामतों ने शक्ति प्रदर्शित कर सेना रूपी समुद्र का मन्थन कर रत्न तुल्य सुलतान को
खोज निकाला [सुलतान तक जा पहुँचे] ।

दोहा

गिरे मेच्छ हिन्दू सुभर, हय गय घाइ अघाइ ।

सूड रुड मुडन भरत, रत्त भाकि भुकि ताइ ॥ ४१ ॥

शब्दार्थः—रत्त=रक्त । भाकि=खड्ग के विशेषवार । ताइ=तहा, उसी जगह ।

अर्थः—इस युद्ध में हिन्दू और मुस्लिम योद्धा तथा हाथी, घोड़े घावों से छककर
धराशायी हुए, और खड्ग के विशेष वार होने से उस जगह हाथियों की सूड और
और मनुष्यों के रुड-मुड श्रोणित से भरते और भुक्तते हुए दिखाई दिये ।

भिरि तु अर लिय वग भरि, हय करि नीर प्रवाह ।

सघन घाइ समुख समर, लगे मेच्छ-पति थाह ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—वग=रास । भरि=ऐँच । मेच्छ-पति=वादशाह ।

अर्थः—उसी समय पहाडराय तोमर ने राम को खींच कर जल-प्रवाह के समान
घोडा चढाया और युद्ध में गहरे घाव करता हुआ सुलतान को थाहने (परखने) लगा
(शाहके बल को आजमाने लगा) ।

घाइ घाइ तन छाइ छिति, रत्त छिछ उद्धरत ।

भर तौवर हर जिम तमकि, लगि जमन गज अत ॥ ४३ ॥

शब्दार्थः—आइ=छा दिया, पाट दिया । छिछ=धारा । तमकि=तमक कर । जमन=यवन । अत=
अतक ।

अर्थः—वार कर-कर उसने नर कफालों से पृथ्वी पाट दी और रक्त की धाराएँ
उछलने लगी । वह तौवर-योद्धा रूद्र के समान उछल कर यवनों और हाथियों को
अतक ले कर लग गया ।

कवित्त

भर तौंअरभ भिरत्त, धरत कर कुंत जत अरि ।
 गजन वाज धर ढारि, धरनि वररत्त जुथ्य परि ॥
 भग्गि मीर काइर कनक, हिय पत्त मुच्छि दग^१ ।
 भग्गि सेन सुरतान, दिखिल भर सुभर पानि खग^२ ॥
 उम्भारि सिंगि कुभन छरिय, भरिय श्रोत मद गज ढरिय ।
 हर हरखि हरखि जुग्गिनि सकल, जै जै जै सुर उच्चरिय ॥ ४४ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—तौंअरभ=तौंवर अत्रिय । कुत=माला । जत=जाने लगे, मगने लगे । वाज=वोड़ा ।
 ढारि=लुठका दिये । वररत्त=प्रावाज करती हुई फटने लगी । जुथ्य परि=यूथ के यूथ उमड़ पड़े ।
 कनक=कलंक । पत्त=पतग । मुच्छि=मूर्च्छा । छरिय=माी ।

अर्थः—वीर तोमर (पहाड़ राय) लड़ने लगा, उसके हाथ में वरछा लेते ही
 शत्रु भागने लगे । उस समय उसने हाथी घोड़ों को पृथ्वीपर पटक दिया । समूह
 के समूह बराशाई होने से पृथ्वी फटने लगी । कायर मीर भाग कर कलकित होने
 लगे और उनके हृदय का पतन हो गया तथा मूर्च्छा के कारण उनके दग मूँद
 गए । उस योद्धा के हाथ में तलवार देख कर शाही दल और शाह के योद्धा भी
 भाग गये । उस वीर ने सांग उठा गज-कुभ पर दे मारी जिससे शोणित वह
 निकला और मस्त हाथी लुढ़कने लगे । यह देख शकर और समस्त योगिनियों
 हर्षित होगई और देवताओं ने भी जय जय उच्चारण किया ।

दोहा

प्रतिपद^१ परि पातह पहर, समर सूर चहुआन ।

दिन दुतिया दल दुअ उरकि, समि जिम सद्वि खिसान ॥ ४५ ॥

ग्रा० पा० १ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—प्रतिपद=प्रतिपदा, एकम् । पातह=प्रात । पहर=वेला । खिसान=खिमक पड़े, चल पड़े ।

अर्थः—प्रतिपदा की प्रात वेला मे युद्ध के लिये चाहुआन और उमके योद्धा भिड
 पड़े और त्रितीया को दोनों दल उलफ कर चन्द्रमा के साथ २ ही चलते वने (अर्थात्
 चन्द्रमा के अस्थ हाने के साथ ही युद्ध बन्द हुआ) ।

कवित्त

दिन त्रितिया वर तु ग, भुक्कि भारन भुकि^१ भुक्कन ।
 हिंदु मेच्छ हय हक्कि, धक्क वजित्तव भर डक्कन ॥
 कटि मडल घटि घुम्मि, भुम्मि भभरनि अकालहि ।
 भूत वीर वेताल, मस तुद्दत भ्रम चालहि ॥
 दस कध कोपि रघुपति रहसि, विहसि चन्द बद्धिय वदन ।
 चतुरथ्य जुद्ध जगिय जगी, रगि कक डक्कनि रदन ॥ ४६ ॥
 पा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—तु ग=उत्त गकाय । भुक्कि=भुक्कर । भारन=भाइने, वार करने लगे । भुक्कि भुक्कन=नम कर गिरने लगे । हक्कि=बढाए, हाके । धक्क वजिय=धाक फैली, आतक फैला । भर डक्कन=सगठित वीरों में । भभरनि=भभेड़े, तड़फडाए, हिला दिए । तुद्दत=तोड़ कर । विहसि=उत्साहित होकर । ब्द्धिय-ववदन=वर्णन करने में वृद्धि की । चतुरथ्य=चौथ जगिय=जगा । डक्कनि=डाइन ।

अर्थः—तृतीया के दिन उत्त ग-काय श्रेष्ठ योद्धा टेढे हो होकर वार करने लगे जिससे विपत्ती भुक्क कर गिरने लगे । हिन्दु-मुसलमानों ने घोड़े बढाये जिससे सगठित योद्धाओं में आतक फैल गया । वीर समूह कट कटकर पडने लगा । उनके शरीर घायल अवस्था में विचरने, भूमने और अकाल मृत्यु वाले की तरह तड़ फडाने लगे । प्रेत और वावन ही वीर तथा वेतालादि मास तोड़ २ कर खाते हुए भ्रमण करने लगे । रावण पर राम ने क्रोध किया वैसा ही रहस्य पूर्ण युद्ध देखकर उन्माह पूर्वक मैंने (कवि चन्द ने) भी वर्णन करने में वृद्धि की । फिर चौथ का भारी युद्ध हुआ जिसमें नर कालों को भक्षण कर डाइनियों ने अपने दातों को रक्त रजित किए ।

दोहा

भांग सेन सुरतान सच, रव लग्गी मुख तक^१ ।
 गह यौ साहि तार पुरिस^२, जानि राह ससि वक्क ॥ ४७ ॥

पा० पा० १ का० । २ टि० न० ६

शब्दार्थः—रव=रव, गदग । तक्क=ताक्का । पुरिस=पुरष । वक्क=वक्क ।

अर्थः—समस्त शाही सेना भगचली, रव (खुदा) मुँह ताकता ही रह गया। उस समय तँवर पहाडराय ने शाह को इस प्रकार पकड़ लिया, मानो वक्र चन्द्रमा को राहू लग गया हो (वक्र चन्द्रमा को राहू नहीं प्रस सकता लेकिन राहू-तुल्य तँवर वीर ने वक्र-चन्द्र-तुल्य शाह को प्रस लिया इसमें विशेषता है)।

कवित्त

जुगिगनि गन गर सिंधु, करत उच्चार सार मुख ॥
 अछि अच्छरि वर इच्छ, विसन श्रकपानि नैन सिख ॥
 वज्जि ताल वेताल, रज्जि वर तण्ड^१ चड सँग ॥
 श्रोत छोनि छय छछ, गुज गन देन रत्ति अँग ॥
 मुरि सेन^२ घाड मिछ^३ सघन परि, हथ्य घालि सुरतान लिय ॥
 जिच्चो जुआनि सोमेश सुअ, अमै सुमै अंगन घटिय ॥ ४८ ॥
 प्रा० पा० १ टि० १, २-३ टि० २।

शब्दार्थः—सिंधु=सिंधु राग। मुख=मुख्य। विमन=विष्णु। श्रकपानि=चक्रपाणि। सिख=शिखा। नैन=नमा, नमाकर। वरतड=श्रेष्ठ ताडव करने वाले शिव। चड=चडिका। छोनि=पृथ्वी। छय=झागई। छछ=पिचकारो। हथ्य घालि=हाथ डाल कर। लिय=लिया। जिच्चौ=विजयी हुआ, जीत गया। जुआनि=जवान, युवा। अमैय=निर्मय। सुमै=सुशोभित हुई। घटिय=घटित हुई, दीख पड़ी।

अर्थ —योगिनियाँ मुख्य तत्व युक्त सिंधु राग का उच्चारण करने, और चक्र पाणि विष्णु को शिखा नवा कर उत्तम अक्षराएँ वर की इच्छा करने लगीं। वेताल ताल वजाने लगे, श्रेष्ठ ताडव करने वाले शकर चडिका सहित शोभा पाने लगे। शोणित की पिचकारियाँ पृथ्वी पर झागईं। गण-समूह की गुजारने वीरों के अंग में युद्ध-प्रेम बढ़ा दिया। मुस्लिम सेना मुड चली। घावों के लगने से बहुत से मुसलमान थोड़ा घराशायी हुए। उसी समय शाह पर हाथ डाल कर उसे पकड़ लिया। इस प्रकार सोमेश्वर का युवा पुत्र (पृथ्वीराज) विजयी हुआ और उसके शरीर पर निर्भयता शोभा पाने लगी।

गहि गोरी सुरतान, अप दिल्ली सपत्तौ ।
 माह सुनल पचमी, वार भ्रगु वर दिन चित्तौ ॥

किय सु दड पतिसाह, सहस सत्तह सुभ हैवर ।
 दुरद खट्ट प्रम्मान, वहै खट रिता मद्भर ॥
 कोटेक द्रव्य त्रप हेम लिय, घालि सुखासन पठय दिय ।
 कलि काज कित्ति वेलीः अमर, सुभत सीस चहुआन क्रिय ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—अप्प=स्वय । वित्तौ=व्यतीत होने पर । हैवर=घोड़े । खट्ट=छ । खट रिता=छ ऋतु । मद्भर=मद बहते हुए । हेम=पोता । द्रव्य=मुद्रा । घालि=विठा कर । सुमत=गोमित ।

अर्थः—गोरी शाह को पकड कर स्वय राजा पृथ्वीराज दिल्ली पहुँचा, जब माघ शुक्ला ५ भृगुवार का श्रेष्ठ दिवस बीत गया तब शाह पर दण्ड किया गया और दण्ड में सात सहस्र उत्तम घोड़े, छहों ऋतु में मद से भरते रहने वाले छ हाथी और स्वर्णिम एक करोड़ मुद्राएँ लेकर शाह को सुखासन पर बैठा कर गजनी को चलता किया । इस कलियुग में अमर किर्तिलता से चाहुआन ने अपने शिर को शोभा युक्त कर लिया ।

विनय-मंगल

(समय ४३)

दोहा

ग्यारह सै च्यालीस-चव, पग राजसू मडि ।

वर पंचम ससि तीय ग्रह, जनम सजोग विखडि^१ ॥ १ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—च्यालीस चव=चैवालीस, ४४ । पग=पगुराज, कन्नोजेश्वर । राजसू=राजसूय यज्ञ । तीय=स्त्री, बाला, सयोगिता । विखडि=दो माग ।

अर्थः—अनंद संवत् ११४४ (वि० स० १२३५) में पगुराज ने राजसूय-यज्ञ प्रारम्भ किया । उस समय उस बाला (सयोगिता) के ग्रहों में श्रेष्ठ चन्द्रमा पंचम स्थान में था । तथा उस समय उसकी कुल आयु में से अर्धायु हो चुकी थी (सयोगिता चौदहवें वर्ष में प्रवेश कर चुकी थी) ।

ससि त्रिमल पूरनःउग्यौ, निसि निरमल अति नूप^१ ।

नृप नृप कन्या व्याहता, मरन अदब्बुद भूप ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—नूप=अनुपम, सुन्दर । अदब्बुद=अदभूत ।

अर्थः—सयोगिता रूपी चन्द्रमा का पूर्णोदय होने से उसकी शिशुत्व रूपी रात्रि भी विशेष निर्मल और सुन्दर बन गई । उसका वह सौन्दर्य ही पिता पत्न और पति पत्न के राजवंशियों का नाशकारी सिद्ध हुआ ।

जंज वालत पढै गुन, तंत वढुति काम ।

सिद्धि विभंतर तिय सहज लडि लच्छिन विश्राम ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—जंज=ज्यों ज्यों । तंत=त्यों त्यों । विभंतर=विमावादि अंतर में । लडि=लक्ष्मी । लच्छिन=लक्षण ।

अर्थ: ज्यों २ वह बाला गुणो का पाठ पढने लगी त्यो २ उसमे काम की (यौवन की) वृद्धि भी होने लगी और अतर मे स्त्रियो के स्वाभाविक विभावादि की सिद्धि भी सहज मे दिखाई देने लगी एव लक्ष्मी के लक्षण भी उसमे उत्पन्न होने लगे ।

कवित्त

बढै बाल जौ दीह, घरिय सौ बढ स सुन्दरि ।
 और बढै इरु^१ मास, पाख बढै रस गुदरि ॥
 मास बढै खट आन, रिक्त बढै सु बरख वर ।
 बरख बढै सुदरी, होइ खट मध्य सरस^२ भर ॥
 पूरन बाल खट विय बरख, नव मासह दिन पच वर ।
 ता दिनह बाल सजोग उर, मदन वृद्ध माडय सुघर^३ ॥ ४ ॥
 प्रा० पा० १ पा० । २ भी० । ३ टि० (१) ।

शब्दार्थ:—पाख=पक्ष । गुदरी=मरी हुई । रिक्त=शुद्ध । बरख=वर्ष । भर=भरना, टपकना । खटवीय=वारह । मदन=मदना नाम की ब्राह्मणी । वृद्ध=वृद्धि की । सुघर=सुषडपन, पट्टा ।

अर्थ:—अन्य सामान्य बालाओं का जितन विकास एक दिन और एक मास मे होता था उतना ही विकास सयोगिता का एक घडी और एक पक्ष मे होता जा रहा था । अन्य बालिकाएँ जितना अपना विकास छ महीने मे कर पाती थीं, उतना ही वह एक मास मे कर लेती थी और अन्य बालाएँ जितनी छ वर्ष मे बढती थी उतनी वह एक वर्ष मे बढ जाती थी । उसमे निरन्तर सरसता बढ रही थी । उसके वारह वर्ष, नौ मास और पाँच दिन पूर्ण हुए तब मदना ब्राह्मणी सयोगिता के हृदय मे सुषडता और पट्टता की शिक्षा उतारने लगी ।

कवित्त

इह सजोइअ^१ राज-पुत्ति, बत्तीसह लच्छिन ।
 रची विधाता काम, धाम कर आप विचच्छिन्न ।
 छाजै छत्रिय गौख, गुमट कलसा छविछाजिय ।
 करिय राम आवाच, सरसरस रग विराजिय ।

तिन चित्रशाल चित्रत सुरंग, मनसिज आगम अंग अंग ॥

मन आस वास वसि मंदिरह, प्रथम दीप दीनौ सुरंग ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १, पा० ।

शब्दार्थः—इह=यह, सजोइअ=संयोगिता । राज-पुत्रि=राजपुत्री । विचच्छिन्न=विचक्षण । गुमट=गु.मज । रास=लीला, विनोद । आवास=अवास । मनसिज=कामदेव । आस=आशा । दीप-दीनौ=उद्दीपन कर दी ।

अर्थः—उस राज-पुत्री संयोगिता में ३२ वत्तीस ही लक्षण थे । विधाता ने स्वयं उसे अपने हाथों द्वारा विचक्षण रीति से काम-मंदिर के समान बनाई । वह स्वर्ण-कनका से युक्त गुंमज-गवाक्ष में छवि से शोभायमान होने लगी । वह अपने महलों में खेलती हुई रस से परिपूर्ण रहती थी । उसकी चित्रशाला सुन्दर सुरंगे चित्रों से सुमज्जित थी । उसके अंग अंग में कामदेव के आगमन का आभास होना था । इस प्रकार महल में रहती थी मदना ब्राह्मणी ने संयोगिता में सुंदर आशा उद्दीपन कर उसके मन में (पृथ्वीराज) को बसा दिया ।

श्लोक

अन्यथा नैव भावन्ति, द्विजस्य वचन यथा ।

प्राप्ते च योगिनी नाथे, सजोगी तत्र गच्छति ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अन्यथा=मिथ्या, झूठ । म पन्ति=बोलते हैं । योगिनीनाथे=दिल्लीश्वर ।

अर्थः—जिस प्रकार ब्राह्मण अन्यथा (मिथ्या) वचन नहीं कहता उसी प्रकार में (मदना) भी कहती है कि दिल्लीश्वर (पृथ्वीराज) के प्राप्त होने पर संयोगिता वहाँ जायगी ।

दोहा

सुअ सयोग समुक्ख सुख. टिक्ख समोजन राड ।

अति हित नित नित्तह करै, तिय रयनी न विहाइ ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—सुअ सयोग=पुत्र सयोग । समोजन=पह मोजन । हित=प्रेम । तिय=उसे । विहाइ=विछुडता, मूलता ।

अर्थः—राजा सहभोज के समय सगोगिता को सम्मुख देवकर पुत्र के समान सुख मानता था । वह उस पर विशेष प्रेम रखता था तथा रात्रि में भी उसे दूर नहीं रखता था । (अर्थात् वह उससे क्षण-मात्र के लिये भी नहीं त्रिष्टुडता) ।

सुहठ^१ आरि अपनी करै, सरै न सीखह तात ।

पढन केलि कलरव करै, कहत अपूरव वात ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—आरि=अडियल पन । सीखह=शिक्षा । अपूरव=अपूर्व ।

अर्थः—वह राज कुमारी अपने हट और अडियलपन को नहीं छोड़ती थी । पिता की शिक्षा वह स्वीकार नहीं करती थी । पढते समय सुन्दर वाक्फ्रिडा करती और अपूर्व बातें किया करती थी ।

दोहा

नेवज पुफ सुगध रस, बज्जन सह सु ढार ।

सु रति काम पूजन मिलहि, एक समै त्रयवार ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—नेवज=नेवेष । पुफ=पुष्प । सुढार=अच्छे तरीके से, मधुर ध्वनि युक्त । त्रय=तीनों । वार=वाला ।

अर्थः—वह वाणी माधुर्य के कारण नैवेद्य, सुवास और सरसता के कारण पुष्प, मधुर ध्वनि के कारण वाद्य बन जाती थी । रति स्वरूपा वह बाला मानों एक ही समय में उपर्युक्त तीनों विशेषतायें केवल भाषण मात्र से ही अर्पित कर कामदेव की प्रेम पूर्वक पूजा करती थी ।

अति विचित्र मंडप सुरंग, अगन तस^१ सहकार ।

अव सु साल^२ कु आरि पढत, सदिस प्रतम सुमार ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—अगन=अँगनाएँ । तस=उसकी । सहकार=सगिनी । अध=नीचे के । साल=मन्दिर । सदिस=पदश । प्रतम=प्रतिमा ।

अर्थः—राजकुमारी के लिये अति ही विचित्र और सुन्दर रंग वाला मण्डप सजाया गया । साथ में पढने वाली अँगनाएँ भी उसी के समान थीं । इन सबके साथ नीचे के महल में कुमारी सजोगिता कामदेव द्वारा रचित प्रतिमा की तरह थी, जो पढने लगी ।

पढतु सु कन्या पगजा सुन्दर लच्छित्रन रूप ।
मानहु अन्दर देखियै, मदन पवासन^१ भूप ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—पवासन=प्रवासी ।

अर्थः—जिसके लक्षण और रूप श्रेष्ठ है ऐसी वह पगु-पुत्री पढती हुई इस प्रकार ज्ञात होती थी मानों उसके अन्दर प्रवासी राजा (पृथ्वीराज) कामदेव के रूप में विरोजमान है ।

वहु^१ भगिनि ता रा-सुअनि, अति सुचग प्रति रूप ।
जिन जिन भेद अभेद गति, ज ज मडहि जूप^२ ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—ता=वे । रा-सुअनि=रात्रकुमारिया । सुचग=श्रेष्ठ । ज ज=जैमे, जैमे । जूप=यूप, विजयस्तम ।

अर्थः—उसके साथ पढनेवाली राजाओं की भगिनियों और पुत्रियां थी, वे सब अति श्रेष्ठ और रूपवती थीं । उनकी पढाई में भेद और अभेद विषय में जैमी गति थी वैसी ही वे अपनी विजय की स्मृति बना लेती थी (अर्थात्: अपनी विजय का स्तम्भ कायम कर देती थी) ।

दोहा

सो रक्खो सु दरि सु विधि, मदन-वृद्ध^१ निय हथ्य ।
सो कीनी मदन-सु वृधि, अति कोविड गुन कथ्य ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—मदन-वृद्ध=मदना नामक वृद्ध ब्राह्मणी । दिउ हथ्य=शिखार्थ उनके हाथ में कुमारी का हाथ दिया । मदन सुवृधि=कामदेव रूनी पृथ्वीराज के प्रेम की वृद्धि ।

अर्थः—उस सुन्दर सयोगिता को मदना नामक वृद्धा ब्राह्मणी के हाथों में शिखार्थ राजा ने सौपा । इस ब्राह्मणी ने उस बाला के अन्दर कामदेव रूपी पृथ्वीराज, जिसके गुणों का वर्णन पडितों ने अनेक प्रकार से किया है के प्रेम की वृद्धि कर दी ।

कवित्त

अति कोविद गुन कथ्य, मदन कीनी अति^१ वृद्धह ।
 जोग जिहाजन जाइ, ताहि जल मद्धित सद्धह ॥
 अति भय वित्तिय^२ बाल, रूप राजति गुन साजति ।
 आभूखन खट धरै, देव वद्धू दिखि लाजति ॥
 आरभ अब ता धाम मधि, अति विमुद्ध चिहू पाम सखि ।
 सजीव जोग जगम बसे^३, तप सु तप मध्या सु लिखि ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ भी । ३ पा० भी० टि० (२) ।

शब्दार्थः—जोग=योग, सयोग, सहारा । जिहाजन=जहाज । जाइ=चले जाने पर, छूट जाने पर । मद्धित=मैं । सद्धह=साधना पढ़ता । वित्तिय=दूरकर दिया, बिता दिया । गुण साजति=गुणों को गृहण करके । आभूखण खट=सिर भूषण (१), मुख भूषण (२), कंठ भूषण (३), कटि भूषण (४), कर भूषण (५), पैर भूषण (६), । देववद्धू=देवाङ्गनाएँ । स=उसका । जोग जगम=चलते फिरते योगी । तप मध्या=अंतर से तृप्त ।

अर्थः—जिसके गुणों का पड़ितों ने विशेष गुणगान किया है ऐसे उस कामदेव रूपी पृथ्वीराज के प्रेम की उस बाला के हृदय में वृद्धि करदी । जिससे उसकी ऐसी दशा हो गई जैसे जहाज का सहयोग (सहारा) छूट जाने से व्यक्ति को जल में डूबना पड़ता है (अर्थात् उस प्रेम मिन्धु को पार करने का कोई सहारा न पाकर मृत्यु चाहती हो) किन्तु आशा होने के कारण उस बाला ने महान भय को दूर कर दिया । वह गुणों को गृहण कर अपने रूप की शोभा बढ़ाने लगी । छ प्रकार के आभूषण धारण करती जिसे देख देवागनायें भी लज्जित होती थीं । उसके महल में अश्रु प्रवाह रूपी जल प्रवाह का प्रारम्भ होने लग गया था (अर्थात् पृथ्वीराज की स्मृति में वह अश्रु-पात करने लग गई) । उसके आसपास सुचरित्र वाली सखियाँ सदा रहती थीं । उस कुमारी का जीवन चलते फिरते जोगी के समान था और आंतरिक सततता ही उसकी तपस्या दीख पड़ती थी ।

दोहा

लै^१ लग्गी^२ भग्गी^३ न गुन, अति सु दरि तिन साथ ।

एरु मत्त^४ दम अग्नरिय, विनय पढावन गाथ ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १, २, ३, ४, पा० का० ।

शब्दार्थः—= 1 : गन । मग्गी=नहीं टूटी । शुन=समझना । एक सत्त दस=एकसौ दस ।

अर्थः—उस वाला के हृदय में जिस प्रेम की तान छिड़ गई थी वह फिर कभी टूट गई हो, ऐसा नहीं समझना चाहिये । उसके साथ अनेक सुन्दरियाँ रहती थीं जिनकी कुल संख्या एक सौ दस थी । उन सब को विनय-गाथा पढ़ाई जाने लगी ।

इक सत्त पचक^१ अगरी, राज कन्य रज रूप ।

तिन मध्ये मध्यान में, काम विराजत भूप ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—इक सत्त पचक=एकसौ पांच । रजरूप=रजं गुण स्वरूपा । मध्ये मध्यान में=उन मध्या वालाओं के बीच में,

अर्थः—उन एकसौ दस में से एकसौ पांच राज कन्याएँ थी, जो साक्षात् रजोगुण स्वरूपा थी और उन मध्याओं में प्रमुख राजकुमारी सयोगिता थी जिसके हृदय में कामदेव रूपी राजा पृथ्वीराज बसा हुआ था ।

दोहा

तादिन तें द्वै, दुजनिवर^१, पदिय सुशास्त्र विचार ।

उन आरभअ रंभ करि, आय^२ सपत्तिय वार ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ स० । २ पा० का० भी ।

शब्दार्थः—तादिन तें =उनी दिन से । द्वै=दो प्रकार के, धर्म और गार्हस्थ्य । दुजनि=ब्राह्मणी । पदियसु=पढ़ाई । उन आरम्भअ=उपको अध्ययन शुरू करने के लिये । रंभ=रंभारूपा । सपत्तिय=पहुंची, वार=बाला ।

अर्थः—उसी दिन से उन सब बालिकाओं को श्रेष्ठ मद्दना ब्राह्मणी ने धर्म और गार्हस्थ्य इन दोनों शास्त्रों का अध्ययन कराना शुरू किया । वहा पर वह रम्भा सयोगिता के रूप में आकर पढ़ने लगी ।

आय सपत्तिय बाल वर, वे दिवि चव सह बाल ।

मानौ रम-अलि अलिनमौ, ले आयहु गृह काल ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—वे=दो । चव=चतु, मद्रबाल=ममी बालिकाओं ने । रम-अलि=प्रमर रूपी पृथ्वीराज का प्रेम । अलिन को=प्रमरी रूपी सयोगिता की ।

अर्थ—वह वाला सयोगिता वहा आई, जिसे अन्य सब धालाओं ने अपने दोनों नैत्रों से देखा। उस समय वह ऐसी प्रतीत हुई मानों भ्रमर रूपी पृथ्वीराज के यम रूपी प्रेम को ले भ्रमरी की भांति गृह में प्रवेश कर पाई हो।

पढि सँयोगि^१ सयोगवृत, विनय^२ सु देवह दाव ।

चक्ररुह चक्रसु,वेन बस, दिखि सँजोगअन हाव ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ का० ।

शब्दार्थ—संयोगवृत=संयोग के नियम। देवह दाव=वश में करने को। चक्ररुह=चकित, स्तमित। सँजोगअन=सयोगिता के।

अर्थ—सयोगिता ने मदना ब्राह्मणी से संयोग के नियमों का अध्ययन किया और पति को वश में करने के लिए विनय का पाठ भी पढ़ा। उसकी वाणी को सुन और हावभावों को देख कर चक्र पाणि विष्णु भी वश में हो चकित (स्तमित) हो जाता था (अर्थात् चक्रपाणी भी उसे देख लेते तो चक्र चलाना भूल चित्र लिखे से रह जाते)।

जाम एक निसि पच्छिली. दुजनिय दुजवर पुच्छ^१ ।

प्रात आप धर दिसि उडै, जे लच्छिन कहि अच्छ^२ ॥ २० ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ—जाम=याम, प्रहर। पच्छिली=पिछली। दुजनिय=मदना ब्राह्मणी। दुज=द्विज, मदना के पति। लच्छिन=आपने देखलिये हैं, जानते हो।

अर्थ—एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में मदना ब्राह्मणी ने अपने पति से पूछा कि रभारूपी सयोगिता अपने स्थान स्वर्ग को जिन सुप्रभात में उडकर जायगी, हे यज्ञ रूपी पति क्या करके जायगी? इसके बारे में आप जानते हों तो मुझे कहिये।

कवित्त

इन लच्छिन सुनि बाल, नृपति करि रुधिर प्रकारह ।

वहु छत्रिय भुभिभ है, मुड^१ हर हार अवारह ।

गिद्ध सिद्ध वेताल, करै कृत्या कोलाहल ।

इह लच्छिन सुनि सच्च, बाल लच्छित जिन चाहल ।

सजोग फूत फूत नन दिग्गन, ए कन्या जिम प्रथम तिम ।
कलहंत राज छत्री सुवर, भवसि वत होवे सु मम^२ ॥ २१ ॥

आ पा० १ का०, २ पा० का० ।

शब्दार्थः—लच्छिन=लक्षण । चंधिर प्रकारह=चंधिर कारह, खून-बहाने-वाले । सुभिभ हैं=लडे मे ।
घारह=घारेंगे, धारण करेंगे, स्थान देंगे । सिद्ध=योगिनियें । लच्छिन=ज्ञान पाया हूँ । लच्छित=
लक्षित । चाहल=चाहने मे । फूलफल=फूले फलेगो नहीं, सतान नहीं होगी । कन्या=कुमारी ।

अर्थः—तव ब्राह्मण-(सदना के पति) ने कहा कि इस बाला के लक्षण सुन-
यह कितने ही-राजाओं का खून-बहाने वाली होगी, बहुत से क्षत्रिय लड़ेंगे । उनके
मुखों को शिव अपने हार (माला) में स्थान देंगे । गिद्धनियाँ, योगिनियाँ,
वैताल और कृत्यादि पिशाचिनियाँ युद्धस्थल में कोलाहल करेंगी । इस बाला ने
जिसको चाहा है, उसी को देखकर मैं जान सका हूँ । सयोगिता के कोई संतान
नहीं होगी । यह कुमारी पहले से-रंभा रूप में नि-संतान है, वैसी ही रहेगी । यह
राज वशियों के लिये कलह-कारक है । मेरा यह भविष्य कथन हो कर रहेगा ।

दोहा

तिन कारन हों यत्त गुन, भुगति मुगति सह देन ।
सो कन्या पहुपग कै, आय सपत्तिय एन^१ ॥ २२ ॥

आ० पा० १ सं० ।

शब्दार्थ—गुन=समझ पाया । भुगति मुगति=भोग और मोक्ष । एन=घर ।

अर्थः—इसी कारण मैं यत्त रूपी द्विज यह भविष्य समझ सका हूँ । यह बाला
भोग और मोक्ष दोनों देने वाली होगी । अतः इस कन्या ने राजा पगु के घर
इमीलिये आकर जन्म पाया है ।

जयति जग्य सयोग वर, दिखि लक्खन^२ अँग चार^३ ।

एक अलक्खन भिन्न है, सो कलहंतर सार^३ ॥ २३ ॥

आ० पा० १, २, ३, पा० ।

शब्दार्थः—ति=स्त्रियें । जग्य=जग, मभार । चार=चार, गेष्ट । अलक्खन=कुलक्षण । कलहतर=
कलह कारिणी । सार=बूझ ।

अर्थः—इसके श्रेष्ठ लक्षणों को देखने से ज्ञात होता है कि यह सयोगिता समार की वालाओं में विजयी है, किन्तु सुलक्षणों से भिन्न इसमें सूक्ष्म रूप में यही कुलक्षण है कि यह कलह कारिणी होगी ।

कलहतरि सु दरिय वर, अति उतग छिति रूप ।

तिन समान दुज पिक्खकै, मदन लम्भ तन भूप ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—उतग=उन्नत । छिति=पृथ्वी । रूप=सौन्दर्य । पिक्ख=देखकर । लम्भ=प्राप्त किया ।

अर्थः—यह कलह कारिणी सुन्दरि पृथ्वी पर अपने सौन्दर्य के कारण अति श्रेष्ठ है । अतः इसके तुल्य इसका पति कामदेव के समान शरीर धारी राजा (पृथ्वीराज) ही है, यह मैं देख कर समझ पाया हूँ ।

कवित्त

मदन वृद्ध वभनिय, प्रेह हिंडोल सँजोइय^१ ।

कनक डड परचड, इद्र इद्रिय वर जोइय ॥

परहि लत्त हिंडोल, दुन्ननि^२ उप्पम तिन पाइय ।

कनक खभ पर काम, चड चकडोल फिराइय ॥

लग्गें नितव विन्नी उवटि,^३ सो कवि इह उप्पम कही ।

सैसव पयान कै करत ही, काम अवग्गी^४ कर गही ॥ २५ ॥

प्रा० पा० १, २ स० । ३, टि० १ । ४ भी का० ।

शब्दार्थः—हिंडोल=भूला । डड=झड़ी । परचड=उन्नत । इद्रिय=इन्द्राणी । जोइय=देखा ।

चकडोल=भुलाया, टिनाया । विन्नी=वेशी, चोरी । उवटि=उलट २ कर, बार बार । अवग्गी=एक प्रकार का चाबुक ।

अर्थः—मदना नामक वृद्धा ब्राह्मणी के घर पर सयोगिता भूला भूतनी हुई ऐसी दिखाई देती थी, मानों उँची स्वर्ण की टडी हा । यदि उसे इन्द्र देख पाता तो वह उसे इन्द्राणी ही समझता । भूले को जब वह पैरों के बल चढाना थी तो मदना यही तुलना करती थी मानों कामदेव ने स्वर्ण स्तम्भ स्थित चन्द्रमा को भूले पर रख कर भुलाया हो । उस समय उसकी बेणी उसके नितवों पर बार २ इस प्रकार लगती थी, मानों चञ्चल तुरग-रूपी सयोगिता के शरीर से शिशुत्व के प्रयाण करते ही उसे शिथिल बनाने के लिए उस पर कामदेव रूमो अरय-शिशुक ने चाबुक टाया हो (मारा हो) ।

दोहा

सजि सु पग वर व्याह कृत, बहु रचना गुन लाहु ।

वाल सु वय जिम वाल मुन, त्यो समुझै गुन चाहु' ॥ २६ ॥

प्रा० पा० १ स०

शब्दार्थः—सजि=तैयारी की जाने लगी । वर=श्रेष्ठ, सुदर । व्याह कृत=विवाह कार्य । बहु रचना=विविध रचना । गुन=सौचकर । लाहु=उल्लास, उत्साह । मुन=मूनि । गुन=गुण, फल । चाहु=इच्छा, आशा ।

अर्थः—राजा पंगु (जयचन्द्र) उत्साह से राज कुमारी सयोगिता के विवाह-कार्य की तैयारी सोच समझ कर विविध सुदर रचनाओं से करने लगा, इधर राजकुमारी की वय भी वानिक मुनि के तुल्य दिखाई देने लगी । जैसे वालक मुनि गुण को समझकर ईश्वर प्राप्ति की इच्छा से बराबर आगे बढ़ता है, वैसे ही वह बालिका गुणों को समझ कर पृथ्वीराज को प्राप्त करने की इच्छा से आगे कदम बढ़ाने लगी (अर्थात् प्रेम की अधिक वृद्धि होने लगी) ।

कवित्त

एक सु पुत्तिय पग, देव दक्खिन' देवप्रह ।

मेनहीन माननी, हीन उपजेअ रभ'कह ।

मन मोहन मोहनी, निगम करि वत्त प्रकारं ।

आ समान इक्खियै, नाग नर सुर नहिं नार^३ ।

अक्खौ उमाह मगल विनय, धम्म सकल जिम मुगति मति ।

सुनि मत्ति गत्ति रत्तिय सुन्नर, त्रिधि त्रिवान निरमान गति ॥ २७ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० । २ का० । ३, टि० (३) ।

शब्दार्थः—देव=देवता, दक्खिन=दक्खिन, नहीं देखी । देवप्रह=उदर मवन । मेनहीन=कामेच्छा जिसमें कम है । माननी=मानवती । हीन=अरिष्टकारी । उपजेअ=उपजना, प्रादुर्भाव होना । रभ'कह=रमा का । निगमकरि=शास्त्रोक्त । प्रकार=समान । आ=उसके । दक्खिये=देखोगई । नारं=नारी, स्त्री । अक्खौ=करता हूँ, वर्णन करता हूँ । उमाह=चंद्र की स्त्री गवरी का पर्याय उमा । धम्म=धर्म । मुगति=मोक्ष । मत्ति=बुद्धि, चेष्टा । मत्ती=मनवाली । गत्ति=गति चान । रत्तिय=रत, स्नान । सुन्नर=अपने प्यारे में ।

अर्थः—पगुराज के एक ही पुत्री थी। वैसी स्त्री देवताओं ने इन्द्र भवन में भी कभी नहीं देखी थी। उसमें उस समय कामेच्छा कम थी किन्तु मान विशेष था। उस रम्भा का प्रादुर्भाव होना (पितृकुल और पति के लिये) अरिष्टप्रद था। शास्त्रोक्त बातों के समान ही वह मन मोहिनी स्वरूपा थी। उसके समान नाग, नर और देवताओं के यहाँ भी स्त्री नहीं देखी गई। कवि अपनी स्त्री से कहता है। हे उमा (गवरी) मैं उसके मंगल-विनय का वर्णन करता हूँ। उसमें (सयोगिता में) मोक्ष प्रद वृत्ति और सब प्रकार की धर्म की चेष्टा थी और उसकी गति मतवाली थी। विधाता के विधान से निर्मित की हुई उसके मन की गति अपने प्यारे में रत थी।

दोहा

सुकल पच्छ वमनि सु-कल, सुकल सु जुवति चरित्त ।
विनय विनय वमनि कहै, विनय सु मगल वृत्त ॥ २८ ॥

शब्दार्थः—सुकल पच्छ=शुक्ल पत्र । वमनि=ब्राह्मणी । सु-कल=श्रेष्ठ कांति वाली । विनय=विनम । विनय=वनना चाहिये । वृत्त=पाठ, प्रतिज्ञा ।

अर्थः—शुक्लपत्र में विविध श्रेष्ठ कला युक्त वह ब्राह्मणी उस उत्तम चरित्र वाली कांति युक्त युवति से कहने लगी। हे कुमारी-विनम्र वनना चाहिये। क्योंकि विनय ही मगल-प्रद वृत्त है।

मुग्ध^१ मध्य^२ प्रौढह^३ प्रकृति, सुबर वसीकर चित्त^४ ।
सुनि विचित्र वाला वनय, श्रवन स वदि नचित्त ॥ २६ ॥

मा० पा० १, २, २ पा० । ४ स० ।

शब्दार्थः—मुग्ध=मुग्धा । मध्य=मध्या । प्रौढह=प्रौढा । सु वर=अपने पति । वदि=कहना चाहिये । नचित्त=निश्चिततापूर्वक ।

अर्थः—मुग्धा, मध्या और प्रौढा श्रवस्था प्रकृति से ही अपने पति के चित्त को वश में कर लेती है किन्तु हे जाना ! मेरा कथन सुन — विनय ही सबसे विचित्र है। अतः निश्चित होकर पति के कानों में विनय वचन डालना चाहिये।

कवित्त

जुगति न मंगल विना, भुगति विन शकर धारी ।
 सुराति न हरि विनु^१ लहिय, नेह धिनु^२ वाल वृथारी ।
 जल विन उज्जल नथिय, नथिय, त्रिमान ग्यान विनु^३ ।
 कित्ति नकर विनलहिय, छित्ति विनु-सस्त्र^४ लहिय किनु^५ ।
 विन मात मोह-पादै -न नर. विनय विना सुख प्रसित तन ।
 संसार सार^६ विनयौ बड़ौ, विनय वयन मुहि श्रवन सुन^७ ॥ ३० ॥

प्रा० पा० १ से ५ पा० । ६ भी० पा० । ७ भी० ।

शब्दार्थः—भुगति=भक्ति । शंकर धारी=शङ्कर को हृदय में धारण करना, हृदय में स्थान देना ।
 उज्जल=उज्ज्वलता । नथिय=नहीं । त्रिमान=निर्माण । छित्ति=पृथ्वी । किनु=किसी ने । मोह=ममत्व ।
 प्रसित=नहीं प्रसता, नहीं होता ।

अर्थः—शुभ कामना के बिना कोई युक्ति नहीं, भक्ति के बिना शिव-हृदय-स्थित नहीं होते, ईश्वर की कृपा के बिना मुक्ति नहीं मिलती, स्नेह के बिना स्त्री व्यर्थ है, जल के बिना निर्मलता नहीं आती, ज्ञान के बिना कोई निर्माण नहीं हो सकता, हाथों द्वारा कार्य किये बिना किर्ति नहीं प्राप्त की जा सकती, शस्त्र के बिना किसी ने पृथ्वी नहीं प्राप्त की, माता के बिना मनुष्य वास्तविक ममता नहीं पा सकता और विनय बिना शरीर सुखी नहीं होता । इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा विनय ही तत्व है । अतः मेरा यह वचन हे कुमारी-तू श्रवण कर ।

दोहा

न भवति मान संसार गुन, मान दुक्ख को मूल ।
 सो परिहरि संयोग तू, मान सुहागिनी सूल ॥ ३१ ॥

शब्दार्थः—नभवति=नहीं प्राप्त होता । परिहरि=छोड़ दे ।

अर्थः—संसार में मान (गर्व) करने से मनुष्य गुण प्राप्त नहीं कर सकता । मान ही सब दुःखों का मूल है अतः हे मयोगिता तू यह मान सुहागिनियों के लिये शूल स्वरूप है उसे छोड़ दे ।

एक विनय गरुभक्त^१ गुन, श्रव्ह ह विनयति सार ।

शीतल मान सु जपिथै, तौ बन दमै तुखार^२ ॥ ३२ ॥

प्रा० पा० १, २ भी० ।

शब्दार्थः—गरुभक्त=बड़ा, श्रव्ह=सब । तुखार=तुषार, दावाग्नि ।

अर्थः—गुणों में विनय ही सबसे बड़ा गुण है, सब तत्वों में विनय ही महातत्व है, यदि मान शीतल भी हो तो भी तुषार-रूप है, जो (प्रेम रूपी) बन को दग्ध कर देता है ।

विनय महा रस भति गुन, अबगुन विनय न कोइ ।

जोगीसर विनय जु पढै, मुगति सु लम्भै सोइ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—भति=भोति, । सु=वही ।

अर्थः—इस विनय में महान रस और भोति २ के गुण है इसमें किसी प्रकार का अवगुण नहीं है । योगीश्वर भी विनय का पाठ पढते हैं । वे ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं ।

विनयन ही जो पखियन, तरु नहिं दोख दियत ।

भल मक्खै^१ पत्तह हतै, मानय गुनय गहत ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—विनयन-ही=विनय होने से ही । दोख=दोष । मानय=समान करता है ।

अर्थः—बनम्र होने से ही जो वृक्ष पक्षियों को दोष नहीं देता उनके फल खाने और पत्तों को नष्ट करने पर भी वह समान करता है । यही तो उसका सच्चा गुण ग्रहण करने योग्य है ।

इकनै^१ विनय सुभग गुन^२, तजितन^३ विनय अरिष्ट ।

जाने घर सुना हुआ, भोजन ता करि मिष्ट ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १, २ ३ पा० ।

शब्दार्थः—इकनै=एक ही । सुभग=सुन्दर, तजितन=छोड़ देने बातों को । भोजन=भोजन ।

अर्थः—विनय ही एक मान सुन्दर गुण है, उसको छोड़ देना अपना अरिष्ट करना है । विनय रहित शरीर मृते पर क' तर्क है, जिसमें मरु भोजन हो तो भी वृथा है ।

मो पुच्छै जौ सुन्दरी, तौ जिन तजै सुरग ।

जिम जिम विनय अभ्यासिहै, तिम तिम पिय मन पंग ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—पुच्छै=पूछती हैं। सुरग=श्रेष्ठ रंग, सुन्दर प्रेमभाव। जिम जिम=जैसे २। तिमर=तैसे २। पंग=पंगु कुमारी (संयोगिता)

अर्थः—हे सुन्दरी। यदि तू उसे पूछती है तो कहती हूँ कि तू अपने प्यारे से श्रेष्ठ प्रेम भाव मत छोड़ना। हे पंगुजा। तू जैसे २ विनय का अभ्यास करती जायगी, वैसे २ ही प्रियतम के मन में स्थान पाती जायगी।

कवित्त

विनय देव रंजियै, विनय बहु विद्य देह गुर ।

विनय द्रव्य लहि सेव, विनय विष तजै श्रप सुर ॥

विनय दत्त अदतार, विनय भरतार हार चर ।

विनय करह करतार, विनै संसार सार सुर ॥

वय चढत चढ़ै विनया सु घर, सब शृंगारति भार वपु ।

वंभनिय भनै संजोग सुनि, विनय विना सब आर तपु ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—रजिये=प्रसन्न किये जाते हैं। विद्य=विद्या। गुर=गुरु। सेव=मेवन करने से, अपनाने से। श्रप सुर=नागराज। दत्त=उदार। अदता=कृपण। भरतार=गति। करह=हाथमें, वश में। करतार=सृजता। सुर=स्वर, वाणी। चढत=चढती हुई। चढ़ै=वढ़ै। वपु=शरीर। मनै=कहती है। आर=वृथा। पुत=तपस्या।

अर्थः विनय द्वारा ही देवता प्रसन्न किये जाते हैं, विनय ही विविध विद्या गुरु से दिलाती है, विनय को अपनाने से ही द्रव्य की प्राप्ति होती है, विनय के द्वारा न केवल साधारण सर्पों का ही अपितु स्वयं नागराज का विष भी दूर किया जा सकता है, विनय द्वारा ही कृपण को उदार बना लिया जाता है, विनय द्वारा ही स्त्री पति के हृदय का हार हो जाती है, विनय से स्वयं विधाता भी वश में हो जाते हैं अतः विनय-वाणी ही ससार में तत्त्व है। यदि वढती हुई आयु के साथ साथ श्रेष्ठ विनय भी वढ़ै तो, अन्य सब शृंगार इस शरीर के लिये भार-तुल्य हो जाते हैं [अर्थात् विनय से अलंकृत सुन्दरी को अन्य शृंगार की

आवश्यकता नहीं] मदना ब्राह्मणी ने कहा कि हे सयोगिता सुन, बिना विनय के सब तपस्या वृथा है ।

दोहा

विनय उचारन चत्र^१ मुख, दिखिखय सारन सार ।

काम तत्त^२ सुद्धै सगुन, कत करै उरहार ॥ ३८ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—चत्र=चतुर । सारन सार=सब तत्वों में श्रेष्ठ तत्व । काम=काम शास्त्र । सुद्धै=सोज पाया । सगुन=समझ लेने पर । कत=पति ।

अर्थः—चतुर पुरुषों ने इसे सब तत्वों में श्रेष्ठ तत्व माना है । इसी से वे मुख द्वारा विनय वाक्य ही उच्चारण करते हैं । काम-शास्त्र में भी यही तत्व रूपी जाना गया है । इसे समझ लेने वाली सुन्दरी को पति अपने हृदय का हार बना लेता है ।

गाथा

मुख पित्तौ पित^१ रोगै, लगै विपमाइ सकर मुखय ।

ज तुर-पये सुवाले ? , कामं रत्ताय मोहनो-धरय ॥ ३९ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—पित्तौ=पीला । विपमाइ=विष तुल्य । ज=जैसे ही, उसी प्रकार । तुर-पये=आतुर प्रेयसी । सुवाले ?=हे सयोगिता । काम रत्ताय=काम में लीन हो जाती है । मोहनो-धरय=वास्तविक प्रेम को नहीं धारण करती ।

अर्थः—हे सुवाले ! जैसे पित्त रोग में रोगी का मुख पीला पड़ जाता है और मुख में शक्कर दीजाय तो भी वह विष तुल्य लगती है, इसी प्रकार आतुर-प्रेयसी काम में लीन हो जाती है (काम रूपी रोग के कारण उसके प्रत्येक अंग में काम दृष्टि गोचर होता है) किंतु वह वास्तविक प्रेम को धारण नहीं कर पाती (वास्तविक प्रेम-शक्कर रूपी मधुर विनय के अनर्गत ही है और काम वासना से वश में करना क्षणिक है । विनय द्वारा प्राप्त किया हुआ प्रेम अक्षुण्ण है । ऐसे मधुर स्वाद को वह नहीं समझ पाती ।

दोहा

जिन त्रिय लभ्यौ विनय-रस, -सुख लब्धौ तन मभ ।

विनय विना सुंदर इसी, -विनु दीपक ग्रह संभ ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—लभ्यौ=प्राप्त किया । विनय-रस=विनय द्वारा प्रेम । लब्धौ=प्राप्त किया । इसी=इस प्रकार । सभ=संध्या ।

अर्थः—जिस स्त्री ने विनय द्वारा पति प्रेम प्राप्त किया है उसी को जीवन में शारिरिक सुख प्राप्त हुआ है । विनय रहित सुंदरि सी प्रकार होती है जिस प्रकार संध्या होने पर दीपक रहित घर असुंदर (भयानक) दीख पड़ता है ।

- कवित्त

ज्यों विन दीपक ग्रह, जीव विनु देह पुकार ।

देवल प्रतिम विहून, कंत विनु^२ सुन्दरि सार ॥

लज्या विन^३ रजपूत, बुद्धि विनु^४ ज्यों गुन जानिय ।

वेद विना वर विप्र, करन विनु^५ कित्ति न ठानिय ॥

विनय विना सुन्दरि अधम^६, कंत देइ दूनौ सु दुख ।

संजोगि भोग विनयौ वड़ौ, लहै विनय मगल सु सुख ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ से ५ पा० । ६ सं० ।

शब्दार्थः—ग्रह=घर । प्रकारं=तरह । देवल=देवालय । प्रतिम=प्रतिमा, मूर्ति । विहून=विना, रहित । सारं=श्रेष्ठ भोग=पति-मिलन ।

अर्थः—विना दीपक का घर, प्राण विहीन शरीर, प्रतिमा रहित-देवालय, श्रेष्ठ होती हुई भी विना पति के सुन्दरी, विना लज्जा का चत्रिय, बुद्धि रहित गुण, वना वेदाध्ययन के ब्राह्मण और हाथों को बढ़ाये विना कीर्ति की लालसा करने वाला, जिस प्रकार अधम माना गया है, उसी प्रकार विनय-रहित सुन्दरी भी अधम है । वह अपने स्वामी को दुगुना दुःख देती है । अतः हे सयोगिता, पति मिलन के समय स्त्री के लिये विनय ही सबसे विशेष हितकारी है । अतः विनय-मगल के द्वारा ही श्रेष्ठ सुख प्राप्त किया जा सकता है ।

गाथा

वेदयौ वचित विप्पो^१, भेषज बहुलोइ प्रथयं गुनय ।

सह^२ जजार सु जान, जुन्हाई नेव जानय तत्त ॥ ४२ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० ।

शब्दार्थः—विप्पो=विप्र । भेषज=दवाई । बहुलोइ=विशेष । गुनयं=गुनना, पटना, समझना । सह=सव । नेव=नहीं । तत्त=तत्त्व ।

अर्थः—वेद वचित विप्र रोगी की भांति है । उसके लिये विशेष ग्रन्थों का अध्ययन ही दवा है । उसी तरह सासारिक जाल में पड़ी हुई स्त्री के लिये विनय ही औषधि है । हे संयोगिता ! तेरी माता जुन्हाई उन सब सासारिक जजालों में ही कुशाज है, किन्तु वह इस विनय रूपी तत्व को नहीं जानती ।

त तू विनय विहूनी, य' दिट्टाइ सु दरी तनय ।

यो वासत^३ काल, पत्र विना तरवर रचय ॥ ४३ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—त=तैसे ही, उसी प्रकार । विहूनी=रहित । य=इस तरह । दिट्टाइ=दीख पड़ता है । वासत=वसत । काल=समय । पत्र=पत्र । तरवर=वृक्ष ।

अर्थः—उसी से उत्पन्न हे सुन्दरी संयोगिता ! तू भी उसी की तरह विनय रहित है इसलिये तेरा शरीर इस भांति दिखाई देता है, जैसे वसतागम के प्रारंभ में घृत पत्तों से रहित हो ।

दोहा

बहु लज्जा कहि जात त्रिय तन मडन अवलान ।

काल वसतरु^१ वाल गृह, सो मतिमत सुजान ॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० ।

शब्दार्थः—बहु=विशेष । अवलान=अवलानों का । मतिमत=बुद्धिमत्ता ।

अर्थः—विशेष लज्जा ही अवज्ञा कहलाने वाली स्त्रियों के शरीर की शोभा कही जाती है । उसके साथ २ यदि उनमें बुद्धिमत्ता और चतुराई आजाय तो उस बाला के गृह में और वसत ऋतु में माम्यता आजाती है [अर्थात् लज्जा, बुद्धि, और पटुता के कारण स्त्री का घर फलता-फलना दिखाई देता है] ।

कवित्त

विनय सार ससार, विनय ब्रंध्यौ जु जगत वस^१ ।
 विनय काल निककाल, विनय संसार सूर रस^२ ॥
 विनय विना^३ संसार, पलक लम्भै न सुखल तनु ।
 जिही जाइ सोइ^४ सत्तु,^५ ग्राह संप्रह्यौ देह जनु ॥
 नृप रीति विनय लगगी रवनि, विनय उच्चारन चार रस ।
 विनय विना सुंदरि इसी, पसुन^६ होइ उद्यान अस^७ ॥ ४५ ॥
 प्रा० पा० १ से ७ पा० ।

शब्दार्थः—निककाल=कलत्र मे रहित, काल कर्म मे रहित, नाशकारक प्रकृति से रहित । सूर=वहादुर । रस=प्रेम । सत्तु=रात्रु । संप्रह्यौ=इस लिया हो, पकड़ लिया हो । विनय लगगी=विनय करने वाले से ही लगे रहते हैं (प्रेम करते हैं) । रवनि=रमणि । चार=चार श्रेष्ठ । इसी=इस प्रकार । पसुन=प्रसून, पुष्प । उद्यान=नाग । श्रक्ष=जैसा, वैसा ।

अर्थः—विनय ही केवल संसार में सार है और सारा ससार विनय द्वारा आवद्ध है । विनय, काल को भी नाशकारक प्रकृति से रहित कर देती है । विनय वहादुर से प्रेम (सधि) करा देती है । विना विनय के संसार का कोई भी शारीरिक सुख प्राप्त नहीं कर सकता । विनय-रहित पुरुष जिसके पास रायगा वह उसका शत्रु हो जायगा । उस समय उसे ऐसा लगेगा मानों ग्राह ने उसके शरीर को पकड़ लिया हो । हे रमणी राजकुमारी । राजाओं की रीति है कि वे विनय युक्त से ही लगे रहते हैं (प्रेम करते हैं) । विनय-युक्त उच्चारण करने से ही उनके द्वारा श्रेष्ठ प्रेम की पूर्ति हो जाती है । विनय हीन सुन्दरी उसी प्रकार है जिस प्रकार उद्यान में (वगीचे में) खिला हुआ क्षणिक पुष्प (खिल जाने पर पुष्प तोड़ लिया जाता है और कुछ ही समय में उसकी सुवास, सरसता सुन्दरता आदि नष्ट हो जाती है इसी प्रकार विनय रहित मान वाली स्त्री पति से तिरस्कृत हो नष्ट हो जाती है) ।

दोहा

विनय सुरम बभनि कहै, - पढ़न सु पग कुआरि ।
 बल्लह^१ वसि^२ दूजै सुवल, तौ बल्लह^३ वसि^४ नारि ॥ ४६ ॥
 प्रा० पा० १ से ४ पा० ।

शब्दार्थः—सुरस=सरस । पढन=पढ़ लिया, पढ़ा । वल्लह=त्रल, शक्ति । वसि=वश । दूर्जे=अन्य । सुवल=सवल, बलशाली । वल्लह=वल्लभ, प्यारा ।

अर्थ—मदना ब्राह्मणी ने कहा:— हे पंगु-कुमारी । जो विनय पाठ तू ने पढ़ा है वह अति सरस है । क्योंकि जिस (पृथ्वीराज) ने अपनी शक्ति द्वारा अन्य बलशाली वीरों को वश में कर लिया है वह तेरा प्रियतम तेरे वश में हो जायगा ।

विनय पढ्यौ सजोगि वर, तन में विनय सुहंत^१ ।

व्यों जल वलि^२ जलहीं जियै, विनय जियै वर कत ॥ ४७ ॥

ग्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—सुहत=सहाती है, शोभित होती है । वलि=लतिका, बेल । जलहीं जियै=जल से ही पोषण होती है । जियै=जिय में ।

अर्थ:—हे सयोगिता । तू ने श्रेष्ठ ढग से विनय पाठ पढ़ा है । वह तेरे शरीर में इस प्रकार सुरोभित है जिस प्रकार जल का लता जल में रहती हुई पोषण पाती है । इसी विनय के कारण तू भी अपने श्रेष्ठ पति के जो में बसेगी ।

दोहा

होत प्रात तव पठन तजि, धाइ हिंडोलन^५ आइ, ।

इय^२ चरित्त दुज दिक्खि^३ कै, पछै^४ जुगिनिपुर^५ जाइ ॥ ४८ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३ पा० ४, ५ भी० ।

शब्दार्थः—पठनतजि=पढ़ाई समाप्त होने पर । इय=यह । दुज=द्विज-दम्पती, मदना और उसका पति । पछै=पश्चात् । जाइ=रवाना हुए ।

अर्थ:—विनय-पाठ की पढ़ाई समाप्त हो जाने पर प्रात के समय सयोगिता भूले पर चढ़ कर भूलने लगी । उसका यह चञ्चल-चरित्र देखने के पश्चात् वे द्विज-दम्पति (मदना और उसका पति) दिल्ली को और रवाना हुए ।

संयोगिता नेमाचरण

(समय ४४)

दोहा

दूत दोइ जुगिनि पुरै, गय कनवज फिरि दिक्खि ।
दिल्लीवै दिल्ली चरित; कहें पग सों सिक्खि ॥ १ ॥

१ का०, भी०, पा०, घ० ।

शब्दार्थः—जुगिनि पुर=दिल्ली । दिल्लीवै=दिल्लीश्वर । सिक्खि=सख्यभाव से, शिवा रूप से ।

अर्थः—दो दूत दिल्ली नगर से कन्नौज गए और दिल्लीपति तथा दिल्ली के हालात (वृत्तांत) राजा जयचंद्र से इस प्रकार कहेः—

कवित्त

एक देह पट्टपंग वंधि, निहडुर^१ निसंक भर^२ ।
दुतिय देह पञ्जून, सुरैम कूरंभदेव वर ।
तृतीय देह तूअर^३ पहार, पांवार सलक्खी ।
चतुर देह दाहिम्म, धरन नरसिंह सुरक्खी ।
पंचमी देह कैमास मति, वर रघुवंस कनक्क विय ।
खट देह गौर गुज्जर अठिल, लौहानौ लंगुरि स विय ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ घ० । २, ३ पा० का० घ० ।

शब्दार्थः—बंधि=बन्धु, माई । सुरैम=श्रेष्ठ घोषणा करने वाला, श्रेष्ठ रूप से युद्ध का आरम्भ करने वाला । सलक्खी=सलखानी, सलख वंशज । मति=बुद्धि ।

अर्थ—हे राजा पंगुराज ! राजा पृथ्वीराज के अग-स्वरूपी सामंत निम्न हैंः—एक तो आप ही का सगोत्री बंधु निर्भय योद्धा निहडुर राय, दूसरा श्रेष्ठ योद्धा कछवाहा पञ्जून, तीसरा पहाड़राय तोमर और सलखानी प्रमार, चौथा चामडराय, और पृथ्वी का रत्नक वीर नृसिंह, पाचवा श्रेष्ठ मतिवाला कैमास और कनकराय रघुवशी, छठा केहरी गौड़, रामराय बहगुज्जर तथा लौहाना आजान बाहु और लंघरीराय हैं ।

कवित्त —

तत्र सुमत परधान, पग सब सेन बुलाइय ।
 जु कछु मत मंतिथै, मत चहुआन सु घाइय ॥
 प्रथम मूल दिजिये, व्याज आवे के नावै ।
 जिनहि नाहि दिजिये, लाभ सुन्दरी अकरावै ॥
 मो मत मत चितै नृपति, बाल स्वयंवर किजिये ।
 ता पच्छ सत्थ^२ एकत्तई फिरि दुज्जन भिरि भजियै ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० का० घ० । २ पा० ।

शब्दार्थः—मतिथै=करिये । घाइय=नाश । नावै=नहीं आवे । अकरावै=एँठता हो । पच्छ=पीछे, बाद में, पश्चात् । सत्थ=साथी-समूह । एकत्तई=एकत्रित है ही ।

अर्थः—यह सुन राजा पगु ने सम्पूर्ण सेना सहित मन्त्री सुमन्त को बुलवाया और कहा कि जो कुछ भी मन्त्रणा की जाय, यह चौहान को विनष्ट करने की ही होनी चाहिये । प्रथम मूल वन का चुकारा (शत्रु की की हुई करतूतों का भुगतान) तो करही देना चाहिये । सूद (व्याज) आवे या नहीं (शेष दण्ड दिया जा सके या नहीं) उसकी कोई परवाह नहीं । जो अभिमानी हो, उसको सुन्दरी (कुमारी) की प्राप्ति का लाभ नहीं देना चाहिये । तब मन्त्री ने कहा — हे राजन ! यदि मेरी सम्मति पर विचार करते है तो प्रथम आर कुबार का स्वयंवर कर दीजिये । उसके पश्चात् अपना सब साथ (सैन्य समूह) एकत्रित है ही, उसके बल पर शत्रु से भिड़कर उसे नष्ट करना चाहिये ।

दोहा

इतनी बात जैचद् सौ, कही सुमत प्रवान ।
 वत^३ मन्तो जैचद् ने, अरर मत भए आन ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—वत मन्ती=बात मानली ।

अर्थः—मन्त्री सुमन्त ने इतनी बात राजा जयचद् से कही-जिसे राजा जयचन्द ने मान लिया और मन ही मन अनेक बातों पर विचार करने लगा ।

मानि मंत पदुपंग ने, महल कहल उठि जाइ ।
वर संवर संजोग को, मुच्छि जुन्हाई आइ ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—कहल=कष्ट, उद्विग्नता । सवर=स्वयंवर ।

अर्थः—राजा पंगु ने सुमंत की बात ठीक समझी और उद्विग्न होकर उठा और महल में जा रानी जुन्हाई से संयोगिता के स्वयंवर के सम्बन्ध में पूछा ।

मुच्छ^१ सु राजन मुच्छि^२चित्त, मुच्छि^३ विलम्ब न धीर ।
पुरुष जु क्रम २ सचरै, नेन स तप्पन^४ पीर ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १, २, ३ पा० । ४ दे० ।

शब्दार्थः—मुच्छ^१=मुचि, पवित्र, । सचरै=जाते हैं ।

अर्थः—रानी जुन्हाई ने कहा —हे राजन् ! आप और आपका चित्त तथा आपका नहीं ढिगने वाला धैर्य पवित्र है किन्तु जन्म लेने वाला पुरुष क्रमशः ससार से जाता है । यह नैत्र ही जलन और पीडा के कारण हैं (ससार का यह असत्य दृश्य नेत्रों से ही देखा जाता है और उसी के कारण दुःख प्राप्त होता है अत अन्य कार्यों के पूर्व संयोगिता का पाणिप्रहण कर दीजिये) ।

गाथा

चंचल चित्त प्रचारी, चंचल नैनीय चंचला बेनी ।
थावर चित्त सँजोई, थावर गति गुञ्ज^१ गमाही ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ का० पा० घ० दे० ।

शब्दार्थ —प्रचारी=प्रचारिका । थावर=स्थावर, स्थिर । सँजोई=संयोगिता । गुञ्ज=गुह्य । गमाही=गमन कराया, भेजा ।

अर्थः—तब राजा जयचंद ने एक चंचल चित्त वाली प्रचारिका को जिसके नैत्र चंचल और बोलने में कुशल थी, उसको स्थिर चित्त और स्थिर गति वाली संयोगिता के पास गुप्त रूप से (सम्मानने को) भेजा ।

कवित्त

दे वर सेन सजोगि^१, लखी सहचरि मम बुल्लिय ।
अवुम्भ वात^२ वज्रपात, काम बेमो दुख बुल्लिय ।

परमाद^३ की^४ कित्ति, ताहि गुंगो^५ गुन गावै ।
 वक्ति पुत्त^६ रस चढ़त, कन हीनह समझावै ।
 सहचरिय बतनि सुन्निय सुवर, चित चल चित बत्तन वक्य^७ ।
 वर भई समझि संजोगि पै, फिरि उत्तर तिन तब्व दिय ॥ ८ ॥

प्रा पा १ का घ । २ घ । ३ भी । ४, ६ पा. । ५, ७ पा का घ ।

शब्दार्थः—दे=देती हुई, करती हुई । सेन=सकेत । श्रुभ्र=श्रयानी । काम=कामदेव, (कामदेव स्वरूपी पृथ्वीराज) । वेमो=वहम, भ्रम । परमाद=प्रमादी । गु गो=गुंगा । वक्ति=वध्या । कन-हीनह=कानों से बहरा, बधिर । चित=चितना, देखना । वक्य=बकने लगी । समझि=सुध ।

अर्थः—वह प्रचारिका सयोगिता के पास जाकर उसकी और मंकेत करती हुई कुमारी की सखी सहेलियों से कहने लगी । श्रयानेपन की बात वज्र तुल्य है । अहो । इस कुमारी ने कामदेव के भ्रम में पडकर (पृथ्वीराज को कामदेव का रूप मानकर) आने वाले (पिता और पति पत्न के) दु खों को भूला दिया है । उस प्रमादी (पृथ्वीराज) की कीर्ति का गुणगान गूगों द्वारा कराना चाहती है । वध्या के पुत्र को यह रस-पाठ पढ़ा रही है । बधिर को सदुपदेश दे रही है । वह मच की और देवती हुई चित्त को विचलित कर देने जैसी इधर-उधर की बातें करने लगी । उसे उस समय सब सहचरियाँ सुनती रहीं । जब सयोगिता को प्रचारिका की बातों से सुध आई (पृथ्वीराज के ध्यान में चेतना शून्य थी सो सचेत हुई) तब उसने उत्तर दिया ।

दोहा

जो वधे पित सकरह, जे खड्डें पित लोन ।
 ते वदीजन^१ वापुरे, वरै संजोगी कोन ॥ ९ ॥

पा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—पित=पितृ, पिता । सकरह=माँकलों से, जर्जर से । खड्डे=झाया । लोन=नमक । वदीजन=वैदी, और स्तुति पाठक ।

अर्थः—कुमारी कहने लगी —प्रचारिका सुन, जिनको मेरे पिता ने 'साकलों से पाया है और जिन्होंने मेरे पिता का नमक खाया है वे दोनों वदीजन अर्थात् पिता

के कैदी और पिता के स्तुति पाठक हैं। उनमें से संयोगिता को कौन वरण कर सकता है ? (अर्थात् मेरे पिता द्वारा केवल पृथ्वीराज ही साकलों से नहीं बाधा गया है और न उसने पिता का ही नमक खाया है अतः वही एक वरण करने योग्य है) ।

रे सह सह सहचरिय गुन, का जानौ कुल वत्त ।

जे मो पित वापह कहै, ते मो वधव भत्त ॥ १० ॥

शब्दार्थः—कुल वत्त=कुल की बात, कुल की कहानी। वापह=वाप, पिता। भत्त=भ्रत्य, दास।

अर्थः—हे दासियों ! तुम सब में केवल दासत्व का ही गुण है तुम कुलकानों की बातों को क्या समझती हो ? ये सब सेवा में रहने वाले राजा लोग मेरे वाप (पिता) कह कर संबोधित करते हैं। वे तो मेरे भाई और दास के तुल्य हैं (उनसे मेरा वरण कैसे हो सकता है) ।

तिहि पुत्ति सुनि गन इतौ, तान वचन तजि लाज ।

कै वहि गंगहि संचरौ, (कै) पानि प्रहृण पृथिराज ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—तिहि पुत्ति=उसी राजा जयचन्द की मैं पुत्री हूँ। संचरौ=समाप्त हो जाऊँ।

अर्थः—हे प्रचारिका सुन। मैं उस राजा जयचन्द की पुत्री हूँ और मेरे में वही कुलीनता के गुण हैं अतः उन्हीं गुणों के कारण पिता के वचन और लज्जा को मैंने छोड़ी है। मेरी प्रतिज्ञा है कि या तो गंगा में डूब कर मरूंगी या पृथ्वीराज से ही पाणिप्रहण करूंगी।

सुनत राइ^१ अचरजिज किय, हियै मग्निअन राव ।

नृप वर औरहि^२ सभवै, दैवै अवर सुभाव ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ भी० । २ पा० का० घ० ।

शब्दार्थः—राइ=राजा, जयचन्द। मग्निअन=मानसिया। राव=राजा जयचन्द। सभवै=सम्भावना करता हूँ। दैवै=देव, ईश्वर। अवर=और ही। भाव=इच्छा।

अर्थः—यह बात प्रचारिका ने जब जाकर राजा से कही—तो जयचन्द ने आश्चर्यान्वित होकर उस लोकोक्ति को सत्य माना और कहा, मैं किमी अन्य ही वर की सम्भावना करता हूँ किन्तु देव (ईश्वर) के मन में और ही कुछ भाव (इच्छा) है।

तत्र पगुरि मन पंगु करि, धाइ स बुझिभी बत्त ।

तुम पुत्री गुन जानि हौ, करहु दूरि हठ इत्त ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—^{इत्त}=इस समय ।

अर्थः—यह जानकर पगुकुमारी के मन को कमजोर करती हुई (मन के विपरीत कहती हुई) सयोगिता की धाय (धातृ) उससे जाकर पूछने लगी (समझाने लगी)- हे कुमारी ! तुम गुणों को जानने वाली हो । अतः इस समय इस हठ को दूर कर देना ही अच्छा है ।

अनदिठ^१ वृत लीजे नहीं, तात मात वरजन्त ।

पुच्चि^२ मनोरथ पुज्जि है, मानि सीख धरि मन्त ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १, २ का० भी० घ० ।

शब्दार्थः—अनदिठ=विना देखे । वरजन्त=निषेध करने पर । पुच्चि=पूछकर । सीख=शिक्षा । मन्त=मन्त्रणा ।

अर्थः—हे कुमारी ! बिना देखे और माता पिता के निषेध करने के बाद कोई प्रतिज्ञा नहीं करनी चाहिये । माता पिता को पूछ कर जो मन में मनोरथ किया जाता है वही पूर्ण होता है । अतः मेरी इस शिक्षा और मन्त्रणा को तू मान ले ।

गाथा

मुग्धे मुग्धया रमया, उवर जे म्यन^१ रस एवी ।

लहुआ लुहान पुत्त, तू पुत्ती राज प्रेहाय ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ दे० ।

शब्दार्थः—मुग्धया रमया=मम म (प्रेम में) मुग्ध है । उवर=हृदय स्थित । म्यन=मिन्न । लहुआ=खूनी और लोहकार । लुहान=खूनी, लोहकार पुत्त=पुत्र । पुत्ती=पुत्री । प्रेहाय=गृह में ।

अर्थः—हे मुग्धे ! तेरे हृदय में जो वसा हुआ है और तू जिसके रस (प्रेम) में लीन है, वह अन्य ही रस (वीर रस) में लगा हुआ है । वह स्वयं खूनी और खूनी का पुत्र है । तेरी और उसकी समानता कैसे हो सकती है ? तू तो राजकुमारी है (यहा लहुआ और लुहान “ शब्द ” श्लेष युक्त है) । जिनका

आशय खूनी के अतिरिक्त लोहकार भी होता है। घाय ने श्लेष में यह भी ताना मारा है कि वह स्वयंवर लोहकार और लोहकार का पुत्र है तू तो राजकुमारी है।

कवित्त

जिहि लुहार सुनि दुत्त, साहि सङ्कर गढि बंध्यौ ।

जिहि लुहार गढि खग, पंग जगह घर रुंध्यौ ॥

जिहि लुहार सांडसी, भीम बालुक' अहि साहिय ।

जिहि लुहार आरन्न, वरे वर मानस गाहिय ॥

पावक सवर वर नैरि^र सह, अरनि मंडि जिहि बारयो ।

अवमूत भविष्यत व्रतमनह, कुल चहुआनह तारयो ॥ १६ ॥

ग्रा० पा० १, २ घ० ।

शब्दार्थः—लुहार=लोहकार । दुत्त=दुत, शीघ्र । साहि=शाह । सङ्कर=सांकर । गढि=बढ़कर । जगह=घर=यज्ञस्थान । सांडसी=सडामी । बालुक=बालुकाराय उपाधि या बाल्यावस्था बाला । अहि=सर्प । साहिय=पकड़ा । आरन्न=एरण वरे=जलई, प्रज्वलित श्री । वर=व्रत, शक्ति मानस=मनुष्य । गाहिय=कुचल दिया । पावक=अग्नि । सवर=सवगता, प्रताप । नैरि=नयर, नगर । अरनि मंडि=शत्रुओं से युद्ध करके भविष्यत=भविष्यत् । व्रतमनह =वर्तमान ।

अर्थः—हे धातु ! उस लुहार (पृथ्वीराज) के चरित्र सुन- उस लुहारने ऐसी साकल घड़ी कि जिससे शीघ्र गौरीशाह बांधा गया उसने ऐसी तलवार बनाई कि जिससे पंगुराज (मेरे पिता) का यज्ञ-स्थान रोंधा गया । उसने ऐसी संडासी बनाई कि जिससे सर्प रूपी बालुक भीम पकड़ा गया । उसने ऐसी एरण प्रज्वलित श्री जिसमें कितने ही पुरुषों की शक्ति कुचल दी गई । उसने अपने प्रतापानल द्वारा शत्रुओं के समस्त श्रेष्ठ नगरों को युद्ध करके जजादिया उसने इस पृथ्वी पर जो हो चुके हैं, जो विद्यमान हैं और जो होंगे उन चहुआन कुल मे अवतरित वीरों का उद्धार किया है ।

दोहा

अथवा राजन राज प्रह, अथवा माय लुहानि ।

विधि वधिय पट्टल सिरह, इय^र मुखगध्रव जानि ॥ १७ ॥

ग्रा० पा० १ घ० ।

शब्दार्थः—माय=माता । लुहानि=खूनी (पृथ्वीराज) । पट्टल=लेख पत्र । इय=यही । गधव=यक्ष-यक्षिणी [मदनना और उसका पति] ।

अर्थः—हे माता । मैं या तो पिता के राज गृह मे ही कौमार्य व्रत धारण करके रहूँगी या उस रक्त-रजन करने वाले (खूनी) के घर मे ही रहूँगी । यह विधाता ने मेरे भाग्य पर लेखपत्र लिख कर बांध दिया है और यही प्रिय-वाक्य मैं गधर्व (यक्ष स्वरूपी मदनना और उसके पति) के मुख से सुन चुकी हूँ ।

श्लोक

नमो राजन संवादे, नमो गुरुजन आग्रहे ।

वरमेक स्वय देहे, नान्यथा प्रथिराजय ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—राजन=जयचद । आग्रहे=आग्रह पूर्वक कहने पर ।

अर्थः—पिता ने जो सवाद छेड़ा है उसको तथा गुरुजन के आग्रह को मैं शिरोधार्य करती हूँ, किन्तु मेरे इस शरीर के लिये पृथ्वीराज ही एक मात्र पति है । पृथ्वीराज के अतिरिक्त दूसरा कोई पति नहीं हो सकता ।

दोहा

सा- जीवतु^१ वतह-वयतु^२, वयतु-गर्भे^३ मृतु^४ होइ ।

जा थिरु^५ रह सोई^६ कहौ, हों पृच्छ तुम सोइ ॥ १९ ॥

प्रा० पा० १ से ६ दे० ।

शब्दार्थः—सा-जीवतु=उसी का जीवन सार्थक है । वतह वयतु=वचन वान है, वचन पालक है, प्रतिज्ञा का पालन करता है । वयतु गर्भे=वचन भग होने पर । जी=वह (प्रतिज्ञा) ।

अर्थः—कहा गया है कि जो प्रतिज्ञा पालन कर सकता है, वही जीवित है । प्रतिज्ञा भग होने पर प्राणी मृत-तुल्य है । इसलिये मैं तुम्हीं से पृच्छती हूँ कि मेरा यह व्रत किस प्रकार स्थिर रहेगा, यह तुम ही मुझे समझाओ ?

दोहा

प्रभ आट पहुपग वै, वर चहुआन सु लेखि ।

सुद्धि नहीं फिर बोलु तुही, रन खत्तह करि देवि ॥ २० ॥

शब्दार्थः—प्रभम=गर्भ । लेखि=लिखा मानती है । सुद्धि नहीं किर=ज्ञानयुक्त नहीं । खतह=लेख में, रणस्थल में । देखि=देखेगी ।

अर्थः—पंगुराज के घर पर जन्म लेकर तू चहुआन पृथ्वीराज को वर-रूप में विधाता द्वारा लिखा मानती है, किन्तु हे कुमारी ! तेरा यह कथन ज्ञान युक्त नहीं है । तू तो रण क्षेत्र में युद्ध कराकर ही उसे देखेगी (अर्थात् कलह करायेगी ही) ।

श्लोक

संवादेव विनोदेव, देव देवान रच्छित ।

अनुप्राने प्रयानेवा, प्रानेस दिल्लीश्वर ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—संवादेव=विवाद करने पर भी, छेड़-झाड़ करने पर भी, कलह करने पर भी, युद्ध करने पर भी । विनोदेव=प्रसन्नता पूर्वक । देव=पृथ्वीराज । देवान=देवताओं से । रच्छित=रक्षित । अनुप्राने=विना प्रयाण किये । प्रयानेव=प्रयाण करने पर ।

अर्थः—जो दिल्लीश्वर पृथ्वीराज देवताओं से रक्षित है, वह छेड़-झाड़ करने या प्रसन्नता पूर्वक प्रयाण नहीं कर या प्रयाण कर के किसी भी तरह से मेरा प्राणेश्वर हाकर ही रहेगा ।

दोहा

पोडस दान स मान करि, दिन्ने^१ दुज्जनि^२ पंग ।

घन अनक्ख^३ चहुआन कै, रक्खि सुरी तट गंग ॥ २२ ॥

मा. पा. १, २ भी पा. घ । ३ भी. पा ।

शब्दार्थः—समान=मान सहित । दिन्ने=दिया । दुज्जनि=ब्राह्मणों को । घन=विशेष । अनक्ख=द्वेष । सुरी=देवाङ्गना ।

अर्थः—इधर राजा पंगु ने पुत्री को निर्वासित करने का विचार कर प्रायश्चित् स्वरूप ब्राह्मणों को आदर सहित शोडष प्रकार का दान किया और पृथ्वीराज के साथ उसका अधिक द्वेष होने से देवाङ्गना-तुल्य कुमारी को गङ्गा तट पर रक्खा ।

शुक-वर्णन

(समय ४५)

दोहा

मदन वृद्ध प्रह वभनिय, पढन कुँआरिक वृंद ।

वार वार लोकन करहि, जिम नखित्र बिच चद् ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—पढन=पढी । लोकन=श्रवलोकन, देखा । नखित्र=तारे ।

अर्थ:—दिल्ली पहुँचने पर द्विज-दम्पति गुप्त रूप से जाकर पृथ्वीराज से कहने लगे - हे राजन् वृद्ध मदना ब्राह्मणी के घर पर कुमारिया पढी हैं, उन सब के साथ पगु कुमारी को भी वार २ देखा है । वह सयोगिता नक्षत्रों से आवृत्त चंद्रमा के समान हमें दिखाई दो है ।

वालपन आपान सुख, सुख की जुव्वन^१ मेन ।

सु भर श्रवन साखि न भरह^२, दुरि दुरि पुच्छत नैन ॥ २ ॥

पा पा १, २ पा ।

शब्दार्थ:—आपान=अपने को । की=क्या । सु-भर=जो बात भरी गई । साखि न भरह=मन सार्की नहीं देता, सही नहीं दिखाई देती । । दुरि दुरि=अश्रुपात करती हुई । पुच्छत=पोंछती है ।

अर्थ:—आपके विरह में व्याकुल और लीन वह बालिका कहता है कि बचपन में जो सुख है वह युवावस्था में नहीं देखा । जिस बात से (पृथ्वीराज के प्रति प्रेम होने की) कान (मदना ब्राह्मणी द्वारा) भरे गये हैं । वह सही होती नहीं दिखाई देती । यह कह कर कुमारी सयोगिता अश्रुपात करती हुई नैत्रों को पोंछने लग जाती है ।

श्लोक

प्राप्त च पग प्रेह जग्य जापय होमन ।

तत्र वय दड देहा, राजा मय महापन ॥ ३ ॥

शब्दार्थ:—प्रेह=पार । वध=रूपे हुए । दड=दृष्टी । देहा=देह, प्रतिमा । राजा=जगचद । मय=मे । महापन=महापन व्रत ।

अर्थः—फिर कहती है—पंगुराज के घर पर यज्ञ, जप, होमादि होते हैं, वहां पर छड़ी कसे हुए प्रियतम की मैं स्वर्ण-प्रतिमा देखती हूँ। अहो ! राजा (जयचन्द) का क्या यही महान व्रत है (पृथ्वीराज का अपमान करना ही क्या महान व्रत माना जा सकता है, अर्थात् नीचता है)।

कवित्त

कहै सु दुञ्ज^१ दुञ्जनिय^२, सुनो सभरि नृप राजं ।
जयू दीप महीप, महिल दिक्खीं सह साजं ॥
ज हम दिख्यय इक्क^३ तेज घन तडित^४ अकारिं^५ ।
कनवज्जह जैचद, ग्रेह सजोगि कुमारिं ॥

सित पच कन्य तिन मद्धि इक्क^६, अवर सोम तिहि सम दुव न ।

आकास मद्धि जिम उड़गनिन, चद विराजै मनु^७ भुवन ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १,२ पा० घ० । ३,४ पा० घ० का० । ६ भी० पा० घ० । ५,७ स० ।

शब्दार्थ—गत्रन=गति । पितपच=एकसौ पाँच । कन्य=कुमारियाँ, राजकन्यायें । अवर=अन्य, दूसरी । भुवन=पृथ्वी पर ।

अर्थः—परचात् द्विज दम्पति कहने लगे कि हे संभरी नरेश ! सुनो, हमने जम्बु-द्वीप की सुसज्जित समस्त राज महिलाओं को देखा है । जिनमे से हमने एक स्थान पर एक नभ स्थित तडिताकृति वालिका को देखा है । वह कुमारी कनवज्ज में महाराजा जयचन्द के घर पर सयोगिता के नाम से प्रसिद्ध है । जिमकी सगिनियाँ एक मौ पाच राजकुमारियाँ हैं । उनमे वही एक विशेष सुदरी है । उसके ममान अन्य नहीं, वह कुमारियों से आवृत्त ऐसी दिखाई देती है, मानों आकाश मंडल स्थित चद्रमा नक्षत्रों सहित पृथ्वी पर आकर सुशोभित हुआ हो ।

दोहा

मदन-चरित्र-सु वभनिय, मदन कुंआरि सुरग^५ ।

सोइ वत्त कनवज्ज पुर, पंग पुत्ति मन^२ चंग ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १ पा० घ० का० । २ पा० का० ।

शब्दार्थः—चरित्र-सु=श्रेष्ठ चरित्र । मदन कुआरि=रामदेव मे उत्पन्न कुमार्िका हो जैमी । सोइ वत्त=यही बात । पंग पुत्ति=पगुराज की कुमारी । चंग=चंगी, उत्तम, उन्नत ।

शुक-वर्णन

(समय ४५)

दोहा

मदन वृद्ध ग्रह वभनिय, पढन कुँआरिक वृद ।

बार बार लोकन करहि, जिम नखिन्न विच चद ॥ १ ॥

शब्दार्थः—पढन=पढ़ी । लोकन=श्रवलोकन, देखा । नखिन्न=तारे ।

अर्थः—दिल्ली पहुँचने पर द्विज-दम्पति गुप्त रूप से जाकर पृथ्वीराज से कहने लगे - हे राजन् वृद्ध मदना ब्राह्मणी के घर पर कुमारिया पढ़ी हैं, उन सब के साथ पगु कुमारी को भी बार २ देखा है । वह सयोगिता नक्षत्रों से आवृत्त चंद्रमा के समान हमें दिखाई दो है ।

वालपन आपान सुख, सुख की जुव्वन^१ मेन ।

सु भर श्रवन साखि न भरह^२, दुरि दुरि पुच्छत नैन ॥ २ ॥

भा पा १, २ पा ।

शब्दार्थः—अपान=अपने की । की=क्या । सु-भर=जो बात भरी गई । साखि न भरह=मन सार्थी नहीं देता, सही नहीं दिखाई देती । । दुरि दुरि=अश्रुपात करती हुई । पुच्छत=पोंछती हैं ।

अर्थः—आपक विरह में व्याकुल और लीन वह बालिका कहता है कि बचपन में जो सुख है वह युवावस्था में नहीं देखा । जिस बात से (पृथ्वीराज के प्रति प्रेम होने की) कान (मदना ब्राह्मणी द्वारा) भरे गये हैं । वह सही होती नहीं दिखाई देती । यह कह कर कुमारी सयोगिता अश्रुपात करती हुई नैत्रों को पोंछने लग जाती है ।

श्लोक

प्राप्त च पग प्रेष्ट, जग्य जायय होमन ।

तत्र वत्र दड देहा, राजा मय्य महायन ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—प्रेष्ट=पर । वत्र=जग्ये हुए । दड=श्री । देहा=देह, प्रतिमा । राजा=जयचद । म र=हैं । महायन=महायन व्रत ।

शब्दार्थः—ऐरापतीय=ऐरावत, इन्द्र का हाथी । चामर=चमर । मराल=हंस । पुहय=पुष्प ।
अंबीय=श्वेत कमल । प्रमान=समान । सीमजो=सोमेश्वर का पुत्र ।

अर्थः—हे सोमेश्वर के वीर पुत्र ! आपकी उज्ज्वल कीर्ति ऐरावत, गंगा, चमर, हंस, मालती पुष्प और श्रेष्ठ कमल के समान है ।

अति उज्ज्वल इमं किञ्चिद्, वरने वा चदयो कञ्ची ।

जानिञ्जै परिमानं, राजान समयो नखी ॥ ६ ॥

प्रा. पा. १ से ३, पा. घ. ४ का. भी ।

शब्दार्थः—वरने वा=वर्णन करने वाला । समयो=समान । नखी=नहीं ।

अर्थः—हे पृथ्वीराज ! आपकी जैसी उज्ज्वल कीर्ति है, उसका वर्णन करने वाला वैसा ही कवि चंद है । इसी से जाना जा सकता है कि आपके समान अन्य कोई राजा नहीं ।

दोहा

वह मंडल नृप देखिके, चंद सु रप्पम पाइ ।

मानौ चंद सरद कौ, सग उड़गन आइ ॥ १० ॥

शब्दार्थः—वह मंडल=ब्रह्म मंडल, ब्रह्माण्ड । सग=साथियों का यश समूह ।

अर्थः—हे राजन् ! सारे ब्रह्माण्ड में आपका यश और आपके साथियों के यश को विस्तृत देखकर कवि (चंद) यही श्रेष्ठ तुलना कर सकता है कि शरद का चंद्रमा मानों नक्षत्र मालाओं सहित त्रिसुवन में सुशोभित हो रहा हो ।

दुं दुज्जनि दुंज उत्तरह, दुंहु रूप चमेकत ।

कोइ कहै प्रतिव्यंभ है, को कहै प्रीति अनंत ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—दुज्जनि=मदना ब्राह्मणी । दुज्ज=मदना का पति । रूप=मौन्दर्य । प्रतिव्यंभ=प्रतिविम्ब ।

अर्थः—तब द्विजनी (मदना) ने द्विज (मदना के पति) को कहा- जैसा पृथ्वीराज है वैसी ही संयागिता है । दोनों का सौन्दर्य कांति युक्त है । इन्हें देखकर कोई कहता है कि ये तो एक-दूसरे के प्रतिविम्ब हैं और कोई कहता है कि इनमें अनन्त प्रीति है । इसी कारण से समान प्रभा है (एक्य रूप है) ।

कवित्त

चद वदनि भ्रग नयनि, काम कौवड भोह वनि ।

गग मग तरयल तरग, वैनी, अग वनि ।

अर्थः—जैसी उत्तम चरित्र वाली मदना ब्राह्मणी है, वैसी ही कामदेव के समान उत्पन्न उसकी शिष्या ऊँचे मन वाली पशुपुत्री सुदरी सयोगिता है। यह बात कन्नौज के प्रत्येक घर में कही जाती है।

गाथा

अपन तन छवि दिक्ख, सिक्ख भेदाइ दुक्खनो जीवी ।
दुक्ख सभरिराईं, कहिय राज^१ आगम नीरं ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ घ० पा० का० ।

शब्दार्थः—सिक्ख=शिखा देने पर। भेदाइ=भेदी जाती है, व्याकुल होती है। नीर=निकट ही, शीघ्रातिशय ।

अर्थः—उसकी शारीरिक दशा देख कर उस दुखी आत्मा (सयोगिता) को ज्यों २ सात्वना दी जाती है, त्यों २ वह और विंधी (व्याकुल होती) जाती है। हे सभरेश्वर! आपही (आपका प्रेम ही) उसके कष्ट के कारण हैं। अतः आप शीघ्रातिशीघ्र आने की अवधि निश्चित कर हमें कहिये।

दोहा

अपन तन छवि दिक्खिकै^१, सुख भरि दिक्खी नाहि ।
दुक्ख सभरिय अनुप^२ रग, वर ओपम नहँ ताहि ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ पा० घ० का० ।

शब्दार्थः—अनुप=अनुपम । रग=प्रेम ।

अर्थः—हे राजन्! वह राज-कन्या अपनी छवि देख कर कभी सुखी हुई हो, ऐसा हमने नहीं देखा (आपके बिना वह अपनी शोभा नष्ट प्रायः समझती है)। हे सभरेश्वर! आपका अनुपम रग (प्रेम) ही उसको कष्टप्रद है, क्योंकि आपकी तुलना में दूसरा कोई वर उसे नहीं जँचता (पसन्द नहीं आता)।

गाथा

पेरापनीय^१ गग, चामर मराल मालती पुहय^२ ।
ता अचोय प्रमान, उज्जल किन्तीय सोमजा सूर ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० का० ।

शब्दार्थः—अपुत्र=अपूर्व, कथ=कथा, ख्याति । मंत्र=संमति देते हुए । उमै=खड़े हुए । जोग=सुयोग ।

अर्थः—संयोगिता की अपूर्व ख्याति व पंगुराज के कार्यो का चरित्र पृथ्वीराज ने सुना । इतने में (अपनेपति सहित गमनार्थ) खड़ी होती हुई मदना ब्राह्मणी ने राजा को सम्मति दी कि हे राजन् । इस सुयोग पूर्ण वात को मत भूलना ।

जो चरित्र चित्तै मनह, सोई रूपक राइ ।

नृप अगौ हर वधिकै, कल कनवज्जह जाइ ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—रूपक=शोभा । राइ=राजा । नृप अगो=राजा के सामने । हर वधिकै=जय शिव करते हुए । कल=सुंदर ।

अर्थः—हे राजन् । जिस कुमारी का मैंने वर्णन किया है, उमी के चरित्र का आप मनमे चिंतन कर रहे हैं । वह संयोगिता आप के गृह की शोभा-स्वरूपा है । यह कहते हुए वे द्विज-दम्पति राजा के समक्ष जय-शिव, कहते हुए सुन्दर कन्नौज नगर को रवाना हुए ।

जिम जिम सुन्दरि दुजि वयन, कही सु कथ्य^१सँवारि ।

वरनन सुनि पृथिराज कौ, भय अभिलाष कुँवारि ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—दुजि=मदना ब्राह्मणी । कथ्य=ख्याति, चरित्र । सँवारि=सुन्दर ढग से सँवार कर । भय=हुई, हो पाई ।

अर्थः—(दिल्ली से आने पर) जैसे २ सुन्दरी संयोगिता को मदना ब्राह्मणी ने पृथ्वीराज की ख्याति (चरित्र) का वर्णन कर सुन्दर ढग से सुनाया, वैसे २ उस कुमारी के हृदय में अभिलाषा की वृद्धि होती गई ।

असन सेन शोभा तजी, सुनत^१ श्रवन्न कु आरि ।

मन मिलीवे की रुचि बढी, और न चित्त दुआरि^२ ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० । २ पा० ।

कीर नास भ्रगु दिपति, दसन दामिनि दारिम कन ।
 छीन लक श्रोफलत्र पीन, चपक वरन तन ।
 इच्छति भ्रतारु प्रथिराज त्तिहि, अहनिंसि पूजति सिव सकृति ।
 अथ-तेरह बरख पदंमिनी, हस गमनि पिक्खिय नृपति ॥ १२ ॥
 प्रा० पा० १, २, दे० ।

शब्दार्थ—कोवड=कोदड, धनुष । मग=माग । तरलति=चल । बैनी=चोटी । भुअग=भुजग, सर्प । कीर=शुक, तोता । नास=नासिका । दिपति=दीप्ति । दसन=दोत । दारिम कन=अनार दाने जैमे । वरन=वर्ण, रग । इच्छति=इच्छा करती है । भ्रतार=मर्तार, पति । अथ-तेरह=मादे तेरह ।
अर्थ—हे राजा पृथ्वीराज । जिसका चन्द्रमा के समान मुख, मृग के समान नैत्र, कामदेव के धनुषाकार सी भोंहें, गगा की तरल तरंगों के सदृश मुक्ता-माग, सर्प-सदृश वेणी, शुक के समान नासिका, भ्रगु कांति के समान दीप्ति, विश्रुत-प्रभा के समान या अनार दाने जैसी रद पक्ति, पतनी कमर, श्रीफल के समान पेने कुच है और जिसका वर्णन चपा के रग के समान है, वह आपको पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा करती रहती है और रात दिन शिव शक्ति को पूजती है । इस समय उसकी आयु साठे तेरह वर्ष की है । वह पद्मिनी के लक्षणों से युक्त और हम गामिनी है । उसे आप आकर अवश्य देखिये ।

दोहा

इह मुनि नृपति नरिद चिन^१, भय श्रोतान सुराग ।
 तत्र लागि पग नरिद कै, वाजे वज्जन^२ लाग ॥ १३ ॥

प्रा० प्रा० १ पा० । २ घ० का० पा० ।

शब्दार्थ—वज्जन लाग=वज्जने लगे ।

अर्थ—सयोगिता के सौंदर्य आदि का वर्णन मुनिकर राजा पृथ्वीराज को श्रोत्रानुराग उत्पन्न होगया और उवर सयोगिता के विवाह की मंगल क ना के वाजे पगुराज के यह वज्जने लगे ।

मुनि सजोगि अपुत्र कथ, पग चरित्त न काज ।

मत्र मदन वमनि उभै, जोगन^१ मुक्कै राज ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—अपुत्र=अपूर्व, कथ=कथा, ख्याति । मत्र=सम्मति देते हुए । उमै=खड़े हुए ।
जोग=सुयोग ।

अर्थः—सयोगिता की अपूर्व ख्याति व पंगुराज के कार्यों का चरित्र पृथ्वीराज ने सुना । इतने में (अपनेःपति सहित गमनार्थ) खड़ी होती हुई मदना ब्राह्मणी ने राजा को सम्मति दी कि हे राजन् ! इस सुयोग पूर्ण बात को मत भूलना ।

जो चरित्र चित्तै मनह, सोई रूपक राइ ।

नृप अगौ हर वधिकै, कल कनवज्जह जाइ ॥ १५ ॥

शब्दार्थः—रूपक=शोभा । राइ=राजा । नृप अग्ये=राजा के सामने । हर वधिकै=जय शिव करते हुए । कल=हृदय ।

अर्थः—हे राजन् ! जिस कुमारी का मैंने वर्णन किया है, उन्ही के चरित्र का आप मनमें चिंतन कर रहे हैं । वह संयोगिता आप के गृह की शोभा-स्वरूपा है । यह कहते हुए वे द्विज-दम्पति राजा के समक्ष जय-शिव, कहते हुए सुन्दर कन्नौज नगर को रवाना हुए ।

जिम जिम सुन्दरि दुजि वयन, कही सु कथ सँवारि ।

वरनन सुनि पृथिराज कौ, भय अभिलाष कुआरि ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—दुजि=मदना ब्राह्मणी । कथ=ख्याति, चरित्र । सँवारि=सुन्दर ढग से सँवार कर । मय=हुई, हो पाई ।

अर्थः—(दिल्ली से आने पर) जैसे २ सुन्दरी सयोगिता को मदना ब्राह्मणी ने पृथ्वीराज की ख्याति (चरित्र) का वर्णन कर सुन्दर ढग से सुनाया, वैसे २ उस कुमारी के हृदय में अभिलाषा की वृद्धि होती गई ।

असन सेन शोभा तजी, सुनत श्रवन्न कुआरि ।

मन मिलीवे की रुचि बढी, और न चित्त दुआरि ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० । २ पा० ।

शब्दार्थः—असन=भोजन । सेन=शयन । चित्र दुश्चारि=चित्त रूपी द्वार पर ।

अर्थः—उसने भोजन, शयन तथा शारीरिक श्रु गारादि छोड़ दिये । उसके मन में पृथ्वीराज से मिलने की इच्छा बढ़ गई । उसके चित्त में पृथ्वीराज के अतिरिक्त और किसी के लिए स्थान नहीं था ।

गाथा

अमि ए अमिय वयने^१ रचने वाल ध्यान प्रथिराजं ।

गोलक डुलै न थान, जानै लिखि चित्रयं चरितं ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—अमि ए=अमृत मय, माधुरी मूर्ति । अमिय वयने=अमृत-वाणी । रचने=रचना, गुणगान । गोलक=नैत्रों की पुतली । चरित=बनाई हो ।

अर्थः—अमृतमयी (माधुरी मूर्ति) बालिका (सयोगिता) अपनी अमृत-वाणी द्वारा पृथ्वीराज का गुणगान और उसी का ध्यान करने लगी । उसके नैत्रों की पुतलियाँ स्थिर और काया चित्र लिखित पुत्तलिका के समान दिखाई देती थी ।

कवित्त

मन अभिलाख सु राज, वरन सुन्दरी भइय मति ।

जौ तन मध्यै सास, मोहि सभरिय नाथ पति ॥

कै कुआरपन मरी, धरौ फिरि अग पहुमि पर ।

तो राजा पृथिराज, आन मन इछ्य नहीं वर ॥

इम चित चित्त कुअरी सु धृत, रही भोइ मन मोन अदि ।

फलहत वोज अहि मडि दुज, अपु सपत्ते प्रेह कहि ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—सास=श्वास । आन=अन्य । इछ्य=इच्छा । मोइ=चक्कर लगाना । अहि=वह । दुज=द्विज दपति । सपत्ते=गये, चलने वने ।

अर्थः—सुदरी (सयोगिता) के मन में उस श्रेष्ठ राजा (पृथ्वीराज) की अभिलाषा के साथ २ उसे ही वरण करने की इच्छा हुई और उसने निश्चय किया कि जब तक मेरे शरीर में साम रहेगी, मेरा पति सभरी नरेश ही होगा । यदि ऐसा नहीं हुआ तो मैं कुमारीवस्था में ही मृत्यु प्राप्त करूँगी और पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर पृथ्वीराज को ही पति रूप में प्राप्त करने की मेरी इच्छा है, अन्य की नहीं । इस प्रकार

मन में चिंतन किया ' उमके मन में वही व्रत चक्कर लगाता रहता था । उम व्रत को दूमरों पर प्रकट करने के लिये वह बहुधा मौन रहती थी । इस प्रकार पृथ्वी पर कलह का बीज बोकर द्विज-दम्पति अपने स्थान (घर) को चलते बने ।

दोहा

यौं वृत लिन्नौ सुंदरी, ज्यौं दमयंती पुव्व ।

कै हथलेवौ पिय करौ, कै जल मध्ये डुव्व' ॥ २० ॥

प्रा० पा० १ घ० पा० भी० का० ।

शब्दार्थः—वृत=प्रतिष्ठा । पुव्व=पूर्व समय में । हथलेवौ=पाणिगृहण । पिय=पृथ्वीराज से ।

अर्थः—उस सुंदरी ने इस प्रकार व्रत लिया, जैसा कि पहले दमयंती ने लिया था । उसने यही निश्चय किया कि या तो पाणिगृहण पृथ्वीराज के साथ करूँगी, अन्यथा जन्न में डूब मरूँगी ।

—*—:❀:—*—

बालुका राय

(समय ४६)

दोहा

राजा जज्ञ अरभु किय, सम्मर सहित सँजोग ।

मिलि मगल मडप रचिय, जहाँ विविध विधि भोग ॥ १ ॥

शब्दार्थ:—राजा=जयचन्द । जज्ञ=यज्ञ । अरभु=शुरू । सम्मर=स्वयवर । सँजोग=संयोगिता ।
मगल=शुभ, मगलीक । भोग=विलास सामग्री ।

अर्थ:—राजा जयचन्द ने संयोगिता के स्वयवर सहित यज्ञ आरम्भ किया और मगलीक मडप की रचना की, जहाँ विविध प्रकार की विलास सामग्री उपलब्ध थी ।

मन मडत छडत कलह, बल दीरघ प्रति वाम ॥

कहै पंग त्रप ऊँच मति, रहै तो रक्खौ नाम ॥ २ ॥

शब्दार्थ:—मत=मत्रणा । मडत=धरते हैं । छडत=छोड़ देते हैं । कलह=युद्ध । बल-दीरघ=विशेष बलवान । वाम=बायें, बाके विपत्ती । पंग त्रप=पगुराज, जयचन्द । ऊँचमति=ऊँचीमति वाला । रहै=रख सके तो ।

अर्थ:—ऊँची मतिवाला राजा जयचन्द कहने लगा । बलवान विपत्ती के साथ युद्ध करने की मत्रणा कोई निभा सकता है, कोई छोड़ देता है । हे वीरों ! यज्ञ, और स्वयवर के वहाने यदि नाम अमर रखना चाहते हो तो रक्खो ।

गाथा

के के न गया महिमडला, वज्जाये दीह दिवहाई ।

विफुरै जासु किन्ती ते गया नहँ गया हुँतो ॥ २ ॥

शब्दार्थ:—के के=कितना ही । गया=गये । महिम डला=भू मडल । वज्जाये=कहला कर दीह=बड़े, दीर्घ । दिवहाई=दिवसाई, दिवस, आयु के दिनों में । विफुरै=विस्तृत । जासु=जिसकी । किन्ती=कानि । ते=वे । गया=गये, मगये । नहँ गया=नहीं मरे । हुँती=वे ।

अर्थ:—अपनी जिदगी में बड़ा कहला कर दस भूमडल से कौन विदा नहीं दृष्ट्या (अर्थात् सबको एक दिन जाना पडा), किन्तु जिनकी कीर्ति मसार में फैल गई है, वे मर कर भी अमर हैं ।

ववूरे मलय मरुत, जगुरेव पिक पराग परपंच ।

उत्कंठं भार तरला, मम मानसं किम्म खंमंती ॥ ४ ॥

शब्दार्थः—ववूरे=ववूल की तरह, ववूल के कटि की तरह । मलय=चंदन । मरुते=पवन । जगुरेव=जग के, संसार के । पिक=कोयल । पराग=पुष्प रज । परपंच=प्रपंच स्वरूप । उत्कंठ=अभिलाषा । मार=भार स्वरूप । तरला=विजली । मम=मेरा । मानसं=मानस, मन । किम्म=क्यों । खंमंती=चमकता, दमकता है ।

अर्थः—उधर सयोगिता सखि से कहने लगी — हे सखी ! मुझे मलय-मारुत ववूल के काटों के समान तीक्ष्ण, पिक-स्वर और पुष्प-रज विश्व-प्रपंच के समान और अभिलाषा भार स्वरूप लगती है । मेरा मन विजली की तरह है । क्यों कि कभी क्षण भर के लिए दमक कर रह जाता है (कभी प्रसन्न कभी विषाद सा हो जाता है) ।

मानीय दाह वाले, पुत्तलिका पानिग्रहनाय ।

एकंत सैज सहवं, लवजावीय न आसाई ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—मानीय=मान, समान । दाह=जलन । वाले=वाला । पुत्तलिका=गुड़ियों का । पानिग्रहनायं=पाणि ग्रहण कराना । सहवं=सहवास, सौहाग्राधि । लवजावीय=लवजा होती है । न आसाई=निराशा होती है ।

अर्थः—गुड़ियों का पाणि-ग्रहण कराते समय मुझे न मालूम क्यों जलन सा होती है ? उन्हें एकत सहवास की शैया पर देख कर निराशा के साथ नजाने क्यों लवजा आती है ?

वव्जाह गाह श्रवन, नयनं चित्रेह दृष्टि लग्गाह ।

गामान गाम लवजा अनंग अकूरिय वाला ॥ ६ ॥

शब्दार्थः—वव्जाह=वाध स्वर । गाह=ग्रहण करन लगे । श्रवनं=श्रवण, कान । नयनं=नेत्र । चित्रेह=चित्र । लग्गाह=लग गए । गामान गाम=प्रत्येक ग्राम में (माहरत) । अनंग=काम देव । अकूरिय=अकूरित हो गये । वाला=वाला में ।

अर्थः—तव सखि कहने लगी-तेरे कान वाध स्वर की ओर, नेत्र प्रिय चित्र की तरफ (पृथ्वीराज के चित्र की ओर) लग गए हैं और प्रत्येक ग्राम में लुप्त में लवजा, और अनंग अंकुरित होने की शोहरत होगई है ।

आनन उखंग चिउकी, आलौलीय इच्छ सजोई ।

वरनीय पानि पत्तौ, दीहा सत्तामि अट्ट मभभामी ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—आनन उखंग=मुँह को गोदी में लेती हुई । चिउकी=चिबुक का, ठुड्डी का । आलौलीय=स्पर्ध करती हुई । इच्छ=इच्छा । सजोई=सयोगिता । वरनीय=कहा । पानिपत्तौ=पाणिग्रहण । दीहा=दीह, दिन । सत्तामि=सात । अट्ट=आठ । मभभामी=अन्दर, में ।

अर्थः—यह कहती हुई सखि । उसके मुँह को गोद में ले ठुड्डी पकड़ प्यार करती हुई, इच्छा पूर्ण दृष्टि से सयोगिता को देखकर कहने लगी हे प्यारी । तेरा सात आठ दिन में ही पाणि-ग्रहण होने वाला है ।

हा हत । सास खिन्ना, या सुन्दरी कथ वरयामी ।

वालीय विधि विहीना, सजोइय जोगिना पानी ॥ ८ ॥

शब्दार्थः—हा हत=दुःख सूचक शब्द । सास खिन्ना=क्षीण श्वास, उदासी के श्वास । कथ=कहाँ, किससे । वरयामी=वरण करेगी । वालीय=यह वाला । विधि विहीना=बे तरीके, शास्त्रोक्त ढग से रहित । सजोइय=सयोगिता । जोगिना=योगिनि पुरेश्वर, दिल्लीश्वर । पानी=पाणिग्रहण ।

अर्थः—अहो ! दुःख का विषय है कि विरह वेदना से क्षीण श्वासा युक्त सुन्दरी किससे क्याही जायगी ? तब दूसरी सखि ने कहा— यह बालिका सयोगिता शास्त्रोक्त ढग के विहीन दिल्लीश्वर को प्राप्त होगी ।

श्लोक

अन्यथा नैव पिक्वती, दुज वाक्य न मुच्यते ।

प्राप्त जोगिनी नाथो, सजोगी तत्र गच्छती ॥ ९ ॥

शब्दार्थः—अन्यथा=विपरीत । नैव=नहीं । पिक्वती=दौल पाता । दुज=वाक्य । वाक्य=वाक्य, वचन । मुच्यते=असत्य होने ।

अर्थः—ब्राह्मण के वाक्य (मदन ब्राह्मणों के पति के कहे हुए) असत्य नहीं होते और न वे विपरीत ही होते हैं । योगिनि पति (दिल्लीश्वर) इसे प्राप्त करेगा और सयोगिता वहीं पर जायगी ।

दोहा

जग' वत्त जुगिनि पुरह, सुनी कृत्य कमवज्ज ।

मन्नि अप्प विभ्रम मन, तमि सामन सु रज्ज ॥ १० ॥

प्रा पा १ म ।

शब्दार्थः—जग-वत्त=यज्ञ की बात । क्रय्य= करने की । कमधञ्ज=राष्ट्रवर जयचंद । मन्नि=मानी । अण्य=अपने । विभ्र म=भ्रम युक्त । तमि=तमोगुण युक्त । सामत सुरञ्ज=सामंतों का सूर्य ।

अर्थः—दिल्ली नगर में सुना कि जयचंद यज्ञ कर रहा है । जिससे भ्रम में पड़ कर सामंतों के सूर्य में तमोगुण बढ़ गया ।

दूत वत्त कग्गद सयन, थण्पि वत्त सा सत्त ।

चमकि चित्त चहुवान नृप, तमि सामत विरत्त ॥ ११ ॥

शब्दार्थः—दूत वत्त=दूतों द्वारा कही हुई बात । कग्गद सयन=सञ्जनो के पत्रों से । थण्पिवत्त=बात स्थापित करली । सा सत्त=उमे सत्यता पूर्वक । चमकि=चकित हो गया । तमि=तमोगुण । विरत्त=विरक्त ।

अर्थ—दूतों द्वारा प्राप्त सूचनाओं, और अपने सहयोगियों के प्राप्त पत्रों से जयचंद द्वारा किये जाने वाले यज्ञ की बात सत्य मान कर चहुआन नरेश का मन चकित रह गया और उसके सामंत ससार से विरक्त होकर तमोगुणी बन गये (अर्थात् क्रुद्ध हो गये) ।

सुनो वत्त दिल्ली नृपति, थण्यौ पौरि प्रथिराज ।

अव जीवनु वञ्च्यौ न नृप, करौ मरन को साज ॥ १२ ॥

शब्दार्थः—वत्त=बात । थण्यौ=स्थापित किया । पौरि=द्वार पर । अव=अव । जीवनु=जीने की । वञ्च्यौ=इच्छा करना । मरन=मरने का । साज=सामग्री ।

अर्थः—सामंतों ने कहा-हे दिल्लीश्वर ! आपकी स्वर्ण-प्रतिमा जयचंद ने अपने द्वार पर स्थापित की है । यह बात हम सब ने सुन ली है । अब हमारे लिये जीने की इच्छा करना उचित नहीं है । मृत्यु का साज सजाना चाहिये ।

गाथा

दिदु किय मत्त उहासौ, पत्तौ धाम राज ना भ्रत्त ।

अंतर महल उहासौ, आसमेव तत्थ चहुवान ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—दिदु=दृढ । मत्त=मंत्रणा । उहासौ=वहाँ से । पत्तौ=लौटे । धाम=घर । सा=वह । भ्रत्त=व्युगण, सुमदादि । अंतर महल=मोतगी स्थान । आसमेव=आसन पर बैठा । तत्थ=जहाँ । चहुवान=पृथ्वीगज ।

अर्थः—इस प्रकार वहाँ दृढ मंत्रणा कर सामतगण अपने २ स्थान को लौटे और राजा वहाँ से अतरग महल में जाकर आसन पर बैठा ।

स्यंघासने सुरेस, सम आरोहि धीर दिल्लेस ।

मत्त पयान विचार, बुल्ले रज्ज कज्ज देवज्ञं ॥ १४ ॥

शब्दार्थः—स्यंघासने=सिंहासन पर । सुरेस=इन्द्र । सम=समान । आरोहि=आरूढ होना, बैठना । धीर=धैर्यवान । दिल्लेसं=दिल्लीश्वर । मत्त=भ्रमण । पयान=प्रस्थान । विचार=विचार । बुल्ले=बुलवाये । रज्ज कज्ज=राज काज (कार्य कर्ता) । देवज्ञं=देवराम, पुरोहित ।

अर्थः—धैर्यधारी दिल्लीश्वर सिंहासन पर इन्द्र के समान आसीन हुआ और युद्धार्थ विदा होने के लिए विचार करते हुए उसने राज्य काज-कर्ता (मन्त्रीगण) और देवतुल्य देवराम पुरोहित को समज्ञ बुलाया ।

दोहा

बोल्यौ वभनु सूर तहँ, कही सुमन की वात ।

सो दिनु पंडित देहि हम, जिहि दिन चले सघात ॥ १५ ॥

शब्दार्थः— ब्यौ=बोला । वभनु=ब्राह्मण । सूर=बहादुर । तहँ=वहाँ । सी=वह । दिनु=दिन । देहि=दे । जिहि=जिस । सघात=शास्त्राघात ।

अर्थः—उस बहादुर राजा ने वहा पर द्विज (देवराम) को बुलाकर मन की बात कही और कहा—हे पंडित । ऐसा दिन हमें बतलाओ । जिस दिन शस्त्राघात प्रारंभ हो सकें (अर्थात् युद्ध किया जाय) ।

तव वभन कर जोरि कहि, सुनहित नृपति नरयद ।

पुखि नखित्र रविवारु है, तिहि दिन करहि अनद ॥ १६ ॥

शब्दार्थः—तव=तव । सुनहित=सुनिये । नृपति नरयद=राजाओं के राजा राज राजेश्वर पुखि=पुष्प । नखित्र=नक्षत्र । वारु=वार । तिहि=उम । अनद=आनन्द, कुशल ।

अर्थः—तव द्विज ने हाथ जोड कर निवेदन किया—कि हे—राज राजेश्वर । पुष्प नक्षत्र और रविवार के दिन प्रस्थान करने से सब प्रकार की कुशल है ।

चडिड चल्यौ प्रथिराज नृप, जय २ वदिन जपि ।

विगसे मूरनि नृ तन, कलत सु कातर कपि ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—चढि=चढ़ कर । वदिन=वदीजन । जपि=कड़नेलगे । विगमे=मूले । सूरनि=बहादुर । नूर=कृति । कलत्त=कलत्र, स्त्री । कातर=कायर । कपि=कपाने लगे ।

अर्थ—तव राजा पृथ्वीराज घोड़े पर चढ़ कर रवाना हुआ और वंदीजनों ने उनकी जय जय कार की । उस समय जो तेजस्वी थे, उनके मुख खिल पड़े और कायर पुरुष स्त्रियों की तरह कापने लगे ।

कवित्त

धाह थाह खोखद, सुनिय वालुकाराइ रव ।
लघु वधव जयचद, राइ मंकेस सु सभव ॥
सोइ संभलिकल कूक, ऊक ब्रद्धिय दसदिसि दर ।
नह सुनिये श्रुति अवर, नयर सब गजिज गहम्भर ॥
वालुकाराइ इम उच्चरै, कहौ वत्त कारन सकल ।
मम करौ धाह थिर होइ करि, कवन तेक वंची सुवल ॥ १८ ॥

शब्दार्थ—धाह=शोर गुल । थाह=स्थान । खोखद=स्थान विशेष । रव=आवाज । लघु=छोटा । राइ मकेस=मंकेसराय । समत्र=पैदा होना, उत्पन्न होना । सोइ=वही । समलि=सुनकर । कल कूक=किन्कारी । ऊक=उक्ताना, धवराहट । ब्रद्धिय=बढ़ा । दसदिसि=दर्शों, दराओं, प्रत्येक दिशा । दर=द्वारा श्रुति=कान । अवर=और । नयर=नगर । सब=सब । गजिज=गर्जना । गहम्भर=गर्जना । इम=इसतरह । उच्चरै=कहे । वत्त=वात । सकल=सब । मम=नहीं । थिर=स्थिर होकर । कवन=कौन । तेग=तलवार । वधी=वांधी । सुवल=बलशाली ।

अर्थ—जयचद के छुट भाइयों ने मकेसराय नामक व्यक्ति के पुत्र वालुका राय के स्थान-खोखद में पृथ्वीराज के चढ़ आने से शोर गुल मच गया । उस शोर गुज के सुनने से प्रत्येक द्वार पर धवराहट बढ़ गई । उस समय और कोई आवाज सुनाई नहीं पड़ती थी । यह देख वालुकाराय अपने साथियों आदि से कहने लगा-यह वात वीत रही है इसका क्या कारण है ? अतः तुम सब धैर्य धारण कर शोर गुल का वद करो और निश्चय करो कि हम पर किसने तलवार कसी है ?

किहि रुद्रुयो सुव तरनि, कहै नयरी पति सं-जम ।

अज्ज रज्ज जयचन्द, कवन उद्देग करइ दम ॥

तव धाहुनि उच्चगि, सुनहि मंकेस राइ सुव ।

दिल्लीवै चहुवान, तेन उज्जारि जारि भुव ॥

सुनि सह नह निरसान किय, आप वोलि सज्जे सुभर ।

सज होइ चढौ सज्जौ सिलह, अनी वंधि आपाढ वर ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—किह=किसने । रुट्ठ्यो=रुष्ट किया, क्रोधित किया । सुव=सुत । तरनि=सूर्य । स-जम=यमराज के समान । अज्ज रज्ज=आज । रज्ज=राज । कवन=कौन । उद्देग=घवराहट । दम=साहम । तव=तव । घाहुनि=घावन, दूत । तेन=उसने । उज्जाणि=नष्ट किये । जारि=जलाकर । भुन=पृथ्वी । सह=आवाज । नह=नाद, गर्जना । आप=अपने वोलि=दुलाये । सज्जे=मजाये, तैयार किये । सुभर=सुभट । सज होइ=सजग होकर । सिलह=कवच, वस्त्र । अनी वंधि=मेना पक्ति बद्ध हुई । आपाढ वर=आपाढ के बदलों की तरह ।

अर्थ—उस नगर का स्वामी (बालुकाराय) जो यमराज के समान था, कहने लगा—मुझ (सूर्य पुत्र) को किसने रुष्ट किया है ? आज जयचढ़ के राज मे घवराहट मचाने का क्रिमने साहस किया है ? दूनों ने कहा—हे मकेसराय के पुत्र । दिल्लीश्वर चाहुआन ने आपके भू भाग को जलाकर उभाड दिया है । यह सुनते ही नक्कारे वजवाये और अपने सब साथियों को बुलाकर कहा कि सजग हो जाओ और कवच कस कर घोडे पर चढो । इतना कहते ही उसकी सेना आपाढ के बादलों की तरह पक्तिबद्ध होगई ।

दोहा

सयन महम वत्तीस भर, चरुयो सु जगम जूहि ।

नगर छडि वाहर चढे, तव रज इक्खी ऊहि ॥ २० ॥

शब्दार्थ:—सयन=सेना । भर=सुभट । जूहि=जूह-समूह । वाहर=मदर । तव=तव । रज=गिर्द । इक्खी=दिखाई दी । ऊहि=आह । अग । ।

अर्थ:—उस ३० गम पीर का सैन्य-समूह वत्तीस हजार की सख्या मे सुसज्जित होकर नगर को छोड जनता की मदद पर आया जिमसे रज उड़ती दिखाई देने लगी ।

गाथा

दल दुव हृव दिट्टाल, उज्जे नह वीर विमराल ॥

सज्जे सयन सुचाल, ववे फौज कमव मजि काल ॥ २१ ॥

शब्दार्थः—दल=सेना हुव=दोनों । हुव=यामने । दिव्हालं=दिखे । वज्जे नह=नक्कारे वजे । विसरालं=कण कट्ट । सुचाल=अच्छे ढंग से । वधे=पक्तिवद्ध हुए । कालं=काल रूप ।

अर्थः—दोनो सेनाओं की आंखें मिजों और विप-तुल्य कर्ण-कट्ट-याग वज्जे लगे । अच्छी तरह सेना सजा कर यम-तुल्य वीर कम वज (वालुकाराय) ने स्वयं सुमज्जित हो अपना सेना को पक्ति वद्ध किया ।

बंधो फौज दिक्खि चहुआनं, सज्जकिय अप्प सेन सञ्चानं ।

वधे मिलह सुरान, सज्जे सीस सुभर असमानं ॥ २२ ॥

शब्दार्थः—वधी=पक्तिवद्ध । दिक्खि=दिखाई दिए अप्प=अपनी । सञ्चान=सवको । वधे=बंधे । सुरान=वहादुर । सज्जे=सजाये । सुभर=सुमट । असमान=आकाश ।

अर्थः—वालुका राय की सेना का पक्ति वद्ध हुई देख कर अपनी सेना के समस्त सैनिकों को चाहुआन नरेश्वर ने सावधान किया । इन कवच कसे हुए वहादुरों ने उत्साहित हो अपने सिरों को आसमान से लगा दिया अर्थात् ऊचा उठाया ।

दोहा

जले सज्जि दूनौ सयन, दिक्खियै दिट्ठि करूर ।

स्वामि धर्म सा कर्म वस, ते सभारे सूर ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—जलै=वडे । दूनौ=दोनों । सयन=मेना । दिट्ठि=दृष्टि । करूर=कूर । मा कर्म वस=अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले ते=उनके । सभारे=खतम किया । सूर=वीर ।

अर्थः—दोनों सेनाएँ सज कर रवाना हुई और आगे बढ़ी । एक दूसरे पक्ष को वह क्रूर दृष्टि से देखने लगी । उसी समय पृथ्वीराज के स्वामी धर्म धारक और अपने कर्त्तव्य का पालन करने वाले वीरोंने विपक्षी वीर कमधज (वालुकाराय) को खतम कर दिया ।

परत सु वालुकराय रन, सहस पच सम सत्य ।

उभय घटी मध्यान्ह उध, धनि सामतनि हत्य ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—परत=धरासाई । सहसपच=पाँच हजार । मम=व । मत्य=माघ । उमय=दोनों । घटी=घड़ी । उध=ऊपर । धनि=धन्य । हत्य=हाथ ।

अर्थः—धन्य है ऐसे युद्ध करने वाले सामन्तों के हाथों को जिन्होंने मध्यान्ह काल पर दो घड़ी बीतते बीनते बालुकाराय और उसके समान पाँच सहस्र साथियों को धराशायी किया ।

दिल्लीईसय सत्त भ्रत, परेसु कटि रन थान ।

छह सत्तह सामत कुसल, जय लद्धी चहुआन ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—दिल्लीईसय=दिल्ली पति के । सत्त भ्रत=सौ सामत । कटि=कट कर । रन थान=रण स्थल । छह सत्तह=छ सात । सामत=सामन्त । कुसल=कुशल । लद्धी=प्राप्त की ।

अर्थः—इस युद्ध-स्थल में दिल्लीश्वर के सौ सामन्त घायल होकर धराशायी होगये । केवल छ. सात सामन्त ही सकुशल रहे । ऐसी परिस्थिति में चाहुआन नरेश्वर ने विजय प्राप्त की ।

कवित्त

हनिग राउवालुका, भजि खोखद महापुर ।

लुट्टि रिद्धि बहु निद्धि, कनक पट कूर नग्ग धुर ॥

करत सास उहास, छोहि जोरी वर दपति ।

फिर्यौ राज चहुवान, पान दक्खै हरि सपति ॥

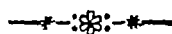
वञ्जत नह निस्सान रव, धाह प्रकेसे लोटि धर ।

भग्गेव जग्ग जयचद नृप, थान वयट्टौ कपि पर ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—हनिग=मारा गया । भजि=नष्ट हुआ । महापुर=नगर, बड़ा शहर । बहु=बहुत, सब । पटकर=जरीन वस्त्र । नग्ग=नग । धुर=निश्चय रूप से । करत सास उहास=सास को उदास वरती हुई । छोहि=उत्साह । जोरा=जोड़ा । फिर्यौ=लौट गया । पान=हाथ में । दक्खै=दाखी । हगी=हरण की हुई । वञ्जत=वज्रते हुए । नह=नाद । निस्सान=नक्कारे । रव=थावाज । धाह=आतङ्ग । प्रग्गे=प्रशास में लाकर । लोटि=लोढ़ना, कुचलना । भग्गेव=नष्ट हो गया । थान वयट्टो=घर पर बैठ गया, आशा छोड़ दी । कपि पर=शौरों के कवित (बालुकाराय के साथियों के कवित) होने पर ।

अर्थः—बालुकाराय मारा गया और महान पुर (बड़ा नगर) खोखद नष्ट हुआ । वहाँ की रिद्धि-मिद्धि, स्वर्ण, वस्त्रादि लूट लूट गए । बालुकाराय की मृत्यु के

कारण उसकी स्त्री, सास को उदास करती हुई अपनी श्रेष्ठ जोड़ी बनी रखने को उत्साहित हो गई (अर्थात् बालुकाराय मारा गया और वह सती हो गई) । लूटी हुई सपत्ति पृथ्वीराज के हाथ में दीख पड़ी (या ऐश्वर्य्य उसके हाथ में दिखाई दिया) । वह राजा वहाँ से लौट गया । इस प्रकार वजाते हुए नगरों आदि की ध्वनि के साथ आतक फैलते हुए उसने बिगुल के भू-भाग को कुचन दिया । इस तरह जयचंद्र की यज्ञ ध्वंस हो गया और जयचंद्र दूनरों (बालुकाराय के साथियों) के कपित होने से ६ यज्ञ की आशा छोड़ घर बैठ गया ।



अर्थः—धन्य है ऐसे युद्ध करने वाले सामन्तों के हाथों को जिन्होंने मध्यान्ह काल पर दो घड़ी बीतते बीनते बालुकाराय और उसके समान पाँच सहस्र साथियों को धराशायी किया ।

दिल्लीईसय सत्त भ्रत, परेसु कटि रन थान ।

छह सत्तह सामत कुसल, जय लद्धी चहुवान ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—दिल्लीईसय=दिल्ली पति के । सत्त भ्रत=सौ सामत । कटि=कट कर । रन थान=रण स्थल । छह सत्तह=छ सात । सामत=सामन्त । कुसल=कुशल । लद्धी=प्राप्त की ।

अर्थः—इस युद्ध-स्थल में दिल्लीश्वर के सौ सामन्त घायल होकर धराशायी होगये । केवल छ. सात सामन्त ही सकुशल रहे । ऐसी परिस्थिति में चाहुवान नरेश्वर ने विजय प्राप्त की ।

कवित्त

हनग राउवालुका, भजि खोखद महापुर ।

लुट्टि रिद्धि बहु निद्धि, कनक पट कूर नग धुर ॥

करत सास उदास, छोहि जोरी वर दपति ।

फिर्यौ राज चहुवान, पान दक्खै हरि सपति ॥

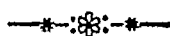
वञ्जत नह निस्सान रव, धाह प्रकेसे लोटि धर ।

भग्गेव जग्य जयचद नृप, थान वयट्टौ कपि पर ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—हनग=मारा गया । भजि=नष्ट हुआ । महापुर=नगर, बड़ा शहर । बहु=बहुत, सब । पटकूर=जरीन वस्त्र । नग=नगर । धुर=निश्चय रूप से । करत सास उदास=सासु को उदास करती हुई । छोहि=उत्साह । जोरी=जोड़ी । फिर्यौ=लौट गया । पान=हाथ में । दक्खै=दाखी । री=हरण की हुई । वञ्जत=वजते हुए । नह=नाद । निस्सान=नक्कारे । रव=आवाज । धाह=आतङ्ग । प्रकेसे=प्रकाश में लाकर । लोटि=लोटना, कुचलना । भग्गेव=नष्ट हो गया । थान वयट्टौ=घर पर बैठ गया, आशा छोड़ दी । कपि पर=चौरों के कपित (बालुकाराय के साथियों के कपित) होने पर ।

अर्थः—बालुकाराय मारा गया और महान पुर (बड़ा नगर) खोखद नष्ट हुआ । वहाँ की रिद्धि-मिद्धि, स्वर्ण, वस्त्रादि लूट लाने गए । बालुकाराय की मृत्यु के

कारण उसकी स्त्री, सास को उदास करती हुई अपनी श्रेष्ठ जोड़ी बनी रखने को उरसाहित हो गई (अर्थात् बालुकाराय मारा गया और वह सती हो गई) । लूटी हुई सपत्ति पृथ्वीराज के हाथ में दीख पड़ी (या ऐश्वर्य्य उसके हाथ में दिखाई दिया) । वह राजा वहाँ से लौट गया । इस प्रकार बजाते हुए नगरों आदि की ध्वनि के साथ आतंक फैलते हुए उसने विरक्त के भू-भाग को कुचन दिया । इस तरह जयचद की यज्ञ ध्वंस हो गया और जयचद दूनों (बालुकाराय के साथियों) के कपित होने से ६ यज्ञ की आशा छोड़ घर बैठ गया ।



अर्थः—धन्य है ऐसे युद्ध करने वाले सामन्तो के हाथों को जिन्होंने मध्याह्न काल पर दो घड़ी बीतते बीनते बालुकाराय और उसके समान पांच महत्स साथियों को धराशायी किया ।

दिल्लीईसय सत्त भ्रत, परेसु कटि रन थान ।

छह सत्तह सामत कुसल, जय लद्धी चहुआन ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—दिल्लीईसय=दिल्ली पति के । सत्त भ्रत=मां सामत । कटि=कट कर । रन थान=रण स्थल । छह सत्तह=६ सात । सामत=मामन्त । कुसल=कुशल । लद्धी=प्राप्त की ।

अर्थः—इस युद्ध-स्थल में दिल्लीश्वर के सौ सामन्त घायल होकर धराशायी होगये । केवल छ सात मामन्त ही सकुशल रहे । ऐसी परिस्थिति में चाहुआन नरेश्वर ने विजय प्राप्त की ।

कवित्त

हनिग राउवालुका, भजि खोखंद महापुर ।

लुट्टि रिद्धि बहु निद्धि, कनक पट कूर नग्ग धुर ॥

करत सास उदास, छोहि जोरी वर दपति ।

फिर्यौ राज चहुवान, पान दक्खै हरि सपति ॥

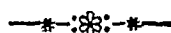
वज्जत नह निस्सान रव, धाह प्रकेसे लोटि धर ।

भग्गेव जग्ग जयचद नृप, थान वयट्ठौ कपि पर ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—हनिग=मारा गया । भजि=नष्ट हुआ । महापुर=नगर, बड़ा शहर । बहु=बहुत, सब । पटकर=जरीन वस्त्र । नग्ग=नग । धुर=निश्चय रूप से । करत सास उदास=सास को उदास करती हुई । छोहि=उत्साह । जोरी=जोड़ी । फिर्यौ=लौट गया । पान=हाथ में । दक्खै=दीखी । हरी=हरण की हुई । वज्जत=बजते हुए । नह=नाह । निस्सान=नक्कारे । रव=श्रावाज । धाह=श्रातक । प्रकेमे=प्रकाश में लाकर । लोटि=लोडना, कुचलना । भग्गेव=नष्ट हो गया । थान वयट्ठौ=वर पर बैठ गया, आशा छोड़ दी । कपि पर=शौरों के कपित (बालुकाराय के साथियों के कपित) होने पर ।

अर्थः— बालुकाराय मारा गया और महान पुर (बड़ा नगर) खोखद नष्ट हुआ । वहाँ की रिद्धि-सिद्धि, स्वर्ण, वस्त्रादि लूट लाने गए । बालुकाराय की मृत्यु के

कारण उसकी स्त्री, सास को उदास करती हुई अपनी श्रेष्ठ जोड़ी बनी रखने को उत्साहित हो गई (अर्थात् बालुकाराय मारा गया और वह सती हो गई) । लूटो हुई सपत्ति पृथ्वीराज के हाथ में दीख पड़ी (या ऐश्वर्य्य उसके हाथ में दिखाई दिया) । वह राजा वहाँ से लौट गया । इस प्रकार बजाते हुए नगरों आदि की ध्वनि के साथ आतक फैलते हुए उसने विष्णु के भू-भाग को कुचन दिया । इस तरह जयचद का यज्ञ ध्वंस हो गया और जयचद दूरों (बालुकाराय के साथियों) के कर्षित होने से ६ यज्ञ की आशा छोड़ घर बैठ गया ।



षष्ठा जग्य विध्वंस

समय ४७

दोहा

जगग^१ उजाये अट्ट दिन, अट्ट रहे दिन अगग ।

तेरसि माघह पुट्ट पख, दरह^२ पुकार सजगग^३ ॥ १ ॥

प्रा० पा० १ घ० । २, ३ का० पा० ।

शब्दार्थः—जगग उजाये=यज्ञारम्भ किये । पुट्ट पख=मास का प्रथम पक्ष (कृष्ण पक्ष) । दरह=द्वार पर । सजगग=सावधान ।

अर्थः—यज्ञारम्भ करने के आठ दिन बाद और पूर्णाहुति के आठ दिन शेष रहने पर माघ कृष्णा त्रयोदशी को (जयचन्द के) यज्ञ द्वार पर पुकार (बालुका की पराजय आदि की) पहुँची कि हे राजन् ! सजग हो जाइये ।

खीर-नीर-दधि ईख घृत, वारुनि, समुद्र-लवन्न ।

इन सत्तन सम ऊफने, बोलिय कमध वचन्न ॥ २ ॥

शब्दार्थः—खीर-नीर-दधि=खीर सिन्धु, जल सिन्धु । समुद्र लवन्न=लवण समुद्र । सत्तन=सातों ।

अर्थः—जिसको सुनकर राजा कमधञ्ज इस प्रकार क्रोध वश उबल पडा, मानों खीर सिन्धु, जल सिन्धु गुड़ बनाते समय गन्ने का रस, कडाह स्थित घृत, भट्टी से मदिरे। और लवण सागर उबल कर उफाँ हों । उपरोक्त सातों के समान उफणता हुआ कमधञ्ज नरेश कहने लगा ।

कवित्त

पूरव दिसि पति^१ इद्र, अग्नि कूँनह अग्नेय ।

दच्छिन यम नैरत्ति, कून नैर्त्ति सुनेय ।

पच्छिम अधिपति वरुन, वायु कूँ न वायान^२ ।

उत्तर हेरि कुवेर, कून ईमह ईसान ।

ऊरुद्ध ब्रह्म पाताल नग, मान खडि दिगपाल कौ ।

पृथिराज काल्हि आनो पकरि, तौ जायौ विजपाल कौ ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १, २, सं ।

शब्दार्थः—अग्निनेय=अग्नि । कुँन=कोण । नैर्ऋति=निर्ऋति । सुनेय=सुना है । वायान=वायु ।

ईसान=ईश । ऊरुद्ध=ऊर्ध्व । नग=अनन्त, नाग । काल्हि=कल ही । जायौ=जाया, जन्मा हुआ, पुत्र ।

अर्थः—पू० दिशा का इंद्र, अग्निकोण का अग्नि, दक्षिण का यम, नैर्ऋत्य का निर्ऋति, पश्चिम का वरुण, वायव्य का वायु, उत्तर का कुवेर, ईशान का रुद्र, ऊर्ध्व का ब्रह्मा, पाताल का अनन्त (नाग) वे क्रमशः दिशाओं के स्वामी कहे गये हैं । मैं दिक्पालों सहित उन सबका मान भंग कर कल ही पृथ्वीराज को पकड़ कर लाऊँगा, तब ही मेरा विजयपाल का पुत्र कहलाना सार्थक होगा ।

दोहा

जित्ति जुद्ध' जैपत्त लिय, दिसि मुरधर उप-देस ।

द्विति रक्खन द्विति पर सवर^२, सुनि पुगरे^३ नरेस ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ पा. । २ दे. । ३ पा ।

शब्दार्थः—जैपत्त=जय पत्र । उप देस=समीपवर्ती देश । सवर=सवल ।

अर्थः—(जयचद को क्रोध करते हुए देखकर रानी जुन्हाई ने कहा) आपने मरुधर और समीपवर्ती देशों को जीत कर जय-पत्र प्राप्त किया है । हे पगुनरेश । आप ही इस पृथ्वी के रक्षक और सबल वीर माने जा सकते हैं ।

गठि जुन्हाइ उन्हाइ निजु, राइ वरन निज-दान ।

श्रुति अनुराग सजोगिकौ, करहु न प्रभू प्रमान ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—उन्हाइ=उमड़ती हुई, अर्थात् आसू मरती हुई । राइ वरन=किमी राजा को सयोगिता का वरण कराना । निज-दान=आपका मुख्य दान है (कन्यादान प्रमुख है) । श्रुति-अनुराग=श्रोतानुराग ।

अर्थः—स्वयं आँलों में आँसू भर रानी जुन्हाई अपने पति जयचद को वश में करती हुई कहने लगी हे स्वामिन् ! आप अपना मुख्य दान जो कि कन्या

दान है, उसे सयोगिता का किन्ही राजा से तरण करा कर पूरा करिये । सयोगिता के श्रोतानुराग ने आप सत्य नहीं समझिये (यह उसका वचन है) ।

कवित्त

बालवेस वय^१ चढन, ध्रम्म रक्खे न पुत्रि ग्रह ।

मुम्मि^२ मुम्मि^३-न्निर मिलै, जानि वानूल तूल तह ॥

वर मजोगि पर नाय^४, राज वधौ^५ चहुआन ।

वधि वीर पृथिराज, जग्य मडौ पर वान ॥

सुज्जै^६ सु काई भजै कवन, वय^७ जानै किम होइ फिरि ।

पुत्रीय स्वयवर मडिकै, फिरि वधौ : दुज्जन सुजुरि^८ ॥

प्रा० पा० १ पा० भी० । २, ३ पा० । ४ का० पा० घ० । ५ स० । ६ पा० । ७ भी० । ८ का० घ० ।

शब्दार्थः—बालवेस=बाल्यावस्था । वय चढत=चढती आयु में (चढती हुई) । ध्रम्म=धर्म । मुम्मि=पृथ्वी । मुम्मि नृप=पृथ्वीपति, राजा । मिलै=भिड़े । वानूल=वात चक्र, हवा का बवडर, बवृला । तूल=तुल्य । परनाय=विवाह कराकर । वधौ=वधन में लीजिये । मडौ=मडन । परवान=सप्रमाण, सार्थक । सुज्जै=दीखना, जान सकना । काइ=किसको । मंजे=विनाश । वय=क्या, कौन । दुज्जन=दुर्जन, शत्रु । जुरि=जुटकर ।

अर्थः—बाल्यावस्था के बाद बढ़ती आयु में पुत्री को अविवाहित घर में रखना धर्म सगत नहीं है । पृथ्वीपर राजाओं का एकत्रित होना वात चक्र (हवा का बवडर) के तुल्य है । इस लिये पहले आप श्रेष्ठ सयोगिता का विवाह कर दीजिये । इसके पश्चात् चौहान को बन्धन में लीजिये । पृथ्वीराज को बदी बनाकर ही यज्ञ को सजाना सार्थक है । हे स्वामी ! यह नहीं कहा जा सकता है कि चढाई करने पर किसका विनाश होगा ? फिर न जाने क्या हो-कौन जान सकता है ? अतः पुत्री के स्वयवर को पूर्ण कर बाद में शत्रु से भिड़ उसे बदी बनाना ही ठीक है ।

गोहा

इह^१ सुमत नृप चिंति मन, वजी अवाजन साज ।

सुनि सजोगि कुआरिने^२, वृत्त लीनो पृथिराज ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० घ० । २ पा० घ० ।

शब्दार्थ—सुमत=सुमन्त्रणा । अत्राजन=वाघ ध्वनि । साज=तैयारी । कुआरि=कुमारी ।

अर्थ:— राजा जयचन्द्र ने रानी की सुमन्त्रणा पर मन में चिंतन किया और स्वयंवर की तैयारी के लिये वाजे बजावाये । उधर राजकुमारी सयोगिता ने सुना कि उसके ही समान पृथ्वीराज ने भी सयोगिता को वरण करने की प्रतिज्ञा ली है ।

कवित्त

जग्य विध्वसिय पंग, दुअन श्रोत्रानु वढाइय ।

सुनि सुनि इह संजागि, चित्त वृत लिन्न^२ प्रवाहिये ।

वरों कि वर चहुआन, वार-खोऊँ धम-सारिय ।

कै कृसान^३ देउ प्रान, वरों मनमध्य विचारिय ।

मन संक वत्त इत्ती करी, प्रगट नवल-वल्लह^४ करी ।

पहु पंग संत-बहु मानिकै, राज-राज उच्चित फिरी ॥ ८ ॥

पा० पा० सर्व प्रति १ । २, ३ पा० । ४ का० पा० भी० ।

शब्दार्थ:—दुअन=दोनों । इह=यह । लिन्न=लिया । वार-खोऊँ=जल में खोजाऊँ, जलान्तर लुप्त हो जाऊँ । कृसान=अग्नि । मनमध्य=कामदेव स्वरूपी पृथ्वीराज । मभ=मैं । इत्ती=इतनी नवल=नवेली । वल्लह=वल्लभ, प्यारा । बहु=बहन कर दिया, हटा दिया, निषेध कर दिया, नहीं मानने योग्य । उच्चित=उच्चरत, उच्चारण, जप ।

अर्थ:—पृथ्वीराज ने पंगु के युद्ध का विध्वंस किया । सयोगिता और पृथ्वीराज ने एक दूसरे को वरण करने की प्रतिज्ञा की । जिससे उन दोनों में श्रोतानुराग और भी बढ़ गया । पृथ्वीराज की वरण करने की प्रतिज्ञा सुन कर सयोगिता ने वृत लिया था वह वृत स्रोत स्वरूप हो उसके चित्त से प्रवाहित होने लगा । वह कहने लगा— या तो चाहूँआन राजा (पृथ्वीराज) को ही वरण करूँगी या अपने श्रेष्ठ धर्म के लिये जल में प्रवेश कर लुप्त हो जाऊँगी अथवा अग्नि में जलकर प्राण दे दूँगी । मैंने तो उस कामदेव-स्वरूपी पृथ्वीराज को ही वरण करने की सोच ली है । इतनी बात मन में निश्चय कर उस तबेली ने अपने प्रियतम का नाम सब पर प्रगट

दिया। राजा पगु की मत्रणा नहीं मानने योग्य समझ कर वह कुमारी राजा^२ बहुआन पृथ्वीराज के नाम का) ही उच्चारण (जप) करती हुई फिरने लगी।

दोहा

पग सुग्रवर थपि तहें, सुनिय जुन्हाइय गत्त ।
वर कमोद जिम सुन्दरी, रचि-वचननि सुनि गत्त' ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—कमोद=कुमोदिनी । रचि-वचननि=वचन द्वारा रचकर, वाच्य चातुर्यता कर । सुनि=सुना गया । गत्त=चली गई ।

अर्थः—रानी जुन्हाई की बात सुन कर (मानकर) पगुराज ने सयोगिता के स्व-प्रवर की स्थापना की । वह सुन्दर रानी जयचन्द रूपी चंद्र की श्रेष्ठ कुमोदिनी स्वरूपा थी । सुना है कि उसने वाक चातुर्य द्वारा राजा के क्रोध को शांत किया और अपने महल में चली गई ।

मा मुच्छी' धुक्किय-धरनि, सुनिय सँजोइय बाल ।
सुहन सु हदी बत्तरी, भुवन परदी^२-भाल ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ का० भी० पा० । २ सर्व० ।

शब्दार्थः—मा=माँ, (सयोगिता की माता) । मुच्छी=मूर्च्छित हो । धुक्किय धरनि=पृथ्वी की और झुक गई, पड़ गई । सँजोइय=सयोगिता । सुहन=सुहावनी, मन भाती । सु हदी=उसकी । बत्तरी=बात । भुवन=घर । 'परदी भाल=ज्वाला फैलाने जैसी, आग फैलाने जैसी ।

अर्थः—रानी जुन्हाई ने सुना कि सयोगिता के मन में जो बात है वह घर में आग फैलाने जैसी है । इससे सयोगिता की वह माता मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी ।

अप्प स्वयवर काज^१ रहि, सथ मुक्किय आरि काज ।
सवै बीर सथह दए, रहि कन वज्ज सु राज ॥ ११ ॥

प्रा. पा १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—सथ=साथ, सग, समूह । मुक्किय=मेजा । सथह=साथ में ।

अर्थः—उधर कन्नौजेश्वर स्वयं संयोगिता के स्वयंवर के कार्यार्थ कन्नौज में ही रहा और अपने सब सैन्य-समूह को शत्रु (पृथ्वीराज) का सामना करने के लिये भेजा ।

हालाहल किय^१ फौज रत, तुं तरकिय चहुआन ।

अप्प अप कों है गई, धर जंगरी विहान ॥ १२ ॥

प्रा पा. १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—हालाहल=हलाहल, जहर । रत=रात्री । तुं=तू, तैमे । तरकिय=तड़क पड़ा, फूल गया । धर जंगरी=जंगल धरा, जंगल धरा के निवासी । विहान=प्रातः, प्रात रूप ।

अर्थः—उस कन्नौजी-सेना ने जहर फैजाकर युद्ध-स्थल को रात्रि रूप दे दिया । जिससे चाहुआन नरेश बरसाह से फूल उठा और उस जंगलेश्वर के भू-भाग के निवासी वीर एक दूसरे को जागृत करने के लिये प्रातः स्वरूप बन गये ।

कवित्त

गय^१-जंगल जंगलिय, राज निरवास देस करि ।

राजौरे^२ वन जुद्ध^३, गयौ पृथिराज मत करि ॥

प्रजा पुलिंद नरिंद, समर रावर धर रक्खिय^४ ।

तीय^५ तीय^६ मावित्र, थान थानं नृप पक्खिय^७ ॥

सम हथ्य जुद्ध^८ को कथ्य गै, सुवर कथ्य कवि चंद कहि ।

पृथिराज राज अरु वीर मति^९, विपन ममम् आखेट गहि ॥ १३ ॥

प्रा पा. १ का. पा. भी. । २ का. पा. घ. । ३ पा. । ४ भी. । ५, ६ का. पा. घ. । ७ भी. । ८ पा । ९ घ का ।

शब्दार्थः—गय जंगल=जंगली हाथी । जगलिय=जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) । निरवास=निर्वासित । राजौरे=एक स्थान का नाम है । पुलिंद=त्रिचलित होती हुई । तीय २=तीन २ । मावित्र=आवित्र, आवृत्त, वेग । पक्खिय=त्रिपाती । समहथ्य=सम्हाते समय, सामना करते समय ।

अर्थः—जंगली हाथी के समान (मतवाजा) जंगलेश्वर (पृथ्वीराज) था । उस राजा ने शत्रुओं द्वारा विघ्न उपस्थित किये जाने पर देशवासियों को

हटा कर सुरक्षित स्थान पर रख दिया । वह राजा पद्मीराज मारणा कर राजोर वन में युद्धार्थ गया । प्रजा को विचलित होने से राजा मगर विक्रम ने वचाया । प्रत्येक स्थान सभरेश्वर के पत्न्याती वीरों द्वारा तीन २ के घेरे में सुरक्षित था । जिस समय युद्ध में वीर टकराने लगे (भिड़ने लगे) उसका वर्णन कौन कर सकता है ? उम ग्याति को मैं (कवि चन्द) ही वर्णन कर सका हूँ । वन में जैसे शिकारी शिकार करता है उम समय उसकी बुद्धि हिंसा में प्रवर्त हो जाती है, उसी प्रकार उस समय राजा पद्मीराज और उसके वीरों की बुद्धि शत्रुओं पर हिंसक रूप में बदल गई (अर्थात् निर्दयता पूर्वक शत्रुओं को मारने लगे) ।

यों कायर^१ मुक्त्यों, पुहप रज्जत^२ मधुप तजि ।

सूके^३ सर तजि हस, दग्ध^४ वन मृगन पत्ति भजि ॥

ज्यों फल^५ हीनति पखि, तजे तरवर नन सेवं ।

द्रव्य हीन कौ गनिक, तजत पत्थर करि देव ॥

जल तजत कुम्भ ज्यों भिष्ट दुज, जग्य पवित्र न मानइय ।

भजि थान थान अरि भुत-गयै^६ वर लालचिच सु प्रान इय ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १, २ घ० । ३ सर्व । ४ पा० घ० । ५ पा० । ६ का० ।

शब्दार्थः—पुहप=पुष्प । रज्जत=रज, धूल में मिल जाने पर । सूके सर=सूखा सरोवर । दग्ध=दग्ध । पत्ति=पक्ति । हीनति=हीन । नन सेवं=नहीं बसते । गणिक=गणिका, वाराहना । पत्थर करि=पत्थर मान लेने वाले, नास्तिक, अविश्वासी । भिष्ट दुज=भृष्ट द्विज । भजि=भाग कर । अरि भत=शत्रु के योद्धा । लालचि=स्वार्थी । प्रानइय=प्राणों के ।

अर्थः—विपत्ती कायरों ने युद्ध-स्थल को इस प्रकार छोड़ दिया, जिस प्रकार धूल में मिले हुए पुष्प को भ्रमर, शुष्क सरोवर को हस, दग्ध वन को मृगपक्ति, फल हीन वृक्ष को पक्षी, द्रव्य रहित को वैश्या, देव प्रतिमा को अविश्वासी और यज्ञ-कुम्भ के मन्त्रित जल को भृष्ट द्विज छोड़ देता है । अपने प्राणों को प्यारे समझने वाले विपत्ती राजा के वीर युद्धस्थल से भाग कर यत्र तत्र बिखर गये ।

दोहा

मानि प्राण की लालसा, तजि साईं^१ सूं^२ हेत ।

छंडि गए कायर सवै, रहै सूर वेंधि^३ नेत ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० । ३ घ० ।

शब्दार्थः—लालसा=इच्छा, अभिलाषा । साईं=स्वामी । सूं=से । हेत=प्रेम । सूर=बहादुर ।
वेंधि नेत=नेतृत्व ग्रहण करने वाले ।

अर्थः—प्राणों को अधिक प्रिय मानने वाले वे कायर अपने स्वामी के प्रेम को
भूल रणस्थल छोड़ कर चलते बने । युद्धस्थल में नेतृत्व करने वाले बहादुर ही
वहाँ रहे ।



संयोगिता पूर्व जन्म

(समय ४५)

गोहा

कहै चंडि सुरपति सुनहि, रुधिर^१ अघावहु मोहि ।

रामाइन भारथ्य छुधि^२, रही निहारै तोहि ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० का० ।

शब्दार्थः—छुधि=छुधा ।

अर्थः—देवी चंडिका ने इन्द्र से कहा - मुझे शोणित से तृप्त करदो । रामायण और महाभारत जैसे युद्धों के होते हुए भी मैं क्षुधित हूँ । इसीलिये तुम्हारी ओर देखती हूँ ।

चवत राज सुरराज मौ^१, इह रघुकुल व्योहार ।

लेत लक छिन इक लगी, देत न लगो वार ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—चवत=कहता हुआ । राज=सुशोभित हुआ । मौ=वह । व्योहार=व्यवहार, तरीका ।

अर्थः—देवों में श्रेष्ठ इन्द्र ने यह कहा कि रघुवंशियों की यह सदा रीति रही है कि लका को लेने में कुछ चरण लगे, किन्तु देने में किञ्चित् मात्र भी समय न लगा ।

कहै देव-सुर देवि^१ सौ, लंक भभीखन अग्नि ।

रघुपति से साईं सिरढ, तू किम रही अधप्पि ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—देव-सुर=देवताओं का देव, इन्द्र । भभीखन=विभीषण । अग्नि=अपित ऋषि, दी । साईं=स्वामी । अधप्पि=अतृप्त ।

अर्थः—देवराज ने चंडी (देवी) से श्रागे कहा — रामचन्द्र ने लका विभीषण को दी । उस समय ऐसे स्वामी के होते हुए भी तू कैसे अतृप्त रही ?

घन तोमर अरि दल अलप^१ सस्त्र अस्त्र^२ वर मंत्र ।

तिन रत त्रपत न छिन भई, दवि दुरि ठुंठ^३ भ्रमंत ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ का० २ स०, ३ पा० ।

शब्दार्थः—अलप= तुच्छ । वर=वल । रत=रक्त । दवि=दक्कफर । दुरि=दुलक गये, धराशाई हुए । ठुंठ=ठड ।

अर्थः—रामचंद्र के तीष्ण वाणों के सामने शत्रुदल और इनके शस्त्रास्त्र तथा मंत्र-शाक्त तुच्छ दिखाई दी, इन वाणों की मार से रुद्ध रुककर भ्रमण करते हुए धराशाई हुए । उनके रक्त से ज्ञान मात्र के लिये तू कैसे वृष न हुई ?

अत्र कनवजं दिल्ली वयर, दलन दुअन वडि खेद ।

रुड मुड खडन खलन, विधि वधि वदि वेद ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—वयर=शत्रुता । खेद=द्वेष । विधि=तरीका । वदि=कथित ।

अर्थः—कन्नौज और दिल्ली राज्य के बीच शत्रुता बढ़ गई है । क्योंकि दोनों सेनाओं में द्वेष छा गया है । अत वेदों में वर्णित युद्ध-रीति से शत्रुओं के (एक दूसरे के) रुड मुड खण्डन होने वाले हैं ।

चडि वरन पुवजाइ त्रिख, मंडि मुड वरमाल^१ ।

जो कनवज दिल्लीय^२, वयर, भरहि पत्र रजवाल ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा०, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—चडि वरन=योगिनियां । पुवजाइ=पूर्ण करके । त्रिख=तृपा, प्यास । वयर=शत्रुता । वाल=वाला ।

अर्थः—हे चण्डी ! यदि कन्नौज और दिल्ली राज्य में लड़ाई छिड़ गई तो योगिनियों की रक्त पिपासा पूर्ण हो जायगी और शिवकां हृदय मुण्ड माला से मंडित (सुशोभित) हो जायगा, तथा तुम्हारा रक्त-पात्र भी पूर्ण रूप से भर जायगा ।

कवित्त

मति प्रधान गंधर्व, देव दिन राज बुलायौ ।

कलह करौ भारथ, मत्ति आपनो बढायौ ॥

संयोगिता पूर्व जन्म

(समय ४५)

तोहा

कहै चडि सुरपति सुनहि, रंधर^१ अपावह मोहि^१ ।

रामाइन भारथ्य छुधि^३, रही निहारै तोहि ॥ १ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० का० ।

शब्दार्थः—छुधि=जुधा ।

अर्थः—देवी चडिका ने इन्द्र से कहा - मुझे शोणित मे तृप्त करने । रामायण और महाभारत जैसे युद्धों के होते हुए भी मैं जूवित हूँ । इसीलिये तुम्हारी ओर देखती हूँ ।

चवत राज सुरराज सौ^१, इह रघुकुल व्योहार ।

लेत लक छिन इक नगो, देत न लग्गो वार ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—चवत=कहता हुआ । राज=सुशोभित हुआ । सौ=तह । व्योहार=व्यवहार, तरीका ।

अर्थः—देवों में श्रेष्ठ इन्द्र ने यह कहा कि रघुवंशियों की यह सदा रीति रही है कि लका को लेने में कुछ जग्न लगे, किन्तु देने में किञ्चित मात्र भी समय न लगा ।

कहै देव-सुर देवि^१ सौं, लक भभीषन अप्पि ।

रघुपति से साईं सिरह, तू किम रही अधप्पि ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ स० ।

शब्दार्थः—देव-सुर=देवताओं का देव, इन्द्र । भभीषण=विभीषण । अप्पि=अपित की, दी । साईं=स्वामी । अधप्पि=अतृप्त ।

अर्थः—देवराज ने चडी (देवी) से आगे कहा — रामचन्द्र ने लका विभीषण को दी । उस समय ऐसे स्वामी के होते हुए भी तू कैसे अतृप्त रही ?

घन तोमर अरि दल अलप^१ सस्त्र अस्त्र^२ वर मंत्र ।

तिन रत^३ त्रपत न छिन भई, ढवि दुरि ठुंठ^३ भ्रमत ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ का० २ स०, ३ पा० ।

शब्दार्थः—अलप= तुच्छ । वर=त्रल । रत=रक्त । ढवि=रुककर । दुरि=दुलक गये, धराशाई हुए । ठुंठ=रुड ।

अर्थः—रामचंद्र के तीष्ण वाणों के सामने शत्रुदल और इनके शस्त्रास्त्र तथा मन्त्र-शाक्ति तुच्छ दिखाई दी, इन वाणों की मार से रुच्छ रुककर भ्रमण करते हुए धराशाई हुए । उनके रक्त से क्षण मात्र के लिये तू कैसे वृत्त न हुई ?

अव कन्नवजं दिल्ली वयर, दलन दुअन वडि खेद ।

रुड मुंड खडन खलेन, विधि वधि वदि वेद ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—वयर=शत्रुता । खेद=द्वेष । विधि=तरीका । वदि=कथित ।

अर्थः—कन्नौज और दिल्ली राज्य के बीच शत्रुता बढ़ गई है । क्योंकि दोनों सेनाओं में द्वेष छा गया है । अतः वेदों में वर्णित युद्ध-रीति से शत्रुओं के (एक दूसरे के) रुड मुंड खण्डन होने वाले हैं ।

चडि वरन पुवजाइ त्रिख, मंडि मुंड उरमाल^१ ।

जो कनवज दिल्लीय^२ वयर, भरहि पत्र रजवाल ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा०, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—चडि वरन=योगिनियां । पुवजाइ=पूर्ण करके । त्रिख=तृपा, प्याठ । वयर=शत्रुता । वाल=वाला ।

अर्थः—हे चण्डी ! यदि कन्नौज और दिल्ली राज्य में लड़ाई छिड़ गई तो योगिनियों की रक्त पिपासा पूर्ण हो जायगी और शिवका हृदय मुण्ड माला से मंडित (सुशोभित) हो जायगा, तथा तुम्हारा रक्त-पात्र भी पूर्ण रूप से भर जायगा ।

कवित्त

मति प्रधान गधर्व, देव दिन राज बुलायौ ।

कलह करौ भारथ्य, मत्ति अपनी बढायौ ॥

भूमि भार उत्तार, कलह कित्तिय विस्मारौ ।
 चाहुअन कमधज्ज, वीर विप्रह जग्मारौ ॥
 करि कीर रूप कनवज गयौ, उभय गिवम दिक्खिय पुरिय ।
 वभनिय मदन अगन सुतरु, निसि निवास तहां उत्तरिय ॥ ७ ॥

शब्दार्थः—मति=समति । बढायौ=रवाना । जग्मारौ=जाणत करो । कीर=तोता । वमनीय=
 ब्राह्मणी । मदन=मदना नाम है ।

अर्थ—इतना कहने के पश्चात् गंधर्व में जो सबसे श्रेष्ठ और बुद्धिमान था ।
 उसको देवराज इन्द्र ने बुला भेजा और उसको सु-सम्मति देकर रवाना किया तथा
 कहा कि दिल्ली और कन्नौज राज्य के बीच महाभारत के समान युद्ध कराओ । इस
 प्रकार भू-मण्डल का भार उतारने के लिये कीर्ति का विस्तार करो । हे वीर ! तुम
 राजा चाहुअन और कमधज्ज (जयचंद) के बीच में विप्रह भावना (झगड़े)
 को जाग्रत करो । तब वह गंधर्व तोते का रूप धारण कर कन्नौज गया और दो दिन
 तक सारे शहर को देखता रहा, फिर वह मदना ब्राह्मणी के आगन में स्थित वृक्ष पर
 रात्रि में निवास करने के लिए उतरा ।

श्लोक

सतियुगे काशिका दुर्गे, त्रेतायाच अयोध्यया ।
 द्वापरे हस्तिनावासं, कलौ कनवज्जिकापुरी ॥ ८ ॥

शब्दार्थ—कलौ=कलियुग । हस्तिनावास=हस्तिनापुर ।

अर्थ—सतयुग में काशी दुर्ग, त्रेता में अयोध्या, द्वापर में हस्तिनापुर तथा कलि-
 युग में कन्नौजपुरी ही श्रेष्ठ है ।

दोहा

गंधव त्रिय प्रिय पुच्छि रस^१, नाथ कथा समुभाय ।
 सजोगिय अवतार कहि, नृप प्रह ज्यों जमि आइ ॥ ९ ॥
 ग्रा० पा० १, पा० टि० का० ।

शब्दार्थ—रस=सरसतापूर्वक । जमि आय =जन्म लिया ।

अर्थ—तब गंधर्व की स्त्री ने रस लेकर गंधर्व से पूछा—हे स्वामी ! सयोगिता के
 अवतार तथा कन्नौजेश्वर के घर में जिस प्रकार उसने जन्म लिया, वह सारी कथा
 समझा कर कहो ।

राजपुत्रि उतपत्त सुनि; इह अच्चरि^१ अवतार ।

सुमत^२ आप म्रत लोक मर्हि, सु^३रनि^३ करन संहार ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० का । २ दि० पा० । ३ पा० ।

शब्दार्थः—उतपत्त=उत्पत्ति अच्चरी=अपसग । सुमत=सुमंत ऋषि ।

अर्थः—तव गधर्व ने कहा—हे प्रिये । राजकुमारी की उत्पत्ति सुन, यह आसरा का अवतार है और सु आप से मृत्यु-लोक में वीरों का संहार करवाने हेतु यहाँ जन्म लिया है ।

सुकी सुनै सुक उच्चरै, पुत्र संजोय प्रताप ।

जिहि छर अच्चर मुनि छर्यौ, जिहि^१ त्रिय भयौ सराप ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—सजोय=संयोगिता । छर=छल । छर्यौ=छला ।

अर्थः—इसके बाद जिस छल से उस आसरा ने मुनि को छला तथा जिसके कारण वह आ. हुई, उसकी सब पूर्व जन्म की कथा वह तोता स्वरूप गन्धर्व अपनी स्त्री से कहने ल. ।

कवित्त

वाल मान सरिता उतंग, तोइ^१ आनग अग सुज ।

रूप सु तट मोहन तडाग, भाइ^२ भ्रम भए कटाच्छ दुज ॥

प्रेम पूर विस्तार, जोग मनसा विध्वंसनि ।

दुति ग्रह नेह अथाह, चित्त करखन पिय तूसनि ॥

मनसा विमुद्ध बोहिध्य वर, नहि थिर चित्त जुर्गिगद^३ तिहि ।

उत्तरन पार पावै नहीं, मीन तलफि लागि मत्त विहि ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १, २ भी० का० । ३ पा० ।

शब्दार्थः—उतंग=उच्च, श्रेष्ठ । तोइ=जल । आनग=अनग । सुज=उसमें । माइ=मात्र ।

भ्रम=भ्रमर (जल चक्र) । ग्रहनेह=वर में प्रेम । नूपति=पतोप देने वाली । मनसा=मनोवृत्ति ।

उत्तरन=उतर पड़ने पर, उतरने पर । मत्त=मति, बुद्धि ।

अर्थः—बालाएँ (स्त्रियों) मान की श्रेष्ठ सरिता के समान है - उनके प्रगों मे व्याप्त अनग की परिपूर्णता ही जल है, रूप ही तट है, मोह ने की शक्ति ही उस सरिता से सम्बन्धित तड़ाग है, हाव-भाव कटाक्ष ही उममे भवर (जल चक्र) है, पूर्ण प्रेम ही उसका विस्तार है, वह गोगेन्द्रा की नाशक है, गृह-प्रेम ही चमक और गहराई है, प्रियतम के चित्त को सनोप देना ही उनका आकर्षण है, शुद्ध मनोवृत्ति ही इसे पार करने के लिये नौका है, योगियों के चित्त भी स्थिर नहीं रह पाते और उममें प्रविष्ट होने पर भी कोई उसका पार नहीं पाता । जिसकी मति उसकी ओर हो जाती है (जिसकी बुद्धि उसकी ओर हो जाती है) वह मद्दली की भाँति तडफ्ला है ।

साटक

जा जीव तप सार पार सुमती, रत्त हरी ध्यानय ।
 खिमया कामय चित्त सिक्त खिमया, खिमया रस वृद्धय ॥
 सा सुपनतर दीह रत्तित^१ मुख, प्रानपि खिमया रुख ।
 ना सुममै विय ध्यान, पंडर^२ दृगे^३ खिमयाय खिमया मुख ॥ १३ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० ।

शब्दार्थः—जा=जिसका । जीव=जीवन ! सारपार=तत्व से परे । खिमया=क्षमा, अभाव रहित, शांत । सिक्त=श्वेत । खिमया रस=शांत रस । रत्तिन=रात्रि । मुख=प्रमुख । प्रानपि=प्राण, प्राणी । विय=दूरा ।

अर्थः—जिसका जीवन तत्त्वयुक्त तप और सुमति से दूर था, जो हरि के ध्यान मे लीन था, जिसका विशुद्ध चित्त काम से रहित और क्षमायुक्त था, जिसमे शांत-रस का बाहूल्य था, उसकी प्रमुख प्रवृत्ति, स्वप्न मे, दिन और रात्रि मे प्रत्येक प्राणी के लिये क्षमा ही थी, उसके पांडुर दृग किसी अन्य का ध्यान नहीं करते थे (केवल ईश्वर के ही ध्यान मे पुलकित थे) और वह केवल मुख से क्षमा-क्षमा ही उच्चारण करता था ।

गाथा

खिमया सुखमय भ्रमिय, रमयाइ भ्र ग कीट्यो मनय ।
जिहि चित्त^१ न भेदियं ग, सो भिद्देव काम वामाइ ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—भिद्देव=भेदा गया ।

अर्थः—यद्यपि वह क्षमा-सम्पन्न सुख में रक्त होकर भ्रमण करने वाला ऋषि था, फिर भी उसका मन भ्रमर-कीट की भांति रमण करने के लिए आकर्षित हुआ । जिसका चित्त कभी नहीं भेदा गया, वह वामा के कारण काम द्वारा भेद दिया गया ।

प्रथम तित्थ अइसट्टि, न्हाय वट्टी तय रत्तौ ।

जठराग्नि करि त्रपत, छुधा निद्रा त्रस जित्तौ ॥

हिमरित हिमतनु दह्यौ^१ पंच अग्नि^२ ग्रीसम सह्यौ ।

घरखा काल प्रचण्ड, मेघ धारह वयु^३ वहह्यौ ॥

कर धूम पान मुख अद्ध रहि, कर अंगुष्ठ सु देह^४ धरि ।

सत वरख ध्यान लगै भयौ, जोति चित्त चिहुटी सुहरि ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० । ४ का० पा० ।

शब्दार्थः—त्रपत=पंतुष्ट । त्रम=तृपा । चिहुटी=चिपट गई ।

अर्थः—ऋषो ने प्रथम द्वा तीर्थों की यात्रा की, पश्चात् स्नान कर वट्टिका-श्रम में निवास कर तपस्या में लीन हुआ, फिर जठराग्नि को अपने आप सतुष्ट कर भूख, प्यास और निद्रा को जोत लिया । हेमंत ऋतु में हिम से अपने शरीर को दग्ध किया । ग्रीष्म में पचाग्नि सहन की । वर्षा-काल में प्रचण्ड मेघों की जल-धारा शरीर पर प्रवाहित की । अधोमुख होकर धूम्र-पान किया (ओंघे मुह लटक कर नीचे धूम्र लगा, उससे नैत्र, मुख, नासिका द्वारा धूम्र को ग्रहण किया । पैर के अंगूठे के बल पर अपनी काया ठहराई (अंगुष्ठ के आधार पर खड़े होकर अपने इष्ट देव का चिंतन किया) । इस प्रकार सौ वर्ष (या सात वर्ष) तक ध्यान करता रहा फिर उसके चित्त में ईश्वर की ज्योति चिपट गई ।

तप यत्न कपित सुर^१ भुवन^२, राशौ ध्यान दिव देव ।

सुस्त तेज द्विग मिथल हुश्र, लगौ सुरापी भेव ॥ १६ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—सुर भुवन=देवलोक । सुरापी=सुरपति । भेव=भेद ।

अर्थः—उसके तपोबल से सुरलोक काप उठा । उसकी तपस्या का ध्यान उद्र का हुआ । वह सारे भेदों को जान गया, जिससे उसकी काति मलीन होगई और द्रग शिथिल हो गये ।

तत्र चिंतिय सुरराज मन, का विचित्र वरवाम ।

आदि अत सोधिय सकल, अच्यरि^१ अच्यरि^२ नाम ॥ १७ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—सोधिय=खोज की, स्मरण किया ।

अर्थः—तत्र इद्र ने मन में सोचा कि सुन्दर कामिनिया भी क्या विचित्र है ? फिर उसने आदि से अत तक प्रत्येक आसरा के नामों को दृढा (स्मरण किया) ।

बोली घृताची मेनिका, रभ उरवसी रूप ।

जानि सुकेस तिलोत्तमा, मजुघोप सुनि-भूप ॥ १८ ॥

शब्दार्थः—सुनि-भूप=राजा ने सुना, (देवराज इन्द्र ने सुना) ।

अर्थः—इन्द्र के बुलाने पर रूपवती घृताची, मेनिका, रभा, उर्वशी, सुकेशी, तिलोत्तमा, मजुघोपा आदि उपरिथत हुई ।

अति आदर आ-दर क्रियौ, क्यौ आप इह वैन ।

छलह सुमतन जाइ के, रहुँ राज सुख चैन ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—आ-दर=द्वार पर आदर । आप=स्वयं ने । सुख चैन=आनन्द पूर्वक, शान्ति पूर्वक ।

अर्थः—द्वार पर आकर इन्द्र ने इनका विशेष सम्मान किया और ये वचन कहे- तुम सुमन्त को जाकर छलो ताकि हमारा राज्य आनन्द पूर्वक रह सके ।

गाथा

नयन नलिन नवीन, गवन गय मत्त तुल्लाय ।

वैन पर भ्रत दीन, भीन कट्टी अग राजेस ॥ २० ॥

शब्दार्थः—नलिन=नीलकमल । गवनं=गमन । गयं=गज, हाथी । तुल्लायं=तुल्य । पर=दूसरों को ।
 अत=दास । दीनं=दीन । भीनं=घीण ।

अर्थः—नवीन नीलकमल के समान नेत्रों वाली, मस्त हाथी के समान चलने वाली, वाणी से दूसरों को दास व दीन बना देने वाली, और मृगराज के समान घीण कटिवाली वे सब अप्सरायें थीं ।

आख्या

सपत सुर ज्ञान निपुना, नृत्य कला कोटि आलया मानं ।

तार तरलेव भ्रमरी, भ्रमरी भ्रमरीयं सययं ॥ २१ ॥

ग्रा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—सपत=सप्त, सुर=स्वर, आलयायामानं=इन्द्र भवन के योग्य । तार=दृग की पुतली, तरलेव=चंचल । भ्रमरी=भ्रमण, सययं=समान ।

अर्थः—सप्त स्वरों के साथ गाने में निपुण, नृत्य कला की कोटि में इन्द्र भवन में शोभा पाने योग्य उन अप्सराओं के चंचल पुतली का भ्रमण भ्रमरियों के समान था ।

कवित्त

भो आयसि सुर राज, मजु घोषा मुनि बत्तिय ।

मृत्युलोक मे जाहु, सुमति छल छलौ तुरत्तिय ॥

दुसह तेज को सहै, मोहि आसन डर डुल्लिय ।

सेस सकि कलमलिय, नेन तिय तालिय खुल्लिय ॥

जल सु खचि रह सुर न दिय^१, सूर सपत्तौ डर^२ भुवन ।

तप ताप देव सब कलमलित, सुकज काज रक्खहि दुअन ॥ २२ ॥

ग्रा० पा० १ पा० । २ सं० ।

शब्दार्थः—आयसि=आदेश । तुरत्तिय=तुरन्त । दुमह=असह्य । तिय=नृतीय । खुल्लिय=खुलगाया हो । खंचि=रोषण । दुअन=दूसरा, अन्य कोई नहीं ।

अर्थः—इन्द्र की प्रमुख अप्सरा मजुघोषा नाम की थी, उसको आदेश दिया कि तुम सब मृत्युलोक में जाकर तुरन्त छल द्वारा सुमन्त ऋषि को छलो । क्योंकि उसके असह्य तेज को कोई भी सहन नहीं कर सकता । भय-वश मेरा आसन भी ढालने लगा है । शेष नाग भा शक्तिन होकर तिलमिलाने लग गया है । ऐसा घ्रात होता है

मानों शिव का तृतीय नेत्र खुल गया हो। उसके तरफे आगे आकाश-गंगा का जल सूखने लग गया है। सूर्य भी डर कर अपने गृह में जा गया है। सब देवता घबरा गये हैं। अतएव हमारे इस श्रेष्ठ कार्य को रक्षा तुम्हारे अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता।

दोहा

खग खग पति आसन प्रह्वौ, गण वित्ति बहु काल ।

रभ खिमा सम रूपधरि, आय सपत्नी ताल ॥ २३ ॥

शब्दार्थ:—खगपति आसन=गरुडासन । सपत्नी=पहुँची । ताल=तालाब ।

अर्थ:—ऋषी को गरुडासन लगाये हुए बहुत समय बीत गया था, तब इन अप्सराओं में से रभा नाम की अप्सरा ने जग के मगान शीत स्वरूप वारण कर उस तालाब पर आ पहुँची जहाँ वह (सुमत) ऋषि था।

मानि बैन सुरराज लिय, नरपुर पत्तिय आइ ।

जहँ ताली लगगी सुमति, तहँ नूपुर बज्जाइ ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—नरपुर=पृथ्वी लोक । पत्तिय=बहुवो । ताली=पमाधि । सुमति=बुद्धिमान की, सुमत की ।

अर्थ:—इन्द्राज्ञा का पाजन करने के लिये वह मृत्युलोक में आ पहुँची और जहाँ पर सुमत ऋषि ने समाधि लगा रक्खी थी, वहाँ वह आकर नूपुर बजाने लगी ।

अच्छरि अट्ट विमान बनि, कुसुम समान सरीर ।

नग जगमग अँग अँग सुबनि, रुनरु प्रभा दुति चीर ॥ २५ ॥

शब्दार्थ:—चीर=दुकूल, साड़ी ।

अर्थ:—आठों अप्सराएँ विमानों में सुशोभित थीं। उनका शरीर पुष्पवत् था और उनके अंग २ से नगों की जगमगाहट पैल रही थी, दुकूल के अंदरसे उनकी अंग-प्रभा रुनरु-काति की भाँति दिखाई पडती थी।

करिय गान विविधान सुर, ताल काल रस भाइ ।

खिनरु पलक मुख उघरिय, अच्छरि रही जजाइ ॥ २६ ॥

पा० पा० १, पा० का० भी ।

शब्दार्थः—त्रिविधान=त्रिविध या तरीके से । काल=समय । माइ=मात्र ।

अर्थः—समय और इसके अनुसार हाव भावों सहित विविध स्वरों के साथ वह अप्सरा गाने लगी, जिससे क्षण मात्र के लिये ऋषि की पलक खुली, यह देख कर अप्सरा लज्जित हो गई ।

उलटि गयै सुरपति हँसै, रहै रिखीस रिसाइ ।

इह चिंता मन उपनिय, फिर दिव लोक सुजाइ ॥ २७ ॥

शब्दार्थः—उलटि गयै=लौट जाने पर । उपनिय=पैदा हुई ।

अर्थः—अप्सरा के मन में स्वर्ग की ओर जाने में दो चिंतायें उत्पन्न हुई । पहली यह कि यदि लौटकर जाऊँगी तो इंद्र उपहास करेगा और यहाँ रहूँगी तो ऋषि क्रोध करेंगे ।

जो न छरौं तौ देव-हर, रिखि जप तप प्रचंड ।

दुहुँ विधि संकत कामिनी, श्राप-ताप सुरदइ-॥ २८ ॥

शब्दार्थः—छरौं=छलौं । प्रचंड=महान ।

अर्थः—यदि ऋषि को नहीं छनती हूँ तो देव (इंद्र) के कोप का भय है, इंद्र ऋषि का जप और तप महान है । इस प्रकार ऋषि-श्राप और देव-दण्ड के भय से वह युचती आशंकित हो उठी ।

उलटि गई सुर-घर नि-घर, देव न देव बुलाइ ।

इंद्र रोस कै हर हरी, श्राप ताप हर पाइ ॥ २९ ॥

शब्दार्थः—सुर-घर=स्वर्ग । नि-घर=स्थान नहीं । देव=इंद्र । देव=देवता ।

अर्थः—लौट कर जाने से स्वर्ग में स्थान नहीं मिलेगा । देवता और देवराज सामने नहीं बुलवायेंगे । इस प्रकार वह अप्सरा इंद्र-प्रकोप और ऋषि-श्राप के हर से भयभीत हो गई ।

मन माया भ्रम दूरि करी, फिरि लग्यौ रिखि ध्यान ।

ब्रह्म जोति प्रगटी तरह, रंभ प्रगटिय आन ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—उरह=हृदय । आन=आकर ।

अर्थ:— उधर ऋषि मन से माया और भ्राति को दूर कर फिर ध्यान मग्न हो गया । उसके हृदय में ब्रह्म ज्योति प्रकट हो गई । इतने में रभा पुनः प्रगट हुई ।

कवित्त

बहुरि गई रिखि पास, सास जिन गहिय उरध गति ।
 मूल पवन द्विग वधि, गरजि ब्रह्मन्ड मेघ अति ॥
 बंक नाल जल खचि, सींचि डर कमल प्रफुल्लिय ।
 ब्रह्म अग्नि^१ प्रव्जरिय, पाप करि भसम समूलिय ॥
 तव मारग सुब्जौ मीन जल, पछि खोज पायौ सगुन ।
 सुनि तार सु बज्जै करनि विनु, सह स्वाद छंडिय त्रिगुन ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थ:—वधि=ऐंच, बंद करके । ब्रह्मन्ड=ब्रह्मरंध्र । सगुन=फल । सुनि=शून्य ।

अर्थ:—वह अप्सरा उस ऋषि के पास गई, जिसके श्वास ने उर्ध्व गति प्राप्त करली थी । मूल से पवन (श्वास) को ऐंच लेने और नेत्रों को बन्द कर लेने से ब्रह्म-रंध्र में ओंकार की मेघ के समान विशेष ध्वनि होने लगी । वक नाली से जल खींच कर हृदय कमल सींच लिया । जिससे वह प्रफुल्लित हो उठा । ब्रह्माग्नि प्रव्ज्वलित कर उसने अपने सब पापों को समूल भस्म कर दिया । इतना करने पर मानों मीन ने जल-मार्ग और पत्नी ने फल खोज लिया हो वैसा आनन्द उसे प्राप्त हुआ । बिना हाथ के बजाये हृदय तंत्री के शून्य तार बजने लगे । वह उस ध्वनि के आनन्द में मग्न हो, त्रिगुण (सत्व, रज, तम) छोड़ चुका ।

तार्त्तिय लगिय ब्रह्म, लीन मन जोति जोति मिलि ।
 कमल अमल उधरिय, हृदय अवनीय, धरनि अलि ॥
 त्रिकुटिय ताटँक लगि, भ्रगुटि गगा तन मडिय ।
 रिक्किवि सबद श्रवन्न, नह अनहद सु बज्जिय ॥

अधमुख ऊरधन चरनं^१ करि, गति पत्तिय मडल गगन ।

ता रिखिहि जगावत सु दरिय, रह्यौ सु धुनि मभम्ह मगन^२ ॥ ३२ ॥

प्रा० पा० १ स० । २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—उध्वरिय=खिल पड़ा, विकसित होगया । अवननीय-धरनि=पृथ्वी के धारण कर्ता । अलि=भ्रमर । त्रिकुटिय=भृकुटी का मध्य भाग । ताटक=तालियाँ, ध्वनि । गंगा तन=गंगा को धारण करने वाले शिव । गगन=ब्रह्माण्ड । धुनि=धुन ।

अर्थः—उसकी ब्रह्म-ताली लग गई (समाधिस्थ होगया) । उसी में उसका मन लीन होगया और उसकी ज्योति परम ज्योति में मिल गई । उसका निर्मल हृदय-कमल विकसित होगया । पृथ्वी का धारण कर्ता (विष्णु) इस हृदय-कमल का भ्रमर बन गया । त्रिकुटी की ताली लग (या ध्वनिहो) जाने से उसकी भाल-स्थली में गंगा को शरीर पर धारण करने वाले (भगवान शिव) ने वहां निवास किया । उस ऋषि के कानों में अनहद नाद के शब्द गूंजने लगे । उसने अधोमुख हो चरणों को ऊर्ध्व कर दिया । उसकी श्वास-गति गगन-मंडल (कपाल) में पहुँच गई । ऐसी धुन में जो मग्न था, उस ऋषि को वह सुन्दरी जगाने लगी ।

दोहा

जंत्र मृदंग उपंग सुर, धुनि भ्रमर मन्कार ।

करत राग श्रीराग सुर, कर वर वज्रत तार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—भ्रमर=भाभ्रर, पैर का आभूषण ।

अर्थः—तंत्री, मृदंग और उपंग, स्वरों के साथ पद-भूषण की ध्वनि की म्कार करती हुई श्री राग के स्वर में गाती हुई वह अप्सरा कुशल हाथों से तंत्री-तार बजाने लगी ।

चट्टवात माठा धुआ, गीत प्रवध प्रवीन ।

उघट त्रिघट तालललित, पुजवति सुर कर वीन ॥ ३४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—उघट=प्रगट करना । त्रिघट ताल=त्रिविध ताल ।

अर्थः—चक्कवात, माठा, धुवादि, गाने में प्रवीण यह अप्सरा हाथ में बीणा लेकर सुन्दर त्रितात के साथ स्वर प्रगट कर उस ऋषि की पूजा (उपासना) करने लगी ।

श्लोक

मृदगी दडिका ताली, घुरघुरी' स्तुति गहली ।

गीत राग प्रवध च, अष्टाग नृत्य उच्यते ॥ ३५ ॥

पा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—अष्टाग=आठ प्रकार के । नृत्य उच्यते=नृत्य कहे जाते हैं ।

अर्थः—मृदगी (मृदग के स्वर पर), दडिका (दडियों पर रास रूप में), ताली (ताली बजाकर), स्तुति (प्रार्थना रूप में), गहली (उन्मत्तावस्था में), गीत राग (गायन के साथ), प्रवध (शास्त्र रूप में), ये नृत्य के अष्टाग कहे गये हैं ।

दोहा

सोर सुरनि के सुर जग्यो, भग्यौ ध्यान जग ईस ।

चित्त चक्रित करि सोच मन, इह अपुत्र्य महा दीस ॥ ३६ ॥

शब्दार्थः—सुर=देव तुल्य ऋषि । इह=यह । अपुत्र्य=अपूर्व । दीस=दिखाई देता है ।

अर्थः—वह देव तुल्य महर्षि उन स्वरो की ध्वनि से जागा । उसका ईश्वर में जो ध्यान था वह दूर होगया । चक्रित होकर वह मन में सोचने लगा कि यह अपूर्व दृश्य क्या दिखाई देता है ?

नूपुर धुनि श्रवननि सुनत, भई ध्यान गति पग ।

ताली छुट्टिय गगन मय, खुलिय पलक मन लग ॥ ३७ ॥

शब्दार्थः—पग=पगुर टूट गई ।

अर्थः—कानों के द्वारा नूपुरों की ध्वनि सुनते ही उस ऋषि की ध्यानावस्था टूट गई (कपाली में लगाया हुआ महा प्राणायाम छूट गया) पलकें खुल गईं और उसका मन उस आसरा में जा रहा ।

कहिय रिकखसुर अन्छरी^१, नन्या गध्रव जच्छि^२ ।कै नागिनि जनमी कुअरि, तोसिव रख्या रच्छि^३ ॥ ३८ ॥

पा पा १, २, ३ पा ।

शब्दार्थ —रिकखसुर=ऋषीश्वर । जच्छि=यत् । तोसिव=सतोष, सतुष्ट कर । रख्या=ऋषि की । रच्छि=रत्ना मर ।

अर्थः—अप्सरा को देख कर ऋषीश्वर बोला :— 'तू अप्सरा, है या गंधर्वया यक्ष-
कन्या अथवा नाग कुमारी ? संतुष्ट कर (मेरी) ऋषि की रक्षा कर ।

कायातुर^१ त्रिय कर प्रहौ, जप तप छंडिय आस ।

हँसि छुड़ाइ कर तडित जिम^२, गइ आयास^३ अयास^४ ॥ ३६ ॥

प्रा. पा. १ का. पा. भी. । २, ३, ४ का. ।

शब्दार्थः—तडित=विजली । आयास=आकाश । अयास=अकायक ।

अर्थः—जप तप की आशा छोड़ कर कामातुर हो ऋषि ने उस स्त्री का हाथ पकड़
लिया । तब वह वाला हँस कर हाथ को छुड़ाती हुई कर यकायक विद्यत् गति से आकाश
की ओर चलती बनी ।

छिन इक धर मूरछि पर्यौ, चित कजमल्यौ अधीर ।

वहुरि ज्ञान मन आनि कै, मुनि वर भयौ सधीर ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—छिनइक=क्षणिक, क्षणमात्र ।

अर्थः—अप्सरा के चले जाने पर क्षण भर के लिये वह ऋषि मूर्छित हो जमीन
पर गिर पड़ा । उसका अवीर मन तिलनिला गया । कुछ समय बाद पुनः मन में ज्ञान
प्राप्त कर उस श्रेष्ठमुनि ने धैर्य को धारण किया ।

कवित्त

फिरि उत्तारि मन धर्यौ, हेम गिर वरह ध्यान धरि ।

चित्त ब्रह्म लवलीन, वरख सित कियौ तेम करि ॥

छुधा पिपासा जीति नीद निसि नसिय इद्रि तसि^१ ।

वहुत जतन तप कियौ, वधि दृढ पवन उरध वसि^२ ॥

पीवत वाम दच्छिन^३ मुचै, कुंभक पूरक जोग वल ।

करि उरध^४ चरन ध्यान सु रह्यौ, गह्यौ पंथ गगनह अकल ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १, २ भी० । ३, पा० । ४ पा० का० ।

शब्दार्थः—सित=सौ, या सात । तसि=तैसे ही । अकल=अज्ञात ।

अर्थः—फिर उसने उत्तर की ओर मन किया और हेमान्त परध्यानावस्थित होगया। उसने सौ (सात) वर्ष तक अपने चित्त को ब्रह्म में लीन कर दिया, लुभा और प्यास को जीत लिया। रात्रि में निद्रा का नाश किया, उसी प्रकार इन्द्रियों का भी उसने दमन कर लिया, बहुत प्रयत्न के साथ उसने तपस्या की और अपने श्वास पवन को ऊँचा खींच कर वश में कर लिया। वाम नामारध्र से खींच कर दक्षिण नासा रध्र में छोड़ दिया। इसप्रकार वह कुम्भक और पूरक किया जो योग बल में कर सका। ऊर्ध्व-चरण कर ध्यान प्रहण किया और अन्य की जानकारी में नहीं है, ऐसे कपाली आसन को उसने स्वीकार किया।

दोहा

सुकी सुकह पुच्छै रहसि, नख सिख वरनहु ताहि ।

जा दिक्खन मुनि मन टर्यौ, रह्यौ टगट्टग चाहि ॥ ४२ ॥

शब्दार्थः—टग टग=टकटकी ।

अर्थः—तब शुकी रूप गधर्व-पत्नी ने शुकरूपी गधर्व से रहस्य पूर्ण बात पूछी कि जिस अस्त्र को देखकर मुनि का मन विचलित होगया और टकटकी लगाकर वह उस पर आकर्षित हुआ उस सुन्दरी के नख-शिख का वर्णन करो—

साटक

चरने रत्तय पत्त राइ रितए, कनाय चन्द्रानने ।

मातग गय हस मत्त गमने, जघाय रमाइने ॥

मध्य झीन मृगेन्द्र भार जघना, नाभिच कामालए ।

सिभे सिभ उरब्ज एत नयनौ^१ एने ससी भालयौ ॥ ४३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—रत्तय=धरुण । पत्त=पत्ते, पत्र । राइ रितए=ऋतुराज, षमन्त, रमाइने=ऋदली के समान । झीन=हीण। मार=मारी, सिभे सिभ=पुगल शिव । एने=उसका ।

अर्थः—तब गधर्व कहने लगा—उस अस्त्र के अरुण-चरण (पदस्थली) ऋतुराज की नवीन पत्रावली के समान, आनन कमल या चन्द्रमा के समान, मतवाली घाल मस्त हाथी या हम की भांति, जघा कदली की तरह और भारी, झीण कटि सिंह के मध्य भाग

के समान, नाभी कामालय के समान, उरोज-युगल शिव लिंग की भांति, नेत्र मृग के समान और भाल (वाल) चंद्रमा के समान था ।

मालिनी (श्लोक)

हरित कनक कांती कापि चंपेव गोरी ।
रसित पद्म गधा, फुल्ल राजीव नेत्रा ।
उरज जलज सोभा नाभि कोसं सरोजं ।
चरन कमल हस्ती, लीलयाराज हंसी ॥ ४४ ॥

शब्दार्थः—हरित=हरण करके । कापि=को । चंपेव=दवा दिया । गोरी=सुंदरी । फुल्ल=विकसित । राजीव=कमल । लीलया=लीला, क्रीड़ा, (गमन क्रीड़ा) ।

अर्थः—जिस सुन्दरी ने कनक की कांति हरण कर चंपा के रंग को दवा दिया है, वह रस-युक्त पद्म गन्धा की भांति थी (या सुवास कमल की भांति रस युक्त थी) । उसके नेत्र, और नाभि-कोष विकसित कमल के समान तथा उरोज कमल कली के सदृश थे । उसके चरणों की लीला (गमन क्रीड़ा) हस्ती और राज हंसनी की भांति थी ।

दोहा

कामालय सीं ' सुंदरी, जिम अरि-अंग^२-अनंग ।
विधि विधान मति चुक्यौ, किये मेन रन अंग ॥ ४५ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—जिम=जैसे ही, साथ ही । अरि-अंग-अनंग=कामदेव के शरीर का शत्रु (शिव) । चुक्यौ=भूल की । मेन=कामदेव । रन=कलह ।

अर्थः—उस सुंदरी को काम भवन के समान सजा कर साथ ही काम-शत्रु (शिव-लिंग स्वरूप कुच) को स्थान देकर विधाता स्व-विधान में भूल कर बैठे, इसीलिये उसके अंग काम और कलह के कारण वन गये ।

मालिनी (श्लोक)

अधर मधुर विव, कठ कलयठ रावे ।
दलित दलक भ्रमरै, भ्रिग भ्रकुटीयभावे ।

तिल सुमन समान, नासिका सोभयती ।

कलित दसन कुट, पुर्न चट्टाननच ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—कलयठ=कलकठ । रात्रे=रव, स्वर । दलक=पत्तों को । शु ग=भगर । कलित=ए दर । कू द=मोगरा ।

अर्थः—जिसके बिम्बोष्ठ मधुर, कठ स्वर कलकठ के समान, भ्रगुर भृकुटि के भाव, पत्तों को दलित करने वाले भ्रमरों के तुल्य नासिका तिल कुसुम के समान शोभायुक्त दांत सुन्दर मोगरे की कलि के समान और मुख पूर्ण चन्द्रमों की तरह था ।

दोहा

न्याय छर्यौ^१ मुनि रूप इन, सुरति प्रीय त्रिय आहि ।

जा मोहै सुर नर असुर, रहे ब्रह्म मुख^२ चाहि ॥ ४७ ॥

ग्रा० पा० १ का । २ टि० ।

शब्दार्थः—ब्रह्म=ब्रह्मा ।

अर्थः—सुरति प्रिया सुन्दरो ने सुर, नर, असुर इत्यादि को मोहा है, उसकी रचना कर ब्रह्मा भी उसके मुख को इच्छा पूर्वक देखने लगा । ऐसी उस आसरा ने न्यायपूर्वक ही मुनि को छला ।

कत्तिव

इनह काज सुर धरत, सूर तन तजत ततच्छिन ।

परत कध नंचत कमंध, पर-हनत स्वामि-रन ॥

भरत पत्र जुगिगनि समत, रति पिवत पिवावती ।

चरम चकव पल भ्रवत, पछिंजबुक्र न अघावत ॥

पुनि वपु किरच्चि करतें समर, तत्र जहत रस अच्छरिय ।

तजि मोह पुत्त पुत्तिय सु तिय, वरत वरग नमच्छरिय ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—ततच्छिन=तत्क्षण । पर-हनत=विपत्तियों को नष्ट कर देते हैं । स्वामि रत=स्वामी के द्वारा युद्ध छेड़ने पर । पत्र=पात्र । रति=लीन । भ्रवत=पीकर । किरच्चि=टुकड़े । जहत=लेते हैं, प्राप्त करते हैं । रस=प्रेम । पुत्त=पुत्र । पुत्तिय=पुत्री । वरग=वारांगना या वर । नमच्छरिय=आकाशनिवासी अप्सरायें ।

अर्थः—ऐसी ही रूपवतियों के हेतु स्वयं देवता वीर-शरीर-धारण कर उसे उमीक्षण नष्ट कर देते हैं । उनके सिर लुढ़कते हैं । किन्तु धड़ नाचने लगते हैं । वे

अपने स्वामी द्वारा छेड़े हुए युद्ध में उसका साथ देकर शत्रुओं का नाश कर देते हैं। योगिनियों के रक्त पात्र भर देते हैं। वे उस पर मुग्ध होकर पीतो-पिलाती और मस्त हो जाती हैं। उनके चर्म, चतु तथा मासांदि को पाकर पत्नी और जवुक गण नहीं अघाते, उनकी इच्छा वनी रहती है। वे युद्ध-स्थल में अपने शरीर के टुकड़े २ करवा देते हैं। तब ही वे अप्सराओं का प्रेम प्राप्त कर पाते हैं। पुत्र-पुत्रियों तथा प्रिय-गृहिणी का मोह छोड़कर वे इस प्रकार आकाशीय वार-वधू अप्सराओं का वरण करते हैं (या वे वर रूप होकर वरण करते हैं)।

दोहा

तिन मोहनि मोह्यौ सु मुनि, मोहे इद्र फुनिंद ।

नर नरिंद जुग जोग रत, उड़ उड़गन रवि इंद ॥ ४६ ॥

शब्दार्थः—फुनिंद=शेषनाग। जुग जोग=दोनों प्रकार के योग, सगुण-निर्गुण। उड़=गृह (नक्षत्र)।

अर्थः—इसी मोहिनी ने उस ऋषि को मोहा। जिसने कणीन्द्र, नर, नरेन्द्र दोनों प्रकार के (सगुण, निर्गुण) योग में लीन रहने वाले मुनि, गृहों, नक्षत्रों, रवि और चन्द्रमा को भी मोहित कर लिया था।

कवित्त

तीय धर्यौ तन जोग, श्रवन मुद्रा सु फटिक मय ।

करि अष्टग विभूति, न्हाय जनु विकसि सिंधुपय ।

जटा जूट सिर वधि, दिसा दस अंमर मानिय ।

सिंगी कंठ थराइ, जोग जगम सिव जानिय ।

पवनसु अरध उरध चढै, वंक नारि पूरै गगन ।

घरि ध्यान सुमन नासिक धरै, रहै ब्रह्म मंडल मगन ॥ ५० ॥

शब्दार्थः—अष्टग=आठों अंग। न्हाय=स्नान कर। सिंधु पय=क्षीरसमुद्र। अमर=अंबा। जगम=चलते फिरते। सिव=शिव, कल्याण। अरध=अर्ध, नीचे।

अर्थः—उस सुन्दर बाला ने शरीर पर योग-वेष धारण किया। उसने कानों में में श्वेत स्फटिक मणिकी मुद्रायें धारण की। आठों अंगों को विभूति से इस प्रकार विभूषित किया मानों वह क्षीर-समुद्र से स्नान कर निकली हो। उसने सिर पर जटा

जूट बाधा । दसों दिशाओं ने उसे प्रवा-रूप में माना । गले में बिंगी धारण कर उसने चलते फिरते यागियों के साधन और शिव (शकर या कल्याण) को जान लिया । अधोपवन को ऊर्ध्व चढाकर उसे बरु नाली में पूरकर कपाली में चढा लिया । मन को प्राणायाम में लगा ध्यान धर कर वह ब्रह्म-मंडल में मग्न होगई ।

दोहा

तजिग भोग मन जोग धरि, निकट सुमतह आइ ।

करि बर उँवरु डहडह्यौ, अवर सब सिव भाइ ॥ ५१ ॥

शब्दार्थः—करि=कर । डहडह्यौ=बजाया । अवर=अमर देवता । भाइ=पसाद प्रायी ।

अर्थः—वह अप्सरा मन से भोगादि छोड़ योग धारण कर सुमत ऋषि के निकट आई । उसने अपने श्रेष्ठ हाथों से डमरु बजाया । जिसको ध्वनि सब देवताओं और शङ्कर को भी पसन्द आई ।

गिरिजा पसु नह सग, गग नह झलक अलक जल ।

भूत न प्रेत पिशाच, नयन^१ नह त्रितिय गरल गल ॥

कटिन बवि गज चर्म, पहरि अँग अग दिगम्बर ।

नह गनेस बटवदन, पुत्र गन नदि भ्र ग सुर ॥

नह विय ललाट पट तिलक समि, व्याल न माल बनाइ उर ।

नाहिन त्रिशूल-त्रिपुरारि शल^२, नह कर लगिगय धवल धुर ॥ ५२ ॥

प्रा० पा० १ टि० । २ स० ।

शब्दार्थः—पसु=सिंह । पिशाच=पिशाच । शल=शल्य=चुभने वाला । धुर=धोरी, वृषभ, नदी ।

अर्थः—उसके योगिनी वेश से गिरिजा का भ्रम हो सकता था, किन्तु सिंह के पास में न हाने से तथा शिव की निम्न विभूतियों से छलकता हुआ गगाजल, भूत, प्रेत, पिशाच, तृतीय नयन, गरल कठ, कमर में बंधा हुआ गज चर्म, दिगंबर वेप, और गणेश कार्तिक स्वामी, जैसे पुत्र, गण समूह, नदी गण का भ्रम गुजार के समान स्वर, शिव भालस्थित बाल शशि, शिव हृदय की व्याल माल, चुभने वाली शिव की त्रिशूल और शिव कर प्रदत्त धवल नदी आदि के न होने से गिरिजा का भ्रम निवा-

रण हो सका । (अर्थात् अर्द्ध नाटेश्वर के रूप में वह योगिनी गिरिजा स्वरूप थी । एकांग गिरिजा का भ्रम देती थी) ।

कवित्त

बहु आदर आदरिय, अरघ आतिथि तिहि दिन्नौ ।
करिय ज्ञान गुन गोष्ठ, कष्ट बहु^१ तप करि किन्नौ ॥
डुल्लिग इंद्र रवि चद्र, इंद्र सुरलोकह मानिय ।
मो अग्यै कर जोरि, देव सब तजत गुमानिय ॥
तव्वह सु ज्ञान मन उपज्यौ, देव दुखी करि सुख तह्यौ ।
चिदनंद ब्रह्मपद अनुसरिय, धरिय ध्यान गगनह रह्यौ ॥ ५३ ॥

प्रा० पा० १ भी० का० ।

शब्दार्थः—आदरिय=अपनाया, स्थान दिया । गोष्ठ=गोष्ठी । गुमानिय=गर्व । चिदनंद=चिदानंद ।

अनुसरिय=अनुसरण ।

अर्थः—जब वह अप्सरा सुमत ऋषि के पास पहुँची तो ऋषि ने उसे सम्मान पूर्वक स्थान दे अर्घ्य और आतिथ्य दिया । फिर उन्होंने ज्ञान-युक्त गोष्ठी की और कहा :—मैंने बहुत कष्ट सहन कर तपस्या की है । जिससे इंद्र, सूर्य, चन्द्रमाँ आदि कांपने लगे हैं तथा इंद्र और स्वर्ग ने मुझे स्थान दिया है । सब देवता मेरे सम्मुख हाथ जोड़ कर गर्व छोड़ देते हैं । ईश्वर ने दुःख (तप कष्ट) देकर सुख दिया है, तब मेरे मन में यह श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त हुआ है । मैंने सच्चिदानंद, परब्रह्म के चरणों का अनुसरण कर कपाल में ध्यान धारण किया है ।

- दोहा -

मात गरभ आवागमन, मेदि भ्रमन ससार ।

ज्यौ कचन कंचन मिले, पय पय मम संचार ॥ ५४ ॥

शब्दार्थः—भ्रमन=भ्रम, आतियां ।

अर्थ—मैंने माता के गर्भ से आवागमन और संसार के भ्रम को इस प्रकार दूर कर दिया है जैसे सुवर्ण सुवर्ण में, दूध दूध में मिलता है । उसी प्रकार आत्मा को परमात्मा में मिला दिया है ।

सोइ ग्यान तुमसो कहौ, निरगुन गुन विस्तार ।

बरन्यौ वपु बैराट हरि, जा मुनि लहै न पार ॥ ५५ ॥

शब्दार्थः—वपु=रूप, शरीर । जा=जिसका ।

अर्थः—मैं उसी निर्गुण के गुण-विस्तार का ज्ञान तुमसे कहता हूँ । यह कहकर ऋषि ने ईश्वर के उस विराट-रूप का वर्णन किया । जिसका मुनि लोग भी पार नहीं पा सकते ।

मन माने सोई भजहु, कष्ट तजहु तुम देह ।

सुरति प्रीति हरि पाइयै, उर मेटहु सदेह ॥ ५६ ॥

प्रा० पा० १ का० भी० पा० ।

शब्दार्थः—सुरति=रूप, शरीर ।

अर्थः—शारीरिक कष्ट छोड़ कर हृदय से सदेह को दूर कर निर्गुण या सगुण जोभी मन माने उसी का तुम भजन करो । जिससे हरि-रूप के प्रेम को प्राप्त कर सकोगी ।

सुरग बसै फिर धर बसै, मनो ग्यान मनईस ।

गरभ दोष मेटहु प्रबल, उर धरि ध्यान जगीस ॥ ५७ ॥

शब्दार्थः—मनो ग्यान=मानसिक ज्ञान, मन के विचार, मनईस=मानना चाहिये । जगीस=जगदीश्वर, ईश्वर ।

अर्थः—स्वर्ग में बसना, फिर पृथ्वी पर जन्म लेना, यह तो मानसिक (मन की-प्रवृत्ति) ज्ञान माना गया है, किन्तु ऐसे गर्भ के आवागमन के प्रबल दोष को ईश्वर का हृदय में ध्यान धर कर दूर कर देना चाहिये ।

कहै ब्रह्म अवतार दस, धरे भगत हित काज ।

रूप रूप अति दैत्य दलि, द्रूपद सुता रखि लाज ॥ ५८ ॥

शब्दार्थः—रूप-रूप=प्रत्येक अवतार ।

अर्थः—जिसने द्रौपदी की लज्जा रक्खी थी उस ब्रह्म के दशावतार कहे गये हैं । सब भक्तों के हित के लिये ही हुए हैं । उन विविध रूपों को धारण कर ईश्वर ने बहुत से व्यक्तियों का दलन किया है ।

कवित्त

मच्छ कच्छ वाराह, अप्प नरसिंह रूप किय ।
वामन बलि छलि दान, राम छति छत्र छीन लिय ॥
लकपती संहर्यौ, उभय बलदेव हलायुध ।
दयापाल प्रभु बुद्ध, रहै धरि ध्यान निरायुध ॥

कलि अंत कलंकी अवतरहि, सत्य धम्म रक्खन सकल ।

करि सरस रास राधा रमन, मवन ज्ञान ब्रह्मह अकल ॥ ५६ ॥

शब्दार्थः—मच्छ=मत्स्य । कच्छ=कच्छप । अप्प=स्वय । राम=परशुराम । मवन=मतवालापन ।

अकल=अज्ञात ।

अर्थः उस स्वयं ब्रह्म के मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, दान द्वारा बलि को छलने वाला वामन, पृथ्वी के क्षत्रियों के छत्र छीनने वाला परशुराम, लंकापति का संहार करने वाला राम, हलधारी बलदेव सहित कृष्ण, ध्यानावस्थित नि शस्त्र, दयालु बुद्ध और कलि काल के अंत में होने वाला कलिक ये दस अवतार हैं । ये सब सत्य और धर्म की रक्षा के लिये हैं । प्रत्यक्ष में राधारमण (कृष्ण) की रासलीला सरस है, किन्तु अज्ञात रूप में वह भी ब्रह्मज्ञान का मतवालापन है ।

दोहा

कपट ज्ञान मुख उच्चरै, मन छल धूत अधूत ।

कपट-रूप-कठीर कर, चरन चित्त अवधूत ॥ ६० ॥

शब्दार्थः—धूत=धूर्त । अधूत=अवधूत । कठीर=सिंह । कर=के ।

अर्थः—मुख से कपट-ज्ञान उच्चारण करने वाला और मन को छलने वाला अवधूत धूर्त होता है, छल पूर्वक नृसिंह रूप धारी के चरणों में जिसका चित्त है, वही वास्तव में अवधूत (संत) कहा जा सकता है ।

इह कहि छल सध्यौ तिनह, भै विन प्रीति न होइ ।

हरि^१ छल तजि हरि^२ रूप करि, मान प्रगट्टिय सोइ ॥ ६१ ॥

प्रा पा. १, २ स. ।

शब्दार्थः—भै=मय । हरी छल तजि=छल के कारण हरिपन (बसली रूप) छोड़कर । हरी=सिंह, नृसिंह । मान=प्रभिमान ।

अर्थः—प्रभू ने यह कहते हुए कपट को काम में लिया कि बिना भय के प्रीति नहीं होती अस्तु—हरि ने छलने के लिये अपना असली रूप तज कर सिंह-रूप धारण कर गर्व प्रगट किया था (अर्थात् दुष्ट दैत्य को यह बताया कि मैं दुष्टों के नाश के लिये प्रत्येक रूप में प्रत्येक स्थान पर उपस्थित होता हूँ) ।

कवित्त

पीत वरन कजलीय, छोह आरोह सरप जनु ।

दसन सु तिकख कुदाल, नयन वियवत्र धर्यौ तनु ।

वत्र बक अकुस गयद, नख कुंभ विदारन ।

उर्द्ध केस कग सह गरव दती दल गारन ।

धर पटकि पु छ मु छाल बल, पीठ दिठु अवधू पर्यौ ।

भय भीति कपि कामिनि कुटिल, धाय विप्र अकह भर्यौ ॥ ६२ ॥

शब्दार्थः—तिकख=तीक्ष्ण । विय=दूमरा, द्वितीय । तनु=रूप । उर्द्ध=उठे हुए । कग=करिग, किया, की । सह=आवाज, पहाड़, शब्द । गरव=गर्भ । दती=हाथियों का समूह । गारन=नष्ट करना । बल=बलवान । पीठ=पत्त । अवधू=तपस्वी (प्रहल्लाद) ।

अर्थः—वाद में ऋषि ने नृसिंहावतार का वर्णन करते हुए कहा कि भगवान नृसिंह पीले वर्ण के थे और उसमें काली रेखाएँ ऐसी प्रतीत होती थीं भानों चर्म पर सर्प बैठे हों उनके दात कुदाली के समान तीक्ष्ण थे, उनके नैत्रों ने मानों द्वितीय वज्र-रूप धारण किया हो । उनके वज्र-तुल्य वक्र नख हाथियों के कुंभ-स्थल को विदीर्ण करने वाले अकुशा तुल्य थे, रोम उनके उठे हुए थे । उनका दहाडना गज-समूह के गर्भ को गिरा देने वाला था । ऐसे उस बल शाली मूछ वाले नृसिंह ने पृथ्वीपर पूछ पटकी और तपस्वी प्रहल्लाद के पत्तपर वह दिखाई पड़े थे । यह सुन कर उस भया-तुर कापती हुई दुष्ट स्त्री (आसरा) ने दौडकर ऋषि को अपने बाहुपाश में बाँध लिया ।

दोहा

उर उरोज लगगत सु मुनि, सर सरोज हति काम ।

रोमचित अँग अँग सिथल, मन मोह्यौ सुरवाम ॥ ६३ ॥

शब्दार्थः—हति=मार, लगे ।

अर्थः—उस भयातुर वाला के उरोज मुनि के हृदय से स्पर्श होते ही काम देव के कमल-रूपी वाणों के समान मुनि को लगे, जिससे वह रोमांचित होगया तथा उसका प्रत्येक अंग शिथिल होगया इस प्रकार उस वाला ने मुनि के मन को मोहित किया ।

दिवखत अचछरि^१ अष्ट उन, रह्यौ नेन मन लाइ ।

देह भुलानौ नेह कै, और न सूझै काय ॥ ६४ ॥

ग्रा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—काय=कुछ भी नहीं ।

अर्थः—विमान स्थित अन्य अप्सराओं के देखते हुए उसने (ऋषि ने) उस वाला (अप्सरा) को नैत्रों के द्वारा मन से लगा लिया और वह स्नेह वश होकर शरीर को भूल गया । उसको अन्य कुछ नहीं दिखाई दिया ।

भ्रमन भयानक सुपन छल, सिद्धन अवधू^१ संग ।

जानिक पंख परेवना, करि डमरु इन अंग ॥ ६५ ॥

ग्रा० पा० १ सं ० ।

शब्दार्थः—भ्रमन=भ्रमण करने लगा । सिद्धन=योगिनी, अप्सरा । करि डमरु=डवर वरके, अंग फूलाकर ।

अर्थः—वह तपस्वी भयानक स्वप्न द्वारा छड़ा जाकर उस योगिनी के साथ इस प्रकार फिरने लगा । जैसे शरीर को फूलाकर कपोत पक्षी कपोतिनी के आसपास फिरता हो ।

कामजारि सिव भसम क्रिय, करवि भूत रति सोक ।

भोग भुगति रति सु दरी, द्विद नह जोग न जोग ॥ ६६ ॥

शब्दार्थः—ऋवि=करते हैं । भूत=प्राणी । रति=प्रेम । सोक=दुःख की बात । भोग भुगति=भोग मुक्ता । रति=स्त्रीन । जोग=योग्य । जोग=योगियों के ।

अर्थः—पषि कहता है—शिष ने जिस कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया वह शोक का विषय है। प्राणी उसी से फिर प्रेम करता है। भोग-भुक्ताओं से लीन रहने वाली सुन्दरिये स्थिर चित्त नहीं होती। वे योगी पुरुषों के योग्य नहीं कही जा सकतीं।

गाथा

वनिता वदत विषं, जोग जुगति केन कम्माय ।
स्यामा सनेह रमन, जनम फल पुत्र्य दताई ॥ ६७ ॥

शब्दार्थः—वदत=कहने लगी। विषं=हे विष। केन=किस। कम्माय=काम की। पुत्र्य=पूर्व।

अर्थः—वह सुन्दरी (आसरा) मुनि से कहने लगी—योग-युक्ति किस काम की? श्यामा के स्नेह में रम जाना ही पूर्व जन्म के फल की प्राप्ति के तुल्य है।

चित्त चल्यौ मन डगगयौ, रच्यौ रूप रस रग ।
आनि पहुतौ जरज रिखि, दही भात ज्यों डग ॥ ६८ ॥

शब्दार्थः—आनि पहुतौ=आ पहुँचा। दही=दग्ध हो गई, नष्ट हो गई। भात=मा अति, विशेष काति। डग=शुष्क काठ।

अर्थः—मुनि का चित्त चञ्चल हो गया और उसका मन डगमगाने लगा। वह रूप के रस-रग में लीन हो गया। इतने ही में सुमत मुनि के पिता (या गुरु) जरज ऋषि वहाँ आ पहुँचे। जिससे सुमत की काति नष्ट हो गई और वह शुष्क काष्ठवत् खड़ा दिखाई पड़ा।

दिक्खि तात परदिक्खि^२ फिरि, भय लज्जा लवलीन ।
खिमा अरथ तप रभ कै, काम कामना भीन ॥ ६९ ॥

पा पा १, २ पा.।

शब्दार्थः—दिक्खि=देख कर। परदिक्खि=प्रदक्षिणा। खिमा अरथ=क्षमार्थ।

अर्थः—पिता को देख कर प्रदक्षिणा देना हुआ सुमत ऋषि भय और लज्जा के वश में हो गया। जो क्षमार्थ (शान्ति के लिए) तपस्या करता था वह रभा के कारण कामेच्छा में रम गया।

पहचानी रिखि सुंदरी, कुस गहि कीनौ दाप ।

भृगुदि वंक्र रिस नैन रत, दिय अचछरी^१ सराप ॥ ७० ॥

प्रा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—^१अच्छरी । सराप=श्राप ।

अर्थः—जरज ऋषि ने उस सुंदरी (अप्सरा) को पहचान लिया, पश्चात् अभिमान पूर्वक हाथ में कुश गृहण कर क्रोध वश वक्र भ्रुकुटी और अरुण नैत्र कर उसने अप्सरा को श्राप दिया ।

हम रीखीसर वन घन^१ बसहि^२, रसह न जाने एक ।

कंद भलंत तन कष्ट करि, लेइ श्राप इक मेक ॥ ७१ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—भलंत=मत्तण । मेक=एक ।

अर्थः—ऋषि बोला-हम ऋषीश्वर गहरे वन में निवास करते हैं और किसी विजासरस को नहीं जानते । कन्द-मूल भक्षण कर कष्ट सहन करते हैं । अतः मेरा एक श्राप तुम्हें ग्रहण करना होगा ।

कवित्त

नयन नीच किय वाल, भाल भ्रुकुटी दिखि तातह ।

गयौ वदन कुमिलाइ, जानि दीपक लखि प्रातह ॥

पुत्र कवन तप तप्यौ, भयौ वसि काम वाम रत ।

इत्तहि श्राप करु भस्म, कवन छडेब तोहि-हित ॥

धपु क्रोध वंत रिखि देखि करि, रभअ रंभ न कछु रह्यौ ।

सम अग्नि रूप दिक्खौस रिखि, तबह श्राप रंभह क्यौ ॥ ७२ ॥

शब्दार्थः—तोहि-हित=तेरे कल्याणार्थ । रभअ=रमा । रम=बोलना । दिक्खौस=देखा ।

अर्थः—पिता को क्रुद्ध भाल-भ्रुकुटी को देख वर वाल-ऋषि सुमंत ने नैत्र नीचे कर लिये । उसका मुख इस प्रकार कुम्हला गया मानों प्रातः समय दीपक प्रभाहीन होगया हो । जरज मुनि कहने लगे-हे पुत्र ! तुमने यह कैसी तपस्या की ? जो वामा-पर मुख होकर काम के वश हो गया ? मैं इम सुंदरी को श्राप के प्रभाव से नष्ट कर

दूंगा। देखें तेरे हित-कार्य में कौन बाधा दे सकता है ? इस प्रकार क्रोध युक्त ऋषि को देख कर रमा कुछ बोल न सकी (उसकी वाणी बंद होगई)। तब अग्नि ज्वाला के समान ऋषि ने उसकी ओर देखा और श्राप दिया।

कलह करन ही डहि कुबुधि, कलहतर कहि एह ।

पुहची भार उतारनह, जनमि पग कै गेह ॥ ७३ ॥

शब्दार्थः—डहि=डसि, डसा। पग=त्रयचद।

अर्थः—कलह के लिये ही इसे कुबुद्धि ने डसा है, अतः यह कलह-कारिणी कहलायगी। और पृथ्वी का भार उतारने के लिये ही यह पगुराज (जयचन्द्र) के गृह में जन्म लेगी।

कवित्त

एम छल्यौ त्रयवार, रोस करि श्राप आप दिथ ।

मृत्युलोक अवतार, नाम तुअ कलह-प्रिया किय ।

इन अवधू मन छल्यौ, सुख नन लहहि त्रीय तन ।

पित पति कुल सहरहि, पीय तौ हथ रहै जिन ।

जैचदराइ कम धज कुल, उअर जुन्हाइय पुत्र-छल ।

सयोग नाम प्रथिराज वर, दुअ सु मार अनभग दल ॥ ७४ ॥

शब्दार्थः—एम=इस प्रकार। पित=पिता। हथ रहै=वश में होकर रहै। उअर=कोख, गर्भ। पुत्र-छल=पुत्र को छलने वाली। दुअ=दोनों। मार=मारकाट।

अर्थः—तूने मेरे पुत्र को इस प्रकार तीन बार छला है। इसीलिये मैं क्रोध हो तुझे यह श्राप देता हूँ कि तू मृत्यु लोक में अवतार लेकर कलह-प्रिया के नाम से कही जायगी। तूने इस अवधूत (सुमत) का मन छला है। अतः तू पृथ्वी शरीर से किमी तरह का सुख प्राप्त नहीं कर सकेगी। पितृ कुल और ज्यो तेरा प्यारा तेरे वश में होगा, उस पति के कुल का सहार करायेगी, मेरे पुत्र को छलने वाली सुन्दरी तू राजा जयचन्द्र के यहाँ कमधज कुल में रानी जुन्हाई के गर्भ से पैदा होगी और तेरा नाम सयोगिता होगा तथा तेरा पति पृथ्वीराज होगा। पिता और पति के शक्ति-शाली दल का तू नाश करेगी।

दोहा

श्रवण सुने रंभह डरिये, रही जोर कर दोइ ।

अब साईं अपराध मुहि, मुगति कहो कब होइ ॥ ७५ ॥

शब्दार्थः—साईं=स्वामी । मुहि=मेरी । मुगति=मुक्ति ।

अर्थः—श्राप को श्रवण कर रंभा भयभीत हो गई और दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगी :— हे स्वामी ! अब इस अपराध से मेरी कब मुक्ति होगी ? सो कहिये ।

कवित्त

सुनहि रभ पहु पंग पुत्रि, वर ग्रहे देव गुर ।

वर कनवज्ज प्रमान, गग अस्तान सार कर ॥

इन्द्र मरन वछई, गंग स्नानं जिय काजं ।

ता कारण तुहि त्रीय, श्राप सुध्यौ गुन-भाजं ॥

पहु पंग ग्रहे जनमिय तदिन, तिय सराप तरुनिय भइग ।

आरम्भ विनै-मंगल पढन, तदिन महरत वर लइग ॥ ७६ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० भी० ।

शब्दार्थः—पहुपग पुत्रि=पगुराज के यहा पुत्री रूप में होगी । वर ग्रहे=पति गृह, देव गुर=देवों में बड़ा (इन्द्र) । इन्द्र=इन्द्र स्वरूपी पृथ्वीराज । सुध्यौ=हुआ । भाज=भाजन । तिय सराप=श्रापित बाला । भइग=होने पर ।

अर्थः—तव ऋषि कहने लगे—हे रंभा सुन । तू जयचन्द्र की पुत्री होगी, और तू उस घर के घर जायगी, जो देवताओं में बड़ा है (अथात् इन्द्र का अवतार है) । श्रेष्ठ कन्नौजपुरी में तू तव युक्त गंगा स्नान करेगी । जिस गंगा स्नान के लिये स्वयं इन्द्र स्वरूपी तेरापति मृत्यु चाहेगा । हे गुण-भाजन वनिता (सुन्दरी) उसी (इन्द्र स्वरूपी पृथ्वीराज) के लिये ही तुझे श्राप हुआ है । तव उस अक्सरा ने पंगुराज के गृह पर उसी दिन जन्म लिया, वह श्रापित बाला जत्र युवती हुई । तव उसने विनय-मंगल का पठन पाठन श्रेष्ठ दिवस और श्रेष्ठ मुहूर्त में प्रारंभ किया ।

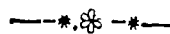
दोहा

पुच्छकथा सजोग की, कही चद वरदाइ ।

पग घरह जुन्हाइ उर, आनि प्रगट्टिय लाइ ॥ ७७ ॥

शब्दार्थः—लाइ=अग्नि-ज्वाला ।

अर्थः—यह सयोगिता की पूर्व कथा मैंने (चद वरदाई) ने वर्णन की है । सयोगिता जुन्हाई की कोंख से राजा जयचद के यहा क्या प्रगट्ट हुई मानों अग्नि-ज्वाला का प्रादुर्भाव हुआ है ? (अर्थात् वह पितृ कुल और पति-कुल के नाश के लिये अग्नि ज्वाला स्वरूप थी) ।



हाँसी प्रथम युद्ध

(समय ४६)

दोहा

हुंदि फौज जैचंद फिरि, वर लभ्यौ चहुआन ।

चपि न उपर जाहि वर, रहै ठठुक्कि समान ॥ १ ॥

शब्दार्थः—हुंदि फौज=हुंदि दानव के वंशज चाहुआन पृथ्वीराज की सेना, चाहुआनी सेना । वर लभ्यौ=अच्छा हुआ, सौभाग्य वश । चंपि न=दवा नहीं सके । ठठुक्कि=डटे रहे ।

अर्थः—दोनों सेनाएँ समान रूप से डटी रहीं और एक-दूसरे को नहीं दबा सका । अंत में चाहुआन के सौभाग्य से जयचंद लौट गया और चाहुआना सेना भी लौट आई ।

कवित्त

मास एक पहुपंग, फवजि^१ आहट्टि सु पच्छी^२ ।

दिल्ली तें पच कोस, रंक लुट्टी गहि लच्छी ॥

फिरि आए नृप पास, देस दोऊ अरि वरसे ।

राह रूप प्रथिराज, जगि पंगह गहि गरसे^३ ॥

निम्मान भान कूरंभ भुज, हाँसी पुर त्रप रक्खिए ।

सामंत सत्रै कैमास विन, दुब्जन मुख सु दिक्खिए ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ का० । ३ भी० ।

शब्दार्थः—पहुपंग=पंशुराय, जयचंद । फवजि=फौज, सेना । आहट्टि=अड़ पड़ी, आकर अड़ी । पच्छी=पीछे, फिर से । दिल्ली=दिल्ली । पच कोस=पंच कोस । गहि=प्रास की । लच्छी=लक्ष्मी । दोऊ अरि=दोनों शत्रु-जयचंद और गौरीशाह । वरसे=वसे । राह=राहु । जगि=यज्ञ । पंगह=पंशुराय । गरसे=असे, निगलना । निम्मान=निर्माण । मान कूरंभ=कछवाहों का सूर्य । दुब्जन=दुर्जन । दिक्खिए=देखे गये, देखा गया ।

अर्थः—उपर्युक्त घटना के एक मास पश्चात् फिर जयचंद की सेना आकर अड़ गई और उन दरिद्रियों ने दिल्ली से पांच कोस की दूरी तक लूट मचा कर उनका

की सपत्ति छीन ली और फिर बापम जयचन्द्र के पाम लौट गई । इसी प्रकार दिल्ली के भूभाग के लिये दो शत्रु (गौरी और रजयचन्द्र) गड़े होगए । तब राहू स्वरूपी पृथ्वीराज, जिसने उसके यज्ञ का विध्वंस कर दिया । अन्धे कार्यो के करने वाली जिनकी भुजाएँ हैं, ऐसे कछवाहों के सूर्य को (पञ्जून को), कैमाम के अतिरिक्त, सब सामतों के साथ हाँसीपुर में जो गौरी शाह के रास्ते का मुहाना है, नियुक्त किया ।

हाँसीपुर सामन्त, कन्ह रख्यो परिमान ।

रख्यो भीम पुँडीर, सलख ररयो सुत भान ॥

रख्यो जैत पँवार, कनक रख्यो रघुवसी ।

रख्यो देवहकन्न, रक्खि उद्दिग कन गसी ॥

बगरी राव रख्यो न्रपति, रा - चामंड सु रक्खिए ।

सामन्त सूर तेरहत्रिगढ, गौरी मुक्खह^१ दिक्खिए ॥ ३ ॥

प्राह्य पा० स० ।

शब्दार्थ:—परिमान=योग्य समझ कर । उद्दिग=उद्दिग पगार । कन गसी=प्रमित करने वाला । बगरी राव=बागड़ी प्रमारों का मुखिया देवराज (देवकर्न बगरी इससे भिन्न है) ।

अर्थ:—हाँसीपुर पर पञ्जून के साथ योग्य समझ कर नरनाह कन्ह, भीम पुण्डीर, सलखानी भानराय, जैत्र प्रमार, कनकराय (रघुवशी बडगूजर), देवकन्न (बगरी), शत्रुओं को प्रसने वाला उद्दिग पगार, देवराज बगरी, और चामण्डराय को नियुक्त किया । वे वीर सामन्त शत्रुओं को तीन तेरह (जत्र तत्र) करने वाले थे, गौरी शाह के रास्ते के मुहाने पर डट गये ।

दोहा

नृप^१ आखेटक मडिकै, दिल्ली रखि कैमास ॥

पचपच सामत सह, जुग्गिनि पुह आवास^२ ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ भी० घ० । २ घ० ।

शब्दार्थ:—जुग्गिनि=दिल्ली । पुहयावास=राज महल ।

अर्थ:— पाच २ सामतों की टुकड़ी बना कर दिल्ली और राज-प्रासाद की रक्षा के लिए कयमास की अध्यक्षता में वहीं रखा और आप स्वयं शिकार के लिए तैयार हुआ ।

दिल्लीवै आखेट वर, पट्ट पंगानौ^१ त्रास ॥

नैर सु रक्खी सेन सह, नृप हांसी पुर पास ॥ ५ ॥

शब्दार्थः—नैर=कोई स्थान विशेष ।

अर्थः—पगुराज को सशक्ति रखने के लिए श्रेष्ठ दिल्लीश्वर आखेट में लग गया और अपनी सब सेना हाँसीपुर के निकट ही किसी नैर (नामक स्थान) पर नियुक्त कर दी ।

कवित्त

चढ़ि चहुआन नरेश, भजि मेवास सवै वर ।

गुज्जर गोरी पग; देस दक्खिन^१ सु पत्ति^२ घर ॥

विपम वाय ज्यो तूल, मूल सव अरिन उड़ाइय ।

वीर भोग वसुमती, वीर रस वीर अघाइय ॥

चामंडराउ गोरी दिसा; भोज कुँवर दिल्ली करी ।

सामंत सूर असिवर बलह; हाँसीपुर अगगर^३ धरी ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ २ ३ पा० भौ० घ० ।

शब्दार्थः—भजि=नष्ट करके । मेवास=मेव जाति के रहने का स्थान, (अलवर मरतपुरादि) ।

गुर्जर=गुजरात । सुपत्ति=पहुंच कर, धावा करके । वाय=वायु । तूल=रुई की पैल, फौया । मूल=जड़से ।

अघाइय=तुस हुआ । भोज कुँवर=नाम विशेष (यह चामण्ड राय या किसी सामन्त का पुत्र था) ।

असिवर=श्रेष्ठ तलवार । बलह=शक्ति से । अगगर धरी=आगे की, सामने की, प्रदर्शित की ।

अर्थः—शिकार के बहाने चढ़ कर चहुआन नरेश्वर ने मेवासियों का बल नष्ट कर दिया । गुर्जर गौरीशाह और जयचन्द के देश तथा दक्षिण तक के भू-भाग पर धावा किया । पवन के तुल्य आक्रमण कर शत्रुओं को जड़ मूल से उखेड़ते हुए तूल के समान उड़ा दिये । यह वसुंधरा वीर/भोग्या है । अतः वह वीर नरेश वीर रस से भर गया । उन्हीं प्रकार गौरी सेना के मुहाने पर चामण्डराय और कुमार भोज ने दिल्ली में, तथा बहादुर सामन्तों ने हाँसीपुर में श्रेष्ठ तलवार की शक्ति को प्रदर्शित किया ।

चहुआना सम सूर, सवै सामंत धरि वार ।

सगपन सम जुत लाज, समै सामंत पुव धार ॥

आदर वर चहुआन, हथि अप्पे सुरता^१ रं^२ ।

हम किरनि सम राज, राज सोभै हज्जार ॥

आसनी सीम^३ हासी पुरह, वर रक्खै^४ सुरतान दिसि ।

सतपत्र सूर सप्राम रवि, सोन-उदे^५ देहीं प्रहसि ॥ ७ ॥

प्रा० पा० १, २ स० । ३, ४ पा० । ५ सर्व प्रति ।

अर्थ:—धरि वार=वार करने वाले, दाव लगाने वाले । जत=युत, सहित । सगपन=सत्रध ।

शब्दार्थ:—^१व=पूर्व । हथि=हाथों से अप्पे=दे, अप्पित करना । सुरता=सुरता, महादुरी ।

सम=समय । ^२रख्या=रखनी=हाँसीपुर । सतपत्र=फल । सोन उदे=शोणित वर्ण होजाने से, ^३रं=वे । किरनि=किरणों से ^४रक्खै=पेंवार, ^५उदे=उदित हो जाने से ।

रक्त रजित हो जान से । प्रथमि प्रथम ।

अर्थ:—चाहुआन नरेश के समान ही वरदान प्राप्त करने, सम्बन्धों में और लज्जा में पूर्व काल से ही सम्मानता रखने वाले थे । चाहुआन नरेश भी उनकी बहादुरी के सम्मान से सम्मानित हुए थे । राजा सूर्य स्वामी और उसके सामन किरणों तुल्य थे । उन वीरों को हॉस पुर और उमकी सीमापर सुनतान से लोहा लेने के लिये नियुक्त किया । सूर्य स्वरूपी पृथ्वीराज जब सप्राम में लोहित वर्ण होता था तब वे कमल-स्वरूपी बहादुर खिन्न उठते थे ।

हासीपुर सामन्त, सुनिय बालोच पहारी ।

हैमारू पतिशाह, तत वेगम पय वारी ॥

अति बलवान बलोच, भेद दीनौ पतिसाह ।

हामीपुर हिंदवान, देस अरिदुष्ट^१ सुगाह ॥

तुम हुकम जुद्ध इन मू^२ करू, ^३अरू^४ वेगम सत्ये सुभर ।

मिलि सत्रै मत ततह करै, तौ कट्टे हासी जु वर ॥ ८ ॥

प्रा० पा० १ भी २, ३ घ० । ४ स० ।

शब्दार्थ:—हैमारू=भीमाद्र, सीमा पर रहने वाला । तत=उसकी । पय-धारी=पैर दिया । गाह=ग्रहण किये हुए । अरू=अड़पट ।

अर्थ:—हासीपुर पर सामन्त नियुक्त हुए यह बात बलोचो पहाडी ने सुनी, वह शाह की सीमा पर रहने वाला था । उसने अपनी वेगम को साथ ले हाँसी की ओर कदम बढ़ाया । उस अति बलवान ने बादशाह को बताया कि हाँसीपुर प्रदेश पर

हिन्दू-शत्रु धृष्टतापूर्वक डटे हुए हैं, यदि आप की आज्ञा हो तो मेरे साथ वेगम होने के कारण इनसे रास्ता मागने के बहाने छेड़-छाड़ कर अड पड़ें, आप और हम मिल कर यदि तत्व युक्त मन्त्रणा कर लें तो हाँसीपुर के भू-भाग को हिंदुओं से निकलवा लें ।

दोहा

हम भूमिया भुमवट करहिं, तुम सहाय हम भीर ।

सब खवार बलोच मिलि, खनि कड्डे^१ ग्रह तीर ॥ ६ ॥

ग्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—भूमिया=भूमि पति, भू-स्वामी (आज्ञा मी राजस्थान में भूमिया कहलाते हैं) । भुमवट=पृथ्वी का बटवाड़ा, हिस्सा रसी । भीर=समूह । खनि=खदेड़ कर । ग्रह तीर=वर के निकट रहने वाले, सीमा पर रहने वाले ।

अर्थः—हम भूमि-पति (भू-स्वामी, भूमिया) कहलाता हूँ और ओरों की पृथ्वी हड़प कर बराबर बांट लेते हूँ । यदि हमारे समूह की आप सहायता करें तो हम सब कंधारी और बलोंची मिल कर सीमा पर रहने वाले शत्रुओं को खदेड़ कर निकाल दें ।

इक्क वरख प्रथिराज वर, रछौ प्रेह तिन^१ थान ।

चावहिसि घर भुग्गवै, वर इञ्जा^२ घर-मान ॥ १० ॥

ग्रा० पा० १ पा० भी० (ख), घ० का० । २ का० भी० (क) ।

शब्दार्थः—प्रेह=ग्रहण किए । तिन=उन । चावहिसि=चारों ओर । भुग्गवै=अधिकार में लें । इञ्जा=इच्छा । घर-मान=पृथ्वी का सूर्य ।

अर्थः—एक वर्ष तक पृथ्वी का सूर्य राजा पृथ्वीराज उन स्थानों पर अधिकार किये था, वह अपनी इच्छा के अनुसार चारों ओर के (शत्रुओं के) भू-भाग पर अधिकार करता रहा ।

घर बत्तिय^१ मत्तिय डरी^२, घर नागौर निधान ।

जिनह^३ भुजनि^४ दिल्ली वरा, ते रक्खे परिमान ॥ ११ ॥

ग्रा० पा० १, ३, ४ पा, २ भी (ख) ।

शब्दार्थः—घर बतिय=घरबट, कुल की शान । मतिय=मस्ती । परी=रिजी । जिनह=जिनके । भुजनि=भुजों पर । परिमान=प्रमाण युक्त (उसी रूप में) ।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज घरबट की मस्ती छेड़े रहा, उधर जिनकी भुजाओं के भरोसे दिल्ली छोड़ी गई थी उन्होंने नागौर तक को सुरक्षित रक्खा ।

कवित्त

पाहागी बल्लोच, पास सामत सपन्नौ ।

साख धम्म सुरतान, भेद करि भेद सु दिन्नो ॥

है आमिष्ट सुवास, तमकि सब वीर सु हल्लिय ।

भर गौरी सुरतान, सग खुरसान सु चल्लिय ॥

वर उमगि लच्छि गौरी ग्रहै, हों खंधार अगिवान^१ वर ।

सो धीर कौन चहुवान^२ कौ, लोइ लक लुट्टे सुधर^३ ॥ १२ ॥

प्रा० पा० । १-२-३ सबे प्रति ।

शब्दार्थः—सपन्नौ=पहुचा । साख=शाखा । भेद करि=भेद प्राप्त करके । आमिष्ट=आनिष्ट, अनिष्ट । सुवास=अपना वास । तमकि=तैश में आकर । हल्लिय=चले, बढे । लच्छि=लक्षण । अगिवान=अप्रगण्य । लोइ=लौं, तक ।

अर्थः—वह बलौच पहाड़ी जहाँ हॉसी पुर पर सामत थे वहाँ पहुँच गया । मुस्लिम और सुलतान का सहधर्मी होने से यहाँ के (सामतों के) भेद को प्राप्त कर गौरीशाह को सूचना दी । इधर अपने सुरक्षित स्थान का अनिष्ट सोच कर सब सामत बलौची की ओर बढे उधर से गौरी शाह के योद्धा और खुरासानी योद्धा बलौची से आ मिले । जिससे बलौची ने उत्साहित होकर गौरीशाह के लक्षणों को ग्रहण कर लिया (आक्रमण करने की इच्छा की) और कहने लगा मैं खधारियों का अप्रगण्य हूँ । चाहुआन के सामतों मे ऐसा कौन धैर्यवान है जो मुझे रोक सकै मैं लका देश के भूभाग को लूट ने तक की शक्ति रखता हूँ ।

तव सामन्त सु तक्क, चूरु चितय सब धाए ।

अद्ध रयनि परि सोइ, जोर हिंदू भर आए ॥

ग्रहि वेगम सब सत्थ, लुट्टि लिय खास खजीना ।

भजि बलौच केइ भुक्तिय, सु वर रन्नी वह-दीना ॥

बुन्नार सह दस दिसि भइय, अन चितन अनवत्त इय ।

दैवत्त गत्ता ऐसी हुइय, लहिय घत्त रतवाह दिय ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—तक्कि=ताककर, देखकर । चूक=छल । चितिय=चितन कर, विचार कर । रयनि=रात्रि । परि सोइ=सो जाने पर । जोर=शक्ति । ग्रहि=पकड़ ली । मजि=मागगए । भुभिय=जू भे, लड़े, मारे गए । सु चर=अपने बल । रन्नी=रात्रि में । वह दीना=वहीर कर दिये, बहा दिये, मगा दिए, विचलित किए । बु वार सह=अर्धघोष । अनचितन=अचानक, अकल्पित ध्यान से बाहिर की बात । अनवत्त=बुरी बात, आपत्ति । इय=यह । लहिय घत्त=मौका पाकर, दाव लगाया । रतवाह=छापा । दिय=दिया, मारा ।

अर्थ—वलौच की इस प्रकार बढ़ती हुई शक्ति देख कर सब सामन्त छद्म-युद्ध करने का विचार कर आगे बढ़े और यथायक अर्द्ध रात्रि होने पर, जब सब सो गए, तब हिन्दू वीरों ने छापा मारा और विशेष शक्ति से कान लिया । वेगमें पकड़ ली गई । वलौच के सब साथियों और खजाने को लूट लिया । बहुत से यवन मारे गये और वलौची भाग गए । इस प्रकार एक ही रात्रि में सामन्तों ने शत्रुओं को अपने बल द्वारा विचलित कर दिया । उस समय दशों दिशाओं में ऊर्ध्व घोषणा हुई । शत्रुओं पर इस प्रकार यह बिना सोची आपत्ति आपड़ी जैसे कोई दैविक घटना घटी हो । इस प्रकार छापा मारने के कारण सामन्त का दाव लग गया ।

दोहा

इह कहंत पुक्कार वर, पाहारिय सं' खेद ।

वेगम लुट्टि नरिंद भर, लुट्टि लच्छि भर भेद ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—इह=ऐसे । सं खेद=खेद सहित । भर=भट, सामत । लच्छि=लक्ष्मी । भेद=मारना, वेधना ।

अर्थ—भाग कर वलौच पहाड़ी ने दुःख प्रकट करते हुए शाह के पास जाकर यह पुकार की कि राजा पृथ्वीराज के सामन्तों ने योद्धाओं [मुस्लिमों] को मार दिया है और वेगमों को लूट लिया ।

हीन वदन पत्ती तहा, जहँ गज्जनी सहाव ।

सुद्धि बुद्धि पुच्छिय सकल, विवरि देत सब जाव ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—घर बत्तिय=घरवट, कुल की आन । मत्तिय=मस्ती । गरी=शिड़ी । जिनह=जिनके । भुजनि=भुजों पर । परिमान=प्रमाण युक्त (उसी रूप में) ।

अर्थः—इस प्रकार पृथ्वीराज घरवट की मस्ती छेड़े रहा, उधर जिनकी भुजाओं के भरोसे दिल्ली छोड़ी गई थी उन्होंने नागौर तक को सुरक्षित रक्खा ।

कवित्त

पाहागी बल्लोच, पास सामत सपन्नौ ।

साख धम्मम सुरतान, भेद करि भेद सु दिन्नो ॥

है आमिण्ट सुवास, तमकि सब वीर सु हल्लिय ।

भर गौरी सुरतान, सग खुरसान सु चल्लिय ॥

घर उमगि लच्छि गौरी ग्रहै, हों खंधार अगिवान^१ वर ।

सो धीर कौन चहुवान^२ कौ, लोइ लकलुट्टे सुधर^३ ॥ १२ ॥

प्रा० पा० । १-२-३ सबे प्रति ।

शब्दार्थः—सपन्नौ=पहुचा । साख=शाखा । भेद करि=भेद प्राप्त करके । आमिण्ट=आनिष्ट, अनिष्ट । सुवास=अपना वास । तमकि=तैश में आकर । हल्लिय=चले, बढे । लच्छि=लक्षण । अगिवान=अग्रगण्य । लोइ=लौं, तक ।

अर्थः—वह बलौच पहाडी जहाँ हौसी पुर पर सामत थे वहाँ पहुँच गया । मुस्लिम और सुलतान का सहधर्मी होने से यहाँ के (सामतों के) भेद को प्राप्त कर गौरीशाह को सूचना दी । इधर अपने सुरक्षित स्थान का अनिष्ट सोच कर सब सामत बलौची की ओर बढे उधर से गौरी शाह के योद्धा और खुरासानी योद्धा बलौची से आ मिले । जिससे बलौची ने उत्साहित होकर गौरीशाह के लक्षणों को ग्रहण कर लिया (आक्रमण करने की इच्छा की) और कहने लगा मे खधारियों का अग्रगण्य हूँ । चाहुआन के सामतों में ऐसा कौन वैर्यवान है जो मुझे रोक सकें मैं लका देश के भूभाग को लूटने तक की शक्ति रखता हूँ ।

तव सामन्त सु तकिरु, चूरु चितय सब धाए ।

अद्ध रयनि परि सोइ, जोर हिंदू भर आए ॥

ग्रहि वेगम सब सत्य, लुट्टि लिय खास खजीना ।

भजि बलौच केइ भुक्तिय, सु वर रन्नी वह-दीना ॥

बुंवार सह दस दिसि भइय, अन चितन अनवत्त इय ।

दैनत्त गत्ता ऐसी हुइय, लहिय घत्त रतवाह दिय ॥ १३ ॥

शब्दार्थः—तक्कि=ताककर, देखकर । चूक=थल । चितिय=चितन कर, विचार कर । रयनि=रात्रि । परि सोइ=सो जाने पर । जोर=शक्ति । ग्रहि=पकड़ ली । मजि=भागगए । कुम्भिय=जूंभे, लड़े, मारे गए । सु वर=अपने बल । रन्नी=रात्रि में । वह दीना=वहीर कर दिये, वहा दिये, मगा दिए, विचलित किए । बु वार सह=अर्धघोष । अनचितन=अचानक, अकल्पित ध्यान से बाहिर की बात । अनवत्त=बुरी बात, आपत्ति । इय=यह । लहिय घत्त=मौका पाकर, दाव लगाया । रतवाह=छापा । दिय=दिया, मारा ।

अर्थ—वल्लौच की इस प्रकार बढ़ती हुई शक्ति देख कर सब सामन्त छद्म-युद्ध करने का विचार कर आगे बढ़े और यकायक अर्द्ध रात्रि होने पर, जब सब सो गए, तब हिन्दू वीरों ने छापा मारा और विशेष शक्ति से कान लिया । वेगमें पकड़ ली गई । वल्लौच के सब साथियों और खजाने को लूट लिया । बहुत से यवन मारे गये और वल्लौची भाग गए । इस प्रकार एक ही रात्रि में सामन्तों ने शत्रुओं को अपने बल द्वारा विचलित कर दिया । उस समय दशों दिशाओं में ऊर्ध्व घोषणा हुई । शत्रुओं पर इस प्रकार यह विना सोची आपत्ति आपडी जैसे कोई दैविक घटना घटी हो । इस प्रकार छापा मारने के कारण सामन्त का दाव लग गया ।

दोहा

इह कहत पुक्कार वर, पाहारिय सं खेद ।

वेगम लुट्टि नरिंद भर, लुट्टि लच्छि भर भेद ॥ १४ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—इह=ऐसे । सं खेद=खेद सहित । भर=भर, सामंत । लच्छि=लक्ष्मी । भेद=भारना, वेधना ।

अर्थ—भाग कर वल्लौच पहाड़ी ने दुःख प्रकट करते हुए शाह के पास जाकर यह पुकार की कि राजा पृथ्वीराज के सामन्तों ने योद्धाओं [मुस्लिमों] को मार दिया है और वेगमों को लूट लिया ।

हीन वदन पत्ती तहा, जहँ गज्जनी सहाव ।

सुद्धि बुद्धि पुच्छिय सकल, विवरि देत सब जाव ॥ १५ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—हांग वदन=मलिन देह । पत्नी=पहुची । तहां=उस जगह । विनरि=ज्योरें चार, विस्तृत । जाव = जवाव ।

अर्थः—उधर वेगमे भी मुरझाया मुख लेकर गजनेश्वर शहाबुद्दीन के पास जा-पहुँचीं । उनसे कुशल पूछी गई, तब सवने ज्योरें चार उत्तर दिया ।

साटक

अँ^१ गोरी सुरतान साहिव वर, साहाव साहावन ।

जैन जोवत तस्य सेवक वृत्त, मानस्य मर्द्जग ॥

वोय जाचत अर्थवीय^२ घनयो, घनयोपि^३ जीवोधिग ।

धिगता तस्यय सेवकाय वरय, ना दीन सा मानय ॥ १६ ॥

पा० पा० १, २ घ० । ३ घ० भी० (क) ।

शब्दार्थः—जैन=जिसके । तस्य=उसके । वृत्त=व्रत, समूह । मानस्य=उनका मान । मर्द्जग=मर्दन हो गया । वीय=दूभरा । अर्थवीय=धनवान होते हुए भी । घनयो=बहुत । घनयोपि=ऐसे धनवान को भी, या ऐसे मेरे पति को भी । जीवोधिग=जीवन धिक्कार है । धिगता=धिक्कार । तस्यय=उसके । वरय=बलको । ना=नहीं । दीन=मजहब । सा=उनके । मानय=मान, सम्मान ।

अर्थः—ओ शहों के शाह सुलतान शहाबुद्दीन गौरी । आपके जीवित रहते हुए आपके सेवक-समूह का मान-मर्दन हो गया है । जिसके पास धन (शक्ति) के होने पर भी धन की याचना की, ऐसे मेरे पति का जीवन धिक्कार है (मेरे पति के साथी बलौच खवारियों के होते हुए भी औरों से सहायता माँग कर युद्ध किया) । बहादुर मुस्लिम योद्धाओं के बल को भी धिक्कार है, जो अपने दीन की इज्जत नहीं बचा सके ।

दोहा

विप^१ सु खडन वेद विन^२, नर खडन निरग्यान ।

त्रिय खडन इह मैं सुन्यौ, विग जावन^३ सुरतान ॥ १७ ॥

पा० पा० १ पा० भी० । २ घ० पा० । ३ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—विप=विष, ब्राह्मण । विन=विन । निरग्यान=यज्ञानो । इह=यह, ऐसा । धिग=धिक्कार ।

अर्थः—वेद नहीं पढ़े हुए ब्राह्मण का और अज्ञानो मनुष्य का नाश होना संभव है । इसी प्रकार तेरे जीते जी स्त्रियाँ का अरमान हुआ है । अतः हे सुलतान ! तेरा जीवन भी धिक्कार है (अर्थात् तू भी मृतवत ही है) ।

पातिसाह श्रवणन सुनी; जंपी मात निधान ।

मैं^१ प्रभह भुठ्यो^२ धरचौ; सुंठिन खद्दी खान ॥ १८ ॥

प्रा० पा० १ भी० (क) १२ स० ।

शब्दार्थः—जंपी=कहा । निधान=आधार, सहारा । प्रभह=गर्म । भुठ्यो=व्यर्थ । सुंठिन=सौंठ नहीं । खद्दी=खाई ।

अर्थः—बादशाह की माता कहने लगी और बादशाह सुनने लगा मैंने वृथा ही गर्भ धारण किया जो तेरे जैसा पुत्र पैदा हुआ, मानों मैंने सौंठ खाई ही नहीं । (अर्थात् पुत्र पैदा ही नहीं किया) ।

गाथा

सुनि गोरी सुरतानं, सुनि साहाव सूर सब्दानं ।

जा जीवत धरवान, भुग्गे को तास अप्रमान ॥ १९ ॥

शब्दार्थः—सुरतान=सुरतान । साहाव सूर=शाहाइदीन के योद्धा । सब्दान=सब । धरवानं=भूमिपति । भुग्गे=भोगे, उप भोग करे । तास=उसका । अप्रमानं=विशेष रूप से ।

अर्थः—बलौंची वेगमों और शाह की माता को व्यग भरी बातें, शाह और उसके सब सामंतों ने सुनीं और बादशाह सहित वे सब आवेश में आकर कहने लगे—हमारे जीते हुए कौन भूमिपति विशेष रूप से उसका भोग कर सकता है ?

अति आतुर अप्पानं; खानन पान खाइयं पान ।

हिय^१ धकि धकि^२ कपानं, दीय खवरि सच्चै फुरमानं ॥ २० ॥

प्रा० पा० १-२ घ० ।

शब्दार्थः—अप्पान=अपने सहित । खानन पान=खान पान, ताम्बूल । धकधकि=जलन । कपानं=कँपकँपी । दीय=दी । फुरमानं=फरमान ।

अर्थः—उन सबने आवेश में आतुर होकर खान-पान और ताम्बूल छोड़ दिया और हृदय में जलन होने से कापने लग गए । इसकी खबर मुसलमानों को फरमान द्वारा दी गई ।

दोहा

थान थान फुरमान फटि, वद्धन^१ हिंदु नरिंद्र ।

दै टुवाह^२ सों त्रिम्यौ, को कट्टे कवि चद्र ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ सं० । २३ पा० ।

शब्दार्थः—फरमान कवि=आदेश पर दिए गए । तरन=मारने का । वाताह=हाथ पसार कर मिलना, अपने समान ही समझना । सों=उसे । निम्नगो=रत्ना, पैदा किया । कटे=काट सकता, मार सकता ।

अर्थः—यत्र तत्र मुस्लिम राज्यों में हिंदु नरेश पृथ्वीराज को मारने के लिए शाही फरमान भेजे गए । किंतु कवि (चद) कहता है—सृष्टि के निर्माता ने जिसे अपने समान ही मान कर पैदा किया है, उसे कौन मार सकता है ?

कवित्त

नाग भूमि सिर तजै, चद छडै सुचद कल ।
 कलिन भान उगई, पथ मुक्कै सु वान छल ॥
 रघु सु ग्यान छडई, भीम छडै बल धै ।
 रूप छडि मारन^१, कद छडै हर सधै ॥
 मुक्कै जु जोग जोगिद उर^२, कर फरसु^३ छडै गुनह ।
 इत्तने धीर छडै जदपि, साहिन कस मुक्कै मनह ॥ २२ ॥

प्रा० पा० १ स० । २-३ पा० ।

शब्दार्थः—नाग=शेष नाग । कलि=कलियुग । पथ=पार्थ, अर्जुन । वान बल=बाण चलाने की शक्ति । मारन=कामदेव । कद=कद मूल, या नाश । हर-सधै=सिद्धेश्वर शिव । कर फरसु=हाथ में फरशा रखने वाले । साहि=शाह । कस=कसक । मुक्कै=छोटे ।

अर्थः—शेष नाग पृथ्वी को सिर पर रखना छोड़ दे, चन्द्रमा अपनी कला को छोड़ दे, अर्जुन बाण चलाने की शक्ति छोड़ दे, राजा रघु अपना ज्ञान छोड़ दे, भीम अपने दृढ बल को त्याग दे, कामदेव अपनी छवि को छोड़ दे, सिद्धेश्वर महादेव कद खाना (या नाश करना) छोड़ दे, योगी हृदय से योग को निकाल दे और फरसाधारी अपने क्रोध के गुण को छोड़ दे और उपर्युक्त व्यक्ति अधीर होकर अपनी विशेषताएँ छोड़ दे तो भी बादशाह अपने मन को कसक (चुभी हुई बात) को नहीं छोड़ सकता ।

दोहा

मन मुक्कै सुक्कैसु वृत, वृत गौरी सुरतान ।
 सकल सेन सज्जे त्रपति, सुनहुँ तौ कहँ प्रमान ॥ २३ ॥

शब्दार्थः—सुकैसु=शुकदेव । वृत्=प्रतिज्ञा ।

अर्थः—किसी ने कहा-गौरी शाह ! तू अपनी प्रतिज्ञा को शुकदेव की प्रतिज्ञा जैसी अटल मानता है, किन्तु तू अपनी इस बात को मन से दूर कर दे । यदि तू सुनना चाहे तो सत्य कहता हूँ कि वह हिंदू राजा बनने का नहीं है । वह अपनी सारी सेना सजाकर आवेगा ।

सुनिय मीर मीरन चवै, दिक्खि^१ सक्खि रह मोर ।

जितौ कस्स सुरतान कौ, तितौ न दिक्खू^२ तोर ॥ २४ ॥

पा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थ—चवै=कहा । दिक्खि=देखो । सक्खि=साक्षी । जितौ=जितनी । कस्स=कसक । तितौ=उतनी । दिक्खू=देखी गयी ।

अर्थः—यह बात किसी मीर ने सुन कर मीरों को साक्षी बनाते हुए कहा-सुलतान के चित्त में जैसी बात चुभी, वैसी चुभन तीक्ष्ण तोर में भी नहीं देखी गई ।

खा ततार जपै सुन्नर; हम वंदे सुविहान ।

जु कछु साह अग्या दियै; करें वनें हम्मान ॥ २५ ॥

शब्दार्थः—सुविहान=सुवहान, सुमान (खुदा) । करें वनें=करना पड़ता है । हम्मान=हमको, या सम्मान ।

अर्थः—श्रेष्ठ तत्तारखां कहने लगा-हम-सुमान (खुदा) के वंदे हैं । जो भी हुक्म वादशाह देगा, वह हमको करना लाजमी है (अर्थात् हमको उसका सम्मान करना पड़ता है) ।

खां ततार वर वेन सुनि, वै आसन अरु पान ।

जु कछु मन्त्र तुम उच्चरौ, सोइ करें सुविहान ॥ २६ ॥

शब्दार्थः—सुविहान=मुस्लिम धर्म वाले, पुसलमान ।

अर्थः—तत्तारखां के श्रेष्ठ वचन सुन कर वादशाह ने उसे आसन और ताम्बूल दिया और कहा-जैसी तुम्हारी मन्त्रणा हो, वैसा हम मुस्लिम धर्म मानने वाले करेंगे ।

कवित्त

हालीपुर पुर त्रिपुर; करौ सुविहान तेज वर ।

तो गज्जानिय सुद्ध, हांसि मंडौ जु अप्प घर ॥

अर्थ:—तत्तारण्यो करने लगा— मैं हासापुर का बगोद कर उहाँ सुभान का प्रताप फेंका दूँगा तभी मैं शुद्ध गजनी सेना का मुगिया कहलाऊँगा । हासापुर को आपके कब्जे में ले प्राऊँगा नाश-कर्ता शत्रुओं को मार कर अपने शरीर को भी वर्बाद कर दूँगा, किन्तु मार शब्दों के साथ उन (सामतों) के पैर छुड़ा कर उनका नाश कर दूँगा तभी आपसे आकर सलाम करूँगा और उसी दिन मेरा तत्तारण्य कहलाना सार्थक होगा, जब मैं प्रत्येक विपत्ती से लोहा ले पाऊँगा । चाहुआन से ऐसा युद्ध अवश्य करूँगा, मुझे सुभान की दुहाई ।

दोहा

पाहारी बल्लोच तहँ, करि सलाम सुरतान ।

हम बदे हाजुर निजरि, दें हासीपुर थान ॥ २६ ॥

शब्दार्थ:—हाजुर निजरि=आपके सामने उपस्थित हैं, आपके इशारे पर चलने वाले हैं ।

अर्थ:—उसी समय सुलतान से पहाडी बल्लौच ने भी सलाम किया और कहा — हम आपके सकेत पर चलने के लिये सामने उपस्थित हैं । हमें आप हासीपुर प्रदान कर दीजिए ।

कवित्त

सत्त बेर^१ पाहरी, तेग बधी जु आप कर ।

सब बद्धों सामत, बीटि खुरसान देउ धर ॥

आन^२ साहि साहाव, वीय^३ सन सञ्जिय अरिपय ।
 खां खुरसान ततार, खान विय सरद सु घप्पिय ॥
 चतुरंग अनी हिंदू दिसा, वर गोरी सञ्जिय सुवर ।
 जुम रत्ति^४ वीय ससि^५ वदि वर, चढ़े सेन सुविहान भर ॥ २६ ॥
 प्रा० पा० १ ३ भौं० (ख०) । २ भौं० का० । ४, ५ घ० ।

शब्दार्थः—सत्त वेर=सच्चा बदला लेने को । बीटि=घेर कर । आन=दुहाई । वीय=अपने दूसरे साथियों सहित । सरद=सीमा । घप्पिय=चल पड़े । जुम रत्ति=जुमारत्ति । वीय ससि=दूज का चंद्रमा ।

अर्थः—यह कह कर वास्तव में बदला लेने के लिए पहाड़ी वल्लोंच ने अपने हाथ से कस कर तलवार बांधी और कहा—खुरासानियों द्वारा हॉसी के भूभाग को घेर कर सब सामतों को मार दूँगा । मैं शाह की दुहाई देकर कहता हूँ कि मैं पुरुषार्थ के साथ अपने साथियों सहित तैयार हुआ हूँ । इसी तरह खुरासानखाँ, तत्तारखाँ और अन्य खान विपक्षी की सीमा की ओर चले । इस प्रकार गौरीशाह ने चतुरगिनी सेना हिंदू राजा के भूभाग की ओर रवाना की । वे सुभान धर्म को मानने वाले वीर जुमे की रात्रि को दूज के चन्द्रमा की वदना कर के चले ।

दोहा

सिंधु मुक्कि गए दूत वर, तजि गोरी सुरतान ॥
 कै त्रिधि पर्वत चंपई; अवनी उनमी भान ॥ ३० ॥

शब्दार्थः—सिंधु=नदी विशेष । त्रिधि=श्रद्धा । चंपई=दवाना । अवनी=पृथ्वी । उनमी=उठकर । मान=सूर्य ॥

अर्थः—सिंधु नदी पर पहुँचने के बाद गौरीशाह को छोड़ कर दूत मन में विचार करते हुए आगे चले कि या तो इन पर्वत-स्वरूपी यंत्रों की ओट में पृथ्वी के सूर्य पृथ्वीराज को विधाता दत्ता देगा या वह उठ कर इनके शिखर (सिर) पर चढ़ बैठेगा ।

कवित्त

कूच कूच उप्परे, खान खुरसान ततारी ।
 हसम हयगाय सूर, दुसह दुब्जन जम-कारी ॥

दल धदल सुविहान, सूर पच्छिम दिशि उठे ।
 लज सकर गल बंधि, सिंध मद नद सु तुष्टे ॥
 दिसि दुरंग अभंग हासी पुरह, सजिय सेन समुह धवै ।
 धर दहन वीर चहुआन की, हठ ततार सम्मुख धवै ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—कूच कूच=मुकाम पर मुकाम । उपरे=चल पडे । दुसह=असह्य । दजन=दुर्जन, शत्रु ।
 जमकारी=यमराज से कृत्य वाले । पच्छिम दिसि=पच्छिम देशीय । उठु =उठ पडे, उमड़ पडे । लज=
 लज्जा । मद नद=मतवालों की आवाज । धवै=चल पडे । दहन=भस्म करने । चवै=रुहने लगा ।

अर्थः—कूच पर कूच करते हुए खुरासानखां, तत्तारखा आगे बढ़ने लगे । उस
 असह्य शत्रु (गौरी) के बडे-नडे हाथी-घोड़ों के समूह और बहादुर काल-स्वरूपी
 थे । उन पश्चिम देशीय सुभान धर्म मानने वाले वीरों की सेना बादल के समान
 उमड़ रही थी । वे वीर अपने गले में लाज की जजीरें डालते हुए थे और मतवाले
 हाथियों की आवाज पर, जैसे सिंह झपटता है, उसी प्रकार वे कठिन दुर्ग हासीपुर की
 ओर सजकर झपटते हुए बढ़ रहे थे । इस प्रकार पृथ्वीराज के भूभाग को भस्म
 करने के लिए तत्तार ने हठपूर्वक प्रतिज्ञा की ।

कूच कूच उपरे, राज अग्या नन मानै ।
 सुवर जूह सुरतान, सैन चावहिमि वानै ॥
 उगन हार ज्यों प्रात, लेन उयो वर गोरी ।
 तिम रुलिग जुनि कन्न, राज रज कन्न सु जोरी ॥
 धनि धनि धनि गोरी सुवर, बल भग्गा भग्गौ न बल ।
 आसीस भजि दिल्लीपुरा, तय^२ लगगों मेवात खल ॥ ३२ ॥

प्रा० प्रा० १ भौ० (ख) । २ पा० ।

शब्दार्थः—अग्या=आज्ञा । नन=नहीं । सुवर=सबल । जूह=समूह । वानै=ध्वनि, शोभा ।
 तिम=तैसे । रुलिग=पैली । उल=चमकती हुई । कन्न=किरणें । रज कन्न=राजसी किरणें ।
 जोरी=समानता पर । बल-भग्गा=सैन्य शक्ति नष्ट होने पर । बल=आत्मबल । आसीस=हासीपुर ।
 दिल्ली पुरा=दिल्ली के अधिकृत नगर । लगगों=लगंगा ।

अर्थः—राजाज्ञा का भग करता हुआ पृथ्वीराज के भू-भाग की ओर कूच पर कूच करता हुआ, सुलतान का सबल समूह बढा और उसकी सेना चारों ओर विस्तृत होती हुई इस प्रकार शोभित दिखाई दी मानो प्रातः उदित होने वाले सूर्य-स्वरूपी गोरी शाह के उदय होने से उसकी किरण-समूह पृथ्वीराज की राजसी किरणों की समानता करने के लिये फैल गई हो। धन्य है, श्रेष्ठ गौरी शाह को जिसकी सैन्य-शक्ति के नष्ट होने पर भी आत्म-शक्ति कम न हुई। वह शक्ति हासीपुर का नाश कर दिल्ली और मेवात तक के भू-भाग की इच्छा करने लगी।

दोहा

जानि सकल गोरी सुवर, गरुअ मत्ति त्तार ।

ते भारत्य सु वृत्त-पति, पति ना लभ्यौ पार ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—गरुअ=महान, मारी। मत्ति=बुद्धि। वृत्त-पति=समूह-पति, महारथि। पति=पक्ति, प्रतना, सेना।

अर्थः—समस्त लोग गौरी और त्तार को महा-मतिमान और महाभारत के महा रथियों के समान मानते थे। उनकी सेना का पार नहीं पाया जा सकता था।

खा-त्तार सुरतान वर, नर-नाइक सुरतान ।

दस कोसैं आसी हुतें, आय सपत्ते थान ॥ ३४ ॥

मा० पा० १ का० ।

शब्दार्थः—नर-नाइक=सेनापति। कोसैं=कोस। आसी=हॉसी। सपत्ते=पहुंचे। थान=स्थान।

अर्थः—श्रेष्ठ सुलतान, त्तारखा और शाही सेनापति ने हासी से दस कोस की दूरी पर आकर पडाव किया।

कवित्त

आय सपत्ते थान, वीर आसी गिरह करे ।

सरद काल ससि मित्त, परी पारस सुमत घर ॥

वहुरि चद - वरदाय, साह लगगा कस धारिय ।

चावहिसि रू वये, मत पावै न विचारिय ॥

अर्थ:—तत्तारखान की चढ़ाई के शोरगुल से दिग्पाल हिल उठे। नक्कारों की ध्वनि प्रतिध्वनित हो उठी, और आकाश से सताल नाद (देव, ऋषि या देवांगना द्वारा) होने लगा। सेना सहित दुर्ग इस तरह घिर गया, मानों वर्षा ने घुमड़ कर शरद्-चंद्र को घेर लिया हो या आषाढ की धूम्रवर्ण धूंधल ने सूर्य को दबा दिया हो। गौरी-योद्धाओं की सुमच्चिंत सेना से दबाया हुआ दुर्ग ऐसा दोख पड़ा, मानों छेला कुनटा के चशीभून हो गया हो। जैसे अकस्मात् मृत्यु प्राणी को निगल लेती है, उसी प्रकार हाँसी दुर्ग को तत्तारी सेना ने प्रस लिया।

खा खुरसान ततार; वीय तत्तार खंधारी।
हवसी^१ रोमो खिलचि; इलचि खूरेस बुखारी ॥
सैद सैलानी सेख; वीर भट्टी मैदानो।
चौगत्ता चिमनौर, पीरजादे^२ लोहानी ॥

अनेक जात जानै सु^३ कुन; विहर^४ नेज असि प्रहि करद।

तुरकाम वोच वल्लौच वर, चिति सु पुर^५ हासी मरद ॥ ३७ ॥

पा० पा० १ २ भी०। ३ सर्व प्रति। ४ का० घ०।

शब्दार्थ:—वीय=दूषण, चौगत्ता=चकता। कुन=कौन, विहर=नेज=नेजा फहराते हुए। चिति=चिंतना की, इच्छा की।

अर्थ: खुरामानी तत्तार, खंधारी तत्तार, हवसी, रोमी, खिलची इलची, खुरैसी, बुखारी सैसानी सैयद, शेख, समतल भूमि पर रहने वाले वीर भट्टी (सिंध के रहने वाले मुसलमान आज भी अपने को भाटी कहते हैं), और चिमनौर के रहने वाले चिगता, शत्रु धारी पीर वशज आदि अनेक जाति के मुस्लिम वीरों ने पताकाएँ फहराते हुए बिनाशकारी तजवारें पकड़ों। उन तुरकों में से बहादुर वल्लौची वीर ने हाँसीपुर के विजय की इच्छा की।

दोहा

सुनि अवाज निसुरत्तिखा, खांततार खुरमान।

वेरज गुर सम्हे^६ सजिग, मचिग जुद्ध विरुमान ॥ ३८ ॥

पा० पा० १, भी०।

शब्दार्थ:—वेरज=शत्रुता। गुर=मारी, विशेष, विरुभात=उलभना।

या - पत्तार सुस्तम, गम दास्यन पय परी
 या - निम्नरत्ति पत्तार, रभ सेना पय लग्नी ॥
 खान यान खुरसान, चच चक्षु रत्ति कमानो ।
 कगुरीमे गमयह जष मडे दल भानी ॥

खिलची खुरेस भट्टी विहर, पुछ सु इन पच्छह सुनर ।
 महनग अग मारुफवा, छत्र मीस धारिय सुभर ॥ ३६ ॥

मा० पा० १ भी० ।

शब्दार्थः—नाम=नाया । दक्खिन=दाहिना । पख=पत्त, वाजू । पत्तो=पत्ती । उमै=दोनों । पग लक्खी=पैर के स्थान पर देखे गर । चच=चौच । चक्षु=चक्षु, नेत्र । कमानो=कपकर । कगुरीस=कागुरे प्रान्त का । जष मडे = जषा के स्थान पर । दल भानी = दल नाशक । विहर=चल कर । पुछ=पूछ । पच्छह=पत्त पर । सुवर=सवल । महनग अग=महान पिट के स्थान पर ।

अर्थः—युद्धार्थ तत्पर हुए मुस्लिम-यौद्धाओं ने पत्ती की आकृति के समान व्यूह-रचना की । तत्तारखा और सुस्तमखा दाये-गाये स्थान पर, निम्नरत्तिखा और पहाडखा इन दोनों की सेना पैरों के स्थान पर, खानों का शिरोमणि और खुरासान कसकर चौच और चक्षुओं के स्थान पर दल-नाशक कागुरा प्रान्तीय और गक्खर वोर दोनों जघाओं के स्थान पर, खिलची, खुरेस और भट्टी चल कर श्रेष्ठ पूछ के स्थान पर हुए । महान अग धारी मारुफवा योद्धा ने पिट के स्थान पर होकर छत्र धारण कर सेनापती का स्थान ग्रहण किया ।

सुवर सूर सामत, वीर विरुम्माइ सु धाए ।
 नखि कोट गढ ओट जोट क्किपाट डहाए ॥
 सत छुट्ट्यौ सामत, राम बुल्यौ रघुवसी ।
 रे अभग सामत, साहि वधो वल गसी ॥

विना नृपति जो बंध तो, किन्ती चावहिसि चलै ।

सार धार तन खंडिते, वीर भारत्य न डुल्लै ॥ ४० ॥

शब्दार्थः—सुवार=उस समय । नखि=छोड़ कर । कोट=दीवार । श्रोट=आइ । विप्याट=कपाट, किंवाइ सत छुत्र्यौ=साहस छूट गया । बुल्यौ=कहा । अमंग=अखंड । साहि=बादशाह को । वल गंसी=शक्ति द्वारा प्रसित करके । वध=नाश लें । किन्ती=कीर्ति । सार धार=लौहधार, शस्त्रधारा । भारत्य=युद्ध से । डुल्लै=विचलित हों ।

अर्थः—उसी समय बहादुर सामंत दीवार की आड़को छोड़ते और दुर्ग के किंवाड़ों को तोड़ते हुए बाहर आकर शत्रु-योद्धाओं से उलझ पड़े । किंतु अपार शाही सेना को देख और सामंतों के साहस को छूटते हुए देख कर रघुवशी रामराय कहने लगा, हे अभग सामंतों ! वल पूर्वक शाह को पकड़ लेना चाहिये । यदि हम विना राजा के होते हुए शाह को पकड़ लेंगे तो हमारी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल जायगी । वीर पुरुष युद्ध में शस्त्र धार से अपने शरीर को खड २ करा देते हैं परंतु विचलित नहीं होते ।

विहसि राव चामड, कडै रघुवसराइ वर ।

तुच्छ सेन सामंत, साहि गोरी अभग भर ॥

दंति घात आघात, खग मगह कटारिय ।

गुरज वीर गोरीस, सेन भंमरि भर भारिय ॥

महनसी मेर मारु मरद, सरद तेज ससि मुख खुल्यौ ।

पाहार वीर तौअर^१ उतंग, सार धार ना धर डुल्यौ ॥ ४१ ॥

प्रा० पा० १ भी

शब्दार्थः—विहसि=हँसकर । दंति=हाथी । खग-मगह=तलवार के रास्ते पर । गुरज=गदा । उतंग=ऊँचा ।

अर्थः—तब हसकर चामडराय ने कहा—रघुवंशराय ठीक कहते हैं । हम सामंतों की अल्प सेना है । उधर गौरी सेना अभग है । युद्ध-मार्ग में हाथियों के दन्त प्रहार, योद्धाओं के खड्ग, कटारियों और गदाओं के प्रहार हो रहे हैं । इतने में ऐसी विकट सेना के टुकड़े करने के लिये भारी योद्धा सुमेरु के समान महनसी, जिसका विरुद्ध मारु

मरद है, ऐसे उस वीर ने चन्द्र की काति जैसे चमचमाते हुए मङ्ग के फसे जो खोला । इसी प्रकार उत्तंग वीर पट्टारराय तेंवर भी युद्ध स्थल में शस्त्र-धार से विचलित नहीं हुआ ।

भिरिग सूर सामत, लुत्थि आहुट्टि लुत्थि पर ।

सघन घाड़, आवृत्त, मेर^१ तत्तार ढोड वर ॥

चढि हॉसीपुर सूर, खेत दु द्यौ न दीन दुहु ।

उतरि मेर असि वरन, गहन जपे न सिद्ध कहु ॥

वहु^२ खग्ग सूर सामन्त रन, भोरी ग्वान खुरेस परि ।

मिलि मिच्छ^३ एकोन किहि, रहे सेन ठडडे^४ विहरि ॥ ४२ ॥

प्रा० पा० १-३ भी, पा० का० घ० । २ स० । ४ भी ।

शब्दार्थ.—भिरिग=भिड़ पड़े । लुत्थि=लोथें, शव । आहुट्टि=लगगई । आवृत्त=लगातार । मेर=शिखर, पहाड़ । दु द्यौ=खोना । असि वरन=श्रेष्ठ तलवार खने वाले । गहन=घेरना । सिद्ध=सफल । कहु=कोई भी । बहु=चलाया, प्रहार किया । भोरी=भोली, डोली । मिलि=मिल पाये । मिच्छ-मिच्छ=म्लेच्छ से म्लेच्छ । एकोन किहि=एक दूसरे से एकता न कर सके । रहे सेन=सेना के खेमा में ही । ठडडे=रुके, विथाम पाया । विहरि=चलकर, भगकर ।

अर्थ:—और बहादुर सामत भी भिड़ पड़े । जिससे शत्रुओं के ढेर लग गए । मेरु तुल्य अटल बने हुए श्रेष्ठ तत्तार के भी कई घाव लगे । शाम होने पर बहादुर सामत पुन दुर्ग में प्रविष्ट होगए । दोनों दीन के वीर रण क्षेत्र में मृत और घायल वीरों को सम्हाल नहीं पाए । श्रेष्ठ खड्गधारी मुस्लिम योद्धा दुर्ग की पहाड़ी से लौट गए । दुर्ग को घेरने में सफल होने की बात किसी विपत्ती के मुँह से न निकल सकी । युद्धस्थल में बहादुर सामतों के खड्ग-प्रहार से खुरेसखान भी धरा-शाई होगया जिससे भोली में उठाया गया । मुसलमान योद्धा ऐसे भागे कि एक दूसरे की सुध बुध न ले सकें और वे अपनी सेना के पड़ाव (खेमे) पर ही आकर विश्राम पा सके ।

समरिन^१ एग ततार, वडिज नीसान खे न^२ रहि ।

हय गय नर^३ विच्छ रहि, रुद्र भूमी^४ सु वीर वहि ॥

निसचर वीर उभार, भूत प्रेतह उच्छ्वेच सुर ।

वज्जि घाइ हकि^५ उठत; नचै चौसठ्ठि रंग वर ॥

नारद नद नंदी सु वर; वीरमद्र सुर ज्ञान वर ।

इन भंति निसा वर मुदरी; वर हर-हर वज्जे सु^६ सुर ॥ ४३ ॥ '

प्रा० पा० १ भी० पा० का घ० । २ भी० घ० । ३ भी० घ० पा० । ४ सर्व० ।

५, ६ भी० घ० पा० का० । ६ भी० घ० ।

शब्दार्थः—समरिन=युद्ध कर्त्ता । खे न=लय से वचा । रुद्र=शकर । वीर=वीर रस ! वहि=विचरण करने लगे, प्रवाहित हुआ । निसचर=निशिचर, राक्षस, भूत, प्रेत । वीर=वावन ही वीर । उमार=उगड़ पड़े । उच्छ्वेच सुर=उत्साह-स्वर । वज्जि घाइ=वज्र तुल्य घाव । हकि उठत=उठ कर चलने लगे । चौसठ्ठि=चौसठ योगिनियों । रम=रमा । नद=नाद, आवाज । नदी=नदीगण, वृषभ । मति=माति, तरह । मुदरी=मोद प्रद । वज्जे=वज्र घोषणा ।

अर्थः—युद्ध-कर्त्ता-विपक्षियों पर नकारे वज्रवाकर तत्तारखों मारा न जाकर घरोशाई हुआ । युद्ध-स्थल में हाथी, घोड़े और वीरों का विच्छोह हो गया । उस श्रेष्ठ भूमि में शिव भी दीखाई पड़े और वीर रस भी प्रवाहित हो गया । राक्षस और वावन ही वीर उमड़ पड़े । भूत-प्रेतों के उत्साह के स्वर सुनाई देने लगे, वज्र तुल्य शस्त्रों से घायल वीर पड़े हुए उठ कर चञ्जने लगे, चौसठ योगिनियों और रंभा श्रेष्ठ ढग से नृत्य करने लगीं, वीरभद्र को आवाज के साथ २ अप्सराओं के या देवांगनाओं के श्रेष्ठ गीत सुनाई दिये । इस प्रकार वह श्रेष्ठ रात्रि वीरों को प्रसन्न करने वाली बीती और प्रात काल समीप आने पर वीर वज्र घोषणा के साथ हर २ करने लगे ।

वर खीची अचलेस, गरुअ गोयंद महनसी ।

उद्दिग वाह पगार, नरां^१ नरसिंघ समरसी ॥

उभै वध मोरीय, राव राणिग गिरेसं ।

देवक्रन्न साखुलौ, जुद्ध पारत्य विसेसं ॥

सलखान भीम पुंडोर भर, जैन पवार सु वगरी ।

चामडराड कनकू सुभर, रघुवंसी^२ सिर पघरी ॥ ४४ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—गरुप्र=वडा । नर=नरनाह कन्ह । समरसी=गुर में सिंह के समान । नरसिंह=नरसिंह चाहवान । गिरेस=पहाड़ी प्रदेश का, या गिरिराज तुल्य । पारल=पार्थ, यजुंन । सतामान=गतमानो या स्वयं सलख । वग्गरी=वग्गरी गोत्र का प्रमार क्षत्री । वनकू=वनकराय । पग्गी=पग्गी ।

अर्थः—कवि कहता है — श्रेष्ठ अचलेम खीची, वडा गोविंदराय, महनमी, उद्दिग पगार, नरनाह कन्ह । युद्ध में सिंह के समान वीर नरसिंह, दोनो भ्राता वीर मोरी, पहाडी भूमि का स्वामी या गिरिराज तुल्य रानिगराय, युद्ध में पार्थ के समान विशेषता रखने वाला देवकर्ण साखला, सलखानी भोम (या सलख और भीम), पुण्डीर योद्धा, जैत्र प्रमार, श्रेष्ठ वग्गरी, चामडराय, श्रेष्ठ योद्धा कनकराय और रघुवशराय के मिर पर ही पगडी अच्छी शोभा पाती है ।

दोहा

प्रात उदित घायन मिले, प्रात घाइ घरियार ।

रोस लगे हिंदू तुरक, मनु वज्जत कठतार ॥ ४५ ॥

शब्दार्थः—घायन=वार करने । घाइ=डका, आघात । रोस=गुस्ता । मनु=मानों । वज्जत=वजते । कठतार=कुठाराघात ।

अर्थः—उधर सुवह घडियाल पर डका पडा और उधर प्रात होते ही, एक-दूसरे पर वार करने के लिये वीर सामने हो गए । क्रोध में आये हुए वे हिन्दु और तुरुक इस प्रकार प्रहार करने लगे, मानों कुठाराघात होरहा हो ।

कवित्त

अद्ध सेन अध परिग, परिग दती सत इक्क^१ ।

अयुत अद्ध^२ अस परिग, पयह को गनै असक^३ ॥

दमत दून वानेत, घाय मौरी करि लिन्ने ।

पच्छ^४ पेंड पचाम, सेन भग्गा तिन दिन्नै ॥

पछ पु छ खान आलील तय, अति आतुर असिवर खरिय ।

भग्गौ न मीर मो भीर सुनि, अव भनो हिंदू ररिय ॥४६॥

प्रा० पा० १ स० । २ घ० भों० का० पा० । ३, ४ पा० ।

शब्दार्थः—अद्ध=आधा । अध=नीचे । दती=दायी । अयुत=दस हजार की संख्या । अस=घोड़े । पयह=पेदल । असक=असख्य । दमत दून=बीसों । घाय=घायल किए हुए । पच्छ=पीछे । पेंड=

कदम । पंचास=पच्चास । भग्ना=भगा । तिन=उस । दिन्ने=दिए, दिन । पछ पुंछ=व्यूह रचना में पूछ के स्थान पर । आलील=आलील खाँ । अखिवर=श्रेष्ठ घोड़े । खरिय=बढाया । मीर=सहायता । मंजो=नष्ट करदों, दूर करदों । ररिय=रलिय, उत्साह, उमग ।

अर्थ:—उस समय शाहीदल आधा घराशाई हो गया, एक सौ हाथी, ५ सहस्त्र घोड़े भी लुढक गए, और असंख्य पैदल सेना घराशाई होगई जिन की गिनती नहीं हो सकती । वीसों त्राण चलाने वाले (धनुष धारी) घायल होगये । जिससे वे भोली मे चढाये गए । उन सामन्तो ने शाही सेना को ५० कदम पीछे हटा कर भगा दिया । तब व्यूह रचना मे शाही सेना के पूछ के स्थान पर पीछे आलील खा था । उसने अपने श्रेष्ठ घोड़े को अधिक शीघ्रता पूर्वक वढाते हुए कहा—हे मीरों सुनो । मैं तुम्हारी सहायता पर आगया हूँ, भागो मत । अब मैं हिन्दुओं के उत्साह को भंग कर दू गा ।

सुनि सामंत निसान, खान आलील^१ उभंभरि ।

मनहु अरिग घन घृत्त^२; आय डहूर सम धरि ॥

हू गोरी घर कोट, राज अड्डो चहुआनी ।

मो उभमै कुन सूर, भोमि विलसै सुलतानी^३ ॥

इह कहिरु सेन अगगो^४ धरिय; जाय सूर मुख खगग्यौ ।

तिन सार मार सामत दल, पच डोरि पच्छो ग्यौ^५ ॥ ४७ ॥

पा० पा० १ भी० । २ पा० का० । ३ ० ४ पा० । ५ भी० पा० ।

शब्दार्थ:—उभंभरि=उभर पडा, क्रोध में आगया, घन=विशेष, डहूर=डडा, लकड़ियें । समधरि=साथ ही रखदी । भोमि=भूमि । अगगोधरिय=आगे किया । खगग्यौ=खगने लगा, मारकाट करने लगा । तिन=उमकी । सारमार=लोहे की मार, शस्त्राघात से । डोरी=जरीव । पच्छो=पीछे ।

अर्थ:—सामन्तों के नक्कारे सुनकर अलीलखा, इस प्रकार क्रोध में आगया, मानो प्रज्वलित अग्नि में विशेष घृत के साथ लकड़ियों का ढेर आ पडा हो और वह कहने लगा, मैं चाहुआन-नरेश को रोकने के लिए गोरी शाह के भूभाग की हड़ दीवार के स्वरूप हू । मेरे रहते ऐमा कौन वहादुर है जो सुलतान के भूभाग का उपभोग कर सके । यह कह कर उसने सेना को आगे किया और आप स्वयं वहादुरो का सामना कर मारकाट करने लगा । उसके शस्त्राघात से सामन्ती-सेना पाच डोरी (जरीव) पीछे हट गई ।

दोहा

तमकि सूर सामत तत्र, भुकि लग्गे फिरि गगिग ।
लपट भपट पेसी वडै, ज्यो वन जज्जर पगिग ॥ ४८ ॥

शब्दार्थः—तमकि=तमक कर । जज्जर=काल । गगिग=गगिनि, जाला ।

अर्थः—तब क्रोध मे आकर बहादुर सामत टेढ़े होकर फिर से खड्ग चलाने लगे ।
उन चलती हुई खड्गों की सतत चमचमाहट पेसी दिखाई देने लगी, मानो वन
मे काल-ज्वाला फैल रही हो ।

कवित्त

भइय जित्ति सामत, सेन भग्गी^१ सुरतानह^२ ।
आप सूर सब कुसल, खित्ति रक्खी चहुआनह^३ ॥
उभै सहस परि मीर, सहस दस^४ वाज प्रमान ।
परिय दंति सत एक, करिय अच्छरि वर गान ॥

जै जया सह आयास हुआ, धाव सूर भोरी धरिय ।
वित्तियौ कलह भारत्य जिम, कही चद छदह करिय ॥ ४९ ॥

ग्रा० पा० १ स० । २, ३, ४ भी० ।

शब्दार्थः—भइय=हुई । जित्ति=जीत, विजय । भग्गी=भग गई । अप्प=अर्पित कर के । कुशल=कुशलता । खित्ति=पृथ्वी । उभै=दो । परि=पडे । वाज=घोड़े । प्रमान=प्रमाण, अनुमान । सत=सौ । अच्छरि=अक्षरा । वर-गान=श्रेष्ठ गायन । जै जया सह=जय जय ध्वनि । आयास=आकाश । धाव=धाव लगे हुए, धायल । वित्तियौ=जीता, समाप्त हुआ । कलह=युद्ध । जिम=जैसे ।

अर्थः—शाही दल भाग गया और सामतों की विजय हुई । उन सब बहादुर सामतों ने अपने आराम को रण क्षेत्र के अर्पित कर चाहुआन की पृथ्वी को सुरक्षित रख लिया । उस युद्ध मे दो सहस्र मीर, दस सहस्र घोड़े और एक सौ हाथी धराशाई हुए । अक्षराओं के श्रेष्ठ गान के साथ ही आकाश मडल से जय जय की ध्वनि हो गई । धायल वीर भोलियों में उठाए गए । यह युद्ध महाभारत के समान ही समाप्त हुआ । कवि (चद) कहता है— इस युद्ध का मैंने यह वर्णन छदो बद्ध किया ।

हाँसी द्वितीय युद्ध

(समय ५०)

कवित्त

हसम हयगय लुट्टि, लुट्टि पक्खर रखतान ।
तत्तारी खुरसान, हाम भग्गी सुरतानं ॥
सुनि भग्गी^१ सब सेन, हाय करि पिट्टि^२ सु हत्थं ।
पुच्छि खवरि वर दूत, कहिय भारथ वत^३ कत्थं ॥
रगतैत नैन साहाव सजि, पैगंवर महमुद^४ भजि ।
फिरि सब्यो सेन भर" सुचित करि, हांसीपुर जीतन सु कजि ॥ १ ॥

ग्रा० पा० १ भी० । २ सर्व प्रति । ३ पा० । ४ भी० का० घ० । ५ पा० ।

शब्दार्थः—हसम=मेना । पक्खर=पाखरों । रखतान=रसद । हाम=मरोसा, विश्वास ।
पिट्टि=पीटे । मारत=युद्ध । वत=वात । रगतैत=रक्त । साहाव=शहाबुद्दीन । महमुद=मुहम्मद ।
भजि=स्मरण करके । भर=योद्धा । सुचित=सावधान । कजि=लिए ।

अर्थः—बड़े बड़े हाथी-घोड़े पाखरों और रसद सामान हिंदू वीरों ने शाही सेना से लूट लिया । यह सुन कर वादशाह के दिल से तत्तारी और खुरासानी वीरों का विश्वास उठ गया । समस्त शाही सेना के पराजित होकर भाग जाने की सूचना पाकर शाह ने अपने हाथ पर हाथ मार कर दुःख प्रकट किया । शाह ने दूतों से पूछा तो उन्होंने युद्ध सम्बन्धी सब बातें कह सुनाई । इस पर शहाबुद्दीन के नेत्र लाल २ हो गए और उसने पैगम्बर मुहम्मद का स्मरण कर हांसीपुर को विजय करने के लिए सब वीरों को सावधान कर पुन सेना एकत्रित की ।

साहवदी^१ सुरतान, समुद व्यूह रचि धाइय ।
अष्ट सेन रचि अष्ट, इष्ट करि सेन बनाइय ॥
इक^२ लख सारद, सुभर अमवार ति साज ।
दती पति विसाल, अरिग^३ सज्जे अगि वाज ॥

पावस यान मानो पगटि, दिस दिमान नीमान टिय ।
आसी अचित इक दौर करि पानि सुभर घन घेरि किय ॥ २ ॥

प्रा० पा० १ ४ भी० २, ३ पा० ५ प० भी० ।

शब्दार्थः—समुद्र=समद्र । व्यूह=युद्ध । इष्ट स्मरण कर, दमा कर । गारर=शरा
धारी । ती=उसने । साज=सजाया । दती=इश्वरी । पति=पति । अगि=आगे । राज=घोरे ।
पावस=वर्षा । दिस दिमान=दमो दिशाओं । नीमान=नक्कारे निशान । आसी=आभीपर सीपर ।
अचित=अचानक ।

अर्थः—बादशाह शहाबुद्दीन अपनी सेना को समुद्र व्यूह के रूप में जमा कर बढ़ा ।
उसने अपने इष्ट का स्मरण कर आठ सेनापति नियुक्त किये (अथवा न सकेत
करके) और सेना की न टुकड़ियों की । एक लाख शस्त्रधारी वीर, प्रमुख योद्धा और
अश्वरोहियों की उसने सजाए । सब से आगे विशाल हाथिया की पक्ति और
उसके बाद अश्वारोही सेना नियुक्त की गई । दमा दिशाओं में नक्कारों की ध्वनि
ने पावस के प्रकट होने का भ्रम पैदा कर दिया । इस प्रकार मुस्लिम योद्धाओं ने
अचानक तीव्रता के साथ एक बार पुन आकर हॉसो दुर्गको घेर लिया ।

दोहा

घेरि सुभर साहावदी, कहिय वत्त चर चाह ।
कै भुमभट्टे बुभभहु सपरि, (कै) निकरौ धम्म दुआरु ॥ ३ ॥

प्रा० पा० १ पा० ।

शब्दार्थः—चर=दूत । चाह=य ४ । भुमभट्टे=युद्ध करो । बुभभहु=पूछो । सपरि=परिवार ।
दुआरु=द्वार ।

अर्थः— इस प्रकार पृथ्वीराज के सामंतों को घेर कर शहाबुद्दीन ने दूतों द्वारा कह-
लाया कि तुम अपने साथियों में पूछ कर या नो युद्ध के लिए तैयार हो जाओ, नहीं
तो धर्म-द्वार के रास्ते (प्रत्येक दुर्ग में एक छोटा दरवज्जा रक्खा जाता था, जिसमें
आत्म समर्पण करने वाले धर्म की शपथ लेकर निकला करते थे जिसे धर्म द्वार कहते
थे) होकर निकल जाओ ।

कवित्त

सुभर सूर सामंत, वीर बिरुम्माइ सु घाप ।

बड़ गुब्जर रा राम, राइ रावत्त सब^१ आए ॥

सम दुरग सो सीस, वीर लोकिग असमानं ॥

तमकि^२ तमकि भर सुभर, वीर वीरं बिरुम्मान ॥

कूरंभराव पञ्जून दे, गयौ हरख सामंत वर ।

तम पखै मरन दीजै नहीं, मरहु तुंम्ह जिन परि^३ सु धर ॥ ४ ॥

प्रा० पा० १ पा० का० घ० । २ भी० । ३ पा० घ० भी० का० ।

शब्दार्थः—सुभर=श्रेष्ठ । बिरुम्माए=उलम्माए । सम=से । दुरंग=दुर्ग, किला । लोकिग=विलोका, देखा । असमान=विषम । तमकिर=आवेश में आकर । बिरुम्मान=उलम्मा पड़े । तम=तमोगुण । पखै=पक्ष में । मरन दीजै=प्राण देना । जिन परि=जिन पर अपने पर ।

अर्थः—यह संदेश पाकर उस समय श्रेष्ठ बहादुर सामंत गणों में उत्तमन पैदा हो गई और बड़गूजर रामराय आदि सब राजवशी एकत्रित हुए । दुर्ग पर चढ़ वे शाही वीरों को देखने लगे और आवेश में आकर प्रत्येक वीर युद्ध के वाद-विवाद में उत्तम पड़े । यह देख श्रेष्ठ सामंत कूर्मराज पञ्जून-देव खुश होकर कहने लगा—हम पर पृथ्वी का भार है । इसलिए मरना तो है, ही किंतु आपको केवल तमोगुण के वश में होकर प्राण नहीं देना चाहिए ।

सुनिय मत कूरंभ, मतौ जानहि सु मरन वर ।

जीवन मत जानत, सामग्रम जाइ धम्म नर ॥

हम वीरा रस घञ्ज, जोग जीतन सिर वंधी ।

हम अभज अरि भज, मत जानै जस संधी ॥

रुक्कयौ हस पंजर सु पँच^१, सो पजर भंजहि ति भिरि^२ ।

जानियै जगत तनु तिनुक वर, अरि वंधन वधेति फिरि ॥ ५ ॥

प्रा० पा० १ भी० पा० घ० का० । २ भी० ।

शब्दार्थः—मत=मंत्रणा । मतौ=मंत्रणा । मत=मंत्रणा । जानंत=जानते है । सामग्रम=स्वामी-धर्म । जाइ=जा । घञ्ज=घजा । अमंज=अमग । मज=मग, नाश । जस=यश । सधि=सांधना, जोड़ना । रुक्कयो=रोक रक्खा है, रुका है । हस=भाण पखेरू । पजर=शरीर । पच=पंचतत्त्व ।

भजहि=नष्ट कर सकते हैं। ति=उसको। गिरि=भिन्नार। तस=शरीर। तिरुफ-तृण प। य।
वधन=घेरा। वधेति=घिर चुके। फिरि=पन, फिर।

अर्थः—मरने की श्रेष्ठ मंत्रणा जानने वाले कूर्मराय की बात सुनी गई। वह जीवन-
विषयक, स्वामी धर्म-विषयक और मनुष्य-धर्म-विषयक मंत्रणा जानने वाला वीर
कहने लगा-हम योगियों से विजय प्राप्त करने वालों ने (योगी योग द्वारा मारा
जीवन बिता कर मोक्ष प्राप्त करते हैं, वही मोक्ष वीर क्षण मात्र में प्राप्त कर लेता है
इसी लिए वह बड़ा है)। वीर-रस की पताका सिर से बाध रक्खी है, हम अडिग
शत्रुओं का नाश करने वाले और यश-संग्रह की बात जानने वाले हैं। पच तत्वों
के पिंजरे में हमारा यह प्राण-पखेरू निवास करता है। इस पिंजरे को शत्रुओं से
लड कर नष्ट कर सकते हैं। हम संसार को और शरीर को तृण तुल्य समझने
वाले हैं, तब फिर देखना ही क्या है जबकि हम शत्रुओं के घेरे में घिर चुके हैं ?

सुबर वीर सामत, मत' लग्गे विरुम्भान ।

रा चामंड जैतसी, रान बड गुज्जर दान ॥

उदिग बाह पग्गार, कनक कूरभ पजून ।

खीची रा परसग, चन्द पुडीर स कन्ह ॥

महनंग मेर मोरी महन^२, दोऊ वीर बग्गारि सलख ।

देव क्रन कुँअर अल्हन सुबर, लखिय सोभ भुज बर लिख ॥ ६ ॥

प्रा० पा० १ पा० । २ का० भी पा० घ० ।

शब्दार्थः—दान=दान सहित, मद सहित, मतवाला

महन=महान ।

अर्थः—फिर भी वीर श्रेष्ठ सामत ।

मतवाला बड़गुज्जर रामराय, उदिग प

खीची, चन्द पुण्डीर, नर-नाहर कूर्म

राय, सलख, देवकर्ण और श्रेष्ठ शपथ

दशा भी व्याकुल ही दिखा

दोहा

निसि चिंता सामंत सह, उद्दिग^१ वाह^२ पगार^३ ।

मात वीर^४ अस्तुति करै, सत्त सुं मगन हार ॥ ७ ॥

ग्रा० पा० १ भी० का० । २, ४ भी० । ३ का० भी० ।

शब्दार्थः—चिंता=चिंतित । वाह=वाहु । मात=देवी । वीर=वावन वीर । सत्त=साहस । मंगन-हार=याचना करना ।

अर्थः—उस रात्रि को सब सामंत चिंता ग्रस्त रहे और उद्दिग पगार ने देवी और वावन ही वीरों की स्तुति कर साहस की याचना की ।

फुट्टि सरोवर नीर गय, अब किं^१ वंधै पालि ।

तौ मन सत्त^२ पयान किय, इह भावी इह कालि ॥ ८ ॥

ग्रा० पा० १ भी० पा० घ० । २ भी० पा० ।

शब्दार्थ—फुट्टि=फूट गया । किं=कैसे -क्या । पयान किय=चला गया । इह=यही । भावी=भविष्य । कालि=समय ।

अर्थः—देवी का उत्तर उसको मिला (स्वप्न द्वारा या साक्षात् किसी प्रकार से) कि तालाब फूट गया है और पानी बह चुका है, अब पाल बाधना बृथा है । जब तेरी हिम्मत जाती रही तो समझ लेना चाहिये कि इस समय यही भविष्य होने वाला है ।

कवित्त

निड्ढर वर हरिसिंघ^१, वीर भोंहा भर रूप ।

वरसिंह रु हरसिंघ, गरुअ गौयद अनूपं ॥

रा - बड़ गुज्जर^२ राम, बली वंभन रस वीरं^३ ।

दाहिम्मो नरसिंघ, गौर सगगर रन धीर ॥

वालुकक^४ वीर सारंगदे, दई देव दुज्जन दहन ।

सुलतान सेन समुह मिलै, गात जु हाँसीपुर गहन ॥ ९ ॥

ग्रा० पा० १ स० । २ पा० । ३, ४ भी० ।

शब्दार्थः—भर=भट, सामंत । गरुअ=बड़ा । वालुकक=वाल भूमि काठियावाड़ को कहते हैं इसीलिए चालुक्यों को वालुकक भी लिखा है, यह बलमेश्वर का विकृत रूप है । दई=दी,

दिए। दुष्जन=दुर्जन। दरन=जलाना। समट=सम्पन्न, सामने। मिले=मिला गए, शिष्ट गए। गहन=महन, घेरा।

अर्थ:—निड्डुरराय, श्रेष्ठ वीर हरिसिंह (हरिराय), सामंतों का शोभा स्वरूपी वीर भौहा, वरसिंह, हरसिंह, चड़ा गोविंदराय, रामराय चङ्गुज्जर, वीर रस रूपी बलवान ब्रह्मराय (या कोई ब्रह्म-क्षत्रिय चालुक्य), नरसिंह दाहिमा, युद्ध में धैर्य रखने वाला सगर गौड और वीर सारगदेव चालुक्य (चालुक्य) आदि देव-स्वरूपी वीरों ने दुर्जनों को दग्ध कर दिया और हॉसीपुर के घिरे जाने पर उन्होंने सुलतान की सेना का सामना किया।

उद्दिग गयौ निकरै, सुतौ मरनह तें डरयौ।

समर सूर निकरै, सु फुनि अलंगे उत्तरयौ ॥

चवड-रा निकरै, सुहड सावला सहितौ।

गोयँद रा गहिलौत, सु फुनि निकरै विगुतौ ॥

साखुलौ मूर भूँहा^१ सु तन^२, कलू कथ भारथ करै।

इत्तने राव गय^३ निकरे, देवराव क्यौं निकरै ॥ १० ॥

प्रा० पा० १ का०। २, ३ सं०।

शब्दार्थ:—सुतौ=वह तो। समर=युद्ध। फुनि=पुनि, फिर। अलंगे=दिशा। उत्तरयौ=पार कर गए। सुहड=सुमर। सहितौ=सहित। विगुतौ=भुला कर। भूँहा=भौहा, चदला। सु=श्रेष्ठ। तन=शरीर। कल=कलियुग। कथ=ख्याति। भारथ करै=युद्ध करै। गय=गए।

अर्थ:—उद्दिग पगार का युद्ध खोड़कर निकलना मृत्यु-भय का कारण ही है और जो यौद्धा निकल गए, वे दिशा कौ पार कर गए। इसी प्रकार चामडराय, सावला-सूर, सुभट सहित निकल गया। पश्चात् गोविंदराय गहिलौत अपने को भुलाकर निकल गया। इतने सामंतों के निकलने पर भी साबला सूर और श्रेष्ठ शरीर वाला भौहा तथा देवराज कैसे निकल सकते थे, उन्हें तो इस कलियुग में युद्ध-ख्याति प्राप्त करनी थी।

० सामत अभग, मेर धुअ मडल जाम।

सेस सीस रवि चद, भूँअ^१ मडल अभिराम ॥

एउ टरें कोउ बेर, जोग जुग अंतर आयौ ।

अटल एक सामत, जुद्ध जोगा रस पायौ ॥

दैवान देव गति अल्लेख^२ है, नन गुमान कोइ कर सकै ।

एकैक मत्त चूकै सबै, जित्ति कोइ जाइन सकै ॥ ११ ॥

प्रा० पा० १ भी०, घ० पा० का० । २ सर्व प्रति ।

शब्दार्थः—अमग=अखंड, नाश न होने वाला । मेर=सुमेरु । ध्रुव=ध्रुव । मंडल=संसार । जाम=जन्मे सेस=शेषनाग । भूअ=भुअ, पृथ्वी । अमिरम=अभिमाम, सुदर ए^२=यह भी । जोग=संयोग । जुग=युग । अंतर=फर्क । जुद्ध जोगा=युद्ध के लयक अल्लेख=उल्लंघन न करने योग्य । मन=नहीं । गुमन=अभिमाम । एकैक=एक २ । मत्त=मत्रणा । चूकै=भूल भी । जित्ति=जीत ।

अर्थः—दुर्ग से निकल जाने वाले वे सामंत अडग वीर और सुमेरु तथा ध्रुव के समान अटल इम भू मंडल पर पैदा हुए थे । शेषनाग के अमर पर पृथ्वी है, उस पर प्रकाशित होने वाले श्रेष्ठ सूर्य और चंद्रमा भी समय का फेर आने से किसी समय टलते रहे हैं । विचलित हुए वीरों में से एक सामंत ने (देवराज या देव कर्ण) ही युद्ध के योग्य रम (वीर रम) प्राप्त किया । देवताओं की गति के विपरीत कोई नहीं कर सकता, किन्हीं को अपनी बात पर अभिमाम नहीं करना चाहिए । दैविक गति पर विजय नहीं पाई जा सकती, किन्हीं न किसी जगह (किसी २ बात में) सभीने भूल की है ।

राम चुक्कि अग हेम^१, सीय लिय रावन चुक्कौ^२ ।

हनुअ वत्त कहिरि प्रव्व, भरथ चुक्कवि सर मुक्कौ^३ ॥

विक्रम जीव जतन्न, कग आमिप मुख मडिय ।

इन्द्र अहल्या काज, सहस भग काया भंडिय^४ ॥

नलराय दमती कारणै, और नाम जानौ न उन ।

सामत दोप लगयो इतौ, मतौ इक्क^५ चुक्यौ न कुन ॥ १२ ॥

प्रा० पा० १ सर्व० । २-३ ५ पा० । ४ भी० का० घ० पा० ।

शब्दार्थः—चुक्कवि=भूल की । हेम=सोना । हनुअ=हनुमान । प्रव्व=गर्व । भरथ=भरत, राम के के प्राता । चुक्कवि=भूल कर सर=बाण । मुक्कौ=धोष । विक्रम=विक्रमादित्य । जतन्न=जन्म । मग=काग । आमिप=मास सहस=सहस्र । मग=योनि । मडिय=अपवाद । दमयती मंत्रणा बुद्धि । कुन=कौन । उन=उसने ।

अर्थ:—राम ने स्वयं भग की 'प्राणोत्' वरत राम ने मोक्ष का दरवाजा करते, हनुमान ने राम के सामने गर्व की बात करते, भग ने हनुमान पर तार बनाते, आयुष्य वरत के लिए विष्णु ने रामा गण माने भूल ही । इसी प्रकार इन्द्र ने 'प्राहल्य' से स्वयं करने से भूल कर के मनुष्य भग शरीर पर प्राप्त कर अपना अपना करवाया । मनी-मनी जो कभी पर-पुरुष का नाम तक नहीं जानती थी स्वयं को पर नन न भूल ही । इस लिए सामंतों को ही क्रिम वान का दाप दिया जा सकता है जब कि ऐसे ऐसे महान पुरुषों की बुद्धि से भी भूल पाई जाती है ('पर्याप्त क्रिमसे भूल नहीं हुई है') ।

साहि मलिक साहाव-दीन जिहि द्वारे वदिय ।

जेन द्वार निक्करौ, जेन निक्करे न कदिय ॥

मिर तुट्टे 'भडि' पडहु', सहित धर जाह सरीरह ।

हुँ स भीछ पहुँचे न, तनो निकलक सरीरह ॥

साखुलौ सूर सामत^५ बल, देवराव कटि नडि^६ मरै ।

ता नथि पुत्त बापह तनौ, धम्म द्वार होइ निक्करै ॥१३॥

प्रा० पा० १, २, ३ पा० का० । ४, ५ भी० । ६ भी० पा० ।

शब्दार्थ:—साहि मलिक=मुल्क का बादशाह । साहाव दीन=शहाबुदीन । जिहि=जिस । द्वारै=द्वार, धर्म द्वार । वदिय=बता, हट किया, वाद किया । जेन=जिस । निक्करौ=निककरउ, निककरे निकले । कदिय=कभी भी । भडि पडहु=भड़ पड़े । धर=धड़, रुएड, शरीर । जाह=जाय । हुँ स=हम । भीच=सकुचित होना । तनो=हमारा । ता=वह । नथि=नहीं । पुत्त=पुत्र । बापह=पिता । तनो=का ।

अर्थ:—मुल्क के शाह शहाबुदीन ने जिस द्वार से सामंतों को निकालने की जिह की थी, उसी द्वार से अनेक सामंत जो कभी इस द्वार से नहीं निकले थे, उससे (धर्म द्वार से) निकल गये, किन्तु सामंतों के समान ही बल रखने वाले साखुला सूर और देवराय ने कहा— हमारे सिर कट कर क्यों न गिर जायँ, यह पृथ्वी हमारे शरीर सहित क्यों न नाश को प्राप्त हो जाय, किन्तु हम निष्कलक देह धारो हैं । अतः सकुचित होकर पीछे नहीं होंगे । वह अपने पिता का पुत्र नहीं कहला सकता जो धर्म द्वार से निकल जाय ।

दोहा

भयौ प्रात फट्टे^१ तिमर^२, मिल्लिष संग^३ तत्तार ।

करत कूच^४ तुट्टे सुभर, गढ़ लग्गे चिहुँ वार ॥ १७ ॥

प्रा०पा० , २ पा०भी०का० ।

शब्दार्थः—फट्टे तिमर=अंधेरा दूर हुआ । मिल्लिष=मिलगए । संग=साथी-समूह । कूच=प्रस्थान ।

तुट्टे=टूट पड़े । चिहुँ=चारों ओर । वार=बाहर को ।

अर्थः—सुबह होने पर जब अंधेरा दूर हो गया तब तत्तार के सब साथी एकत्रित हुए, उसी समय गढ़ के बाहर चारों ओर घिरे हुए शत्रुओं पर हिन्दू वीर आकर टूट पड़े ।

कवित्त

खां-तत्तार गढ घेरि, दोह वज्जे वजाए^१ ।

दो दस दिन सामंत, पन्न^२ पानह^३ मुम्महाए^४ ॥

पन्न पान सोचंत^५, दीह तिन सूर न पाइय ।

गयो वीरपा हार, नाम किन सूर न साइय ॥

पारथ्य नीत भारथ्य सह, गो^६ पन^७ रखि अपु बल तिया ।

हथ्य धनुख आइ वनर बली, सीय कञ्ज अपु सह किया ॥ १८ ॥

प्रा०पा०१ से ४ तक, घ०का०भी० । १पा० । ६, ७ का० ।

शब्दार्थः—दोह=दहाने के लिए । पन्न-पानि=हाथ । पानह=शक्ति । दीह=दिन । तिन=उन ।

सूर=बहादुरी । वीरपा=विरत्पन । हार=चला गया । साइय=साह पाया, रख पाया । गो=गया ।

पन=प्रण । अपु=अपने । तिया=गोपियों, स्त्रियों । रथ=हाथ । वनर=वानर । कञ्ज=लिए ।

सह=सहना ।

अर्थः—तत्तार खां ने दुर्ग को घेर कर दहा देने के लिए वाजे वजवाए, कुछ दिनों तक तो सामंत-गण अपने हाथों के बल पर जूमते रहे । किंतु उनके जूमते हुए भी उन दिनों में किसी की बहादुरी ने स्थान नहीं पाया, उनकी बहादुरी चली गई, कोई भी अपना नाम उस समय नहीं रख सका । समय प्रबल है । जिस अर्जुन ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की थी, वह भी अपने बल से गोपियों को सुरक्षित रखने में प्रतिष्ठा रहित हुआ और सीता की सुधि जाने के लिए ही हनुमान जैसे बलि-वानर ने वाण साधन द्वारा पकड़ा जाना सहन किया ।

अर्थ:—उपर्युक्त सामंतों के हिम्मत दोड़ देने पर तत्काल ने शाह में कड़ा प. गीराज के दुर्ग में रहे जेप ग्यङ्गधारी सामंतों ने अपनी हिम्मत पर हरती है । तब मुल्तान के सैनिक मिलकर वहाँ आगम और गद्दी सेना ने दुर्ग का घेरा घान किया । स्वयं शहाबुद्दीन चलकर हॉसीपुर आया और गद्दापुर सामन्ता में होने २ हिम्मत छोड़ कर दुर्ग से निकल गए, यह उसे ज्ञात होगया । सामन्तों की सुभामणा और अमन्नणा का भी उसे आभास हो गया और उसने कड़ा-हम लोगों का निरन्तर शक्ति की वृद्धि करनी चाहिये और श्रेष्ठ तलवार कमर के बाव कर कुरान को पढ़ शीघ्र ही कार्य सफल कर लेना चाहिये ।

सजे सीस गयनग, रथौ रूपे रन माही ।
सवल सेन सुरतान, परिय पारस परछाही ॥
हक धक किलकार, करै आसुर असमान ।
गोर नार जवूर, बान रुकै रह भान ॥

पावे न मभक्त पखी पसर, विसर नह बज्जे सवल ।

साखुलौ सुभर जुझ्यौ समर, उदधि मभक्त लग्यौ अनल ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—सजे=उपत किया, लगा दिया । गयनग=आसमान से । रूपे=उटभर, दृढ हंकर । पारस=घेरा । हकक=हुककार । धकक=चल पड़े । आसुर=असुर, मुस्लिम । असमान=विषमता पूर्ण । गार=गोले । नार=नाती । जवूर=छोटी तोप । बान=तीर । रह=रथ । मान=सूर्य । पखी=पक्षी । पसर=चल सकै, उड़ सकै । विसर=बिसर, भयानक नह=नाद, आवाज । सवल=जोर से ।

अर्थ:— इधर से सॉखला शूर अपने सिर को अकाश की ओर उठाता हुआ युद्ध-स्थल में आकर डट गया । बादशाह की सवल सेना जिमने दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल रखा था उस पर उसके उन्नत सिर की परछाई पडी । यह देख कर मुस्लिम योद्धा भयकर हुकार और किलकारी करते हुए चले (बहादुर हुँकार करते हुए सामने और कायर किलकारी करते हुए पीछे चले) । छोटी २ तोपों से गोले और बाण इतने चले जिससे सूर्य-रथ रुक गया । उनके अन्दर से पक्षी भी नहीं उड़ सकते थे, भयानक स्वर में बाजे बजने लगे । ऐसे युद्ध में वह वीर सॉखला जूझता हुआ इसप्रकार दिखाई दिया मानो समुद्र में बाड़वाग्नि प्रज्वलित हो गई हो ।

दोहा

भयौ प्रात फट्टे^१ तिमर^२, मिलिघ संग तत्तार ।

करत कूच तुट्टे सुभर, गढ़ लग्गे चिहुँ वार ॥ १७ ॥

प्रा०पा० , २ पा०भी०का० ।

शब्दार्थः—फट्टे तिमर=अंधेरा दूर हुआ । मिलिघ=मिलगए । संग=साथी-समूह । कू च=प्रस्थान ।

तुट्टे=टूट पड़े । चिहुँ=चारों ओर । वार=बाहर को ।

अर्थः—सुबह होने पर जब अंधेरा दूर हो गया तब तत्तार के सब साथी एकत्रित हुए, उसी समय गढ़ के बाहर चारों ओर घिरे हुए शत्रुओं पर हिन्दू वीर आकर टूट पड़े ।

कवित्त

खां-तत्तार गढ़ घेरि, ढोह वज्जे वजाए^१ ।

दो दस दिन सामत, पन्न^२ पानह^३ झुमफ्ताए^४ ॥

पन्न पान सोचंत^५, दीह तिन सूर न पाइय ।

गयो वीरपा हार, नाम किन सूर न साइय ॥

पारथ्य नीत भारथ्य सह, गो^६ पन^७ रखि अपु बल तिया ।

हथ्य धनुख आइ वनर बली, सीय कज्ज अपु सह किया ॥ १८ ॥

प्रा०पा०१ से ४ तक, घ०का०भी० । १पा० । ६, ७ का० ।

शब्दार्थः—ढोह=दहाने के लिए । पन्न-पानि=हाथ । पानह=शक्ति । दीह=दिन । तिन=उन ।

सूर=बहादुरी । वीरपा=विरत्वपन । हार=चला गया । साइय=साह पाया, रख पाया । गो=गया ।

पन=प्रण । अपु=अपने । तिया=गोपियों, स्त्रियों । हथ्य=हाथ । वनर=वानर । कज्ज=लिए ।

सह=सहना ।

अर्थः—तत्तार खां ने दुर्ग को घेर कर ढहा देने के लिए वाजे वजवाए, कुछ दिनों तक तो सामंत-गण अपने हाथों के बल पर जूमते रहे । किंतु उनके जूमते हुए भी इन दिनों में किसी की बहादुरी ने स्थान नहीं पाया, उनकी बहादुरी चली गई, कोई भी अपना नाम उस समय नहीं रख सका । समय प्रबल है । जिस अर्जुन ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की थी, वह भी अपने बल से गोपियों को सुरक्षित रखने में प्रतिज्ञा रहित हुआ और सीता की सुधि जाने के लिए ही हनुमान जैसे बलि-वानर ने वाण साधन द्वारा पकड़ा जाना सहन किया ।

अर्थ:— उपर्युक्त सामंतों के हिम्मत छोड़ देने पर तत्तार ने शाह से कहा- पृथ्वीराज के दुर्ग में रहे शेष खड्गधारी सामंतों ने अपनी हिम्मत दृढ़ करली है। तब सुलतान के सैनिक मिलकर वहाँ आ गए और शाही सेना ने दुर्ग का घेरा डाल दिया। स्वयं शहाबुद्दीन चलकर हॉसीपुर आया और वहादुर सामंतों में से कौन २ हिम्मत छोड़ कर दुर्ग से निकल गए, यह उसे ज्ञात होगया। सामंतों की सु-मन्त्रणा और अमन्त्रणा का भी उसे आभास हो गया और उसने कहा- हम लोगों को निरन्तर शक्ति की वृद्धि करनी चाहिए और श्रेष्ठ तलवार-रुमर के बाध कर कुरान को पढ़ शीघ्र ही कार्य सफल कर लेना चाहिये।

सजे सीस गयनग, रह्यौ रूपे रन माही ।

सवल सेन सुरतान, परिय पारस परछाँही ॥

हक्क धक्क किलकार, करै आसुर असमान ।

गोर नार जवूर, वान रुक्के रह भान ॥

पावे न मभक्त पखी पसर, विसर नह बज्जे सवल ।

साखुलौ सुभर जुट्यौ समर, उदधि मभक्त लगगौ अनल ॥ १६ ॥

शब्दार्थ:—सजे=उद्यत किया, लगा दिया। गयनग=ग्रासमान से। रूपे=डटकर, दृढ़ होकर।

पारस=घेरा। हक्क=टुककार। धक्क=चल पड़े। आसुर=यसुर, मुस्लिम। अममान=

विपमता पूर्ण। गोर=गोले। नार=नाली। जवूर=छोटी तोप। वान=तीर। रह=रथ।

मान=सूर्य। पखी=पखेरू। पसर=चल सकें, उड़ सकें। विसर=बिसर, भयानक नह=नाद, यात्राज।

सवल=जोर से।

अर्थ:— इधर से साँखला शूर अपने सिर को अकाश की ओर उठाता हुआ युद्ध-स्थल में आकर डट गया। बादशाह की सवल सेना जिमने दुर्ग के चारों ओर घेरा डाल रखा था उस पर उसके उन्नत सिर की परछाई पड़ी। यह देख कर मुस्लिम-योद्धा भयकर हुंकार और किलकारी करते हुए चले (वहादुर हुंकार करते हुए सामने और कायर किलकारी करते हुए पीछे चले)। छोटी २ तोपों से गोले और बाण इतने चले जिससे सूर्य-रथ रुक गया। उनके अन्दर से पक्षी भी नहीं उड़ सकते थे, भयानक स्वर में बाजे बजने लगे। ऐसे युद्ध में वह वीर साँखला जूझता हुआ इसप्रकार दिखाई दिया मानो समुद्र में वाइवाग्नि प्रज्वलित हो गई हो।

दोहा

भयौ प्रात फट्टे^१ तिमर^२, मिलिष संग तत्तार ।

करत कूंच तुट्टे सुभर, गढ लग्गे चिहुँ बार ॥ १७ ॥

प्रा०पा० ; २ पा०भी०का० ।

शब्दार्थः—फट्टे तिमर=अंधेरा दूर हुआ । मिलिष=मिलगए । संग=साथी-समूह । कूंच=प्रस्थान ।

तुट्टे=टूट पड़े । चिहुँ=चारों ओर । बार=बाहर को ।

अर्थः—सुबह होने पर जब अंधेरा दूर हो गया तब तत्तार के सब साथी एकत्रित हुए, उसी समय गढ़ के बाहर चारों ओर घिरे हुए शत्रुओं पर हिन्दू वीर आकर टूट पड़े ।

कवित्त

खां-तत्तार गढ घेरि, दोह वज्जे वजाए^१ ।

दो दस दिन सामंत, पन्न^२ पानह^३ सुममाए^४ ॥

पन्न पान सोचंत^५, दीह तिन सूर न पाइय ।

गयो वीरपा हार, नाम किन सूर न साइय ॥

पारथ्य नीत भारथ्य सह, गो^६ पन^७ रखि अपु बल तिया ।

हथ्य धनुख आइ वनर बली, सीय कज्ज अपु सह किया ॥ १८ ॥

प्रा०पा० १ से ४ तक, घ०का०भी० । १ पा० । ६, ७ का० ।

शब्दार्थः—दोह=दहाने के लिए । पन्न-पानि=हाथ । पानह=शक्ति । दीह=दिन । तिन=उन ।

सूर=बहादुरी । वीरपा=विरत्वपन । हार=चला गया । साइय=साह पाया, रख पाया । गो=गया ।

पन=प्रण । अपु=अपने । तिया=गोपियों, स्त्रियों । हथ्य=हाथ । वनर=वानर । कज्ज=लिए ।

सह=सहना ।

अर्थः—तत्तार खां ने दुर्ग को घेर कर दहा देने के लिए वाजे वजवाए, कुछ दिनों तक तो सामंत-गण अपने हाथों के बल पर जूमते रहे । किंतु उनके जूमते हुए भी रत्न दिनों में किसी की बहादुरी ने स्थान नहीं पाया, रत्नकी बहादुरी चली गई, कोई भी अपना नाम उस समय नहीं रख सका । समय प्रव्रल है । जिस अर्जुन ने महाभारत युद्ध में विजय प्राप्त की थी, वह भी अपने बल से गोपियों को सुरक्षित रखने में प्रतिज्ञा रहित हुआ और सीता की सुधि लाने के लिए ही हनुमान जैसे बलि-वानर ने वाख साधन द्वारा पकड़ा जाना सहन किया ।

अरस पूर तत्तार, भूभ वज्जी मग सुद्री ।
 इकल्लो दिवन्नन, वान अर्जुन मग बुद्री ॥
 और सवै सामंत, माहि विसहर' आलुद्री ।
 मरन भार उद्दग विहार, तेग^२ वीरा रस वधी ॥
 सांखलौ सूर सारगदे, तिन वधी लज्जी -जगत ।
 उच्चरै सूर सामत सू^३ जेन भिरत पच्छड मरत ॥ १६ ॥
 प्रा० १-२ सर्व प्रति । ३ पा० ।

शब्दार्थः—अरस=अरव, घोड़ा । पूर=ठेलकर, बढ़ाकर । भूभ=भूभावात । वज्जी=चली । मग=रास्ता, युद्ध मार्ग । सुद्री=साधन । माहि=में, अन्दर, युद्ध में । विसहर=विपधर, सर्प । आलुद्री=उलभ पड़े । मरन=मृत्यु । भार=भङ्गी । उद्दग=उन्नत । विहार=चलते हुए, विहरते हुए । तेग=तलवार । तिन=उपने । लज्जी=लज्जा । सू=से । जेन=जो नहीं । भिरत=भिड़ते । पच्छड=पीछे सी ।

अर्थः—घोड़े को भूभावात की तरह बढ़ाते हुए तत्तारवां ने युद्ध-मार्ग को पकड़ा । और मार्ग साफ किया । इधर से अकेला देवकर्ण, जो बाण और बुद्धि में अर्जुन के समान था उसने भी युद्ध में पैर दिया । अन्य सामत भी उस युद्ध में विपैले-सर्प के समान होकर उलभ पड़े । वे मृत्यु की ढूँढी करते और उन्नत होकर चलते हुए वीर रस में ओत-प्रोत होगये और तलवारें कसी । किन्तु साखले सूर और सारग-दे ने उसी तलवार को समार की लज्जा के लिये कसते हुए बहादुर सामतों से कहा, जो युद्ध में नहीं भिड़ता है वह भी एक दिन मरता ही है ।

अनल मद्धि दिवराज, परे पारस दधि^१ गोरी ।
 लहरि सेन वाजत, धार भारां^२ भूभभोरी ॥
 वज्जि धार विम्भार, मार मारह मुख जपहि ।
 सूर मत्त रन रत्त, कलह कायर उर कपहि ॥
 लगी सार धार रुधि छंछ छुटि^३, सहस सूर उट्टुहि लरन ।
 आवट्टि सेन अट्टों सु अध, अट्ट २ लगौ भिरन ॥ २० ॥
 प्रा० पा० १, ३ सर्व प्रति । २ भी० का० घ० ।

शब्दार्थः—अनल=अग्नि, वाइवाग्नि । मद्धि=मध्य में । दिवराज=देव कर्ण । परे पारस=घेरा-पुड़ा ।
 दधि=समुद्र । गौरी=गौरी सेना । लहरि=लहरें, तरंगे । बाजत=चल कर, चलने पर । धार=खड्गधार ।
 भारी=ज्वाला । भकभारी=हिल्लोर दिया । वज्रिज=चलाई । विम्मार=उठा कर । मत्त=मुस्त,
 मतवाला । रत्त=अनुरक्त । कलह=युद्ध । रधि=रधिर । ध्वज=धारा । छुटि=छूटी । आवट्टि=आवेश
 में आकर । घट्टर=धराशाई होते हुए भी, गिरते २ भी।

अर्थः—गौरीशाह का घेरा समुद्र के समान था । उसके मध्य में देवराज वाइवाग्नि
 स्वरूप दिखाई देता था । तरंग रूपी सेना के बढ़ने पर उसकी खड्गधार ज्वाला
 रूप होकर सैन-सिंधु को हिला देती थी । उसने मार २ शब्द उच्चारण कर
 तलवार उठाकर चलाना शुरू कर दिया । उस समय मतवाले वीर ही रण में
 अनुरक्त दिखाई पड़े और कायरों के हृदय कांपने लगे । उस वीर (देव कर्ण) के
 शस्त्राघात से इस प्रकार रक्त-धारा ऊपर छूटने लगी, मानों सहस्त्रों वीर लड़ने
 के लिये खड़े हुए हों । उसने आवेश में आकर विपत्ती सेना को इतना काटा कि
 आधा रख दिया । गिरते २ भी वह शेष आधी सेना से लड़ता रहा ।

दीहा

देवक्रन्न सुरलोक वसि^१, ह्य नर धर गज भान^२ ।
 नाग असुर सुर नर सुरभ^३, वदि भारध्य वखान ॥ २१ ॥

प्रा० पा० १ सर्वप्रति । २ भी० का० । ३ घ० भी० का० ।

शब्दार्थः—मान=नाश । रम=रम्भा । मारप्य=युद्ध ।
अर्थः—अश्वारोही-गजारोही सेना का नाश करता हुआ देवकर्ण स्वर्गलोक में जा
 वसा । उसके युद्ध की विशेष प्रशंसा नाग गण, असुर गण, सुर गण, नर गण
 और रम्भा ने की ।

कवित्त

जीति समर दिवक्रन्न, धार पति चद्रिय धार ।
 निगम ध्रम्म अजमेध, द्रभभ थल दुज्जअचारं ॥
 रथ रभन वर^१ थक्कि, रच्चि थक्यौ रथ लोचन^२ ।
 वध इन्द्र सर वध, मंठु वारा रहि सोचन^३ ॥

शिष वध सथथ रथ ऊर चदि, भूनिग तन गय^४ ब्रह्मपुर ।
 इह करि न कोइ करि है नही, करौ सु को रजपूत धर ॥ २२ ॥
 प्रा० १ भी० का० घ० । २ पा० घ० का० भी० । ३ पा० । ४ भी० का० ।

शब्दार्थः—धारपति=शैली के अनुसार धार राज-वशज होने से धारपति लिखा गया । धार=राजगधारा । चङ्किय=बलि हो गया । निगम=वेद । ध्रम्म=धर्म । अजमेध=अश्वमेध । दग्ध थल=दर्भस्थल, वेदी । दृज्जश्चचार=द्विजाचार । (द्विज समुदाय और हाथियों को रद पक्ति) । रम्भन=रम्भा का । रवि=रवि, सूर्य । वध इन्द्र=इन्द्र का प्यारा, मोर । मद्दु=मलिन, उदास । धारा=नारागनाएँ, अप्सराएँ । शिव वध=शिव प्रिय, विष्णु । ऊर=पर । भूनिगतन=भूमिग का पुत्र । गय=गया ।

अर्थः—इस प्रकार धार राजवशी देवकर्ण प्रमार युद्ध स्थल में विजय प्राप्त करता हुआ खड्ग धार पर बलि हो गया । उसका अन्तिम युद्ध धर्म शास्त्र में लिखे अश्वमेध यज्ञ के समान हुआ । यहाँ यज्ञ वेदी हाथियों के समूह को ही कही जा सकती है । जहाँ द्विजाचार है (द्विज समुदाय और हाथियों की रद पक्ति है) उस वंश के युद्ध को देखते २ रम्भा का श्रेष्ठ रथ रुक गया । सूर्य के नेत्र रथ से देखते २ थक गए, सिर पर मोर (सेहरा) बाँध कर आसरा चरण की इच्छा करती ही रह गई । स्वयं विष्णु आ उपस्थित हुए और वह भुनिग-पुत्र विष्णु सहित ब्रह्मलोक में चला गया । ऐसी करणी कोई कर नहीं सकता, और यदि कोई कर सकता है तो सच्चा क्षत्रिय ही कर सकता है ।

देवक्रन्न वर वीर, धीर भर भीर अभीर^१ ।

चौ च्यालीस प्रमाण, तुष्टि तन धार सु धीर ॥

धुति सुदेव उच्चार, करै अस्तुति दें तारी ।

सिर तुष्टे धर उष्टि, भिरन कड्डी कटारी ॥

अरि मुख गयौ चडि चित्त^३ अरि, तनु धारा हर त्रिटयौ ।

कायरन जेम तज्यौ न रन, करि कुट्टा जिम कुट्टयौ ॥ २३ ॥

प्रा० पा० १ सर्व० । २ घ० ३ पा०

शब्दार्थः—धीर=धैर्यवान् । भर=भट । भीर=सहायक । अभीर=असहाय । चौचालीस=चौवालीस । तुष्टि=टूट गई । धुति=स्थित, टकटकी लगाए हुए । धर=धड़ । मुख=पामने । चडि=चढ गए । तनु=शरीर । धाराहर=धाराधर, खड्ग धाराएँ । त्रिटयौ=धिरगया । कुट्टा=कुट्टी (टुकड़े २) । कुट्टयौ=कटा, कटा ।

अर्थः—वीर श्रेष्ठ देवकर्ण धीर वीर था, जिसका कोई सहायक नहीं उसका वह सहायक था । उसके शरीर पर चौवालीस खड्गों की धारें टूट गई (खिर गई) ।

टकटकी लगाकर देवतागण ताली देकर उसकी जय २ कार करने लगे । उस वीर का मुण्ड कट जाने पर रुण्ड खड़ा होगया और कटारी निकाल शत्रु का सामना किया । उस समय वह शत्रु के चित्त में भी बस गया । उसका रुण्ड तलवारों से आच्छादित होगया । उसने कायरों के समान युद्ध को नहीं छोड़ा । युद्धस्थल में उसके शरीर के कुट्टी के समान टुकड़े २ होगए ।

दोहा

रा-देवग रहंत रन । सहस एक वर वीर ।

तामें एक कमध खिलि । तिन संघारिग मीर ॥ २४ ॥

शब्दार्थः—रा=राय, राव, राज । रहंत=रहने पर । खिलि=प्रसन्न हुआ । तिन=उसने । सघारिग=संहार कर दिया । मीर=मुसलमान ।

अर्थः—जिस समय तक देवकर्ण रणक्षेत्र में काम आ चुका, उस समय तक एक सहस्र हिन्दू वीर शेष रहे थे । उनमें से एक वीर कमधज ने युद्धार्थ हर्षित होकर मीरों (यवनों) का संहार कर दिया ।

बाने विद्र वका^२ वहै, वका^३ खान अलील ।

वस सहस्र सम मीर वर, तिन लीनो गढ़ कील ॥ २५ ॥

। प्रा० पा० १, २, ३ पा० ।

शब्दार्थः—बाने=सुशोभित, शोभा । विद्र=विरुद्ध । वहै=प्रचलित, प्रसिद्ध । वका=वाँका । लीनो=लिया । कील=घेर, रोक ।

अर्थः—जो प्रसिद्ध वाँका विरुद्धों से सुशोभित था, ऐसे अलीलखान ने अपने समान ही षस सहस्र मीरों को साथ में लेकर पुनः दुर्ग को घेर लिया ।

कोट मद्धि रजपूत सौ, तिनह सद्धि दरवार ।

गिरद वाज^१ चहुँकोद फिरि, मीर पीर सिरदार ॥२६॥

प्रा० पा० १ सूचप्रति ।

शब्दार्थः—कोट=दुर्ग । मद्धि=मध्य, अन्दर । सौ=ने या १०० तक्या । सद्धि=माघा, किया । दरवार=समा । गिरद वाज=घेरा देने वाले । चहुँकोद=चारों ओर ।

अर्थः—दुर्ग के भीतर बचे हुए राजपूतों ने सभा की। सधर मेरा देने वाले मीर और पीर योद्धा दुर्ग को चारों ओर से घेरे हुए थे।

होसीपुर प्रथिराज पै, चद सुपन बरदाइ ।

धवल वस्त्र उज्जल सु तन, पुक्कारिव न्रप राइ ॥२७॥

शब्दार्थः—सुपन=स्वप्न । बर=भ्रष्ट । दाइ=दिया । धवल=श्वेत । उज्जल=उज्ज्वल । पुक्कारिव=कहो । राइ=कविराव ।

अर्थः—पृथ्वीराज को सचेत करने के लिये होसीपुर ने कविचन्द को धवल वस्त्र और उज्ज्वल शरीर धारण कर स्वप्न दिया और कहा— है कविराव ! इस स्वप्न की बात तुम राजा से कहो ।

हासीपुर उच्चार बर, वींदि^१ सेन सुलतान ।

अजहूँ हूँ भगिय^२ नहीं, करि उप्पर चहुआन ॥ २७ ॥

प्रा०पा०१ पा०भी० । २ भी० ।

शब्दार्थः—वींदि=वेरलिया । सेन=सेना । हूँ=मैं । भगिय=दूटा । उप्पर=सहायता ।

अर्थः—तब कविचन्द ने राजा से कहा— हे चाहुआन राय ! होसीपुर का श्रेष्ठ कथन यह है कि मैं सुलतान की सेना द्वारा घिर गया हूँ । फिर भी अब तक नहीं दूटा हूँ । अतः आपको चाहिये कि आप सहायता करें ।

कवित्त

उभै दीह गढ़ ओट, सस्त्र बज्जे सुवान अग ।

अग्गवान कम्मान, सार सिधुर अमग जग ॥

ता पच्छे सामत, मत कीनौ परमान ।

नखि कोट गढ़ ओट, सस्त्र लग्गे असमान ॥

नृप राज अर्यौ आसी सुन्थो, सुपनतर ऐसी^१ कहिय ।

दिल्ली नृपत्ति दिल्ली धरा, डीली व्है अगों रहिय ॥ २६ ॥

प्रा०पा०१ भी० ।

शब्दार्थः—सुवान=सुभान धर्म को मानने वाले मुस्लिम । सार=लोहा, शस्त्र । सिधुर=हाथी । अमग=अवय, नष्ट न होने वाला । जग=जाग्रत हुआ । पच्छे=पीछे । परमान=निश्चय, प्रमाण ।

नंखि=छोड़ कर। ओट=दीवार। असमान=विषम। अरथौ=अर्ध पंहे। हासी=हाँसी। दिल्ली=दिल्ली।
दोही व्हे=दिल्ली का भूभाग आपका ही होकर।

अर्थः—दो दिन तक दुर्ग की ओट में रह कर मुसलमानों से हिन्दुओं ने लोहा लिया। उस समय कबानों से बाण और अडिग हाथियों पर लोहा बरसने लगा, उस के पश्चात् सामतों ने निश्चित मन्त्रणा की और दुर्ग की दीवार की आड़को छोड़ दिया तथा भयंकरता से शस्त्र-प्रहार करने लगे। नृपराज ! इस प्रकार हाँसीपुर के निवासी वीर भिड़े हैं और स्वप्न में मुझे हाँसीपुर ने यह कहा है कि दिल्लीश्वर ! आपकी दिल्ली का भूभाग हाँसीपुर अब तक तो आपका होकर रहा है (अभी तक शत्रुओं का कब्जा नहीं हो पाया है)।

हाँसी पुच्छै पहुमि-राय तू काइन भगिगय ।

मोव^१ भीर^२ पम्मारि, तेन भू दंड विलगिय ॥

तिन ए रस च्चचरे, त्रिया छल श्रव्व गमिज्जै ।

जै सिर पड़े तो जाहु, कज्ज साई वल^३ किज्जै ॥

सहसा परि मुममे सांखुलौ^४, एह अचिज पिक्खन रहिय ।

दिवराव सूर खडे परिग, ताम तुरक्के संग्रहिय ॥ ३० ॥

पा०पा०१, २ भी० । ३ पा०घ० । ४ घ०भी०का० ।

शब्दार्थः—पहुमी राय=मुझ पृथ्वीमट्ट ने (मुझ पृथ्वी चंद कवि ने)। काइन=क्यों नहीं। भगिगय=चूटा, टूटा। मोव=मेरी श्रव। भीर=सहायता। पम्मारि=प्रमार क्षत्री-देवकर्ण। तेन=उसी से। भू दंड=पृथ्वी पर दंड स्वरूप। विलगिय=लग गया। तिन=उसने। ए=यह। रस=रस मरी बात। शम्भ=सर्व। गमिज्जै=छोड़ देना चाहिए। जै=जो, यदि। जाहु=जाने दो। कज्ज=काम, लिप। साई=स्वामी। किज्जै=करिए। मुममे=जूम पहा। सांखुलौ=साखुला वंश। एह=यह। अचिंज=आश्चर्य, अचरज। पिक्खन=देखना। दिवराव=देवकर्ण। खडे=खण्ड-खण्ड हो, टुकड़े-टुकड़े हो कर। परिग=पड़ गया। ताम=तब। तुरक्के=तुरकक। संग्रहिय=वेरा दिया।

अर्थः—तब मुझ पृथ्वीमट्ट (चंद) ने पूछा—तू किस कारण से नहीं टूटा है ? उसने कहा मेरी सहायता पर प्रमार वीर (देवकर्ण) हो गया। मैं पृथ्वी का टण्ड स्वरूप दुग

उसके गले लग गया है। उस वीर ने यह रस भरी बात मुझ से कही कि त्विगों को जैसे सर्व छल छद्म छोड़ देने चाहिए। उसी प्रकार यदि सिर पड़ जाय तो कुछ परवाह नहीं, स्वामी के कार्य के लिए शाक्त अजमानी चाहिये। उसी समय यकायक सहभमल या साखला वीर मारा गया। ऐसे आश्रय दायक युद्ध को देखने के लिए मैं रह गया हूँ (अर्थात् मैं नहीं टूटा) और जब बहादुर देवकर्ण पण्ड-पण्ड होकर गिर पड़ा, तब तुरुष्को ने मुझे फिर घेर लिया है।

दोहा

सुनिय बचन प्रथिराज ने, हासी भारथ वित्त ।

ध्रम दुआरि^१ निकरि सुभर, देवराव परि खित्त ॥ ३१ ॥

प्रा० पा० १ पा० घ० का० ।

शब्दार्थः—भारथ=युद्ध । वित्त=बात, वर्णन । ध्रम दुआरि=धर्म द्वार । निकरि=निकले । परि=पढ़ गया । खित्त=क्षेत्र ।

अर्थः—हासीपुर पर जो युद्ध हुआ तथा धर्मद्वार से होकर सामत निकले उसका और देवकर्ण युद्ध में काम आया तब तक का वर्णन राजा ने सुना ।

इह भविवख चितै नृपति, भयो करुन^१ रस चित्त ।

रुद्र वीर अरु हास रस औ^२ अपुच्च कथ वित्त ॥ ३२ ॥

प्रा० पा० १, २ पा० ।

शब्दार्थः—इह=यह । भविवख=भविष्य । चितै=चित्तन । औ=यह । अपुच्च=अपूर्व । वित्त = बीती ।

अर्थः— आश्चर्य जनक बात यह है कि इस हौनहार के सम्बन्ध में चित्तन करते हुए राजा के चित्त में करुणा रौद्र, वीर और हास्य रस ने एक साथ ही स्थान प्राप्त किया। (हासीपुर की जनता की दुख द घटना से करुणा, शत्रुओं पर क्रोध करने से रौद्र और वीर, बहादुर सामतों का धर्म द्वार से निकलना ही हास्य का कारण हो सकता है)।

कवित्त

सुनत राज प्रथिराज, वोलि कैमास महा भर ।

तम मत्री मत्रण, मत्र रक्खन सामत वर ॥

हयति नट्ट गज नट्ट, नट्टि रधि वासह नट्टी ।

सोच सु नट्टि सनेह, नट्ट गुन विद्य अनुट्टी ॥

त्यो सेन नट्ट हांसी पुरह, मंत चपजै सो करौ ।

कैमास मंत मती सुमत, मति उच्चारन विच्चरौ ॥ ३३ ॥

शब्दार्थः—महामर=महायौद्धा । तम=तुम । मंत्रंग=मंत्रणा के अंग । रक्खन=रखने वाले । हयति=विशेष घोड़े । नट्ट=नष्ट होगई रधि=रिद्धि, संपत्ति । वासह=निवास, स्थान । धोच=शौच, पवित्रता । विद्य=विद्यमान । अनुट्टि=अनोखे । त्यो=तैसे ही । उप्पजै=उपजे, सोच सके । मंत=मतवाला । मति=मंत्रो । विच्चरौ=कार्यरूप में परिणित करो, तदनुसार चलो ।

अर्थः—स्वप्न की यह बात सुनकर पृथ्वीराज ने महायौद्धा कयमास को बुलाया और कहा कि हे मन्त्रिवर ! तुम प्रत्येक विषय के जानने वाले और उसका श्रेष्ठ स मतों में प्रचार कर देने वाले हो । हांसीपुर के युद्ध में घोड़े, हाथी, सम्पत्ति, निवास, पवित्रता, स्नेह और विद्यमान अनूठे गुण तथा सेना का नाश होगया है । इसलिए जो भी ठीक सम्मति हो वैसा करो । हे मतवाले मन्त्रो कैमास ! तुम में श्रेष्ठ बुद्धि है, जैसी भी तुम्हारी सम्मति हो, उसे कार्य-रूप में परिणित करो ।

दोहा

मंत्रि मत्र कैमास कहि, राजन चित्त विचार ।

ए सामत अमत मत, कोइ देवान प्रकार ॥ ३४ ॥

शब्दार्थः—अमन=अमन्त्रणा । देवान=देवता । प्रकार=तुल्य ।

अर्थः—तब मन्त्री कयमास ने अपनी मन्त्रणा राजा के सामने रक्खी और कहा हे राजन् । आप अपने चित्त में यह विचार लीजिये कि अपने सामन्तों की बुद्धि तो सलाह के योग्य नहीं है । इसलिये किसी देव तुल्य पुरुष से मन्त्रणा करनी चाहिये ।

कवित्त

कहै मन्त्रि कैमास, पास रावल जन मुक्कौ ।

वह आहुट्ट नरेम, चाहि त्रिन मत सु चुक्कौ ॥

तुम आतुर अति तेज, और मिली है चित्र गी ।

जनु पजलंनो अगिग, मट्टि घत सचित्त-तरंगी ॥

इम' मन्त्रि मन्त्र गिरि-राज दिसि, दिय पत्री समर विगति ।

दिन दिवस अवधि पंचमि कहिय, दिसि हांसी आवन सुगति ॥ ३५ ॥

प्रा० पा० १ सर्व प्रति ।